प्रथम संस्करण
१९४६
द्वितीय सस्करण
१९५१
तृतीय संस्करण
१९५६
चतुर्थ सस्करण
१९५८

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए जीरो रोड, इलाहाबाद
मुद्रक—नया प्रेस, ३३७ मुट्ठीगञ्ज, इलाहाबाद ।

अपने विद्या-गुरु

पं० अयोध्यानाथ जी शर्मा को

जिनके अनुग्रह ने हिन्दी के अध्ययन का द्वार

मेरे लिए उन्मुक्त किया ।

में जो बहुत-सी ऊटपटॉग बात कही जाती रही हैं, वह उसका आशय ठीक से न ग्रहण करने के कारण ही। श्रेष्ठ काव्य का एक गुण यह भी होता है वि उसका अर्थ पूरी तरह से पकड़ में कभी नहीं आता। शब्द वहाँ अपने सामान्य अर्थ से कुछ अधिक ही व्यजित करते हैं। टीकाओं की यदि कोई सार्थकता है तो यही।कि वे उस प्रच्छन्न सौंदर्य की ओर सकेत करें।

इस टीका में मुझे पूरा एक वर्ष लग गया था, अब इतना ही याद रह गया है। इस बात को बहुत वर्ष हो गये। कृति का अध्ययन एक स्नेहशील परिवार में रहकर चल रहा था। उन दिनों मैं बेकार था। साधारण से स्थान के लिए भी प्रार्थना-पत्र भेजता तो उसका कोई उत्तर तक नहीं देता था। ऐसी मानसिक स्थिति में उस साहित्य और कलाप्रेमी परिवार के सुरुचि-सम्पन्न सदस्यों के निरन्तर स्नेहशील व्यवहार से मुझे बड़ा बल मिला। वे लोग अब कहाँ हैं, मुझे पता नहीं। पर इतना मुझे अब भी स्मरण है कि प्रभातकाल मे स्नान के उपरांत जब मैं अपने काम पर बैठता था, तो मेरी मेज पर अगर की बत्तियाँ जलाकर कोई चुप-चरणों से लौट जाता था। अतः इस महाकाव्य की व्याख्या में प्राणों के रस की झलक यदि कहीं आपको मिले, तो उसे धूप की उसी गध का प्रभाव समझें।

—मानव

12

अपने विद्या-गुरु
पं० अयोध्यानाथ जी शर्मा को
जिनके अनुग्रह ने हिन्दी के अध्ययन का द्वार
मेरे लिए उन्मुक्त किया ।

प्रथम संस्करण
१९४९

द्वितीय सस्करण
१९५१

तृतीय सस्करण
१९५६

चतुर्थ सस्करण
१९५८

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए जीरो रोड, इलाहाबाद ।

अपने विद्या-गुरु
प० अयोध्यानाथ जी शर्मा को
जिनके अनुग्रह ने हिन्दी के अध्ययन का द्वार
मेरे लिए उन्मुक्त किया ।

व्याख्या

आलोचना का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उसका पहला काम वहाँ प्रारम्भ होता है, जहाँ प्राचीन ग्रंथों के शुद्ध पाठ की समस्या उठ खड़ी होती है। खेद की बात है अभी तक 'रामचरितमानस' के शुद्ध पाठ के सम्बन्ध में भी विद्वानों में भारी मतभेद है। मीरा के पदों की और भी दुर्दशा है। कहीं वे किसी रूप में पाये जाते हैं, कहीं किसी रूप में। यही दशा 'सूरसागर' और 'पद्मावत' की भी है। आधुनिक काव्य-ग्रंथों के सम्बन्ध में ऐसी उलझन उत्पन्न नहीं होती। फिर भी यह समस्या आज से पचास वर्ष के उपरांत खड़ी हो सकती है। कारण यह है कि हिन्दी में शुद्ध-ग्रंथ छपने की परम्परा अभी नहीं पड़ी। बड़े-बड़े कवियों की कृतियों के विभिन्न संस्करणों को यदि आप मिलाकर देखें तो प्रत्येक में कुछ नयी अशुद्धियाँ मिल जायेंगी। पता नहीं, वह दिन कब आयेगा जब हम गर्वपूर्वक यह कह सकेंगे कि हिन्दी के ग्रंथों में छपाई की अशुद्धियाँ नहीं पायी जातीं।

शुद्ध पाठ के उपरांत ग्रंथों के अध्ययन की बात उठती है। हिन्दी में बहुत से ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं जिनके सम्बन्ध में यह मतभेद उठ ही नहीं सकता कि उनकी समीक्षा हो या न हो। उदाहरण के लिये सभी महाकाव्यों के सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है। 'मानस' के उपरान्त 'कामायनी' ऐसा ही ग्रंथ है जिसकी समय-समय पर विभिन्न दृष्टिकोणों से समीक्षा होती ही रहनी चाहिये।

यद्यपि इस ग्रंथ के प्रारम्भ में एक लम्बी भूमिका जोड़ दी गई है, फिर भी है यह टीका ही। इस टीका पर काम करते समय मैंने वैसी ही प्रसन्नता का अनुभव किया है जैसी किसी को कविता लिखते समय होती होगी। मेरा ऐसा विश्वास रहा है कि जब तक हम किसी रचना का अर्थ ठीक से नहीं समझते, तब तक उसकी समीक्षा भी ठीक से नहीं कर सकते। छायावादी काव्य के सम्बन्ध

में जो बहुत-सी ऊटपटाँग बात कही जाती रही हैं, वह उसका आशय ठीक से न ग्रहण करने के कारण ही। श्रेष्ठ काव्य का एक गुण यह भी होता है कि उसका अर्थ पूरी तरह से पकड़ में कभी नहीं आता। शब्द वहाँ अपने सामान्य अर्थ से कुछ अधिक ही व्यजित करते हैं। टीकाओं की यदि कोई सार्थकता है तो यही कि वे उस प्रच्छन्न सौंदर्य की ओर सकेत करें।

इस टीका में मुझे पूरा एक वर्ष लग गया था, अब इतना ही याद रह गया है। इस बात को बहुत वर्ष हो गये। कृति का अध्ययन एक स्नेहशील परिवार में रहकर चल रहा था। उन दिनों मैं बेकार था। साधारण से स्थान के लिए भी प्रार्थना-पत्र भेजता तो उसका कोई उत्तर तक नहीं देता था। ऐसी मानसिक स्थिति में उस साहित्य और कलाप्रेमी परिवार के सुरुचि-सम्पन्न सदस्यों के निरन्तर स्नेहशील व्यवहार से मुझे बडा बल मिला। वे लोग अब कहाँ हैं, मुझे पता नहीं। पर इतना मुझे अब भी स्मरण है कि प्रभातकाल में स्नान के उपरात जब मैं अपने काम पर बैठता था, तो मेरी मेज पर अगर की बत्तियाँ जलाकर कोई चुप-चरणों से लौट जाता था। अतः इस महाकाव्य की व्याख्या में प्राणो के रस की झलक यदि कहीं आपको मिले, तो उसे धूप की उसी गध का प्रभाव समझें।

—मानव

संकेत

भूमिका	१
चिंता	४२
आशा	७५
श्रद्धा	१०२
काम	१२५
वासना	१५२
लज्जा	१७६
कर्म	१९७
ईर्ष्या	२३२
इड़ा	२५१
स्वप्न	२८२
संघर्ष	३०८
निर्वेद	३३१
दर्शन	३५७
रहस्य	३८४
आनंद	४२०
कवि-परिचय	४४६

कामायनी

कामायनी मानवीय संस्कृति और शाश्वत मानवीय मनोविकारों का महा-काव्य-रूपक (Allegory-Epic) है। इसमें 'प्रसाद' के काव्य की समस्त विशेषताओं का सन्निवेश उनके उत्कृष्टतम रूप में हुआ है। इसकी प्रशंसा में विनम्रता के साथ इतना कहा जा सकता है कि विश्व-साहित्य की श्रेष्ठतम रच-नाओं की पंक्ति में जगमगाने के लिए हिन्दी ने एक अमूल्य काव्य-रत्न प्रसव किया है, जिसका अक्षय आलोक कभी मन्द न होगा।

जैसा 'प्रसाद' ने आमुख में स्वीकार किया है कामायनी की कथा का आधार मुख्यतः शतपथ ब्राह्मण और साथ ही ऋग्वेद, छान्दोग्य उपनिषद तथा श्रीमद्-भागवत हैं। वैवस्वत मनु को कवि ने ऐतिहासिक पुरुष ही माना है। उनका विश्वास है—

मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं। राम कृष्ण और बुद्ध इन्हीं के वंशज हैं।

एक बात प्रसाद ने और भी कही है जिसकी ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है—

यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिये मनु, श्रद्धा और इडा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।

इस घोषणा से ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि को इतिहास ही अधिक प्रिय है, रूपक भी नहीं। सम्पूर्ण आमुख में इसी ऐतिहासिक सत्य को पाने के लिए कवि आकुल है। पर कामायनी के अध्ययन से पता चलता है कि स्थूल कथा के ढाँचे के साथ रूपक की कल्पना भी कवि ने कर ली थी। ग्रन्थ में रूपक है भी। उपेक्षा किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होती, इसके प्रति आग्रह

ही प्रकट होता है। कामायनी में अनायास कुछ भी नहीं, बहुत सँभल-सँभल कर कवि ने उसकी रचना की है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

कामायनी मे मनु, श्रद्धा (कामायनी) और इड़ा, मन, श्रद्धा और बुद्धि के प्रतीक हैं। कामायनी इस दृष्टि से अन्तःकरण में वृत्तियो के विकास की गाथा भी कहती है। मनु का मन है जो अतुल वैभव के विनाश पर 'चिंता' मग्न हो जाता है। चिंताकाल समाप्त होते ही उस मन में 'आशा' का उदय होता है। इस आशा को लेकर मन जी रहा है कि एक नारी के मन से जिसका निर्माण केवल समर्पण (श्रद्धा) से हुआ है उस मन का सयोग होता है। इन दो हृदयों के निकटता में आते ही पुरुष के मन में 'काम' जगता है। पुरुष का मन और अधिक नैकटथ के लिये व्यग्र होता है। तुरन्त 'वासना' आ धमकती है। नारी के मन को इस बात का पता चलता है तो आत्म-समर्पण से पहिले उसमें 'लज्जा' का सचार होता है। पुरुष का मन 'कर्म' के दो पथों की ओर अग्रसर होता है (१) कर्म-काड की दिशा में, जिसे कवि ने यज्ञ द्वारा पूरा कराया है और (२) भोग-कर्म की ओर जिसे गार्हस्थ्य धर्म के भीतर लेकर कर्म में सम्मिलित किया है। मन जिसे अनुराग की दृष्टि से देखता है उसे ऐसा जकड़ कर रखना चाहता है कि किसी दूसरे की दृष्टि भी उस पर न पड़े। मनु श्रद्धा के प्रेम में से वात्सल्य का अश भी पृथक् होते देखना नहीं चाहते। इस पर आज हम घोर स्वार्थ कहकर सभव है अस्वाभाविकता का आरोप करें, क्योंकि पिता की अनुभूति से सम्पन्न होने के कारण हम जानते हैं कि ऐसा कभी नहीं होता, पर मनु ने पुत्र का मुख नहीं देखा है, अतः वात्सल्य का न उमड़ना और उसके वेग के मूल्य को न जानना उनके लिए अस्वाभाविक नहीं है।

यही अतृप्त मन एक और युवती ('इड़ा') के मनके सम्पर्क में आता है। इस काव्य में श्रद्धा पत्नी है, इड़ा प्रेमिका। पत्नी और प्रेमिका में अतर यह होता है कि पत्नी पूर्ण आत्म-समर्पण कर देती है, प्रेमिका अपने अस्तित्व को बनाए रखती है। श्रद्धा ने अपने को देकर अपना सब कुछ खो दिया, इड़ा ने अपने को न देकर आकर्षण को जीवित रखा और मनु को उँगली पर नचाया। उसने

जितना काम उससे लिया, उसका वर्णन श्रद्धा के 'स्वप्न' में मिलता है। पुरुष का मन जब ऐसी नारी के मन पर जिसमें बुद्धि की प्रधानता है, अधिकार नहीं जमा पाता तब 'संघर्ष' होना स्वाभाविक है और इसके उपरान्त विरक्ति (निर्वेद) भी।

ठेस खाकर वह अपमानित मन फिर श्रद्धा की ओर झुकता है। इस बार श्रद्धा उसे सांसारिक सुख की ओर न ले जाकर पारलौकिक सुख की ओर ले जाती है। उसे लोकोत्तर रूप के 'दर्शन' कराती है और इस 'रहस्य' से परिचित कराती है कि श्रद्धा बिना सब विशृंखलता मात्र है। इस स्थिति में पहुँच कर 'आनन्द' की उपलब्धि क्यों न होगी?

इस प्रकार तीन प्राणियों की कहानी के साथ साथ यह तीन मनों की कहानी है। और भी विचार करें तो केवल एक मन की कहानी है। यह एक मन सबका अपना-अपना मन है। यहीं से रूपक की भावना उठती है।

कथा

कामायनी के रूपक को स्पष्ट करने के लिए पहले स्थूल कथा का संक्षेप में वर्णन करते हैं। प्रलय द्वारा विलासी देवों की सृष्टि के नष्ट होने पर सूर्योदय के साथ मुसकरा कर प्रकृति जीवन की 'आशा' को फिर मनु के हृदय में जागरित कर जाती है। मनु एकाकीपन के भार से विकल ही हैं कि 'श्रद्धा' के दर्शन होते हैं जो उनकी सहचरी बनती है। एक दिन मनु अंतरिक्ष से 'काम' की यह वाणी सुनते हैं कि वह देवताओं की सृष्टि के विलीन होने पर यद्यपि अशरीरी हो गया है पर अतृप्त है। श्रद्धा के प्रति ज्योत्स्ना-धौत रजनी में मनु के हृदय में 'वासना' जगती है। श्रद्धा का मन भी ढीला होता है। ठीक उसी समय श्रद्धा के मन में 'लज्जा' उगती है। मनु जब 'कर्म' में लीन होते हैं और दम्पति सोमरस का पान कर उत्तेजना के वशीभूत। कुछ दिन ढलने पर मातृत्व-भार से दबी, पर मातृत्व भाव में मग्न श्रद्धा आगन्तुक जन के लिए एक मनहर कुटिया का निर्माण करती है और उसी समय से पुत्र आगामी सुख विधान की कल्पना करती है। मनु श्रद्धा को छोड़ कर चले जाते हैं। यदि यही यह नाटक होता तो

यहाँ चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या के ८ दृश्यों पर प्रथम अंक की बड़ी स्वाभाविक समाप्ति होती।

'इड़ा' सर्ग से कथा दूसरी ओर मुड़ती है। सारस्वत प्रदेश में 'इड़ा' से मिलन होता है। इड़ा को अपने ध्वस्त राज्य,के पुनर्निर्माण के लिए एक कर्मशील व्यक्ति की आवश्यकता थी, मनु को अपनी अवरुद्ध बुद्धि के उपयोग के लिये नवीन कार्य क्षेत्र की—'दोऊ बानिक बने।' इधर श्रद्धा 'स्वप्न' में वह सब कुछ देखती है जो मनु करते हैं और जगकर उन्हें लौटाने को चल पड़ती है। इड़ा दिन-दिन एक ओर मनु को मोहित करती और दूसरी ओर खिंचती जा रही है। मनु उस पर पूर्ण अधिकार जमाना चाहते हैं। इस अधिकार-चेष्टा से प्रजा अप्रसन्न होती है और एक खंड-प्रलय के समय आश्रय न पाने पर मनु की धृष्टता पर क्षुब्ध हो उसे ललकारती है। इस पर राजा (मनु) और प्रजा में 'संघर्ष' (युद्ध) प्रारंभ होता है। श्रद्धा इस बीच आ पहुँचती है। वह घायल मनु को अपने कोमल करों से स्पर्श कर पीड़ा-हीन करती है। मनु श्रद्धा के आचरण पर चकित होकर उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इड़ा से उन्हें विरक्ति ("निर्वेद") उत्पन्न होती है, पर श्रद्धा से आँखें मिलाने का साहस भी उनमें नहीं है, अतः प्रभातकाल में कहीं खिसक जाते हैं। इस प्रकार इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद चार दृश्यों का दूसरा अंक समाप्त हुआ।

श्रद्धा अपने पुत्र कुमार को इड़ा को सौंप कर मनु की खोज में निकलती है। एक गुहा में वह उन्हें पाती है। मनु वहाँ अनंत में नृत्यरत नटेश (शिव) के 'दर्शन' करते हैं। श्रद्धा इसके उपरान्त उनका हाथ पकड़ कर उन्हें हिमवान के ऊपर चढ़ा ले जाती है और बहुत ऊँचे पहुँच कर अधर मे स्थित इच्छा, क्रिया और ज्ञान लोकों का 'रहस्य' खोलती है। अंतिम सर्ग में इड़ा और कुमार प्रजा को लेकर 'मानस'-तट के निवासी श्रद्धामनु से मिलने आते हैं। चारों ओर 'आनंद' की वर्षा कर कवि अपनी कथा को समाप्त करता है। ये 'दर्शन' 'रहस्य' और 'आनन्द' के तीन दृश्यों का तीसरा और अंतिम अङ्क है। इस प्रकार तीन पात्रों का तीन अङ्कों का यह 'सुखांत' नाटक अथवा पन्द्रह सर्गों का महाकाव्य समाप्त होता है।

रूपक

प्रत्येक प्राणी का मन न जाने कितनी चिंताओं का निवास-स्थान है। चिंता किसी न किसी प्रकार के अभाव से उत्पन्न होती है। प्रसाद ने चिंता को 'अभाव की चपल बालिका' ठीक ही कहा है। अभाव दो प्रकार के होते हैं (१) शरीर सम्बन्धी और (२) मन सम्बन्धी। अभाव के साथ अशांति आती है। इस अशांति से मुक्ति पाने का मार्ग (आशा के रूप में) मन को दिखाई देता है। वह है श्रद्धा के साथ आत्मिक चिंतन (सुख-भोग)। श्रद्धा के साथ जैसे-जैसे मन बढ़ता है या यों कहिये कि बाह्य संघर्ष को त्याग मन ज्यों-ज्यों श्रद्धा (आस्था) पूर्वक अंतर की गहराई में उतरता है त्यों-त्यों सुख का अनुभव करता जाता है। काम, लज्जा, कर्म इस लीनता के चरण-चिह्न हैं। इन्द्रियों के अन्तर्मुखी करने की इच्छा का जगना 'काम', उसमें तीव्रता आना 'वासना' कभी-कभी उसमें व्याघात पड़ना 'लज्जा' और उत्कटता से उस पथ पर अग्रसर होना 'कर्म' (संयोग) है। कर्म में जो यज्ञ को सम्मिलित किया है, उसे हम मन को सात्विक बनाये रखने वाला एक साधन मानते हैं। आत्मिक चिंतन में सात्विकता बहुत बड़ी वस्तु है। इसके अन्तर्मुखी होने पर मन में सहसा अधिकार-भावना जगती है। वह देखता है कि जैसे-जैसे वह इस पथ पर बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे व्यक्तित्वहीन होता जा रहा है। यह वह सहन नहीं कर पाता और लौट पड़ता है। जहाँ था वहीं आ जाता है।

दूसरे पथ का अनुसरण करते ही मन बुद्धि (इड़ा) के जाल में फँस जाता है; नवीन-नवीन कल्पनाओं (स्वप्न) को उसके सहारे सत्य में परिणत होते देखता है। यहाँ देखता है कि इस बुद्धि का कार्य-क्रम अनन्त है। जितना बढ़ता है उतनी प्यास बढ़ती जाती है। बुद्धि पर अधिकार किसका हुआ है? जिस अधिकार-भावना को लेकर मन बढ़ा था, वह अधूरी रह गई है। असन्तुष्ट होने पर बुद्धि से उसका झगड़ा (संघर्ष) होता है और फिर उससे उदासीनता (निर्वेद) उत्पन्न हो जाती है। इस पथ को त्याग संघर्ष के भय से वह आज मन बावला बना है।

ठीक इसी समय बिना बुलाये श्रद्धा फिर आती है। मन संकोच का अनुभव करता है, पर श्रद्धा उसका पीछा नहीं छोड़ती। यह श्रद्धा इस बार मन को और ऊँचा उठाकर पारलौकिक सुख के गिरि पर ले चलती है। मन को अलौकिक शक्ति की झलक दिखाई देती है। क्रिया, इच्छा और ज्ञान को भस्म कर अर्थात् जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति से आगे बढ़, मन श्रद्धा के साथ (समाधि अवस्था में) केवल आनन्द का अनुभव करता है। अत. चिन्ता के विषादमग्न वातावरण से मुक्त हो मन, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इडा (बुद्धि) स्वप्न (बुद्धि कर्म), सघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य (रहस्योद्घाटन) के स्तरों को पार करता आनन्द-लोक का अधिवासी बनता है।

कामायनी को बहुत सचेत होकर प्रसाद ने लिखा है। इतने सहज ढङ्ग से कोई अन्य व्यक्ति रूपक का निर्वाह कर सकता था हमें तो विश्वास नहीं होता। रहस्य सर्ग का प्रारम्भिक वर्णन पढ़िये। ऐसा प्रतीत होता है कि दो पथिकों के हिमालय पर चढ़ने का वर्णन ही वहाँ है। पर क्या 'नील तमस' में उस 'ऊर्ध्व देश' तक जाने वाले 'पथ' की अनिर्दिष्टता, 'पथिकों' का 'ऊपर बढ़ना' और 'प्रतिकूल पवन' का इन्हे धक्का देना, नीचे स्थित उन सभी वस्तुओ का जो अत्यन्त रम्य प्रतीत होती है, वहाँ पहुँच कर अत्यन्त 'छोटा' दिखाई देना, मनु का 'साहस छूटना', जिन्हें वह नीचे छोड़ आया है उनके लिए उसके हृदय मे फिर ममता का जगना और 'देश-काल रहित' अवकाश मे पहुँचने पर भी श्रद्धा का उसे सँभालते हुए इस प्रकार समझाना, पथिका के श्रम का कोरा वर्णन ही है क्या ?

हम बढ़ दूर निकल आये अब,
करने का अवसर न ठिठोली

इच्छा, कर्म, ज्ञान

रहस्य शीर्षक सर्ग में श्रद्धा ने मनु को इच्छा का रागारुण, कर्म का श्यामल और ज्ञान का रजतोज्ज्वल, तीन लोक दिखाये हैं और उनके सामंजस्य में जीवन का वास्तविक सुख बताया है। 'केवल इच्छा' पंगु है। उसे कर्म का सहारा चाहिए। 'केवल कर्म' अन्धा है। उस पर विवेक या ज्ञान का नियन्त्रण होना चाहिए। मनु दोनों स्थितियों को देख चुके हैं। 'केवल ज्ञान' भी संसार में विषमता फैलाने वाला है क्योंकि ज्ञानी जब 'इच्छाओं को झुठलाते हैं', तब संसार का विकास कैसे होगा?

पहले किसी वस्तु का ज्ञान होता है। फिर उसके सम्बन्ध में इच्छा उत्पन्न होती है। और तब इच्छा की पूर्ति के लिए मनुष्य कर्म में लीन होता है। ज्ञान, इच्छा, क्रिया की इस प्रसिद्ध त्रयी से रहस्य सर्ग के इच्छा, कर्म ज्ञान के त्रिक् को भिन्न समझना चाहिए। इन्द्रियों का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का दास होना, भावना के अनुकूल पाप-पुण्य का सृजन करना ही माया है। यह इच्छा-लोक है। नियति की प्रेरणा से किसी न किसी प्रकार की इच्छा प्राणी को कर्म में लीन रखती है। यहाँ केवल श्रम है, विश्राम नहीं। यहाँ आने पर कल्पना टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। इस संघर्ष में केवल शक्तिशाली विजयी होता है। कर्म में लीन होने वाले अपने-अपने संस्कारों के अनुसार जन्म-जन्मान्तर में भटकते फिरते हैं। यह कर्मलोक की व्याख्या है। शास्त्र-ज्ञान के अभिमानी, जीवन से उदासीन, बुद्धि के अनुयायी, तप में लीन, मुक्ति के इच्छुक व्यक्ति ज्ञानलोक के निवासी हैं। इससे प्रतीत होता है कि कोई नवीन बात तो प्रसाद ने नहीं कही। श्रद्धा की मुसकान की ज्वाला से इन तीनों लोकों को भस्म कर कवि ने मनु को 'दिव्य अनाहत' का अधिकारी लिखा है। यह तुरीयावस्था है जब क्रिया (जागरण) इच्छा (स्वप्न) और ज्ञान (सुषुप्ति) की अवस्था को पार कर साधक शुद्ध चेतन की अनुभूति का आनन्द लेता है। कामायनी का चमत्कार यही तो है कि जो आप को बाहर दिखाई देगा, वह अन्तर में भी। इच्छा, ज्ञान क्रिया के लोक क्या वास्तव में बाहर दिखाई दिए हैं?

'इच्छा' और 'कर्म' का स्वरूप तो प्रसाद ने ठीक रखा है, पर ज्ञानतत्व

को अधिक चिंतन से नहीं ग्रहण किया। उसके स्वरूप को बहुत हल्का प्रदर्शित किया है। आजकल के कुछ दम्भी सन्यासियों पर ही जिनका साक्षात्कार प्रचुरता से सभवत. काशी में होता रहता हो, उनकी दृष्टि पड़ी है। जीवन-रस से भिन्न रस की उन्होंने उपेक्षा-सी की है। इस पर किंचित् आश्चर्य होता है। आनन्द सर्ग में आत्मानुभूति की व्यापकता को, सबको अपना समझने की वृत्ति को, उन्होंने जीवन का सब से बड़ा आदर्श माना है। यह तो ठीक है, पर इसके लिए ज्ञान को तुच्छ सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं थी। उन्हीं के शब्दों में देखिए—

न्याय, तपस, ऐश्वर्य में पगे
ये प्राणी चमकीले लगते,
इस निदाघ मरु में, सूखे से
स्रोतों के तट जैसे जगते।
सामजस्य चले करने ये
किन्तु विषमता फैलाते हैं,
मूल स्वत्व कुछ और बताते
इच्छाओं को झुठलाते हैं।

पात्र

मनु एक दीर्घकाय स्वस्थ व्यक्ति हैं, 'पुरुष' हैं। पुरुष शब्द का उच्चारण करते ही पौरुष का भाव ध्वनित होता है। कवि ने प्रथम सर्ग में ही उनके शरीर की दृढ़-गठन और सबलता का परिचय देने के लिए उनकी दृढ़ मासपेशियों और स्वस्थ शिराओं की चर्चा की है। आखेट-व्यसनी मनु की कल्पना भी एक दृढ़ सबल स्फूर्तियुक्त पुरुष की भावना ही सामने लाती है। और आगे चलकर जब प्रजा और प्रकृति के सम्मिलित विद्रोह का सामना करने के लिए मनु अपना धनुष उठाते हैं, तब शक्ति का दुरुपयोग करने से यद्यपि अत्याचारी या बर्बर कहकर उनकी असयत बुद्धि और अनियन्त्रित हृदय का तिरस्कार करने की इच्छा भी जागरित होती है, पर उनके पौरुष पर एक प्रकार का आश्चर्य होता

ही है। स्वभाव से मनु अत्यन्त चिंतनशील हैं और सिद्धांत से घोर व्यष्टिवादी या स्वार्थी। कामायनी की वे उक्तियाँ जो इस काव्य-भवन की जगमगाती मणियाँ हैं, प्रायः मनु के मुख से ही निकली हैं। वे सब कुछ अपने चरणों में झुकते देखना चाहते हैं। 'अहं' और 'उच्छृङ्खलता' से उनके चरित्र का निर्माण हुआ है। वे देना नहीं जानते, केवल लेना जानते हैं। सभी को नियमों में बाँध कर रखना चाहते हैं, स्वयं नियमों से परे रहना चाहते हैं। श्रद्धा और इड़ा दोनों के प्रति उन्हें आकर्षण होता है, पर इस स्वामित्व-भावना के कारण न वे श्रद्धा को अपना सके और न इड़ा को प्राप्त कर सके। जीवन के कटु अनुभवों ने मनु के 'अहं' को जब जला दिया, 'अमरता के जर्जर दंभ' को जब पीस दिया, तब वास्तविक आनन्द उन्हें प्राप्त हुआ। एकाधिपत्य के प्रबल समर्थक ने अपने व्यक्तित्व को श्रद्धा की अनुकम्पा से व्यापक बना डाला—

मनु ने कुछ-कुछ मुसक्या कर
कैलास ओर दिखलाया
बोले "देखो कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया ॥
हम अन्य न और कुटुम्बी
हम केवल एक हमीं हैं,
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ कमी नहीं है।"

अलौकिक सुन्दरी 'श्रद्धा' नारी का मंगल रूप है। केवल कोमलता से उसका निर्माण हुआ है। उसकी ममता पशुओं तक विस्तृत है। स्नेह की वह देवी है। हिंसा और स्वार्थ का वह घोर विरोध करती है, करुणा का मार्ग दिखलाती है। मनु दो बार उसे छोड़ कर भागते हैं और श्रद्धा दोनों बार मन में मैल न लाती हुई मनु के हृदय का बोझ हल्का करती है। प्रेम में विश्वासघात के दोषी मनु को श्रद्धा का अपनाना नारी-हृदय की अनंत क्षमा का परिचय देता है। यहाँ नारी ने नर को पराजित कर दिया। सच पूछो तो प्रेम में नारी ने नर को सदैव पराजित किया है—क्या सीता ने राम को, क्या राधा ने कृष्ण को और क्या गोपा ने बुद्ध को! छाया के समान मनु का साथ उसने दिया है। वह ऐसी छाया है जो ताप-

दग्ध शरीर को ही नहीं, व्याकुल मानस को भी शीतल रखती है। उसी के शब्दों मे—

देकर कुछ कोई नहीं रंक।

वैभव-विहीना सध्या के उदास वातावरण में कामायनी का विरह-वर्णन कितना स्वाभाविक और विषाद को घनीभूत करने वाला है और कितने थोड़े शब्दों मे किस मार्मिकता से व्यक्त किया गया है। किसी के विरह-वर्णन में एक साथ आप सवा सौ पृष्ठ काले कर दे तो इससे यह तो पता चल जायगा कि आप एक बात को फैलाकर कह सकते हैं, या किसी के वियोग की कथा को एक-से ढग पर दस विरहिणियों के द्वारा व्यक्त कराएँ तो यह भी पता लग जायगा कि विरह एक प्रकार का दौरा है जो बारी-बारी कभी किसी को और कभी किसी को उठता है। महाकाव्य में वर्णन के विस्तार का जो अधिकार प्राप्त है, उसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि आप उसे ऐसा विस्तार दें कि वह अपना प्रभाव ही खो बैठे। पाठकों के मस्तिष्कों के पात्रों की भी एक माप है जिसमे अधिक रस डालने से उछलने लगता है। अधिक विस्तृत वर्णन मे सम-रसता नही रह सकती, अतः अच्छे कवि इस बात का ध्यान रखते हैं कि अपनी ओर से उचित परिणाम में ही किसी रस को पिलावें। अशोक वृक्ष के नीचे बैठी सीता का विरह-वर्णन कितना सयत है, कितना सक्षिप्त और कितना प्रभाव-शाली! इसी सुरुचि का परिचय प्रसादजी ने 'स्वप्न' सर्ग में दिया है। प्रकृति के प्रतीकों के सहारे कामायनी के क्षीण शरीर का आभास, प्रकृति के प्रसन्न वाता-वरण के सम्पर्क से पीड़ा की तीव्रता का अनुभव, अतीत की मधुर घड़ियों का स्मरण, थोड़े से आँसू और बालक के 'माँ' शब्द के उच्चारण से एक गहरा आघात—और बस!

इड़ा आकर्षक है, प्रेरणामयी है। श्रद्धा ने उसे 'मस्तिष्क की चिर अतृप्ति' कहा है। वह मनुष्य को स्वावलम्बी बनाती है—

हाँ तुम ही हो अपने सहाय
जो बुद्धि कहे उसको न मान कर फिर किसकी नर शरण जाय
जितने विचार संस्कार रहे उसका न दूसरा है उपाय

यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्यभरी शोधक विहीन
तुम उसका पटल खोलने मे परिकर कसकर बन कर्मलीन
सबका नियमन शासन करते बस बढा चलो अपनी क्षमता
तुमही इसके निर्णायक हो, हो कहीं विषमता या समता
तुम जड़ता को चैतन्य करो विज्ञान सहज साधन उपाय
यश अखिल लोक मे रहे छाय।

कवि ने कुछ तो रूपक के आग्रह से और कुछ विशेष उद्देश्य से उसे कठोर-हृदया बनाया है। उसकी दृढ़ता से मनु के 'अह' को धक्का लगता है जिससे उनका उर कोमल होकर श्रद्धा की उत्सर्ग-भावना से पिघलता है।

श्रद्धा विश्वास है, इड़ा बुद्धि। श्रद्धा आत्म-समर्पण है, इड़ा अकुश। मनु ने दोनो को अभाव की अवस्था में प्राप्त किया। जब मनु का मन क्षुधित था तब श्रद्धा आई। उसने प्रेम दिया। जब मस्तिष्क विक्षुब्ध था तब इड़ा आई। उसने कर्म-पथ सुझाया। दोनों अनन्य सुन्दरी हैं। एक मनु के मन के अभाव को भरती है दूसरी बुद्धि के, एक उसे हृदय की गहराई मे उतारती है, दूसरी उसे प्रकृति से सघर्ष करना और तत्वों पर विजय प्राप्त करना सिखलाती है। दोनो उसे चिन्ता से मुक्त करती हैं। मनु दोनों को ठीक से न समझ सके। उन्होंने एक के प्रेम को स्वीकार न किया, दूसरी उसे प्रेम दे नहीं सकी। एक उसे प्रेम की व्यापकता सिखलाती है जिसे वह पहले समझ नहीं पाता, दूसरी 'निर्बाधित अधिकार' पर आक्षेप करती है जिसे वह स्वीकार नहीं करता। एक उसे क्षमा कर देती है, दूसरी सकट मे डाल देती है। एक उसके विरह मे व्याकुल होती है, दूसरी उदासीन रहती है। एक उसे खोकर पाती है, दूसरी उस खोये हुए को पाकर फिर निश्चिन्त होकर खो देती है। दोनो दुःख का समाधान हैं। एक दु:ख की जीवन मे सार्थकता सिद्ध करती है, दूसरी विज्ञान की सहायता से उसे चूर्ण करने की सम्मति देती है। कवि का सन्देश है कि श्रद्धा ही आनन्द-विधायिनी है, पर इड़ा भी व्यर्थ नहीं है। हॉ, उससे जीवन भर चिपके मत रहो। अपनी सतति को उसे सौंप साधना मे लीन हो जाओ। इस प्रकार सृष्टि का विकास भी चलता रहेगा और आत्मा का विकास भी। व्यक्ति की दृष्टि से कामायनी ही एकान्त मगल-प्रदायिनी है। लोक के सुख का उपभोग करने के उपरान्त,

लोक से विरक्त होते हुए लोक-कल्याण में अनुरक्त रहना कामायनी के कवि का विश्व को–उस विश्व को जो आज के यत्र युग में घोर जड़वादी (Materialistic) होकर अपनी ही जटिलताओं मे फँसा हुआ (इड़ा सर्ग मे काम का मानव-सृष्टि को अभिशाप आज की वास्तविक दशा का प्रतिबिंब है) तड़प रहा है, शान्ति का एक सनातन-सदेश है—

वह 'कामायनी' जगत की,
मङ्गल कामना अकेली ।

आक्षेप

आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में प्रसादजी की विचार-धारा मे कई दोष ढूँढे हैं। उनका कहना है कि जब दोनों (इड़ा, श्रद्धा) अलग-अलग सत्ताएँ करके रखी गई हैं तब एक को दूसरी से शून्य कहना (सिर चढ़ी रही पाया न हृदय) और दूसरी को पहली से शून्य न कहना, गड़बड़ मे डालता है। इस आक्षेप का उत्तर यह है कि शुक्लजी जिसे भूल कहते हैं, उसका ज्ञान 'प्रसाद' जी को था। कामायनी ने इड़ा के हाथ जब कुमार को सौंपा है तब जीवन की समरसता और बुद्धि दोनों के योग पर जोर दिया है। इसी से उसने कहा है—

यह तर्कमयी तू श्रद्धामय
तू मननशील कर कार्य अभय
इसका तू सब सताप निचय
हर ले, हो मानव भाग्य उदय
सब की समरसता कर प्रचार
मेरे सुत सुन मा की पुकार

यह खुली हुई बात है कि अपने सस्कारों के कारण शुक्लजी रहस्यवाद के अकारण विरोधी थे। कामायनी में प्रसाद के 'सवेदन' शब्द के प्रयोग पर उनके आक्षेप का आधार ही यह है कि 'रहस्यवाद की परम्परा में चेतना से असतोष की रूढ़ि चली आ रही है', अत. प्रसाद ने 'सवेदन का तिरस्कार' किया है। पर

बात वैसी नहीं है। 'आशा' सर्ग में ('चिंता' के अन्तर्गत नहीं, जैसा शुक्ल जी ने लिखा है) संयम से रहने और तप करने के कारण युवक मनु ने नवीन शारीरिक बल प्राप्त किया, अत. स्वास्थ्य-सम्पन्नता की दशा में किसी सगिनी के सम्पर्क के लिए विकल होना अत्यन्त स्वाभाविक था। इसी प्रसग में 'सवेदन' शब्द आया है—

तप से संयम का संचित बल
तृषित और व्याकुल था आज,
अट्टहास कर उठा रिक्त का
यह अधीर तम, सूना राज।

मनु का मन था विकल हो उठा
संवेदन से खाकर चोट,
सवेदन जीवन जगती को
जो कटुता से देता घोंट।

आह कल्पना का सुन्दर यह
जगत मधुर कितना होता
सुख स्वप्नों का दल छाया मे
पुलकित हो जगता सोता।

संवेदन का और हृदय का
यह सघर्ष न हो सकता,
फिर अभाव असफलताओं की
गाथा कौन कहाँ बकता।

कब तक और अकेले ? कह दो
हे मेरे जीवन बोलो
किसे सुनाऊँ कथा ? कहो मत
अपनी निधि न व्यर्थ खोलो।

यहाँ 'सवेदन' शब्द सहानुभूति-प्रदर्शन या प्रेम-प्राप्ति की आकांक्षा के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। जीवन मे कटुता या पीडा इसीलिए है कि हम ऐसी आशा बाँधे रहते हैं कि कहीं कोई हमारे हृदय को समझने-सँभालने वाला भी होता। पर हाथ आती है सूनी निराशा। सवेदन (स्नेह-प्राप्ति) और हृदय का इसी से मानो सघर्ष (विरोध) चल रहा है। परिणामस्वरूप जीवन में अभाव और असफलताएँ हैं। यदि केवल कल्पना से काम चल जाता तब भी जीवन में हताश स्थितियों का सामना न करना पडता, पर हृदय तो चाहता है साकार आधार! प्रत्यक्ष (Practical) प्रमाण!!

शुक्लजी के अनुसार 'सवेदन को बोध-वृत्ति के अर्थ में व्यवहृत' इसलिये नहीं मान सकते कि यदि कटुता का कारण केवल यह है कि हमें ज्ञान होता है अर्थात् हम चेतन हैं जड नहीं, तब कवि ने निराशा से बचने का मार्ग जो, 'कल्पना का सुन्दर जगत' बतलाया है, वह व्यर्थ हो जाता है, क्योंकि कल्पना मे भी तो सवेदन से छुटकारा नही। यहाँ 'सवेदन' शब्द अपने मे भिन्न किसी के हृदय में प्रणयानुभूति जगाने की इच्छा के अर्थ में ही आया है। इसी से मनु अन्त मे एक कराह के साथ पूछते हैं—

कब तक और अकेले?

'सघर्ष' सर्ग में जो 'सवेदन' शब्द आया है, उसका अर्थ तो पक्तियों से ही स्पष्ट है। फिर पता नहीं शुक्लजी ने कैसे आक्षेप किया है? देखिये—

> तुमने योगक्षेम से अधिक सचय वाला,
> लोभ सिखाकर इस विचार सकट में डाला।
> हम सवेदनशील हो चले यही मिला सुख,
> कष्ट समझने लगे बनाकर निज कृत्रिम दुख।

यहाँ लोभ से उत्पन्न और कृत्रिम (काल्पनिक) दु:ख पर कष्टानुभव के अर्थ मे सवेदन शब्द आया है। लोभ और कृत्रिम दुःख निन्द्य और अनावश्यक हैं, अत: अवास्तविक। पर वास्तविक दुःख पर कष्टानुभव का अर्थ शुक्ल जी ने कैसे मिटाया, यह समझते नहीं बनता। इन्हीं पंक्तियों से यह ध्वनित है कि 'योगक्षेम' (आवश्यकताओं की पूर्ति) के लिये तो सञ्चय करना ही पड़ेगा।

कृत्रिम दुःख के सम्बन्ध में 'प्रसाद' के विचार 'एक घूँट' एकाकी नाटक के इस कथोपकथन में देखिये—

मुकुल—(बात काटते हुए) ठहरिए तो, क्या फिर 'दु ख' नाम की कोई वस्तु हुई नहीं ?

आनन्द—होगा कहीं। हम लोग उसे खोज निकालने का प्रयत्न क्यो करे ? अपने काल्पनिक अभाव, शोक, ग्लानि और दु ख के काजल आँखों के आँसू मे घोल कर सृष्टि के सुन्दर कपोलो को क्यों कलुषित करें ?

'दूसरों की पीडा के सवेदन' का विरोध कामायनी में नहीं है। मनु प्रारम्भ मे स्वार्थी अवश्य हैं, पर अनेक प्रकार के मानसिक सघर्षों को पार कर अन्त में वह भी सँभल गये हैं। इड़ा भी श्रद्धा से मिलकर इतनी रुखी नही रही है और कामायनी (श्रद्धा) तो ममता का ही जैसी प्रतीक है—

श्रद्धा—

अपने मे सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकात स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा।
औरो को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।

इड़ा—

"अति मधुर वचन विश्वास मूल।
मुझ को न कभी ये जायँ भूल।

यहाँ 'सवेदन' शब्द सहानुभूति-प्रदर्शन या प्रेम-प्राप्ति की आकाक्षा के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। जीवन मे कटुता या पीडा इसीलिए है कि हम ऐसी आशा बाँधे रहते हैं कि कहीं कोई हमारे हृदय को समझने-सँभालने वाला भी होता। पर हाथ आती है सूनी निराशा। सवेदन (स्नेह-प्राप्ति) और हृदय का इसी से मानो सघर्ष (विरोध) चल रहा है। परिणामस्वरूप जीवन मे अभाव और असफलताएँ हैं। यदि केवल कल्पना से काम चल जाता तब भी जीवन में हताश स्थितियों का सामना न करना पडता, पर हृदय तो चाहता है साकार आधार! प्रत्यक्ष (Practical) प्रमाण!!

शुक्लजी के अनुसार 'सवेदन को बोध-वृत्ति के अर्थ में व्यवहृत' इसलिये नहीं मान सकते कि यदि कटुता का कारण केवल यह है कि हमें ज्ञान होता है अर्थात् हम चेतन हैं जड नहीं, तब कवि ने निराशा से बचने का मार्ग जो, 'कल्पना का सुन्दर जगत' बतलाया है, वह व्यर्थ हो जाता है, क्योंकि कल्पना मे भी तो सवेदन से छुटकारा नहीं। यहाँ 'सवेदन' शब्द अपने मे भिन्न किसी के हृदय में प्रणयानुभूति जगाने की इच्छा के अर्थ में ही आया है। इसी से मनु अन्त मे एक कराह के साथ पूछते हैं—

कब तक और अकेले ?

'सघर्ष' सर्ग में जो 'सवेदन' शब्द आया है, उसका अर्थ तो पक्तियों से ही स्पष्ट है। फिर पता नहीं शुक्लजी ने कैसे आक्षेप किया है? देखिये—

तुमने योगक्षेम से अधिक सचय वाला,
लोभ सिखाकर इस विचार सकट में डाला।
हम सवेदनशील हो चले यही मिला सुख,
कष्ट समझने लगे बनाकर निज कृत्रिम दुख।

यहाँ लोभ से उत्पन्न और कृत्रिम (काल्पनिक) दुःख पर कष्टानुभव के अर्थ मे सवेदन शब्द आया है। लोभ और कृत्रिम दुःख निन्द्य और अनावश्यक हैं, अत अवास्तविक। पर वास्तविक दुःख पर कष्टानुभव का अर्थ शुक्ल जी ने कैसे भिडाया, यह समझते नहीं बनता। इन्हीं पक्तियों से यह ध्वनित है कि 'योगक्षेम' (आवश्यकताओं की पूर्ति) के लिये तो सञ्चय करना ही पड़ेगा।

कृत्रिम दुःख के सम्बन्ध में 'प्रसाद' के विचार 'एक घूँट' एकाकी नाटक के इस कथोपकथन में देखिये—

मुकुल—(बात काटते हुए) ठहरिए तो, क्या फिर 'दुःख' नाम की कोई वस्तु हुई नहीं ?

आनन्द—होगा कहीं। हम लोग उसे खोज निकालने का प्रयत्न क्यों करें ? अपने काल्पनिक अभाव, शोक, ग्लानि और दुःख के काजल आँखों के आँसू में घोल कर सृष्टि के सुन्दर कपोलों को क्यों कलुषित करें ?

'दूसरों की पीडा के सवेदन' का विरोध कामायनी में नहीं है। मनु प्रारम्भ में स्वार्थी अवश्य हैं, पर अनेक प्रकार के मानसिक सघर्षों को पार कर अन्त में वह भी सँभल गये हैं। इडा भी श्रद्धा से मिलकर इतनी रुखी नहीं रही है और कामायनी (श्रद्धा) तो ममता का ही जैसी प्रतीक है—

श्रद्धा—

अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा।
औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।

इडा—

"अति मधुर वचन विश्वास मूल।
मुझ को न कभी ये जायँ भूल।

हे देवि तुम्हारा स्नेह प्रबल,
बन दिव्य श्रेय उद्गम अविरल,
आकर्षण घन सा वितरे जल,
निर्वासित हो संताप सकल ।"

मनु

सब की सेवा न पराई
वह अपनी सुख संसृति है ।

शुक्लजी का तीसरा आक्षेप 'इच्छा कर्म और ज्ञान' के सामञ्जस्य में श्रद्धा के स्थान पर है—

जिस समन्वय का पक्ष कवि ने अंत में सामने रखा है उसका निर्वाह रहस्यवाद की प्रवृत्ति के कारण काव्य के भीतर नहीं होने पाया है। पहले कवि ने कर्म को बुद्धि या ज्ञान की प्रकृति के रूप मे दिखाया, फिर अन्त मे कर्म और ज्ञान के विंदुओं को अलग रखा। पीछे आया हुआ ज्ञान भी बुद्धिव्यवसायात्मक ज्ञान ही है, (योगियों या रहस्य-वादियो का पर-ज्ञान नहीं) यह बात 'सदा चलता है बुद्धि चक्र' से स्पष्ट है।

जहाँ 'रागारुण कंदुक सा, भावमयी प्रतिमा का मन्दिर' इच्छाबिन्दु मिलता है वहाँ इच्छा रागात्मिका वृत्ति के अंतर्गत है अत रति-काम से उत्पन्न श्रद्धा की ही प्रवृत्ति ठहरती है। पर श्रद्धा उससे अलग क्या तीनो विंदुओ से परे रखी गई है।"

मनु जब इड़ा से प्रथम बार मिलते हैं और जीवन की अशांति का समा-धान वे उससे चाहते हैं, तब उसने समझाया है कि स्वावलंबी न होकर मनुष्य का ईश्वर के भरोसे बैठा रहना बहुत बड़ी मूर्खता है। ईश्वर को मानने न मानने से विशेष अंतर नहीं पड़ता। मनुष्य को अपनी सहायता आप करनी होगी। जो बुद्धि कहे उसे मानकर प्रकृति के पटल खोलने के लिए तुम तैयार हो जाओ, कर्मलीन हो।

तब मूर्ख आज तक क्यों समझे हैं, सृष्टि उसे जो नाशमयी
उसका अधिपति ! होगा कोई, जिस तक दुख की न पुकार गई।
कोई भी हो वह क्या बोले, पागल बन नर निर्भर न करे,
अपनी दुर्बलता बल सँभाल गंतव्य मार्ग पर पैर धरे।

हाँ, तुम ही हो अपने सहाय।

जो बुद्धि कहे उसको न मान कर फिर किसकी नर शरण जाय?
यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्य भरी शोधक विहीन,
तुम उसका पटल खोलने में परिकर कस कर बन कर्म लीन

—इड़ा

यहाँ कर्म और बुद्धि या ज्ञान लौकिक उन्नति से सम्बन्ध रखते हैं। पर रहस्य सर्ग में कर्म और ज्ञान को जो अलग-अलग रखा है वह इसलिए कि वहाँ बुद्धि-चक्र पर चलने वाला ज्ञान निश्चित रूप से वैराग्य से सम्बन्धित है। जिस छन्द में 'बुद्धि चक्र' शब्द आया है वहीं 'सुख-दुःख से उदासीनता' की चर्चा भी श्रद्धा ने की है—

प्रियतम ! यह तो ज्ञानक्षेत्र है
सुख दुख से है उदासीनता,
यहाँ न्याय निर्मम चलता है
बुद्धि चक्र, जिसमें न दीनता,

अर्थात् सांसारिक ऐश्वर्य की ओर ले जाने वाली बुद्धि प्रवृत्ति मार्ग की है और ज्ञान की ओर ले जाने वाली बुद्धि निवृत्ति मार्ग की। ज्ञानलोक के प्रसंग में ज्ञानियों के संबध में 'ये निस्संग' 'ये निस्पृह' 'अम्बुज वाले सर' 'अछूत रहा जीवन रस' आदि सब इसी बात की घोषणा कर रहे हैं। रहस्य सर्ग में ज्ञान से तात्पर्य 'पर-ज्ञान' का ही है। नहीं तो फिर इसका क्या अर्थ होगा?

मूल और स्वल्प कुछ बताते,
इच्छाओं को झुठलाते हैं।

यह तो सत्य है कि जहाँ इच्छा रागात्मिका वृत्ति है वहाँ श्रद्धा भी। पर दोनों में अंतर है। इच्छा सामान्य (Indefinite) वृत्ति है, श्रद्धा विशेष (Definite)। इसी से उसे तीनों बिंदुओं से परे रखा है। इच्छा शुभ भी हो सकती है, अशुभ भी। यही कारण है कि कवि ने इच्छा लोक के प्रसंग में उसके पूर्ण स्वरूप को दृष्टि में रखते हुए उसे पुण्य पाप की जननी, वसंत-पतझर का उद्गम, अमृत-हलाहल का मिलन और सुख-दुःख का बंधन माना है। पर श्रद्धा का स्वरूप काव्य के एक छोर से दूसरे छोर तक केवल कल्याण-मंडित है। इच्छा चंचल है, पर श्रद्धा—उसे आस्था कहो तो, निष्ठा कहो तो, विश्वास कहो तो—एक अडिग वृत्ति। बिना श्रद्धा के न इच्छा कुछ है, न कर्म कुछ और न ज्ञान। इसी से उसका अस्तित्व पृथक् माना है। वह पृथक् है।

यह शुक्ल जी की बात हुई। पर एक और हैं जिन्हें कामायनी में काव्यत्व ही नहीं दिखाई पड़ता।

खड़ी बोली में अब तक गणनायोग्य चार प्रबन्ध-काव्य प्रकाशित हुए हैं—कामायनी, साकेत, नूरजहाँ, प्रिय-प्रवास*। कामायनी में कथानक न होने के बराबर है, पर कवि इसके लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि मानवों की जिस आदि सृष्टि की गहन गुहा से वह कथा की मणि को निकाल कर लाया है, जीवन की जटिलता वहाँ थी ही नहीं। मनु का चरित ऐसा नहीं है जो 'स्वयं ही काव्य' हो और जिसे छूकर किसी का भी कवि बन जाना 'सहज-संभाव्य' हो सके। अर्थात् महाकाव्य के लिए बनी-बनाई जिन महान् घटनाओं की आवश्यकता होती है, उनका एक प्रकार से यहाँ अभाव है। इसमें आदि पुरुष और आदि नारी की कहानी है, अतः विकसित जीवन की उलझनें जैसे रामायण में राज्य-लोलुपता, संस्कृति-संघर्ष आदि उनके सामने नहीं हैं। कहीं-कहीं तो मानसिक वृत्तियाँ भी मूलरूप में आई हैं। कामायनी केवल तीन चरित्रों की कथा है। साकेत में कथानक थोड़ा अधिक है, पर कवि को उसके लिए गौरव नहीं दिया जा सकता, क्योंकि बहुतों ने उसे गाया है। प्रिय-प्रवास का कथानक भी कामायनी की भाँति एकदम क्षीण है। नूरजहाँ में कथानक

---

* अब जय भारत (मैथिलीशरण गुप्त) कुरुक्षेत्र (दिनकर) और विक्रमादित्य (गुरुभक्तसिंह) की गणना भी श्रेष्ठ प्रबंध-काव्यों में होनी चाहिए।

पर्याप्त (rich) है, पर उसका कलाकार मध्यम श्रेणी का कलाकार है। इन चारों कवियों मे कामायनी का कलाकार ही एक ऐसा कलाकार है जिसमे भावुकता (Emotion), कल्पना(Imagination) और विचार(Thought) का अपूर्व मिलन अत्यन्त उत्कृष्ट रुप (शैली) मे अत्यन्त उच्च धरातल पर हुआ है।'हिन्दी के आधुनिक कवियो मे विश्व-कवियों की-सी प्रतिभा केवल प्रसाद में थी, या गीत-काव्य के क्षेत्र में फिर महादेवी जी में है। यदि खड़ी बोली का सब कुछ नष्ट हो जाय और किसी प्रकार कामायनी का कोई-सा केवल एक सर्ग बच जाय, तब भी किसी देश का कोई पारखी यही निर्णय देगा कि भारत में कभी कोई महान्-कलाकार वास करता था। आज के अन्य प्रबन्ध-काव्यो से कामायनी की कोई तुलना नहीं है। अत. भावावेश में किसी काव्य-ग्रन्थ की प्रशसा मे जो यह लिखते हैं कि कामायनी किसी पुस्तक विशेष के सामने 'मनोविज्ञान की ट्रीटाइज सी लगती है, वे 'प्रसाद' की प्रतिभा का स्पष्ट शब्दो मे अपमान करते हैं।

श्रद्धा-मनु के आकर्षण से लेकर मिलन तक की गाथा बड़ी आकर्षक है। आकर्षण के मूल में प्रायः सौंदर्य रहता है। प्रलयकाल में मनु के भीतर उपेक्षामय जीवन का जो मधुमय स्रोत बह रहा था, वह श्रद्धा के मधुर सौंदर्य की ढलकाऊ भूमि पाते ही वेग से बह उठा। उसे सामीप्य-लाभ के लिए कोई विकट प्रयत्न नहीं करना पड़ा—न राम की तरह धनुष तोड़ना पड़ा, न रत्नसेन की तरह चोर बनना पड़ा, न सलीम की तरह किसी अफगन की हत्या करानी पड़ी और न एडवर्ड की तरह साम्राज्य ही छोड़ना पड़ा, यहाँ तक कि न रात के बारह बजे इत्र में डुबा कर पत्र लिखने पड़े और न आँसुओं से तकिये भिगोने पड़े। पर आगे चलकर ज्योत्स्ना स्नात मधुयामिनी के अधीर पुलकित एकात वातावरण मे नर के विकल अशात वक्ष से आवेग की चिनगारियों का फूटना और नारी का गम्भीरता से 'मत कहो पूछो न कुछ' कहना और उसके पश्चात् के पलो को—सामान्य नर और सामान्य नारी के जीवन के उस मधुर बसत को—किस असामान्य रगीनी और सधी तूलिका से कवि ने चित्रित किया है। हमारी भावनाओं की मूर्ति खड़ी करना. अरूप को रूप देना कितना असाध्य काम है, यह हम इसी से समझ सकते हैं कि हम

सभी जब भावों में लीन होते हैं तब क्या अपनी विह्वलता और मधुरता का विश्लेषण कर सकते हैं ? इतना ही जान पाते हैं कि मन को कुछ हो गया है, पर क्या हो गया है यह तो नहीं कह पाते। कामायनी के 'काम', 'वासना' और 'लज्जा' सर्ग को पढ़ते-पढते ऐसा प्रतीत होता है जैसे युग-युग की यौवन की मूकता को कवि ने वाणी प्रदान की है। इन पृष्ठों की प्रशसा मे यदि मैं कहूँ कि वृत्तियों का मानवीकरण किया है, मनोवैज्ञानिक पुट है, अलकारों का सुन्दर निर्वाह हुआ है, व्यजना से काम लिया है, वर्णनों में चलचित्रों की चचलता भरी हुई है, तो क्या सन्तोष होता है ? वैसे पूरी कामायनी में अन्तर की रसभरी पखुरियों पर पखुरियाँ खुलती जाती हैं, पर इन तीन सर्गों में तो 'प्रसाद' ने सज्ञा को मुग्ध कर दिया है, उसे लोरी देकर सुला दिया है। इससे अधिक क्या कहें ? यह रस-दान काव्य की अपनी वस्तु है और निश्चयपूर्वक वह 'मनोविज्ञान' की किसी 'ट्रीटाइज़' में नहीं मिलेगा।

प्रकृति-वर्णन

प्रकृति को लेकर कामायनी में 'प्रसाद' जी की विशेषता है उसके भयकर विनाशकारी स्वरूप को चित्रित करना। शशि की रेशमी विभा से भरी जल की जो लहरें 'नौका-विहार' के समय साडी की सिकुडन-सी प्रतीत होती हैं, वे हमें निगल भी सकती हैं, जो अनिल केवल इस लिए गन्धयुक्त है कि वह किसी की 'भावी-पत्नी' के सुरभित-मृदु-कचजाल से गन्ध चुरा लाया है, वह घनीभूत होकर श्वासो की गति रुद्ध भी कर सकता है, जो विद्युत् किसी के अग की आभा और चञ्चलता का उपमान बनती है और वर्षा की बूँदों को अपनी चमक से सोने की बूँदें बनाती है, वह कहीं गिरकर वज्र का रुप भी धारण करती है और 'गरल जलद की खडी झडी' की सहायक भी होती है। कामायनी के प्रारम्भ में पञ्चभूत के भैरव मिश्रण से जो प्रलय की हाहाकारमय स्थिति उपस्थित हुई, 'प्रसाद' द्वारा प्रकृति के उस दुर्दमनीय स्वरूप का चित्रण चमत्कृत करने वाला है—

> उधर गरजतीं सिधु लहरियाँ
> कुटिल काल के जालो सी,

चली आ रहीं फेन उगलती
फन फैलाए व्यालों सी।

रम्य प्रभात, धूसर मलिन सन्ध्या और ज्योत्स्ना चर्चित रजनी के अनेक चित्र कामायनी के कवि ने अंकित किये हैं। एक ओर प्रभात के कोमल अनुराग को बिखेर कर सृष्टि को कमनीय भी बनाया गया है और दूसरी ओर इडा के सौंदर्य की पृष्ठभूमि में उसे और भी उज्ज्वलता प्रदान की है। हिमखण्डों पर पड़कर रवि-किरणें असख्य हिमकरों का सृजन भी करती हैं और इडा मनु के मिलन को देख शून्य में उषा मुसकरा भी देती है। गोधूलि-वेला सृष्टि पर एक करुण मलिन छाया भी छोड़ जाती है और पश्चिम की लालिमा को अधकार से दबता देख अहेरी मनु की प्रतीक्षा करती-करती श्रद्धा व्याकुल भी हो उठती है। तारे तम के सुन्दरतम रहस्य भी हैं और व्यथित हृदय को शीतलता प्रदान करने वाले भी। रजनी वसुन्धरा पर चाँदनी भी उड़ेलती है और मनु के मन को मथ भी डालती है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति का वर्णन केवल प्रकृति-वर्णन के लिए भी है और भावों को प्रभावित करने के लिए भी। चेतना प्रदान करने, वातावरण की सृष्टि करने और सहज रूप में देखने के साथ-साथ उपमानों के रूप में प्रकृति के दृश्यों का हृदय खोल कर उपयोग किया गया है।

घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंश अवलंबित मुख के पास,
नील घन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।
नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।

'स्वप्न' के आरम्भ में वियोग, 'काम' के आरम्भ में वसंत के रूप में यौवन और 'लज्जा' के आरम्भ में लज्जा आदि के विस्तृत वर्णन प्रकृति के आधार पर ही करुण से करुणतर, रम्य से रम्यतर और मधुर से मधुरतम बने हैं। मन

की उद्दाम वासना को व्यक्त करने के लिये प्रकृति का बहुत ही उपयुक्त आवरण 'प्रसाद' को 'आँसू' और 'कामायनी' दोनों में मिला है। प्रकृति के प्रति शृंगारी दृष्टि का एक ही उदाहरण देखिए—

फटा हुआ था नील वसन क्या '
ओ यौवन की मतवाली ?
देख अकिंचन जगत लूटता
तेरी छवि भोली भाली ।

स्वतन्त्र स्थलो मे हिमालय के वर्णन अधिक हैं। हिमालय अधिकतर पात्रो की लीलाभूमि होने के कारण बार-बार कवि के दृष्टि-पथ में आया है। पचास प्रकार से उसे घुमा-फिरा कर कवि ने देखा है। एक स्थल पर उसे किसी पीड़ा से कम्पित 'धरा की भयभीत सिकुड़न' कहा है। दूसरे स्थल पर समुद्र मे मग्नहोने वाली अचला का अवलम्बन-अचल कह कर कैसे विराट् दृश्य की कल्पना की है !

(१) विश्व कल्पना सा ऊँचा वह
सुख शीतल सन्तोष निदान
और डूबती-सी अचला का
अवलम्बन मणि रत्न निधान —आशा

(अ)

(२) धरा की यह सिकुडन भयभीत
आह कैसी है ? क्या है पीर ?

(आ)

मधुरिमा में अपनी ही मौन
एक सोया सन्देश महान। —श्रद्धा

(३) रवि कर हिमखडो पर पड़ कर
हिमकर कितने नये बनाता

—रहस्य

हिमगिरि और सध्या दोनो के सयोग का एक सश्लिष्ट चित्र देखिए—

सध्या-घनमाला की सुन्दर
ओढे रङ्ग-बिरङ्गी छींट

गगन-चुम्बिनी शैल-श्रेणियाँ
पहने हुए तुषार-किरीट ।

सृष्टि-रचना

प्रसाद ने प्रेम-मूला सृष्टि की रचना अणुवाद (Atomic Theory) के आधार पर मानी है। इससे उन्होंने भावना और विज्ञान को मिला दिया है। कहना चाहिये कि कवि ने वैज्ञानिक के मस्तिष्क से सोचा है या वैज्ञानिक भावुक हो गया है।

काम सर्ग में अनग कहता है कि वह और रति इस सृष्टि से भी पुराने हैं। जैसे वसन्त के आते ही लता पुष्प देने योग्य बनती है, उसी प्रकार सूक्ष्म प्रकृति ने जब यौवन प्राप्त किया, तब उसमें प्रजनन शक्ति आई। एक दिन उसके हृदय में वासना (रति) जगी और अनुकूल समय पर सबसे पहिले दो अणुओं का जन्म हुआ। यद्यपि कवि ने स्पष्ट नहीं लिखा है, पर 'हम दोनों का अस्तित्व रहा उस आरम्भिक आवर्त्तन सा' से यह ध्वनि निकलती है कि सृष्टि के अस्तित्व मे आने के लिए रति के साथ ही काम की भी आवश्यकता पड़ती है। स्त्री के हृदय की वासना को 'रति' और पुरुष के हृदय की उद्दाम लालसा को 'काम' कहते हैं। अतः यह मान लेना चाहिये कि जब अव्यक्त प्रकृति का हृदय समागम के लिए व्याकुल हुआ, तब पुरुष (ईश्वर) के हृदय मे भी आकर्षण उत्पन्न हुआ। उन दोनों के एक-दूसरे की ओर खिंच कर निकट आने से अणु उत्पन्न हुए। फिर जैसे गृहस्थों के कुटुम्ब में बच्चे बढ़ते चले जाते हैं, उसी प्रकार शून्य मे अणु भरते चले गये। ये अणु एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होकर मिलने लगे और फिर उनके एकत्र होने से एक दिन स्थूल सृष्टि बनी। धीरे-धीरे उस पर वनस्पति, कीड़े-मकोड़े, पशु, पक्षी, स्त्री-पुरुषों का जन्म हुआ। काम और रति के प्रभाव से पहले प्रणय-व्यापार प्रकृति-पुरुष, फिर देवता-अप्सराओं और अब नर-नारियों में चलता रहा है। प्रसाद ने प्रकृति की वस्तुओं में आकर्षण को स्वीकार करते हुए लिखा है—

भुज-लता पड़ी सरिताओं की
शैलों के गले सनाथ हुए,

जलनिधि का अचल व्यजन बना
धरणी का, दो दो साथ हुए।

जीवन-दर्शन

विश्व के महान् मनीषियो में इस बात पर गहरा मतभेद है कि जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है? एक ओर वे दार्शनिक हैं जो सृष्टि को मिथ्या, जीवन को निस्सार, सौंदर्य को मायाजाल बतलाते हैं और ससार से विरक्त करना ही जिनका लक्ष्य रहता है, दूसरी ओर वे विचारक हैं जो जगत् को भगवान् की विभूति समझ कर, जीवन को विभु का दान मान कर, सौंदर्य को सृष्टिकर्त्ता का रहस्य स्वीकार कर प्रकृति के बिखरे वैभव का शासक बनने और उसके उपभोग का आदेश देते हैं। ऐसी दशा मे निवृत्ति और प्रवृत्ति-मार्ग में से किसे स्वीकार करें, यह सामान्य बुद्धि के व्यक्ति के लिए एक पूरी समस्या है, क्योंकि दोनों वर्गों के चिंतको के तर्क प्रायः एक-से ही प्रबल हैं। निष्पक्ष भाव से किसी एक ओर झुकते नहीं बनता।

महान् कवि महान् विचारक भी होते हैं। यही कारण है कि अपनी आर्द्र भावुकता का परिचय देने के साथ ही वे कलात्मक ढग से अपने गभीर विचारों का समावेश भी अपनी कृतियो मे अनुकूल प्रसग लाकर कर देते हैं। इस दृष्टि से विभिन्न विचार-धाराओ का अध्ययन करने के लिए भारत के चार महान् कवियो के सम्पूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन साहित्य-प्रेमियों को मनोयोग पूर्वक करना चाहिए। ये साहित्यिक हैं—तुलसी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जयशङ्करप्रसाद और महादेवी वर्मा। दुर्भाग्य की बात है कि समाजवाद के सिद्धान्तों का सशक्त सरस वाणी मे प्रतिपादन करने वाला अभी कोई उच्च कोटि का कलाकार भारत मे नहीं है जिसका नाम हम इनके साथ जोड़ सकते।

प्रसाद जी ने अनेक स्थलो पर दुःखवाद का खण्डन किया है। उनके दृष्टिकोण को ठीक से समझने के लिए उनकी 'एक घूँट' नाटिका को ध्यान से पढ़ना चाहिए। उसमे उनके विचारों का सार यह है कि ब्रह्म के तीन गुण हैं सत, चित, आनन्द। सृष्टि की रचना करके वह अपने 'सत्' (Existence) का परिचय देता है। हमें चेतना प्रदान करके वह 'चित्' की प्रतिष्ठा करता

है। रहा 'आनन्द'। इसकी उपलब्धि सौन्दर्य के माध्यम से होती है। सौंदर्य कहते ही उसे है जो आनन्द दे। आत्मा परमात्मा का अंश है और परमात्मा आनन्दमय है, अतः आनन्द की उपलब्धि के लिए आत्मा का व्याकुल रहना अत्यन्त स्वाभाविक है। आनन्द, बाह्य सौन्दर्य, चाहे वह नारी के शरीर और प्रकृति की वस्तुओं का हो और आतरिक सौन्दर्य, जो उज्ज्वल गुणों मे निहित रहता है, दोनों से मिलता है। इसलिए सौन्दर्य की ओर आकर्षित होना एक अत्यन्त सहज बात है, आत्मा की प्रेरणा है, परमात्मा की इच्छा है, कोई दुष्ट भावना नहीं। यही तक नहीं, आत्मा का सौदर्य से जितना विस्तृत परिचय होगा उतना ही उसका विकास होगा। दूसरा तर्क उनका यह है कि यदि जगत् की उत्पत्ति आनन्दमय विभु से हुई है, तब इसमें दु.ख कहाँ से आया ? यह दु.ख मनुष्य की कल्पना से निर्मित है, आरोपित है। उन्हीं के शब्दो मे सुनिए.—

१—विश्व-चेतना के आकार धारण करने की चेष्टा का नाम 'जीवन' है। जीवन का लक्ष्य 'सौंदर्य' है, क्योंकि आनन्दमयी प्रेरणा जो उस चेष्टा या प्रयत्न का मूल रहस्य है स्वस्थ—अपने आत्म-भाव में निर्विशेष रूप से—रहने पर सफल हो सकती है।

२—मैं उन दार्शनिकों से मतभेद रखता हूँ जो यह कहते आए हैं कि संसार दु:खमय है और दु.ख के नाश का उपाय सोचना ही पुरुषार्थ है।

—एक घूँट

इन्हीं भावो की प्रतिध्वनि कामायनी में स्थान-स्थान पर मिलती है—

कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी मे सब होते अनुरक्त। —श्रद्धा

मैं देख रहा हूँ जो कुछ भी
वह क्या सब छाया उलझन है? —काम

यह लीला जिसकी विकस चली
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला। —काम

आकर्षण होता है, यह तो बहुत से अनुमान कर सकते हैं और बहुत से अनुभव भी, पर क्यों होता है, इसका उत्तर सब नहीं दे पाते। ऐसा उत्तर जो हमारे अन्तर में विश्वास का संपादन भी करे, पीछे 'एक घूँट' में प्रसाद ने दिया है। कामायनी में इस आकर्षण की व्यापकता से मनु का परिचय होता है—

पशु कि हो पाषाण सब में नृत्य का नव छंद,
एक आलिंगन बुलाता सभी को सानंद।

प्रसादजी कर्म के पक्षपाती हैं, वैराग्य के नहीं—'तप नहीं केवल जीवन सत्य।' उनका कहना है कि जब स्वयं भगवान कर्म में लीन हैं, जब सृष्टि का एक-एक कण अविराम साधना में निरत है, जब सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र एक क्षण का विश्राम नहीं लेते, तब मनुष्य अकर्मण्य हो जाय, यह कहाँ की बुद्धिमत्ता है? प्रसाद के मनु ने समाधि में लीन, शोक, क्रोध से उदासीन, जड़तामय हिमालय को जीवन का उपयुक्त आदर्श नहीं माना, गतिशील और ज्वलित सूर्य को समझा है—

देखे मैंने वे शैल शृंग।
जो अचल हिमानी से रंजित, उन्मुक्त, उपेक्षा भरे तुङ्ग।
अपने जड़ गौरव के प्रतीक वसुधा का कर अभिमान भङ्ग।
अपनी समाधि मे रहे सुखी, बह जाती हैं नदियाँ अबोध।
कुछ स्वेद-बिंदु उसके लेकर, वह स्तिमित नयन, गत शोक क्रोध।
स्थिर मुक्ति, प्रतिष्ठा मे वैसी चाहता नहीं इस जीवन की।
मै तो अबाध गति मरुत सदृश हूँ चाह रहा अपने मन की।
जो चूम चला जाता अग जग प्रति पग मे कंपन की तरंग।
वह ज्वलन शील गतिमय पतंग!

यह कवि सहानुभूति, अहिंसा, करुणा, उदारता, दया, ममता और प्रेम का प्रचारक होने पर भी दुर्बलता का उपदेश कहीं नहीं देता, यह ध्यान देने की

बात है। उसकी सहिष्णुता, क्षमा आदि वृत्तियाँ शक्तिशालियों की हैं, विवशों की नहीं —

और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान
शक्तिशाली हो, विजयी बनो
विश्व में गूँज रहा जय-गान। —श्रद्धा
यह नीड़ मनोहर कृतियों का
यह विश्व कर्म रंगस्थल है,
है परम्परा लग रही यहाँ
ठहरा जिसमें जितना बल है। —काम

यह भ्रम न होना चाहिये कि प्रसाद जी क्योंकि जीवन में प्रेम का समर्थन करते हैं, अतः असंयम का भी। कामायनी एक संस्कृति के विनाश और दूसरी संस्कृति की प्रतिष्ठा का संधि-स्थल है। देवजाति नष्ट ही वासना की अति से हुई। यही कारण है कि श्रद्धा और कामदेव दोनों ने मनु को यह बात दुहरा-दुहरा कर समझायी है कि जीवन का शुद्ध विकास वासना और संयम के सामंजस्य से ही हो सकता है। न तपस्वी होने की आवश्यकता है और न विलासी—

देव असफलताओं का ध्वंस
प्रचुर उपकरण जुटाकर आज
पड़ा है बन मानव संपत्ति
पूर्ण हो मन का चेतन राज

—श्रद्धा

दोनों का समुचित प्रतिवर्त्तन
जीवन में शुद्ध विकास हुआ
प्रेरणा अधिक अब स्पष्ट हुई
जब विप्लव में पड़ ह्रास हुआ

—काम

पूर्ण समता की स्वीकृति ही नर-नारी का एकमात्र सच्चा पारस्परिक सम्बन्ध है। स्त्रियों को मनोविनोद की संकीर्ण दृष्टि से जो प्रायः देखा जाता है, उससे

हमारी गरदन नीची होनी चाहिये। कामायनी में प्रसाद ने जीवन में नारी के मूल्य पर भी विचार किया है। इड़ा सर्ग से काम मनु को फटकारता हुआ कहता है—

तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की,
समरसता है सबध बनी अधिकार और अधिकारी की।
पर तुमने तो पाया सदैव उसकी सुन्दर जड़ देह मात्र,
सौन्दर्य जलधि से भर लाये केवल तुम अपना गरल पात्र।
तुमने तो प्राणमयी ज्वाला का प्रणय-प्रकाश न ग्रहण किया,
हाँ, जलन वासना को जीवन भ्रम तम में पहला स्थान दिया।

सुख-दुःख के सम्बन्ध मे कवि का यह निर्णय है कि दुःख से विचलित न होकर उसके भीतर से शक्ति का सम्पादन करना चाहिये और सुख में मर्यादा और दूसरों की सुविधा का ध्यान रखना चाहिये। ससार परिवर्तनशील है यह सत्य है, पर जो पल हमें मिले हैं उन्हें मधुर बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। भविष्य की व्यर्थ चिंता से वर्तमान को मलिन बनाना उचित नहीं—

अपना हो या औरो का सुख
बढ़ा कि बस दुख बना वही,
कौन विंदु है रुक जाने का
यह जैसे कुछ ज्ञात नहीं।

प्राणी निज भविष्य चिंता में
वर्तमान का सुख छोड़े,
दौड चला है बिखराता-सा
अपने ही पथ पर रोड़े।—निर्वेद

मेरी दृष्टि से कामायनी एक विराट सामजस्य की सनातन गाथा है। उसमे हृदय और मस्तिष्क का सामजस्य, वासना सयम का सामजस्य, दुःख-सुख का सामजस्य, परिवर्तन स्थिरता का सामजस्य, प्रवृत्ति-निवृत्ति का सामजस्य, शासक-शासित के अधिकार का सामजस्य, नर-नारी के सम्बन्ध का सामजस्य और सब से अधिक भेद और अभेद, द्वयता और इकाई का सामजस्य है। सब कुछ करते हुए, सब कुछ सहते हुए इस चरम भाव को विस्मृत नहीं करना है—

चेतन समुद्र में जीवन
लहरों सा बिखर पड़ा है,
कुछ छाप व्यक्तिगत, अपना
निर्मित आकार खड़ा है।

इस ज्योत्स्ना के जलनिधि में
बुद्बुद् सा रूप बनाये,
नक्षत्र दिखायी देते
अपनी आभा चमकाये।

वैसे अभेद सागर में
प्राणों का सृष्टि-क्रम है,
सब में घुल-मिल कर रसमय
रहता यह भाव चरम है।

अपने दुख-सुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर;
चित का विराट वपु, 'मंगल'
यह 'सत्य' सतत चिर 'सुन्दर'।

पारमार्थिक सत्ता

'प्रसाद' ने सृष्टि का शासन करने वाली महाशक्ति को शिव के रूप में देखा है और प्रकृति में उनके स्थूल रूप का आभास किया है। दूसरे ढंग पर यह भी कह सकते हैं कि भगवान शिव के सम्बन्ध में हमारी जो धारणाएँ हैं, उन्हें प्रकृति में घटाया है। मनु के इड़ा पर अत्याचार करने को उद्यत होते ही रुद्र-हुङ्कार सुनाई पड़ती है और अचानक रुद्र-नयन खुल पड़ता है। मनु को दर्शन भी नृत्य-निरत नटराज (महादेव) के होते हैं। कवि ने हिमधवल गिरि-राज के ऊपर उगते चन्द्र को और उसकी गोद में लहरें लेती मानसी को पुरातन-पुरुष (चन्द्रशेखर) और उनकी अर्द्धांगिनी गौरी के रूप में देखा है। इसके

बहुत पहले 'कर्म' सर्ग में पूर्णचन्द्र को भगवान शिव का गरल-पात्र माना है—

नील गरल से भरा हुआ यह
चंद्र कपाल लिये हो,
इन्हीं निमीलित ताराओं मे
कितनी शान्ति पिये हो।

अचल अनत नील लहरों पर
बैठे आसन मारे,
देव! कौन तुम झरते तन से
श्रमकण-से ये तारे!

छायावाद और रहस्यवाद

'छायावाद' और 'रहस्यवाद' शब्दों को लेकर हिन्दी में बहुत बड़ा भ्रम फैलाया गया है। उस वाग्जाल को यहाँ स्पष्ट करने का अवकाश नहीं है। बहुत सरल ढग से हम कह सकते हैं कि प्रकृति में चेतना की अनुभूति छाया-वाद है और प्राणी का ब्रह्म के प्रति प्रणय-निवेदन रहस्यवाद। शब्दों का बाह्य-स्वरूप बहुधा भ्रान्ति उत्पादक होता है, अतः तात्पर्य ग्रहण करने के लिए पक्तियों के भाव में ही अवगाहन करना चाहिए। शब्दों से यह प्रकट होने पर भी कि प्रकृति नर अथवा नारी की भाँति स्पदनशीला है, जब तक भाव से यह स्पष्ट न हो जाय कि वह प्राणी की अनुभूति से वास्तव में सम्पन्न है, तब तक किसी भी उद्धरण मे छायावाद न होगा। उदाहरण के लिए पर्वतों का वर्णन करते समय प्राय. प्रत्येक कवि 'प्रसाद' की भाँति किसी न किसी ढग से लिखता है 'गगन-चुम्बिनी शैल-श्रेणियाँ।' यहाँ पर्वत की ऊँचाई का भान कराना ही मुख्य उद्देश्य है, शैल-श्रेणियो और गगन का प्रणय-व्यापार नहीं, अत. 'चुम्बन' शब्द पढ़ते ही छायावाद बतला देना भावावेश अथवा बुद्धि के आवेश का परिचय देना है। इसी प्रकार प्रलयकालीन प्रकृति की भयकरता का वर्णन करते समय कवि यदि लिख जाय 'लहरें क्षितिज चूमती उठतीं' तो थोड़े

धैर्य के साथ निर्णय देना चाहिये। परन्तु अन्य प्रसग मे कहीं एकान्त शून्य में लहरो और क्षितिज की इस निर्द्वन्द्व कानाफूसी के काम पर यदि कवि की दृष्टि पड़ गई तो छायावाद की छाप लग जायगी—

ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे
जिस निर्जन सागर मे लहरी, अम्बर के कानों मे गहरी
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो, तज कोलाहल की अवनी रे।

कामायनी पर आइए। कभी आपने किसी सुकुमारी को उठते देखा है? सुनते हैं उनके उठने में भी एक कला होती है। देखा है किसी को कोमल तन से हिम-धवल चादर को धीरे-धीरे खिसकाते, फिर अलसाते, शीतल जल के छींटे मारते, फिर धीरे-धीरे नेत्र खोलते, चैतन्य होते और अँगड़ाई लेकर फिर सो जाते? 'प्रसाद' की आँखों में थोड़ी देर को अपनी आँखें रखकर मौन हो जाइए। यह प्रकृति-बाला आज प्रथम बार कुछ 'सकुचित' सी प्रतीत होती है। न जाने क्यों?

धीरे धीरे हिम-आच्छादन
हटने लगा धरातल से,
जगी वनस्पतियाँ अलसाई
मुख धोतीं शीतल जल से।

नेत्र निमीलन करती मानो
प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने
जलधि लहरियों की अँगड़ाई
बार बार जाती सोने।

सिंधु-सेज पर धरा-वधू अब
तनिक संकुचित बैठी सी.
प्रलय-निशा की हलचल-स्मृति में
मान किये सी ऐंठी सी।

प्रेम के प्रति आत्म-निवेदन की भूमि बहुत विस्तृत है जिसमें दर्शन, आकर्षण, विरह, अभिसार, छेड़छाड़, मिलन आदि की बहुत-सी बातें सम्मिलित

हैं। इनकी चर्चा महादेवी जी के काव्य को लेकर हम अन्यत्र करेंगे। ब्रह्म की सत्ता के आभास का एक उदाहरण कामायनी के 'आशा' सर्ग से लीजिए—

महानील इस परम व्योम मे
अन्तरिक्ष मे ज्योतिर्मान।
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण
किसका करते से संधान ?

छिप जाते हैं और निकलते,
आकर्षण में खिंचे हुए !
तृण वीरुध लहलहे हो रहे
किसके रस से सिंचे हुए !

'हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम !
यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो ! क्या हो ! इसका तो
भार विचार न सह सकता।

सत्यं शिवं सुन्दरम्

'सत्य, शिव, सुन्दरम्' आदर्श वाक्य तो प्रत्येक कलाकार का रहता है, पर इन तथ्यों का उचित समन्वय कामायनी मे ही हुआ है। कामायनी मे सृष्टि-व्यापार को बहुत व्यापक दृष्टि से देखा गया है। कलाकार का सत्य न वैज्ञानिक का शुष्क सत्य है और न दार्शनिक का सूक्ष्म सत्य। परिवर्तनशील जगत्, नाशवान् जगत् क्या सत्य है ? श्रद्धा उत्तर देती है जिसे तुम 'परिवर्तन' कहते हो वह 'नित्य नूतनता' है। दुःखमय विश्व क्या 'शिव हो सकता है ? श्रद्धा कहती है—दुःख ईश का वरदान है। दुःख के अंतर मे सुख उसी प्रकार निवास करता है, जैसे काली रजनी के गर्भ मे प्रभात या फिर नीली लहरों मे द्युतिमयी मणियाँ। और इस सृष्टि की सुन्दरता के प्रति हमारा क्या दृष्टिकोण होना चाहिए ? इस सम्बन्ध मे प्रमुख पात्रों की घोषणा सुनिए :—

इडा—यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्यभरी शोधकविहीन।
तुम उसका पटल खोलने में परिकर कसकर बन कर्मलीन।
सबका नियमन शासन करते बस बढ़ा चलो अपनी क्षमता।
श्रद्धा—कर रही लीलामय आनन्द
महा चिति सजग हुई सी व्यक्त
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।
मनु—आकर्षण से भरा विश्व यह
केवल भोग्य हमारा।

वर्णन-पद्धति

वैभव, विलास, सौंदर्य, विरह, मृत्यु, प्रलय, प्रकृति और विभिन्न वृत्तियों के कलात्मक वर्णन के लिए 'प्रसाद' की कितनी प्रशंसा की जाय ! भाव और भाव-प्रदर्शन का अपूर्व सामंजस्य जो किसी भी महान कलाकार की परख है 'प्रसाद' में पूर्ण रूप से मिलता है। एक शब्द या वाक्यांश में ही कहीं-कहीं तो मूर्तियाँ खड़ी कर दी हैं जैसे इड़ा को 'चेतनते' चिंता को अभाव की 'चपल बालिके' मृत्यु को 'चिरनिद्रा' आशा को 'प्राण-समीर' लज्जा को 'हृदय की परवशता' सत्य को 'मेधा के क्रीड़ा-पंजर का पाला हुआ सुआ' और श्रद्धा के रूप को 'ज्योत्स्ना-निर्झर' किस सहज-भाव से कहा है !

'प्रसाद' के नाटकों की क्लिष्ट उक्तियों, उनमें आए गीतों तथा उनके काव्य ग्रन्थों—विशेषकर 'आँसू' और 'कामायनी' को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ तक भाषा और भावाभिव्यक्ति का सम्बन्ध है वहाँ 'प्रसाद' का अपना एक स्टैंडर्ड था जिससे नीचे वे उतरना न चाहते थे। 'प्रसाद' रस-दान में पहले हमारी पात्रता परखते हैं। अ-पात्र को निर्दयता से वापस कर देते हैं। जिसने यह लिखा है कि 'कामायनी कालान्तर में एक लोकप्रिय रचना होगी' उसने सोच कर नहीं लिखा। मेरा अपना विश्वास है कि 'कामायनी' को चाहे और कुछ गौरव प्राप्त हो, पर लोकप्रियता का रंग उस अर्थ में उसे न

मिलेगा जिस अर्थ में तुलसी, सूर, मैथिलीशरण गुप्त और प्रेमचन्द को मिला है। पर लोक-प्रियता ही तो उत्तमता की एकमात्र कसौटी नहीं है। रोटी और हीरे में जो अन्तर है वही अन्तर कुछ कलाकारों और 'प्रसाद' में है। जो रोटी भी है औरा हीरा भी ऐसी तो एकमात्र रचना हिंदी में 'रामचरित मानस' ही है। 'कामायनी' साहित्यिकों की प्रिय वस्तु रहेगी। लोक-दृष्टि से परखें तो 'प्रसाद' में प्रसाद गुण की कमी है।

विचार-गाभीर्य और नवीन कल्पनाओं को प्रस्तुत करने के कारण तो प्रसाद की कविता साहित्य के विद्यार्थियों को दुरूह प्रतीत होती ही है, पर उनसे छिटक भागने का मुख्य कारण है मूर्त्त उपमानों के स्थान पर प्रचुर परिमाण में कवि का अमूर्त्त अप्रस्तुतों को ग्रहण करना जैसे—

(१) नीरवता सी शिला
(२) मृत्यु सदृश शीतल निराश
(३) विश्व-कल्पना सा ऊँचा (हिमालय)
(४) जडता सी शांत
(५) कामायनी पडी थी अपना
कोमल चर्म विछा के,
श्रम मानो विश्राम कर रहा
मृदु आलस को पाके।

थोड़ी देर के लिये केशों पर अन्य कविता की कल्पनाएँ लीजिये

(१) चिकुर निकर तम सम। —विद्यापति।
(२) लहरन भरे भुअङ्ग वैसारे। —जायसी
(३) घन पटल से केश। —मैथिलीशरण।
(४) कटि के नीचे चिकुर जाल में
उलझ रहा था बाँया हाथ।
खेल रहा हो ज्यों लहरों से
लोल कमल भौंरो के साथ। —गुप्त जी।

इन चारों उदाहरणों में प्रस्तुत भी मूर्त्त हैं और अप्रस्तुत-भी, अतः भाव सहज

गम्य है। जैसे बाला को हम देख पाते हैं, उसी प्रकार अंधकार, मेघ, सर्प और भौंरे भी हमारी दृष्टि के सामने घूमते रहते हैं। उपमेय और उपमान का 'वर्ण' अथवा 'आकार साम्य जोड़ने में देर नहीं लगती। पर 'प्रसाद' अलकों को कहीं-कहीं 'तर्क जाल' भी कहेंगे—बिखरीं अलकें ज्यों तर्कजाल—इस 'तर्क-जाल' के साथ यह 'भाव'-साम्य स्थापित करने के लिए कि जैसे तर्क जाल में फँसकर बुद्धि की मुक्ति कठिन है, उसी प्रकार बाल-जाल में फँसकर मन न लौट सकेगा, कुछ पलों की देर लगती है। जिसमें इतना धैर्य नहीं है, वह प्रसाद को रूखा, दुरूह और न जाने क्या-क्या कहता है?

कामायनी में चित्रों की भरमार है। 'प्रसाद' जी भावनाओं और विचारों को प्रकट करते समय उनकी पृष्ठ-भूमि में जीवन या प्रकृति के किसी दृश्य की कल्पना करते हैं। अतः पाठकों की दृष्टि प्रस्तुत वर्णन को भेदती हुई जब तक उन दृश्यों पर न टिकेगी, तब तक न तो वे प्रसाद की बात ही पूर्णरूप से समझ पावेंगे और न कवि के सूक्ष्म काव्य-कौशल और उसकी भावुकता से अवगत होंगे। 'छायावाद' के प्रसंग में पीछे देख चुके हैं कि यदि उस उदाहरण में से किसी कोमलांगी युवती के सोकर उठने के दृश्य को खींच लें, तो उसका आधा सौंदर्य नष्ट हो जाय। मनु के हृदय में उदित होने वाली 'आशा' के स्वरूप को देखिए—

> यह कितनी स्पृहणीय बन गई
> मधुर जागरण सी अविमान,
> स्मित की लहरों सी उठती है
> नाच रही ज्यों मधुमय तान। —आशा

जीवन में आशा न हो तो जीवन भार हो जाय, अतः वह अत्यन्त स्पृहणीय है। इतनी सी बात तो और भी कोई कह सकता था। पर आगे चल कर अनु-भूति सम्बन्धी उलझन खड़ी होती है। आशा के उदित होते ही कैसा-कैसा लगा करता है, यह दूसरों को समझाना सरल काम नहीं। कवि कहता है आशा के जगने (उदित होने) में वैसी ही रम्यता है जैसी रम्यता मनोरम उषाकाल में किसी अनुपम सुन्दरी के सुकुमार पलकों को खोलने के दृश्य में। उस दृश्य के देखने से जैसा सुख द्रष्टा को प्राप्त होता है वैसा ही सुख आशा का अनुभव

करने वाले हृदय को मिलता है। पर आशा उदित होकर ही नहीं रह जाती वह उठती बढ़ती या उमड़ती है। इस स्थिति को प्रत्यक्ष करने के लिए वह दूसरा गोचर दृश्य सामने लाता है—देखो, तुमने कभी किसी के मधुर अधरों पर मन्द मुसकान की लहरियों को धीरे-धीरे उठते देखा है। आशा की तरगें भी भावपूर्ण हृदय में उसी सुकुमारता से क्रीड़ा करती है। उस समय जिस गुदगुदी का अनुभव तुम्हारा हृदय करता है वैसे ही आह्लाद का अनुभव आशा के विकसित होने पर होता है। और तब वह स्थिति भी आती है जब आशा समस्त अंत.करण में घुमड़ने लगती है। उस मधुरता का तो कहना ही क्या ? पर कवि वहाँ भी मूक नहीं है। इगित करता है—इस स्थिति को गूँजती हुई मीठी तान के श्रवण-सुख मे डूब कर समझ लो।

यहाँ कई बातें ध्यान देने योग्य हैं। पहली बात तो यह कि कवि ने एक अमूर्त मनोविकार को परिचित दृश्यों द्वारा समझाया। दूसरे जिस कोमलता, रम्यता और हर्ष की अवस्थिति उस मनोविकार में है वैसी ही कोमलता, रम्यता और प्रसन्नता उपमानों में बनी रहने दी। तीसरी बात यह है कि वर्णन को एक व्यवस्था दी जैसे पहले आशा का 'होना' फिर 'जगना' फिर 'उठना' और 'नृत्य करना' (अंत.करण मे आवेश के साथ घुमड़ना)। पर प्रसाद की कला को आपने ठीक से नहीं परखा, यदि उस चित्र पर आपने ध्यान नहीं दिया जो इस वर्णन का प्राण है। यहाँ आशा एक रमणी है। पहली पंक्ति में वह सोती दिखाई गई है, दूसरी मे जगती है, तीसरी में उठती है और चौथी में मस्ती में भरकर नृत्य करने लगती है। सच बतलाइये, यदि चुप-चुप यह सब कुछ आप को देखने को मिल जाया करे, तो कैसा लगेगा ?

एक और चित्र देखिए। 'प्रसाद' ने एक स्थल पर समीर को 'अणुओं का निश्वास' कहा है। अणु आकाश में भ्रमण कर रहे हैं, समीर अंतरिक्ष में बहता है। इस स्थापना में अविश्वास की कोई बात नहीं। पर पूरा व्यापार कितना रसपूर्ण है, इस पर कम व्यक्तियो का ध्यान जाता है—

> उन नृत्य शिथिल निश्वासों की
> कितनी है मोहमयी माया,

जिनसे समीर छनता छनता
बनता है प्राणों की छाया । —काम

कल्पना कीजिए किसी सभा में कोई सुन्दरी नर्तकी नृत्य कर रही है। नृत्य करते-करते वह थक चली है और शिथिल होकर किसी दर्शक के पास रुक गई है। सुवासित निश्वास निस्सृत होकर उस लुब्ध प्रेमी के अंग को स्पर्श करते हैं। कितना सौभाग्यशाली समझता होगा वह अपने को ! कितनी शीतल होती होगी उसकी आत्मा !

समीर के परस से जो हमारे प्राण पुलकित हो उठते हैं उसका कारण भी यह है कि वह किसी (नृत्य-निरत अणु) के शीतल सुरभित निश्वासों का सार है !

ज्योत्स्ना-चर्चित यामिनी में मनु के मुख से अपने लिए प्रेम की मधुर विह्वल बातें सुनकर श्रद्धा को एक प्रकार का सुख मिला और वह सोचने लगी कि जो व्यक्ति मेरी अनुरागदृष्टि प्राप्त करने के लिए इतना छटपटा रहा है, उसे आत्मसमर्पण क्यों न कर दूँ ? इतने में 'लज्जा' से उसका परिचय होता है—

वैसे ही माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए ।

'अधरों पर उँगली रखना' स्त्रियों की एक मुद्रा है जो बड़ी प्यारी लगती है। 'आँखों में सरसता के पानी' में जो 'पानी' शब्द का प्रयोग है उसका न अनुवाद हो सकता है और न अर्थ। इस रम्यता की भावना द्वारा केवल अनुभूति ही सम्भव है। परन्तु यहाँ बाह्य आकृति-चित्रण से कहीं अधिक गहरा कवि का आशय है। वासना की प्रेरणा से नारी जब पुरुष को अपने शरीर को सौंपना चाहती है तब उसके अन्तर की स्वाभाविक लज्जा उसे एक बार अवश्य टोकती है। और बिना बोले ओठों पर उँगली रखकर वर्जन भी किया जाता है। उसी अर्थ में 'अधरों पर उँगली धरे हुए' आया है। श्रद्धा जैसे ही शरीर

समर्पण की बात सोचती है, वैसे ही लज्जा एक बार टोकती है—हैं ! रुको, क्या करने जा रही हो तुम ?

इसे कहते हैं सजीव चित्र अकित करना ! 'मनोविज्ञान की ट्रीटाइज क्या ऐसे ही चित्र रहते हैं भला ? इसी प्रसग का एक चित्र और भी—

'किरनों का रज्जु समेट लिया
जिसका अवलम्बन ले चढती,
रस के निर्झर में धँस कर मैं
आनन्द शिखर के प्रति बढ़ती।'

इस छन्द मे इस प्रकार का दृश्य निहित है कि एक ऊँचा पर्वत हे, उ झरना फूट रहा है, जिसका जल चारों ओर फैल गया है। इस जल मे एक युवती खड़ी है। वह पर्वत की चोटी पर पहुँचना चाहती है, पर तैरना जानती। देखती है कि पर्वत के शिखर से लेकर जल मे होती हुई उसके च तक एक डोर आई है। उसे बड़ी प्रसन्नता होती है और आशा करती है उसकी साध पूरी हो जायगी, पर रस्सी को पकड़ आगे बढ़ने की वह ज्य आकॉक्षा करती है कि गिरिशिखर पर अधिष्ठित कोई अन्य रमणी मूर्ति च उस डोर को खीच कर उस युवती को निराश कर देती है। रूपक को हटा देखें तो यह पर्वत आनन्द का है, यह निर्झर प्रेम का है, यह डोर साहस क वह पथिक युवती श्रद्धा है, और डोर को खीचने वाली रमणी-मूर्ति लज पर सोचने की बात यह है कि कितना व्यापक और गहन व्यापार कवि ने ही छन्द की रेखा-सीमा मे समेट लिया है।

'प्रसाद' की कविता को समझाने के लिए उनके प्रतीकों के अर्थ को से समझने की बड़ी आवश्यकता है। काम सर्ग के प्रारम्भ के इस भाव-विस्तृत वर्णन को पढ़िए—

मधुमय वसत जीवन वन के
वह अतरिक्ष की लहरों मे,
कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों मे ?

क्या तुम्हें देख कर आते यों,
मतवाली कोयल बोली थी !
उस नीरवता में अलसाई
कलियों ने आँखें खोली थीं !

जब लीला से तुम सीख रहे
कोरक कोने में लुक रहना,
तब शिथिल सुरभि से धरणी में
बिछलन न हुई थी ? सच कहना।

जब लिखते थे तुम सरस हँसी
अपनी, फूलों के अंचल में,
अपना कलकंठ मिलाते थे
झरनों के कोमल कल कल में

निश्चित आह ! वह था कितना
उल्लास, काकली के स्वर में !
आनन्द प्रतिध्वनि गूँज रही
जीवन दिगन्त के अम्बर में।

इसके प्रारम्भ और अंत में यदि 'जीवन वन' और 'जीवन दिगंत' शब्दों का प्रयोग न होता, तो वसंत के वर्णन का भ्रम होता। पर इस एक 'जीवन' शब्द ने पूरा आशय ही बदल दिया। वसंत का वर्णन न होकर यह 'जीवन के मधुमय वसंत, या यौवन' का वर्णन हुआ। इस वर्णन में कवि की ओर से हमें बहुत कम सहायता मिलती है। केवल इतना पता चलता है कि वन के लिए वह 'जीवन' शब्द लाया है। आगे चुप है। ऐसी दशा में शेष प्रतीकों या उपमानों का अर्थ हमें अपनी ओर से लगाना पड़ता है। सुविधा के लिए इन छंदों में प्रयुक्त प्राकृतिक प्रतीकों का भाव हम नीचे दे रहे हैं—

मधुमय वसंत	मधुर यौवन
अंतरिक्ष	हृदय
लहरों	भावों

रजनी के	किशोरावस्था की
पिछले पहर	समाप्ति
कोयल	मन
कलियां	वृत्तियां
कोरक (कली)	नव युवतियाँ
शिथिल सुरभि	मस्त उच्छ्वास
धरणी	पृथ्वी के प्राणियों
फूलों के अंचल में हँसी	बालाओं के शरीर में लावण्य
झरनों की कल-कल	मन की भावनाओं
काकली के स्वर	हृदय की मधुर वाणी

इस प्रकार के प्रतीकों का अर्थ बहुत कुछ प्रसंग पर निर्भर करता है, अतः कामायनी में जहाँ कहीं इस पद्धति का अनुसरण 'प्रसाद' ने किया हो, वहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

'प्रसादजी' के मस्तिष्क की एक विशेषता है नारी को कभी-कभी पुल्लिंग में संबोधन करना। उर्दू में यह अत्यन्त सामान्य प्रवृत्ति है जैसे—

उनके आने से जो
आ जाती है मुँह पर रौनक
वे समझते हैं कि
बीमार का हाल अच्छा है।

पर हिन्दी के कवियों में यह लत 'प्रसाद' को ही थी। 'आँसू' में भी इसका आभास मिलता है। 'कामायनी' में भी श्रद्धा को मनु पुल्लिंग में सम्बोधन करते हैं। इसका इसके अतिरिक्त और क्या उत्तर हो सकता है कि कभी-कभी इस प्रकार बोलना उन्हें संभवतः प्यारा लगता हो। लिंग और वचन के साथ भी वे पूरी स्वतन्त्रता लेते थे। 'कामायनी' में आधे दर्जन से ऊपर ऐसे स्थल हैं जहाँ लिंग, वचन की गड़बड़ी मिलेगी। पता नहीं इस विषय में वे कवि-स्वातन्त्र्य का प्रयोग करते थे या 'पंत' जी के समान उनकी दृष्टि में भी शब्दों की 'श्री सुकुमारता' आदि बिखर जाती थीं।

'कामायनी' शताब्दियों में कभी-कभी उत्पन्न होने वाले एक प्रतिभाशाली कवि की प्रौढ़तम रचना है और चिंता, आशा, प्रेम, ईर्ष्या, क्षमा, आनन्द आदि सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक भावनाओं को समेटने के कारण गन्धवह की भाँति इसका रस नित्य नवीन रहेगा।

—मानव

चिंता

कथा—सृष्टि के प्रारभ मे उत्तरी भारत में आकार में दीर्घ, शरीर से स्वस्थ, देखने में रूपवान एक जाति निवास करती थी। इस जाति के लोग अपने को देवता कहते थे। ये इतने शक्तिशाली थे कि जिधर निकल जाते उधर इनके नाम का जयघोष आकाश को निनादित करता। इन्होंने यहाँ के घने जगलों, कल-कल निनादिनी सरिताओं और उर्वरा भूमि पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित किया। यज्ञ इनकी सस्कृति के विशेष प्रतीक थे जिनमें ये पशु-बलि करते।

ये बड़े वैभववान और विलासी थे। रत्नों के इनके महल थे और जब देव-कामिनियाँ घूमने निकलतीं तो उनके अचलों से सुगंध नि.सृत होती। सुमन-सुवासित निभृत कुञ्जों मे प्रेमिकाओं के अनत रूप के पान के साथ ये मदिरापान करते और फूलों के खेल खेलते।

जब इस विलास की एक प्रकार से अति हो गयी तब प्रकृति प्रकुपित हो उठी और एक खड-प्रलय मे इनका सारा वैभव नष्ट हो गया। बिजलियाँ गिरने लगीं, आँधियाँ चलने लगीं, दिशाओं में आग लग गई, घना अधकार छा गया, पृथ्वी फटने लगी और घोर वर्षा होने से चारों ओर जल ही जल दिखाई देने लगा।

इस जल-प्लावन मे मनु नाम के एक देवता को किसी प्रकार एक नौका का सहारा मिला। एक सामुद्रिक मत्स्य ने उसमे एक चपेटा मारा जिसके आघात से मनु हिमालय की एक चोटी पर आ लगे और इस प्रकार देवताओं का बीजनाश होने से बचा।

इस विनाश को देखकर मनु गहरी चिन्ता मे निमग्न हो गये। वे अपनी जाति के अतीत वैभव, अतीत विलास पर जितना सोचते उतनी गहरी पीड़ा

ार करती जाती। प्रलय का एक-एक दृश्य स्पष्ट होकर उनका चलचित्र सा घूमने लगा। पर वे केवल एक ठंडी नि:श्वास ।

, के प्रश्न पर मनु विचार करने लगे और इस निर्णय पर पहुँचे एक है, मिथ्या है, नाशवान है, मृत्यु व्यापक है, सत्य है,

बड़ सौभाग्य से जल की वह बाढ़ कम हुई और एक प्रभात में भगवान भास्कर के निर्मल दर्शन उन्हें फिर हुए।

सूचना—टीका में पृष्ठ-संख्या कामायनी के नवीनतम संस्करण के अनुसार दी गई है।

पृष्ठ ३

हिमगिरि के—उत्तुंग—ऊँची। शिखर—चोटी। एक पुरुष—मनु। भीगे नयनों—आँखों में आँसू भर कर।

अर्थ—हिमालय की ऊँची चोटी पर किसी शिला की शीतल छाया में बैठा हुआ एक पुरुष उस जलराशि को नयनों में आँसू भर कर देख रहा था जो प्रलय के कारण उसकी आँखों के सामने उमड़ रही थी।

विशेष—मनु का नाम न लेकर कवि ने उन्हें 'एक पुरुष' मात्र से व्यंजित किया है। इससे कवि का लक्ष्य यहाँ अपने नायक के सम्बन्ध में उत्सुकता उत्पन्न करना है। यदि वह प्रारम्भ में ही रहस्य खोल देता तो कोई कला न रहती। इन पंक्तियों को पढ़ते ही अनेक प्रकार की कल्पनाएँ जग उठती हैं। यह व्यक्ति कौन है? हिमवान की चोटी पर आश्रय लेने को वह क्यों विवश हुआ? पुरुष होकर रो क्यों रहा है? प्रलय सहसा कैसे उपस्थित हुई? कहानी को प्रारंभ करने का यह अत्यन्त उपयुक्त ढंग है जिससे चारों ओर प्रकृति की भयंकरता से आक्रान्त एक चिंतानिमग्न व्यक्ति का दृश्य आँखों के सामने आ जाता है।

नीचे जल था—एक तत्व—जल तत्व।

अर्थ—नीचे की ओर देखता है तो पानी लहरा रहा है और ऊपर दृष्टि डालता है तो बर्फ ही बर्फ दिखाई देता है। उसे अपने चारों ओर आज प्रस्तुत

रूप से जल-तत्व ही दृष्टिगोचर होता है। नीचे का जल तो द्रव (पिघले हुए) रूप में है ही, ऊपर का हिम भी वास्तव में जल ही है जो जम कर बर्फ हो गया है। एक ही जल के ये दो रूप ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे एक ही ईश्वर जड़ प्रकृति और चेतन आत्मा के रूप में प्रतिभासित हो रहा हो।

✓ वि०—अद्वैतवादियों के अनुसार ब्रह्म के अतिरिक्त कहीं भी और कुछ नहीं है। जड़ और चेतन का विभेद दृष्टिभ्रम है—'नाम' 'रूप' का विभेद है। जैसे कच्ची मिट्टी से बने घड़े और प्याले अपने आकार के कारण दो नाम पा गये हैं, जैसे लहर और बुलबुला अपनी आकृति के कारण भिन्न-भिन्न संज्ञाओं से सम्बोधित किये जाते हैं, पर विवेक की दृष्टि से देखो तो मूलतः मिट्टी और जल के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसी प्रकार आत्मा में रूप के चेतनता और शरीर तथा प्रकृति (Nature) के रूप में स्थूलता एक ही परमात्मा के दो स्वरूप हैं। ज्ञानदृष्टि से देखने पर उस महाचेतन के अतिरिक्त कुछ नहीं है। प्रसाद ने उस परमतत्व की व्यापकता को सिद्ध करने के लिए चेतन जल और जड़ हिम का अत्यन्त उपयुक्त उदाहरण प्रसगवश उपस्थित किया है। अध्यात्मपक्ष का यह अर्थ मुख्य विषय से सम्बन्धित नहीं है, केवल व्यंजित होता है।

दूर-दूर तक—स्तब्ध—जड़ीभूत। पवमान—पवन।

अर्थ—जिस प्रकार उस व्यक्ति का हृदय इस समय किसी भी प्रकार की चेतना से रहित—निश्चेष्ट—था, उसी प्रकार दूर-दूर तक फैला हुआ बर्फ जड़ बना बिछा पड़ा था। शिलाएँ ऐसी शांत थीं जैसे स्वयं शान्ति की भावना। उन्हीं शिलाओं के चरणों में पवन निरंतर टक्कर खा रहा था।

वि०—आधुनिक हिन्दी कविता में मूर्त (Concrete) वस्तुओं के उपमान अमूर्त (Abstract) और अमूर्त्त वस्तुओं के मूर्त्त जुटाये जाते हैं। प्रसाद की कविता की तो यह एक विशेषता है। शिला एक स्थूल वस्तु है। उसकी नीरवता की समता किसी मूर्च्छित व्यक्ति अथवा शव से कर सकते थे, पर ऐसा न करके नीरवता की भावना से की, जो दिखाई देने वाली वस्तु नहीं। पंत ने भी 'पल्लव' में वृक्षों की ऊँचाई की तुलना इच्छाओं से की है—'उच्चाकांक्षाओं से तरुवर'।

प्रसाद के काव्य की दूसरी विशेषता यह है कि वे प्रकृति में मानवीय भावों

का आरोप करते हैं। ऊँची और बड़ी शिलाओं के सामने अड़ जाने से पवन को आगे बढ़ने का अवकाश नहीं मिलता। इस वर्णन से इस प्रकार का दृश्य सामने आता है मानो कोई अपनी उन्नति के लिए छटपटाने वाला व्यक्ति किसी बड़े आदमी के पैरों पर सर टकरा रहा हो और वह बड़ा आदमी इतना निष्ठुर हो कि दूसरे व्यक्ति के विकास के लिए कोई अवसर ही न देना चाहे।

तरुण तपस्वी-सा—तरुण—नवयुवक। श्मशानसाधन—तान्त्रिक लोग किसी जलाशय (नदी, तालाब, समुद्र) के किनारे श्मशान-भूमि में अर्द्ध-रात्रि के समय भूत, प्रेत और चामुंडा आदि देवियों की सिद्धि के लिए मंत्र-जाप करते हैं। किसी शव को आधा जल में और आधा बाहर निकाल कर उस पर आसन जमाते हैं। भोजन के लिये किसी मुर्दे की खोपड़ी में चावल राँध कर खाते हैं। इच्छित शक्तियाँ प्रसन्न होकर दर्शन देतीं और सिद्ध हो जाती हैं। इस क्रिया को श्मशान-साधन कहते हैं। सकरुण—करुणाभरी ध्वनि में। अवसान—समाप्ति, अन्त।

अर्थ—प्रलय के कारण देव-जाति का विनाश हो गया था, केवल मनु बच रहे थे। वह भूमि जहाँ वे इस समय चिन्तामग्न बैठे हैं देवताओं की श्मशान-भूमि बन चुकी थी। अतः दूर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता था मानो वह नवयुवक दैवी-वैभव को फिर लौटाने के लिए तपस्वी के समान सुर-श्मशान में बैठा किसी शक्ति की साधना में लीन है। नीचे प्रलय के कारण घोर वर्षा के जल ने जो समुद्र का रूप धारण कर लिया था उसकी तरंगें पर्वत से आकर टकरातीं और एक करुणाभरी गूँज उठाकर वहीं समाप्त हो जाती थीं।

वि०—मनु श्मशान-साधन नहीं कर रहे हैं, अतः तान्त्रिकों की उपर्युक्त प्रक्रियाओं से उनके चिन्तन का कोई सम्बन्ध नहीं। यह सत्य है कि आगे चल कर उन्होंने मानव-जाति की सृष्टि की और मानव-धर्म की प्रतिष्ठा, पर यह किसी शक्ति की सिद्धि के बल पर नहीं, वरन अपनी अजर प्रतिभा के सहारे।

उसी तपस्वी से—देवदारु—एक प्रकार का ऊँचा सीधा वृक्ष जो विशेष रूप से पर्वतों पर उगता है। धवल—सफेद।

अर्थ—उस तपस्वी मनु के आकार के समान ही लंबे देवदारु के कुछ वृक्ष

वि०—देवताओं का जीवन सुख और भोग का जीवन था। चिन्ता जैसे किसी मनोविकार से उनका परिचय न था। मनु प्रथम मानव हैं जिन्होंने अपने जीवन में पहली बार इस मनोभाव का अनुभव किया। पहले उसके अशुभ पक्ष को वे स्पष्ट कर रहे हैं।

उपवन में घूमते समय यदि वहाँ सर्पिणी के अस्तित्व की आशंका रहे तो उद्यान की शोभा का उपभोग मनुष्य निश्चिंत मन से नहीं कर पाता। इसी प्रकार विश्व एक अत्यन्त रम्य स्थल है जहाँ चिन्ता के अस्तित्व के कारण उसकी रम्यता बार-बार फीकी पड़ती रहती है।

ज्वालामुखी पर्वत के मुख पर कंपन होते ही जैसे इस बात का निश्चय हो जाता है कि अब यह पर्वत फटकर तरल अग्नि की नदी बहाता हुआ आस-पास की सब वस्तुओं को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा, उसी प्रकार चिन्ता का मस्तिष्क में प्रवेश होते ही समझ लेना चाहिये कि अब कोई भारी विपत्ति आने वाली है।

हे अभाव की—ललाट—मस्तक अथवा भाग्य। खल लेखा—क्रूर या अशुभ रेखा। हरीभरी—हरियालापन या प्रसन्नता लाने वाली। दौड़-धूप—दौड़-धूप कराने वाली। जलमाया—जल के समान माया। चलरेखा—चंचल रेखा, यहाँ तरंग से तात्पर्य है।

अर्थ—तुम किसी प्रकार के अभाव से उत्पन्न होकर मनुष्य को अस्थिर कर देती हो। तुम्हारा उत्पन्न होना मनुष्य के दुर्भाग्य का सूचक है। पर तुम्हारा एक शुभ पक्ष भी है। जब मनुष्य तुम से आक्रांत होता है तब वह आलस्य का परित्याग कर तुम्हें मिटाने के लिये दौड़-धूप करता है और उस परिश्रम के फल-स्वरूप उसका जीवन हराभरा हो जाता है। इस मायात्मक जगत् को यदि जल मानें तो तुम उसमें तरंग के समान हो। अर्थात् पवन के आघात से जैसे जल में लहरें उठने लगती हैं, उसी प्रकार तुम्हारी प्रेरणा से मनुष्य क्रियाशील बनता है।

वि०—चिंता को 'अभाव की बालिका' कह कर प्रसाद ने उसकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। जब भोजन, वस्त्र, स्वास्थ्य, प्रेम आदि में से किसी का अभाव होता है तभी तो चिंता उत्पन्न होती है।

इस ग्रह कक्षा—ग्रह— वे तारे जो सूर्य के चारों ओर घूमते हैं, जैसे पृथ्वी, मंगल, शुक्र आदि। कक्षा—वह मार्ग जिससे ग्रह भ्रमण करते हैं। तरल—द्रव-रूप में, पिघला हुआ। गरल—विष। जरा—वृद्धावस्था।

अर्थ—तुम समस्त अंतरिक्ष में जिसमें होकर पृथ्वी मंगल आदि लोक घूमते हैं हलचल मचाने वाली हो अर्थात् तुम विश्व भर में खलबली उत्पन्न कर देती हो। तुम पिघले विष की हलकी-सी लहर हो, अर्थात् विष की छोटी लहर जैसे शरीर में व्याप्त होकर मनुष्य को आकुलमात्र करती है मार नहीं डालती, उसी प्रकार चिंता मनुष्य को व्यथा पहुँचाती है। तुम देवताओं के जीवन में भी अपने प्रभाव से वृद्धावस्था के लक्षण ला सकती हो। और जब तुम आती हो तब इतनी गहरी बन जाती हो कि किसी की रोक-टोक नहीं मानती।

वि०—अधिक विषपान से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, पर उसके थोड़े सेवन से केवल व्यथा ही पहुँचती है। सर्प के दंशन से जो विष शरीर में प्रवेश करता है उससे बहुत से प्राणी बच भी जाते हैं। भारतवर्ष में ऐसे नशेबाज भी हैं जो अफीम के समान ही विष का नशा करते हैं और उसे स्वास्थ्यवर्द्धक बतलाते हैं।

देवताओं के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वे चिरयुवा रहते हैं। पर चिंता के कारण मन यौवन में भी बुड्ढा हो सकता है। यहाँ चिंता की उसी शक्ति का प्रदर्शन है कि मानवों के जीवन में तो क्या यदि अमरों के जीवन में भी प्रवेश कर जाय तो जरावस्था ला दे।

अरी व्याधि की—व्याधि—शारीरिक रोग। सूत्रधारिणी—उत्पन्न करने वाली। आधि—मानसिक व्यथा। मधुमय—मधुर। अभिशाप—शाप। धूमकेतु—पुच्छल तारा। सुन्दर पाप—वह अवांछित कर्म जिसका फल सुन्दर हो।

अर्थ—तुम शारीरिक रोगों को जन्म देती हो। तुम मन को व्यथा पहुँचाती हो। तुम मधुर शाप हो। गगन में पुच्छल तारे का उदित होना जैसे एक अशुभ लक्षण है उसी प्रकार मन में तुम्हारा उदित होना। इस पवित्र सृष्टि में बाह्य दृष्टि से तुम एक अकल्याणकारी भाव हो, यद्यपि तुम्हारे अस्तित्व का परिणाम अन्त में भला ही होता है।

वि०—चिंता से कभी-कभी शारीरिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं जैसे प्रेम की घोर निराशा में प्रायः हिस्ट्रिया और क्षयरोग उत्पन्न हो जाते हैं।

चिंता से मन व्याकुल रहता है इससे वह शाप तो है, पर यदि जीवन में चिंता न हो तो मनुष्य सुख के विधान के लिए प्रयत्न न करे और जीवन की मधुरता से वंचित रहे। इसी बात को दृष्टि में रखकर उसे 'मधुमय अभिशाप' कहा गया है।

ज्योतिषियों का ऐसा निर्णय है कि पुच्छल तारे के उदित होने पर अकाल, महामारी अथवा महायुद्ध होता है। चिंता भी किसी बड़े कष्ट की अग्रगामिनी बनती है।

पाप शब्द का तात्पर्य है आत्मा के प्रतिकूल भाव। आत्मा आनंदमय है। चिंता उस आनंद में व्याघात डालती है, अत. अवाञ्छनीय होने पर भी अनिवार्य है। इसी से उसे 'सुन्दर पाप' कहा गया है।

पाप भी कभी-कभी सुन्दर होता है। जैसे कोई कसाई यदि घने बन में किसी गौ का पीछा कर रहा हो और पूछने पर कोई महात्मा उसे अन्य दिशा मे जाती हुई बता दे तो उस तपस्वी ने झूठ बोलने का पाप तो किया, परन्तु गौ के प्राण बचाने के कारण वह पुण्य का भागी भी हुआ।

मनन करावेगी तू—मनन कराना—चिंतित रखना। इस निश्चित जाति—परमात्मा का अंश। गहरी नींव डालना—अपनी जड़ मजबूत करना।

अर्थ—जीव उस परमात्मा का अंश है जो दुःख शोक से प्रभावित नहीं होता। अत. मन को तू चाहे कितना ही चिंतित रख, प्राणियों के हृदय में तू कितनी ही गहरी प्रवेश कर जा, पर जीवात्मा को मार डालने में तू असमर्थ है। कारण—वह अमर है।

वि०—संसार में आकर जीव जब अपने स्वरूप को भूल जाता है और माया में अपने को बद्ध समझ लेता है तभी कष्ट उठाता है, नहीं तो वह निर्मल आनन्दमय है। तुलसी ने उत्तरकाण्ड में कहा है—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी,
सत् चेतन घन आनन्द रासी।

सो माया बस भयेउ गुसाँई,
बँधेउ कीट मरकट की नाई ॥

पृष्ठ ६

आह। घिरेगी हृदय—लहलहे—हरे-भरे। करका घन—ओलों भरे बादल, (जलन मयन गगन गरजे बरसे करका धारा—द्विजेन्द्रलाल राय)। अंतरतम—हृदय की गहराई। निगूढ़—छिपे।

अर्थ—जैसे हरे-भरे खेतों पर ओलों भरे बादल छा जाते हैं, उसी प्रकार तुम आशा भरे हृदयों पर छा जाया करोगी। तुम सब के हृदय के बहुत भीतर उसी प्रकार से छिपी रहोगी, जैसे पृथ्वी के भीतर मनुष्यों का धन छिपा रहता है।

वि०—इन पंक्तियों में चिंता को आशंकाओं की जननी माना है। ओले भरे बादलों के घिरने का ही वर्णन यहाँ है बरसने का नहीं, यह ध्यान देने की बात है। घिरने का यह भाव है कि यदि वे बरस गये तो खेती नष्ट हो जायगी पर वे टल भी सकते हैं। इसी प्रकार चिंता बनी रही तो आशाएँ कुचल जाएँगी।

पृथ्वी के भीतर गड़े धन का पता जैसे केवल उस धन के स्वामी को ही होता है, उसी प्रकार जिसके हृदय में चिंता होती है उसका ठीक ज्ञान उसी व्यक्ति को होता है। बाहरी आँखें उसे नहीं देख पातीं।

यहाँ कवि ने 'करका घन' के द्वारा बाह्य जगत से और 'निगूढ़ धन' के द्वारा अंतर्जगत से उदाहरण लिया है। चिंता के ये दोनों पक्ष स्वाभाविक हैं। यह बाह्य परिस्थितियों से उत्पन्न होती है और अंतर्जगत में बस जाती है।

बुद्धि मनीषा मति—बुद्धि (Perception)—भले बुरे का निश्चय कराने वाली शक्ति। मनीषा (Knowledge)—ज्ञान। मति (Opinion)—सम्मति, राय। आशा (Hope)—किसी अप्राप्त वस्तु के पाने की संभावना। चिंता (Anxiety)—सोच।

अर्थ—हे चिंता तुम्हारा ही दूसरा नाम बुद्धि है, तुम्हें ही मनीषा (ज्ञान) कहते हैं, तुम्हारा ही एक रूप मति है और तुम्हीं आशा का आकार धारण कर लेती हो। पर जिस रूप में तुम मेरे हृदय में उदित हुई हो वह बहुत ही अशुभ है; अतः तुम यहाँ से चली जाओ, एकदम चली जाओ। यहाँ तुम्हारा कुछ काम नहीं।

वि०—यहाँ कवि ने चिंता शब्द से चिंतन का अर्थ लिया है। चिंतन से सत्, असत् का निर्णय होता है, ज्ञान उत्पन्न होता है। चिंतन से ही मनुष्य विवादग्रस्त विषय के सम्बन्ध में अपनी कोई धारणा बना लेता है और जब शोक के मध्य स्थिर-बुद्धि से सोचता है, तब आशा को भी पोषित कर लेता है।

विस्मृति आ—विस्मृति—भूलना। अवसाद—शिथिलता। नीरवता—शांति। चेतनता—भावों का उदय। शून्य—सूना हृदय।

अर्थ—विस्मृत तू आ—जिससे मैं अतीत के उन समस्त सुखों को भूल जाऊँ जिन्हें स्मरण करके पीड़ा होती है। आज मेरा मन शिथिल हो जाय—जिससे उसमें कुछ भी सोचने का उत्साह न रहे। मेरे इस धड़कते हृदय को हे शान्ति की भावना, तू एकदम चुप कर दे। ऐ मेरी सोच-विचार की शक्ति आज मेरे सूने हृदय को जड़ता से भर कर (जड़ बना कर) तू कहीं चली जा।

वि०—चेतना-शक्ति के कारण ही मनुष्य सुख-दुख का अनुभव करता है। बहुत दुःख पाने पर वह सोचता है कि इससे तो वह जड़ होता तो भला था। पत्थर को तो दुःख का भान नहीं होता न? इसी प्रकार की घोर निराशामयी शोकपूर्ण स्थिति में आज मनु हैं। स्मृति खटकती है, वे विह्वल हो जाते हैं। चाहते हैं आज उनकी चेतना-शक्ति ही उनसे छिन जाती तो इस असह्य पीड़ा से मुक्त होने का मार्ग मिल जाता।

हृदय से चेतनता के चले जाने पर जड़ता स्वय आ जायगी, क्योंकि जड़ता का अर्थ ही है चेतनता का अभाव, वस्तु के निकलने पर स्थान खाली होता है, यहाँ भरा जाता है। कैसी विलक्षण बात है!

चिन्ता करता हूँ—अतीत—भूतकाल, बीते दिन। अनत—सीमाहीन हृदय।

अर्थ—बीते दिनों में देवताओं ने जो सुख भोगे थे उनको मैं जितनी बार स्मरण करता हूँ मेरे सीमाहीन हृदय में दुःख की उतनी ही रेखाएँ खिचती जाती हैं। जितना सोचता हूँ उतना दुःख बढ़ता है।

वि०—हम जो सुख-दुःख के दृश्य देखते हैं उनके मृदु-कटु भाव अपने सस्कार-चिह्न हमारे अतःकरण में छोड़ जाते हैं। अनुकूल स्थिति पाकर वे ही

स्मृति रूप में उभरते हैं। बार-बार दुहराये जाने पर वे और गहरे होते और उसी परिमाण में सुखद-दुःखद हो जाते हैं।

पृष्ठ ७

आह सर्ग के—सर्ग—सृष्टि। अग्रदूत—प्रवर्तक। मीन—मछली।

अर्थ—कितने शोक की बात है कि जिन देवताओं का सृजन इस पृथ्वी पर सबसे पूर्व हुआ था, वे आज अपने अस्तित्व को बनाये रखने में असफल होकर नष्ट हो गये। पर इसमें अपराध किसी दूसरे का नहीं। जैसे मछलियाँ अपनी जाति की रक्षा स्वयं ही करतीं और मन में आने पर वे ही सजातीय मछलियों को खा जाती हैं, उसी प्रकार अपनी वीरता और बुद्धि-बल से देवताओं ने अपना विकास किया और विलास में रात-दिन लीन रह कर स्वयं ही अपना नाश कर लिया।

वि०—प्रसिद्ध है कि सर्पिणी की भाँति मछलियाँ भी अपने बच्चों को निगल जाती हैं।

अरी आँधियो—दिवा-रात्रि—दिन रात। नर्त्तन—नाचना। वासना—भोग-विलास। उपासना—लीनता। तेरा—आँधी और बिजली भरी दिन रातों का। प्रत्यावर्त्तन—लौटना।

अर्थ—रात-दिन आँधियाँ चलती रहीं, बिजलियाँ गिरती रहीं, पर देवता लोग भोग-विलास में ही लीन रहे। यह देखकर फिर आँधियाँ लौटीं और फिर बिजलियाँ गिरीं।

वि०—प्रसाद के कुछ वाक्यों का गठन बड़ा विचित्र होता है। जैसे 'प्रकाश के दिन', अथवा 'अंधकार की रात्रि' का अर्थ होगा वह दिन जिसमें प्रकाश भरा हो अथवा वह रात्रि जिसमें अंधकार छाया रहे, इसी प्रकार आँधी बिजली के दिन-रात' का तात्पर्य हुआ वे दिन रात जिनमें आँधियों और बिजलियों का ही दौर दौरा हो। नर्त्तन से तात्पर्य तीव्र गति का है।

प्रकृति देवताओं को वासना से विरत करना चाहती थी। पहले तो उसने आँधी चला कर, बिजली गिरा कर संकेत ही किया, पर जब वे घोर भोग के जीवन से विमुख न हुए तब उनका विनाश ही कर दिया।

मणि दीपों के—मणि दीप—मणियों के दीपक, रत्न दीप। दंभ—अहंकार। महामेध—महायज्ञ। हविष्य—यज्ञ की अग्नि में पड़ने वाली सामग्री, आहुति।

अर्थ—देवताओं के अहंकार के महान् यज्ञ में हमारा सब कुछ स्वाहा हो गया। देवताओं को इस बात का बड़ा गर्व था कि उनका विनाश कोई नहीं कर सकता, अतः प्रकृति की चेतावनी पर उन्होंने ध्यान न दिया और अंत में उसके प्रकोप से वे विनष्ट हो गये। अब हमारा भविष्य उसी प्रकार निराशापूर्ण और अंधकार से भरा हुआ है जैसे घोर अँधेरे में मणि का दीपक कहीं रख दिया जाय तो वह बेचारा केवल अपने आस-पास ही थोड़ा प्रकाश फैला सकता है, अपने चारों ओर फैले अपार तिमिर को नहीं चीर सकता। देवताओं में से केवल मैं बच रहा हूँ—किसी मणिदीप के समान—एकाकी क्या कर सकूँगा?

अरे अमरता के—अमरता के चमकीले पुतले—वे देवता लोग जो अपने जीवन में चमके, जिन्होंने यश प्राप्त किया। दीन विषाद—दीनता और शोक।

अर्थ—हे यशस्वी देवता लोगो! आज तुम्हारी जय की ध्वनियाँ दीनता और विषाद की कंपित प्रतिध्वनियों में बदल गई हैं अर्थात् जहाँ कभी जयघोष होता था वहाँ अब दीनता और शोक बरस रहे हैं।

टिप्पणी—'तेरे' शब्द पुतलों के लिए आया है। यहाँ वचन-दोष है। 'पुतलों' बहुवचन में है 'तेरे' एकवचन में। तेरे के स्थान पर किसी प्रकार तुम्हारे आना चाहिए। प्रसाद जी से ऐसी अशुद्धियाँ प्रायः हो जाती थीं। ऊपर 'दिवा-रात्रि तेरा' की भी यही दशा है।

प्रकृति रही दुर्जय—दुर्जय—जिसे जीता न जा सके। पराजित—हारे हुए।

अर्थ—प्रकृति जीत गई। हम हार गये। अपनी मस्ती में हम सब कुछ भूल गये। हम इतने अजान थे कि भोग-विलास की नदी में ही तैरते रहे। इसमें डूब भी जायेंगे, यह कभी न सोचा था।

पृष्ठ ८

वे सब डूबे—विभव—ऐश्वर्य। पारावार—समुद्र। उमड़—मचल। जलधि—समुद्र। नाद—ध्वनि।

अर्थ—वे सब देवता जो भोग-विलास में लीन रहते थे, नष्ट हो गये। उनका सारा ऐश्वर्य नष्ट हो गया। वह ऐश्वर्य पानी हो गया, इसी से उनके स्थान पर समुद्र रह गया। यह मचलता हुआ समुद्र नहीं गरज रहा, अपितु देवताओं के सुख को अपने मे डुबा कर भारी दुःख घोर ध्वनि कर रहा है।

वि०—एक वस्तु के स्थान पर उसे छिपा या नष्ट कर जब दूसरी वस्तु दिखाई देती है तब इस प्रकार सोचना अत्यन्त स्वाभाविक है कि पहली वस्तु ही दूसरी वस्तु के रूप मे परिवर्तित हो गई है। 'वैभव समुद्र के रूप मे परिवर्तित हो गया' या 'जय ध्वनि विषाद ध्वनि बन गई' इसी प्रकार के उदाहरण है।

वह उन्मत्त विलास —उन्मत्त— सयमहीन। छलना —भ्रम, भ्रांति। सृष्टि—ससार। विभावरी—रात। कलना —भरी हुई, रचना।

अर्थ—उनका वह सयमहीन भोग-विलास कहाँ चला गया? वह कोई स्वप्न था या केवल भ्रम था? देवताओं के ससार की सुख-रजनी ताराओं (विविधता) से भरी हुई थी अर्थात जैसे रात मे बिखरे तारागणों की कोई गिनती नहीं, वैसे ही देवताओं के सुखों की कोई सीमा न थी। विविध प्रकार के अगणित सुखों का भोग वे करते थे।

चलते थे सुरभित अञ्चल—सुरभित—सुगंधित। मधुमय—सुख के परिचायक। निश्वास—साँस। कोलाहल—आमोद-प्रमोद। मुखरित—ध्वनित, व्यक्त।

अर्थ—नारियों के सुगंधित अंचल से जीवन की सुखमय साँसे बहती थी अर्थात् देवियों के वस्त्रों से सुगध का फूटना इस बात का परिचायक था कि वे सम्पन्न घरानों की हैं क्योंकि दरिद्र घरों मे दुःख का जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियाँ अपने अञ्चल सुवासित रख ही नहीं सकतीं। इसी प्रकार आमोद-प्रमोद की जो चारों ओर ध्वनि उठती रहती थी, उससे यह पता चलता था कि देव जाति सुख और निर्भरता से जीवन व्यतीत कर रही है।

सुख केवल सुख—केन्द्रीभूत—एकत्र, इकट्ठा। छायापथ—आकाश गंगा। तुषार—बर्फ के छोटे कण, यहाँ तुषारकण जैसे तारे। सघन—घना।

अर्थ—देवताओं ने सभी स्थानों से जुटा कर विविध सुखों को अपने भीतर इस प्रकार एकत्र किया था, जिस प्रकार नवीन हिम के टुकड़ों के समान

चमकने वाले अनन्त तारे आकाशगंगा में घने रूप से सटकर समाये रहते हैं।

वि०—रात को आकाश मे कुछ चौड़ी और दूर तक लम्बी एक ऐसी टुकड़ी दिखाई देती है मानों वहाँ दूध बिखर गया हो। वैज्ञानिकों का कहना है कि यहाँ आकाश के अन्य भागों की भाँति तारे छितरे हुए नहीं हैं वरन् अत्यन्त सटकर बिछे हुए है। इस दूधिया भाग को आकाश-गंगा या छायापथ कहते हैं।

पृष्ठ ६

सब कुछ थे स्वायत्त—स्वायत्त—अपने अधीन। उद्वेलित—उठना। समृद्धि—ऐश्वर्य।

अर्थ—ससार भर का बल, वैभव और अपार आनन्द उनके अधीन था। जैसे समुद्र मे अनन्त लहरें उठती रहती हैं, उसी प्रकार उन्होंने जो ऐश्वर्य एकत्र किया था उससे असख्य रूपो मे सुख उत्पन्न होता रहता था।

कीर्ति दीप्ति शोभा—कीर्ति—यश। दीप्ति—ओज, तेज। शोभा—सुन्दरता। सप्तसिन्धु—पजाब की पाँचो नदियाँ और गंगा-यमुना। द्रुमदल—वृक्ष समूह या वन। आनन्द विभोर—आनन्दमग्न।

अर्थ—देवताओ के यश, तेज और सौंदर्य की छटा सूर्य की किरणों के समान सभी दिशाओं, सप्त सरिताओ के चचल जलकणों और वृक्ष-समूहों मे आनन्दपूर्वक नृत्य करती थी। तात्पर्य यह कि गंगा और सिन्धु नदी के बीच क्या जल और क्या स्थल सभी कहीं देवताओं का रूप, शौर्य और प्रताप बिखरा पड़ा था।

वि०—देवजाति हिमालय के नीचे उत्तरी भारत के कुछ अशों में ही शासन करती थी। कामायनी से भी यही सिद्ध होता है क्योंकि उसमें आगे चल कर इडा को सारस्वत प्रदेश की महारानी लिखा है।

शक्ति रही हाँ—पदतल मे—चरणों मे। विनम्र—झुकी हुई। विश्रांत—थक कर, हार कर। आक्रान्त—पद-दलित होकर।

अर्थ—देवताओं की भुजाओं मे वास्तविक शक्ति थी। समस्त प्रकृति उनके

चरणों में हार कर झुक गई । पृथ्वी पद-दलित होकर नित्य ही काँपती रहती थी ।

वि०—प्रकृति के झुकने का तात्पर्य है प्रकृति की वस्तुओं पर पूर्ण अधिकार होने से । घने वनों में वे निर्भीक भाव से विचरण करते थे, सरिताओं में उनकी नौकाएँ स्वच्छन्दता से घूमती थीं ।

धरणी के कंपित होने का भाव यह है कि वे जहाँ भी आक्रमण कर देते थे, वहाँ के निवासी भयभीत होकर पराजय स्वीकार कर लेते थे ।

स्वयं देव थे—विशृंखल—अव्यवस्थित, गड़बड़ ।

अर्थ—जब हम सब यह समझने लगे कि हम तो 'देवता' हैं अर्थात् हमारे कर्मों का कोई नियामक नहीं, जो चाहे वह करने को हम स्वतन्त्र हैं, तब सृष्टि में हमारे संयमहीन कार्यों से अव्यवस्था फैलती ही । यही कारण है हम पर कड़ी आपत्तियाँ सहसा बरस पड़ीं ।

वि०—प्राणी या तो विवेक से शुद्ध आचरण करता है या फिर भय से । देवताओं में न विवेक था और न उन्हें किसी का भय । पर भगवान तो दुष्कर्मों का दण्ड देकर ही मानते हैं, नहीं तो उनकी सृष्टि का विकास बन्द हो जाय । इसी से देवताओं की वासना वृत्ति जब अपनी सीमा पार कर गई तब एक दिन प्रलयरूपी अपने तनिक से भ्रूभङ्ग से उस सर्वशक्तिमान ने इस विवेकहीन जाति को सदैव के लिए सुला दिया ।

गया सभी कुछ—ज्योत्स्ना—चाँदनी । स्मित—मन्द हास्य । निश्चिन्त—चिन्ता रहित । विहार—भोग-विलास ।

अर्थ—गया, सब कुछ चला गया । सुन्दर से सुन्दर अप्सराओं का शृंगार चला गया । उषा-सा उनका यौवन चला गया । चाँदनी-सी उनकी मुस्कान चली गई । भोगी भौंरों के समान उनका चिन्तारहित भोगविलास चला गया ।

वि०—उषा में कई गुण होते हैं । उसमें नवीनता होती है, स्फूर्ति होती है, उन्मत्तता होती है । ये ही गुण यौवन में होते हैं । इस दृष्टि से यौवन को उषा कहना अत्यन्त सार्थक है । काव्य में कुछ वस्तुओं का रंग माना जाता है जैसे प्रेम का लाल, पाप का काला, हास्य का श्वेत । मुस्कान को इसी दृष्टि से चाँदनी कहा है ।

'मधुप' का शाब्दिक अर्थ है मधु पीने वाला। मधुप पुष्प के निकट आ रस-पान करता है, फिर उड़ जाता है, थोड़ी देर में फिर आकर रसपान करने लगता है। इसी से मधुप शब्द का प्रयोग इस स्थल पर अत्यन्त मार्मिक है। महान् कवियों की ऐसी ही मार्मिक दृष्टि होती है। पुष्प-वाटिका में सीता के सौंदर्य-मकरन्द का पान करने वाले राम के नेत्रों को 'मधुप' ही कहा है—

करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज, मकरन्द छवि, करत मधुप इव पान॥

पृष्ठ १०

भरी वासना सरिता—भरी—उमड़ती हुई। मदमत्त—मस्त। प्रवाह—प्रचण्ड वेग। सगम—मिलन, अन्त, विलीनता।

अर्थ—उनकी उमड़ती हुई वासना रूपी नदी ऐसी मस्ती और प्रचण्ड वेग से बही कि अन्त मे वह विनाश के समुद्र मे विलीन हो गई। इस दृश्य को देख कर मेरा हृदय कराह उठा था।

चिर किशोर वय—किशोर—ग्यारह से पन्द्रह वर्ष की अवस्था वाला बालक, यहाँ युवक। सुरभित—सुगन्धित। दिगन्त—दिशा। तिरोहित होना—छिपना, दूर होना। मधु—मकरन्द। वसन्त—वसन्त ऋतु यहाँ अपार सुख।

अर्थ—जैसे नवीनता लाने वाला, विलास वृत्ति को उकसाने वाला, दिशाओं को सुगन्धित करने वाला, मकरन्द बरसाने वाला वसन्त कुछ दिनों के उपरान्त छिप जाता हे, उसी प्रकार हमारे वे अपार सुख के दिन कहाँ चले गये जब हम सदा युवावस्था का अनुभव करते थे, नित्य विलासमग्न रहते थे, जब दिशाएँ हमारे आमोद से युक्त रहती थी और चारो ओर मधुरता बरसाती थीं?

कुसमित कुजो मे—कुसुमित—फूलो से भरे। कुज—लतागृह, वृक्षों या लताओं से बना मण्डप। पुलकित—रोमो में कपन लाने वाले। मूर्छित—लयभरी।

अर्थ—पुष्पो से युक्त कुञ्जो मे प्रेम के आवेश मे देवता और अप्सराएँ जब एक-दूसरे को हृदय से लगाते, तब रोमाञ्चित हो जाते थे। आज वे दृश्य

कहाँ ? अब लयभरी तानें मूक हो गयीं और बीन की ध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ती।

वि०—संगीत में सातों स्वरों पर दोनों ओर से उँगली फेरने को अर्थात् तीव्रगति से 'स रे ग म' भरने को मूर्च्छना कहते हैं। इससे एक अद्भुत मिठास पैदा होती है।

अब न कपोलों—छाया-सी—छाया-सी शीतल। सुरभित भाप—सुगन्धित साँसें। भुजमूल—बगल। शिथिल—ढीला। वसन—वस्त्र। व्यस्त—लिपटना। माप—आकार।

अर्थ—अप्सराएँ निकट बैठकर जब दीर्घ साँसें भरने लगती थीं, तब उनके मुख से निकले सुगन्धित उच्छ्वास देवताओं के कपोलों को स्पर्श करते ही ऐसे शीतल प्रतीत होते थे जैसे छाया। अधिक आवेश में उनके वस्त्र ढीले होकर जब बिखरने लगते और ऐसी दशा में वे जब एक-दूसरे का आलिंगन करते तो देवियों के वस्त्र देवताओं की बगलों में लिपट कर रह जाते थे। अब यह सब कहाँ ?

वि०—देवताओं, अप्सराएँ और पद्मिनी स्त्रियों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उनके शरीर और साँसों से पुष्प की-सी मधुर गंध निकलती है।

ऊपर 'सुरभित भाप' से तात्पर्य अप्सराओं के मुख की भाप का लिया गया है। यदि यह भाप सुन्दरियों के कपोलों पर देवताओं के मुख की मानी जाय तो अर्थ इस प्रकार होगा : देवियों के कपोल इतने उज्ज्वल होते थे कि यदि प्रेम के आवेश में निकट-स्थित देवताओं के मुख से निकले सुगन्धित उच्छ्वास उन पर पड़ जाते तब उन पर छाया सी पड़ जाती—वे किञ्चित मलिन हो जाते।

'माप' शब्द यहाँ भाप से तुक मिलाने के लिये रक्खा गया है। उसके बिना भी काम चल सकता था। यहाँ माप से वस्त्र की उतनी लम्बाई मात्र का आशय है जो बगल और कन्धों को ढकने के लिए पर्याप्त हो।

पृष्ठ ११

कंकण क्वणित—कंकण—कङ्गन, कलाई में पहनने का आभूषण।

वि०—किसी को आकर्षित करने के लिए जब कोई युवती जान-बूझ कर मुसिकाती, नाक सिकोड़ती, भौंहें मरोड़ती, नेत्रों को चञ्चल करती या अंगड़ाई आदि लेती है, तब इसे रस की भाषा में 'हाव' कहते हैं। अंग-भंगियों के नर्तन से यहाँ ठीक यही तात्पर्य है।

सुरा-सुरभिमय वदन—सुरासुरभिमय—मदिरा की गंध से पूर्ण। वदन—मुख। कल—सुन्दर। चिकलता—फिसलता, तुच्छ प्रतीत होता था। पराग—पुष्प-रज।

अर्थ—मदिरा की गंध उनके मुख से आती थी। रात में देर तक जागने के कारण आलस्य और प्रेम से भरी हुई उनकी आँखें लाल रहती थीं। उनके कपोल की पीली आभा के सामने कल्पवृक्ष का पीला पराग भी अपनी चिकनाहट, उज्ज्वलता और आभा में तुच्छ प्रतीत होता था।

विकल वासना—विकल—अतृप्त। प्रतिनिधि—प्रतीक (Symbol)।

अर्थ—वे देवता नहीं थे, अतृप्त वासना के प्रतीक थे। आज वे सब समाप्त हो गये। अपने अन्तर में वासना की जो आग उन्होंने प्रज्वलित की थी वह उन्हें चाट गई और अन्त में वे इस जल में गल कर सदा को चले गये।

पृष्ठ १२

अरी उपेक्षा भरी—उपेक्षा—तिरस्कार। अतृप्ति—प्रेम की निरंतर प्यास। निर्बाध—निरन्तर, बाधा रहित। द्विधा—चिंता। अपलक—बिना पलक गिराये।

अर्थ—देवताओं ने अपने जीवन में सब की उपेक्षा की। उनका मन भोग-विलास से कभी भरा नहीं। विलास में वे निरंतर लीन रहे। किसी प्रकार की चिंता किए बिना टकटकी लगाकर अप्सराओं के रूप को वे निरखते रहते थे जिससे हृदय के प्रेम की भूख और उन्हें आँखों के आगे बनाये रखने की प्यास तड़पती थी।

बिछुड़े तेरे—स्पर्श—छूना। मादकता—अर्थात विनय। रूप को सहलाना—बार बार के चुम्बन से कोमल रूप को सहलाना।

अर्थ—वे आलिंगन आज बिछुड़ गये। स्पर्श जो शरीर को रोमांचित कर देने के श्रम सपने हो गये। देवता लोग बड़े अधीर होकर अप्सराओं के मधुर

चुम्बनों के लिए विनय करते थे और कभी-कभी तो उन चुम्बनों की सीमा यहाँ तक बढ़ जाती थी कि वे तग हो उठती थीं।

वि०—प्रत्येक बात की एक सीमा होती है। अधिक चुम्बन से परेशान एक बच्चे का वर्णन वर्ड्सवर्थ ने किया है :—

A six years' darling of a pigmy size!
See, where, mid work of his own hand he lies,
Fretted by sallies of his mother's kisses,
With light upon him from his farher's eyes!
—Ode on Intimations of Immortality

रत्न सौध के—रत्न सौध—रत्न महल। वातायन—झरोखा। मधु मदिर समीर—मकरन्द से मस्त पवन। तिमिंगिल—एक प्रकार की सामुद्रिक मछली।

अर्थ—उन रत्न भवनों के झरोखों में जिनमें होकर कभी मकरन्द से मस्त पवन आता था, चचल सामुद्रिक मछलियों की भीड़ टकरा रही होगी।

वि०—ये भवन अब जलमग्न हैं, अतः पवन के स्थान पर वहाँ मछलियों का टकराना स्वाभाविक है।

विषम और विपरीत स्थिति में सुख और सौंदर्य की स्मृति और तीखी हो उठती है जैसे सीकरी के किले के इस वर्णन में—

बालाएँ छितरा बाल जाल
फाँसतीं जहाँ मन मतवाले।
उफ़! उसी किले के कोण-कोण में
अब मकड़ी बुनतीं जाले।

आगे का वर्णन भी इसी पद्धति पर है।

देव कामिनी के—नलिन—कमल।

अर्थ—सुर सुन्दरियाँ जिधर देख लेती थीं, उधर ही नीले कमलों की वर्षा होने लगती थी अर्थात् देवियों के नेत्र नील कमल जैसे थे। आज देवियों की कृपा-दृष्टि के उन स्थानों पर प्रलय मचाने वाली भयकर वर्षा हो रही है।

वि०—सीता जी के नेत्रों की प्रशंसा में ऐसा ही भाव तुलसी ने प्रकट किया है—

जहँ विलोक मृग सावक नैनी।
मनु तहँ बरस कमल-सित सैनी॥

पृष्ठ १३

वे अम्लान कुसुम—अम्लान—खिले। शृंखला—जंजीर।

अर्थ—खिले हुए सुगन्धित पुष्पों और मणियों को लेकर मनोहर मालाएँ देवता लोग रचते थे और विलासिनी सुर-सुन्दरियों को उनसे जंजीर की तरह जकड़ देते थे।

वि०—मालाओं से शरीर को बाँध देना एक प्रकार की प्रगल्भता है।

देव यजन के—यजन—यज्ञ, यज्ञ-स्थान। पशुयज्ञ—पशु बलि। पूर्णाहुति—यज्ञ की समाप्ति पर आहुति। जलती—प्रकाशित हो रही है।

अर्थ—यज्ञ की समाप्ति पर पशुओं की अंतिम आहुति से देवताओं के यज्ञ की ज्वाला भभक उठती थी। आज अग्नि की वे लपटें समुद्र की लहरों के रूप में प्रकाशित हो रही हैं। भाव यह कि जहाँ यज्ञ और बलि कर्म होता था वहाँ समुद्र लहरा रहा है।

उनको देख कौन—अंतरिक्ष—आकाश। व्यस्त—व्यापक, चारों ओर। हलाहल—विषैला, मारक। प्रालेय—प्रलय सम्बन्धी।

अर्थ—उनकी इस वासनात्मक अधोगति को देखकर न जाने आकाश में कौन रोया कि उसके आँसू के रूप में प्रलय मचाने वाला चारों ओर ऐसा विषैला पानी बरसा जिससे सब नष्ट हो गये।

हाहाकार हुआ—क्रंदन—रोने की ध्वनि। कुलिश—वज्र, बिजली। दिगन्त—दिशाएँ। बधिर—बहरी। क्रूर—निर्दय।

अर्थ—कठोर बिजली टूट-टूट कर गिरने लगी। इससे हाहाकार मच गया और रोने की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। बिजली की ऐसी निर्दय भीषण ध्वनि बार बार आती कि दिशाएँ भी बहरी हो गईं।

दिग्दाहों से धूम—दिग्दाह—दिशाओं में आग लगना। क्षितिज—वह स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी मिले प्रतीत होते हैं। सघन—बादलों से युक्त। गगन—आकाश। भीम—भयंकर। प्रकंपन—जोर से हिलना। झंझा—आँधी।

अर्थ—चारों दिशाओं में आग लग गई जिससे धुँआ उठ खड़ा हुआ, पर लगता ऐसा था मानों आकाश के कोनों में बादल घिर आये हों। उसी समय आँधी के झोंके आने लगे जिनसे आकाश में भरे बादल वेग से डोल उठें।

पृष्ठ १४

अन्धकार में मलिन—मित्र—सूर्य। आभा—प्रकाश। वरुण—जल के देवता। व्यस्त—क्रुद्ध। स्तर—तह। पीन—स्थूल।

अर्थ—दिग्दाहों से उठे धुँए के मलिन अंधकार में सूर्य का प्रकाश पहले धुँधला पड़ा, फिर पूर्ण रूप से विलीन हो गया। जल-देवता इतने में क्रुद्ध हो उठे और घोर वर्षा का भय उत्पन्न करने लगे। घने धुँए की तह पर तह जमने से कालिमा स्थूल हो गयी।

वि०—कालिमा की स्थूलता का दृश्य किसी भी बड़े नगर में किसी मिल की चिमनी से निकले धुँए की तहों के जमने पर देखा जा सकता है।

पंचभूत का भैरव मिश्रण—पंचभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। भैरव मिश्रण—संहारक रूप में मिलना। शंपा—बिजली। शकल—टुकड़े। निपात—गिरना। उल्का—मशाल। अमर शक्तियाँ—पृथ्वी की देवता जाति से भिन्न कोई अन्य अदृश्य शक्तियाँ।

अर्थ—पंचभूत संहारक रूप में मिल रहे थे अर्थात् पृथ्वी जो बसने के लिए है वह फट रही थी। जल जो प्यास बुझाने के लिए है वह भवन डुबा रहा था। अग्नि जो भोजन पकाने के लिए है वह देवताओं के शरीर को भस्म कर रही थी। बिजली टूट कर गिरने लगी, अत. विद्युत्-खंड ऐसे प्रतीत हुए मानों आकाश की अमर शक्तियाँ अंधकार में छिपे प्रभात को मशाल लेकर ढूँढ़ रही हों।

बार बार उस—भीषण—भयंकर। रव—कड़क। विशेष—अत्यधिक। व्योम—आकाश। अशेष—समस्त, पूरा, सम्पूर्ण।

अर्थ—दिग्दाहों के धूम से ऊपर छाये स्थूल अंधकार को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो विद्युत् की भयंकर कड़क से पृथ्वी को अत्यधिक कंपित

देख सम्पूर्ण आकाश उसे छाती से चिपका कर धैर्य बँधाने के लिये नीचे उतर आया हो।

वि०—काव्य में पृथ्वी और आकाश का चिरंतन प्रेम प्रसिद्ध है :—

घरतिहिं जेस गगन सों नेहा।
पलटि आव बरसा रितु मेहा।
—जायसी

उधर गरजतीं—फेन—झाग। व्याल—सर्प।

अर्थ—उधर कुटिल मृत्यु के जाल के समान दिखाई देने वाली समुद्र की लहरें घोर ध्वनि कर रही थीं। वे इस प्रकार बढ़ रही थीं जैसे अपने फण फैला कर झाग उगलते हुए सर्प लपके आ रहे हों।

वि०—इन पंक्तियों में दोनों उपमाएँ अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध हुई हैं। लंबी पतली होने के कारण लहरें आकार में जाल के डोरों के समान दिखाई देती थीं और वे देवताओं को अपने में फँसा कर निगल जाती थीं, इसी से उन्हें कुटिल काल का जाल कहा गया।

लहरें भी झाग उगल रही थीं और सर्प भी झाग उगलते हैं, लहरें भी नीली प्रतीत होती थीं और सर्प भी काले होते हैं, लहरें भी प्राण ले रही थीं और सर्प भी डस कर प्राण ले लेते हैं।

धँसती धरा—धँसती—नीचे को बैठती। धधकती—धक-धक शब्द करती, फटती। ज्वाला—लपटें। सकुचित—सिमटना। आतप—आग। हास—कमी।

अर्थ—पृथ्वी नीचे की ओर बैठने लगी। उसके भीतर की आग 'धक' 'धक' शब्द करती हुई ऊपर प्रकट हुई जो ज्वालामुखी पर्वत से फूटने वाली लपटों सी प्रतीत होती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे जहाँ तहाँ से तल की ओर सिमटने के कारण भू भाग कम होने लगा।

पृष्ठ १५

सबल तरंगाघातों से—सबल—तीव्र। तरंगाघातों—लहरों के थपेड़ों। रचना—बनाना। कच्छप—कछुआ। क्षुभ्य—क्षुब्ध। विकलित—व्याकुल।

अर्थ—उस क्रुद्ध समुद्र की लहरों के तीव्र थपेड़ों से डॉवाडोल होकर पृथ्वी इस प्रकार व्याकुल और क्षुब्ध प्रतीत हुई जैसे प्रबल तरगों की चपेट से कोई बड़े आकार का कछुआ घबरा जाय (लुढ़के)।

बढ़ने लगा विलास—भैरव—भयकर। जलसघात—जलराशि। तरल—फैला हुआ। तिमिर—अधकार। प्रतिघात—चोट।

अर्थ—वह भयकर जलराशि इस प्रकार बढ़ने लगी जैसे कामी मनुष्य के हृदय में भोग की लालसा तीव्र से तीव्रतर होती जाती है। इधर दिग्दाह के धुँए से निर्मित आकाश में फैले हुए अधकार से प्रलय का पवन टकराता और उस पर चोट-सी मार रहा था।

वेला क्षण क्षण—वेला—समुद्र का किनारा। क्षितिज—वह स्थान जहाँ आकाश पृथ्वी से मिला प्रतीत हो। उदधि—समुद्र। अखिल—समस्त। धरा—पृथ्वी। मर्यादाहीन—असीम।

अर्थ—समुद्र का किनारा प्रतिपल निकटतर होने लगा अर्थात् जो पृथ्वी बची हुई थी वह भी जल में डूबने लगी। दूर पर जहाँ आकाश पृथ्वी से मिला दिखाई देता था वहाँ की थोड़ी-सी पृथ्वी भी जलमग्न हो गई और अब जल और आकाश मिले दिखाई देने लगे। इस प्रकार समुद्र आज समस्त पृथ्वी को डुबा कर असीम हो गया।

वि०—समुद्र अपनी इस मर्यादा के लिए प्रसिद्ध है कि वह अपने तट को नहीं डुबाता और हिंदुओं का यह भी विश्वास है कि उसका जल न घटता है न बढ़ता है। बादलों के रूप में जो जल कम होता है वह सरिताओं के रूप में आ जाता है। पर प्रलयकाल में समुद्र अपनी इस मर्यादा का परित्याग कर देता है।

करका क्रदन करती—करका—ओले। क्रन्दन—घोर ध्वनि। तॉडवमय—विनाशकारी।

अर्थ—भीषण ध्वनि करते हुए ओले बरस रहे थे जिनके नीचे सब कुछ कुचला जा रहा था। पचभूतों का यह विनाशकारी कर्म बहुत दिनों से चल रहा था।

पृष्ठ १६

एक नाव थी—डाँड़—नाव खेने का बल्ला। पतवार—नाव के पीछे की

और लकड़ी का वह तिकोना भाग जो आधा जल में और आधा बाहर रहता है और जिससे नौका इधर-उधर मोड़ी जा सकती है।

तरल—चंचल।

अर्थ—मेरे (मनु के) पास एक नाव थी। पर उस नाव में न डाँड़ उसे आगे खिसका सकते थे और न पतवार किसी दिशा में मोड़ सकती थी। वह नौका उन चंचल लहरों में पागलों के समान कभी उठती, कभी अपने आप ही आगे की ओर बढ़ जाती थी।

लगते प्रबल थपेड़े—कातरता—अधीरता। नियति—भाग्य।

अर्थ—लहरों के थपेड़े उसमें लगने लगे। सामने धुँधलापन छाया हुआ था जिसमें किनारा दिखाई नहीं देता था। मैं अधीर हो गया, निराश हो गया और उस समय यही सोच पाया कि अब भाग्य जिस पथ पर ले जाय वही ठीक है।

लहरें व्योम चूमती—व्योम—आकाश। चपलाएँ—बिजलियाँ। असंख्य—अगणित। गरल—विनाशकारी। खड़ी झड़ी—मूसलाधार घोर वर्षा। संसृति—लोक, संसार।

अर्थ—लहरें उठ कर आकाश को छूने लगीं अर्थात् ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थीं। ऊपर अगणित बिजलियाँ नृत्य करने लगीं। बादलों से विनाशकारी मूसलाधार वर्षा हो रही थी। उससे बूँदों का एक संसार निर्मित हो गया। भाव यह कि बूँदों के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता था, अतः ऐसा प्रतीत होता था मानों यह संसार प्राणियों का निवास-स्थल नहीं, बूँदों का निवास-लोक है।

चपलाएँ उस जलधि—चपलाएँ—बिजलियाँ। जलधि—समुद्र। विश्व—फैले हुए। चमत्कृत—चमकना, चकित होना। विराट—विशाल। बाड़व ज्वाला—समुद्र के भीतर रहने वाली अग्नि। खंड-खंड—विभाजित, टुकड़े होकर।

अर्थ—उस फैले हुए समुद्र के जल पर जब बिजलियाँ चमकतीं, तब ऐसा लगता मानो समुद्र के भीतर की विशाल अग्नि अनेक अंशों में विभाजित होकर रो रही है।

वि०—चमत्कृत शब्द में चकित होने के साथ चमकने का भाव यहाँ है। हम जब किसी आश्चर्यजनक वस्तु को देखते हैं तब चौंक उठते हैं। बिजली जिस प्रकार मुड़कर लपकती है उससे निरंतर यह भाव टपकता है कि वह किसी दृश्य पर चौंक उठी है।

समुद्र पर जब बिजली चमक रही थी तब जल में रली-मिली प्रतीत होती थी, अतः विद्युत् में बाड़वाग्नि और जल में उसके आँसुओं की कल्पना करना अत्यन्त स्वाभाविक है।

जलनिधि के तलवासी—जलनिधि—समुद्र। उतराते—ऊपर तैरते। विलोड़ित—आदोलित, मथित, क्षुब्ध, खलबली से पूर्ण।

अर्थ—समुद्र के अतर में निवास करने वाले जलजतु व्याकुल होकर ऊपर उछल आये। जब जल के उस घर में ही खलबली मच गई, तब कौन एक क्षण को भी उसके किसी भाग में सुख पा सकता था?

वि०—कोई भी घर उसी समय तक अपने निवासियों को सुख दे सकता है जब तक वह स्वय सुरक्षित है, पर जब वह स्वय गिर पड़े, जल में डूब जाय अथवा उसमें आग लग जाय तब वह क्या करे? समुद्र आज आँधी, बिजली वर्षा, ओलों से क्षुब्ध है, किसी को कैसे शरण दे?

पृष्ठ १७

घनीभूत हो उठे—घनीभूत (Condensed) जम जाना। रुद्ध—रुकना। चेतना—बोधशक्ति, सज्ञा। बिलखती—व्यग्र होती। क्रुद्ध—क्षुब्ध।

अर्थ—पवन का चलना बन्द हो गया मानो वह जम गया हो। इस वातावरण में श्वासों का चलना कठिन हो गया। बोध-शक्ति मारी-सी गई। दृष्टि को कुछ दिखायी नहीं देता था, अत. वह क्षुब्ध हो उठी—दुख उठी।

वि०—यह स्थिति अनुभव से सम्बन्ध रखती है। कल्पना कीजिए कि आपको एक ऐसी अँधेरी कोठरी में बन्द कर दिया गया है जिसमें हवा किसी भी प्रकार प्रवेश नहीं कर सकती। थोड़ी देर में वहाँ आपकी साँसों, आपकी चेतना और आपकी दृष्टि की जो दशा होगी उसका अनुमान सहज में किया जा सकता है।

उस विराट आलोडन—आलोडन—समुद्र की क्षुब्ध दशा। प्रखर—तीव्र। पावस—वर्षा। ज्योतिरिंगण—जुगनू।

अर्थ—उस क्षुब्ध विशाल समुद्र के ऊपर चमकने वाले ग्रह और तारा या तो उसके ऊपर बहने वाले बुलबुले से प्रतीत होते थे या फिर उस प्रलयकालीन घोर वर्षा में जुगनू से टिमटिमाते थे।

प्रहर दिवस कितने—प्रहर—तीन घन्टे का समय। सूचक—सूचना देने वाले। उपकरण—साधन।

अर्थ—कितने प्रहर बीते और कितने दिन, इसे अब कौन बताता। जिन साधनों से प्रहरों और दिनों की गणना होती है उनका तो कहीं चिह्न भी शेष न था।

वि०—प्राचीन काल में समय की मात्रा घन्टा, मिनट, सैकिंड से सूचित न कर प्रहर और घड़ियों से सूचित होती थी। एक दिन-रात में आठ प्रहर और चौसठ घड़ियाँ होती थीं। उस खन्ड-प्रलय में समय की गणना करने वाले नर पृथ्वी से नष्ट हो गये थे और आकाश में दिन-रात का पता देने वाले सूर्य-चन्द्रमा दिखाई नहीं दे रहे थे।

काला शासन चक्र—काला—अत्याचार पूर्ण। शासन चक्र—अधिकार। मत्स्य—मछली। पोत—नौका। मरण रहा—टूट जानी चाहिए थी।

अर्थ—मृत्यु का अत्याचारपूर्ण अधिकार कब तक रहा, स्मरण नहीं। इतने में एक विशाल सामुद्रिक मछली का चपेटा नौका में लगा। उस आघात से नौका टूट जानी चाहिए थी।

किन्तु उसी ने—उत्तरगिरि—हिमालय। ध्वंस—बीजनाश।

अर्थ—वह नौका बच गई और मत्स्य की उस टक्कर ने मुझे हिमालय की इस चोटी पर पहुँचा दिया। जैसे किसी टूटे की सांस लौट आवे, उसी प्रकार देवताओं का बीजनाश होते-होते सहसा बच गया।

पृष्ठ १८

आज अमरता का—जर्जर—चूर्ण। दम्भ—अभिमान। सर्ग—सृष्टि। विष्कम्भ—नाटक का वह दृश्य जिसमें बीती हुई और कुछ आगामी घटनाओं की सूचना किसी साधारण पात्र द्वारा दी जाती है।

अर्थ—मैं क्या हूँ ? देवताओं के चूर्ण कर दिए गए भीषण अभिमान की बची निशानी हूँ। जैसे नाटक के पहले अंक में ही कोई पात्र अतीत की घटनाओं को दुहराये, उसी प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ में ही देवताओं के विनाश की शोकपूर्ण कहानी दुहराने का दुर्भाग्य मुझे प्राप्त है।

वि०—नाटक में घटनाएँ दो प्रकार की होती हैं। कुछ मञ्च पर दिखाई जाती हैं उन्हें 'दृश्य' कहते हैं, कुछ पात्रों द्वारा सूचित करा दी जाती हैं, उन्हें 'सूच्य' कहते हैं। क्योंकि जो घटनाएँ एक बार दिखाई जा चुकी होती हैं, उन्हे फिर दिखाने से रस क्षीण होता है और समय भी अधिक लगता है, इसी से आवश्यकता पड़ने पर 'विष्कभ' की सृष्टि करते हैं। प्रथम अंक में घटना बढ़ भी नहीं पाती। यदि उसमें ही कोई करुण विष्कम्भ हो तो इससे बड़े शोक की और क्या बात हो सकती है कि सृष्टि का सुख हमने अभी पूर्ण रूप से भोगा भी न था कि प्रलय मच गई और उस वैभव के विनाश की करुण कहानी को सुनाने का कार्य-भार मिला मुझ अभागे को।

ओ जीवन की—मरीचिका—मृगतृष्णा, मिथ्या, धोखा। अलस—आलस्यपूर्ण। विषाद—शोक। पुरातन—प्राचीन। अमृत—अमर, देवता। अगतिमय—बुरी दशा वाला, दुर्दशाग्रस्त। मोहमुग्ध—मोहपूर्ण। जर्जर—चूर्ण। अवसाद—दु.ख।

अर्थ—यह जीवन धोखामात्र है। मैं कायर हूँ, आलसी हूँ, शोक से पूर्ण हूँ। मे अत्यन्त प्राचीन जाति से सम्बन्ध रख कर भी अमर कहलाकर भी, दुर्दशाग्रस्त हूँ। मे मोह से पूर्ण और शोक से चूर्ण हूँ।

वि०—मरुभूमि मे सूर्य की तीव्र किरणों की चमक से मृगों को जल का भ्रम हो जाता है, इसे मृगतृष्णा कहते हैं। जीवन में भी सुख नहीं, सुख का भ्रम है। मिथ्या शब्द का अर्थ होता है दिखाई देने पर भी न होना

मौन नाश विध्वस—विध्वस—विनाश। ठाँव—स्थान।

अर्थ—कोलाहल सत्य नहीं, मौन सत्य है। नाश सत्य है। महानाश सत्य है। अन्धकार सत्य है। जिसने सब कुछ सूना कर दिया वह स्पष्ट दिखाई देने वाला अभाव सत्य है। मैं बलपूर्वक कहता हूँ यही सब कुछ सत्य है। हे देव जाति ! तुझे हम सत्य समझते थे, पर बता तो सही इन सब के बीच तेरे लिए स्थान कहाँ है ?

वि०—मनु जो देख रहे हैं उसी को सत्य समझ रहे हैं। अन्धकार और मृत्यु से उनका परिचय हुआ है। उन्हें असत्य कैसे कहें? पर शोक में प्राणी की बुद्धि स्थिर नहीं रहती। सत्य जीवन ही है मृत्यु नहीं, क्योंकि मृत्यु जीवन का अभावमात्र है जैसे छाया प्रकाश का अभावमात्र है। इससे पहले जीवन देखा था, तब उसे सत्य समझते थे। इसके उपरान्त प्रलय-निशा की समाप्ति पर फिर नवीन जीवन देखेंगे।

मृत्यु अरी—चिरनिद्रा—सदैव को सुलाने वाली। अंक—गोद। हिमानी—हिमराशि। अनन्त—व्यापक विश्व। काल—मृत्यु। जलधि—समुद्र।

अर्थ—हे मृत्यु तू प्राणधारियों की आँखें सदैव के लिये बन्द कर देती है। तेरी गोद हिमराशि जैसी शीतल है। समुद्र में हलचल मचने से जैसे लहरें उठती हैं, उसी प्रकार तेरी हलचल के उपरान्त मृत्यु के समुद्र से व्यापक विश्व में फिर जीवन छा जाता है।

वि०—व्यथित मनुष्य निद्रा में अपने दुःख को विस्मृत कर देता है। मृत्यु तो एक व्यापक निद्रा है। उसे प्राप्त कर उसकी पीड़ा सदैव को शान्त हो जाती है। 'गालिब' ने कहा है

> ग़मे हस्ती का 'असद' किससे हो जुज़ मर्ग इलाज,
> शमा हर रंग में जलती है सहर होने तक।
> क़ैदे हयातो बन्दे ग़म अस्ल में दोनों एक है,
> मौत से पहले आदमी ग़म से नजात पाये क्यूँ?

संसार के ताप से दग्ध प्राणी एक बालक के समान है जिसे मृत्यु की शीतल क्रोड में ही वास्तविक विश्राम मिलता है।

महादेवी का कहना है—

तू भूल भरा ही आता!

ओ चंचल जीवन-बाल! मृत्यु जननी ने अंक लगाया।

पृष्ठ १६

महानृत्य का—विषम—कठोर। सम—संगीत में उँगलियों की थाप और तान में पद चाप। स्पन्दन—हृदय की धड़कन। नाद—नाद, तान, ध्वनि करने वाली। विभूति—सम्पत्ति। सृष्टि—उत्पन्न। व्यभिचार—अतिरेक, नाश।

अर्थ—हे मृत्यु तू सृष्टि में होने वाले किसी महानृत्य की कठोर पद-चाप है अर्थात जहाँ उस नर्तक के चरण का दबाव कहीं पड़ा कि वस्तु मिट गई। समस्त चेतना का अन्त करने वाली है। तू जब आती है तब अहितकारिणी प्रतीत होती है, पर तेरी महत्ता से ही नवीन वस्तुओं का सदैव जन्म होता है।

वि०—'सम' और 'विषम' सगीत तथा नृत्य के दो पारिभाषिक शब्द हैं। सगीत मे बाजे अथवा तबले पर उँगलियाँ शीघ्रता से चलती रहती हैं तब 'विषम' और जब वे कहीं स्वर को जोर से दबाती अथवा उनकी थाप पड़ती है तब 'सम' कहलाता है। नृत्य में जब उँगलियों के बल खड़ा चरण सर्राटे से घूमता तब 'विपम' परन्तु जब उसका पूरा दबाव पृथ्वी पर पड़ता है तब 'सम' कहलाता है। कवि ने यहाँ विषम का भी प्रयोग किया है, पर सामान्य अर्थ में, पारिभाषिक अर्थ मे नहीं। पारिभाषिक अर्थ में केवल 'सम' शब्द का प्रयोग किया है। मृत्यु किसी चरण का वह कठोर दबाव है जिससे कुचल कर प्राणधारी जीवन खो बैठते हैं।

'स्पन्दनो की माप' से तात्पर्य है कि प्रत्येक प्राणी को गिनकर कुछ हृदय की धड़कने दी जाती हैं। जब वे पूरी हो जाती हैं तब मृत्यु उन पर अपनी रोक लगा देती है। इस प्रकार मृत्यु मानो जीवन को नापने का एक पैमाना है।

हिन्दुओं का विश्वास है कि जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म अवश्य होता है। हमारे यहाँ मृत्यु का अर्थ है जीर्ण वस्त्रो को बदल कर नवीन वस्त्र धारण करना।

अन्धकार के अट्टहास—अट्टहास—ठठाकर हँसना, विनाश कर्म। मुखरित सुनाई देना, प्रकट। चिरन्तन—अनादि काल से। नित्य-स्थायी।

अर्थ—जैसे कोई अँधेरे मे बैठकर जोर से हँसे तो उसका वह ठठाकर हँसना सुनाई देगा, पर उस व्यक्ति को हम देख न पायेंगे। इसी प्रकार मृत्यु का आकार तो दिखाई नहीं देता, पर उसका अट्टहास (विनाश कर्म) प्रकट है। यह एक सत्य है। मृत्यु का सुन्दर रहस्य यह भी है कि वह सृष्टि के कण-कण मे छिपी हुई है अर्थात् सृष्टि का कण-कण नाशवान् है।

जीवन तेरा—क्षुद्र—छोटा। व्यक्त—प्रत्यक्ष, सामने फैले हुए। सौदामिनी-बिजली। सन्धि—रेखा।

अर्थ—हे मृत्यु जीवन तो तेरा एक छोटा-सा अंश है। जैसे सामने घिरे हुये बादलों में बिजली की सुन्दर रेखा क्षणभर चमक कर छिप जाती है उसी प्रकार जीवन भी अत्यन्त अल्प काल तक प्रकाशित रह कर तुझमें विलीन हो जाता है।

वि०—इस दृश्य के द्वारा मृत्यु की व्यापकता और जीवन की लघुता का भान होता है। जैसे बिजली छिप जाती है पर बादल बने रहते हैं, उसी प्रकार जीवन मिट जाता है पर मृत्यु बनी रहती है। यह भावना कितनी निराशापूर्ण है।

पवन पी रहा—निर्जनता—सूनापन। उखड़ी साँस—दूर हो गया। दीन—करुण।

अर्थ—मनु के मुख से निकले शब्द पवन में समा रहे थे। उनकी ध्वनि से चारों ओर का सूनापन दूर हो गया। ये शब्द हिमशिलाओं से जब टकराये तब वहाँ एक करुण प्रतिध्वनि गूँज उठी।

वि०—'साँस उखड़ना' एक मुहावरा है जिसका एक अर्थ होता है मृत्यु। निर्जनता की मृत्यु का तात्पर्य हुआ निर्जनता नष्ट हो गई।

पृष्ठ २०

धू धू करना—धू धू करना—प्रबल वेग से। अनस्तित्व—अस्तित्वहीनता, सब कुछ मिट जाना। ताण्डव नृत्य—सृष्टि का संहार करने वाला शिव का नृत्य, विनाशकर्म। आकर्षण—पास खींचने की शक्ति। विद्युत्कण—विद्युत के परमाणु (Electrons)। भारवाही—बोझा ढोने वाले। भृत्य—नौकर।

अर्थ—विनाश का ऐसे प्रबल वेग से नृत्य हुआ कि सब कुछ मिट गया। शून्य में चक्कर काटने वाले विद्युत के परमाणुओं में अभी आकर्षण शक्ति नहीं आई थी, अतः जैसे कोई नौकर बोझ ढोता फिरता है, उसी प्रकार से अपना भार ढोते घूमते थे।

वि०—'प्रसाद' ने अणुवाद (Atomic theory) की ओर अपना [illegible] प्रदर्शित की है। आगे भी कई स्थानों पर विद्युत्कणों का वर्णन किया है।

मृत्यु सदृश शीतल—शीतल—हृदयहीन (Cold)। परम व्योम—महाकाश। भौतिक—स्थूल, दिखाई देने वाले। कुहासा—कुहरा।

अर्थ—दृष्टि को हृदयहीन मृत्यु जैसी निराशा ही चारों ओर दिखाई देती

अर्थ—हे मृत्यु तू सृष्टि मे होने वाले
है अर्थात जहाँ उस नर्तक के चरण का दबा
समस्त चेतना का अन्त करने वाली है।
प्रतीत होती है, पर तेरी महत्ता से ही नवीन

वि०—'सम' और 'विषम' सगीत त
सगीत मे बाजे अथवा तबले पर उँगलियाँ
और जब वे कही स्वर को जोर से दबाती
कहलाता है। नृत्य में जब उँगलियों
'विषम' परन्तु जब उसका पूरा दबाव पृ
कवि ने यहाँ विषम का भी प्रयोग कि
अर्थ मे नहीं। पारिभाषिक अर्थ में के
किसी चरण का वह कठोर दबाव है जि
हैं।

'स्पन्दनो की माप' से तात्पर्य है
धडकनें दी जाती हैं। जब वे पूरी हो
देती है। इस प्रकार मृत्यु मानो जी

हिन्दुओं का विश्वास है कि
मृत्यु होती है उसका जन्म अवश्य
वस्त्रों को बदल कर नवीन वस्त्र

अन्धकार के अट्टहास—
सुनाई देना, प्रकट। चिरन्तन-

अर्थ—जैसे कोई अँधेरे मे
सुनाई देगा, पर उस व्यक्ति
आकार तो दिखाई नहीं देता,
यह एक सत्य है। मृत्यु का सु
मे छिपी हुई है अर्थात् सृष्टि

जीवन तेरा —क्षुद्र—
बिजली। सन्धि—रेखा।

आशा

कथा—नवीन सूर्योदय के साथ प्रकृति का स्वरूप ही बदल गया। कोमल, सुनहली, उजली किरणें धरित्री पर छाने लगीं। हिम गलने लगा। पृथ्वी निकल आई। पेड़-पौधे दिखाई देने लगे। शीतल पवन के झकोरे आने लगे। समुद्र की क्षुब्ध लहरें शांत हो गईं। कोलाहल सो गया।

मनु ने आकाश की ओर दृष्टि उठाई तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई निराकार नीलम के प्याले में स्वर्णिम रङ्ग घोल रहा हो। इस दृश्य ने उनकी चेतना को आध्यात्मिक अन्वेषण की ओर मोड़ा। उन्हें भान हुआ कि इस सृष्टि को परिचालित करने वाला कोई ऐसा परम पुरुष है जिसके आगे सूर्य, चंद्र, पवन, वरुण सब नगण्य हैं। निश्चित रूप से तो उसके संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता, पर वह महान् है, विराट का शासक है, परम सुन्दर है।

इस रमणीक प्रकृति को देख मनु का मन सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने की आशा से परिप्लावित हो गया और वे सोचने लगे कि यदि संसार में उनका नाम रहे तो कितना अच्छा हो!

मनु सामने दृष्टि डालते हैं। धान के सुनहले खेत हैं। आस पास लताओं और शीतल झरने की धाराओं से युक्त यह हिमालय दिखाई देता है जिसकी गिरिचरणों वनमालाओं से घिरी हिम मण्डित चोटियाँ मुकुटधारिणी सम्राज्ञियाँ सी प्रतीत होती हैं। ऊपर की ओर ताकते हैं तो नीलाकाश अपनी ऊँचाई और विस्तार से चकित करता है। पर मनु को आकाश की शांति में जहाँ जड़ता और उसकी गंभीर नीलिमा में केवल सूनेपन की प्रतीति होती है वहाँ पृथ्वी की नीचाई में आनन्द और हास्य की तरंगें परिलक्षित होती हैं। इस प्रकार हिमालय को वे विस्मय और ममत्व के पुट से वात्सल्यमयी दृष्टि से देखते हैं।

पर सुख भोगने योग्य परिष्कृत स्थान से लौटते हैं और तपस्या में लीन

थी। इतने में ऊपर महाकाश से जैसे स्थूल कण बरसें, उसी प्रकार घना कुहरा बरसने लगा।

वि०—'आलिंगन' एक वस्तु द्वारा दूसरी वस्तु को पूर्णरूप से छूने को कहते हैं। यहाँ दृष्टि का वस्तुओं को छूना या देखना।

वाष्प बना—वाष्प—भाप। जलसघात—जल राशि। सौरचक्र—सूर्य मंडल। आवर्त्तन—घुमाव। प्रात—समाप्ति, प्रभात।

अर्थ—ऊपर से गिरती उन कुहरों की तहों को देख कर यह भी सदेह होता था कि कहीं यह भारी जल-राशि ही भाप बन कर तो नहीं उड़ी जा रही है। कुछ हो, सूर्य-मंडल घूमता दिखाई दिया और न वीन प्रभात के साथ प्रलय का वह विषाद-पूर्ण वातावरण समाप्त हो गया।

वि०—हिलते हुए कुहरे में स्थिर रहने पर भी सूर्य-मंडल घूमता-सा प्रतीत होगा।

'निशा' यहाँ एक प्रतीक है जिसका अर्थ विषादपूर्ण वातावरण का है।

आशा

कथा—नवीन सूर्योदय के साथ प्रकृति का स्वरूप ही बदल गया। कोमल, सुनहली, उजली किरणें धरित्री पर छाने लगीं। हिम गलने लगा। पृथ्वी निकल आई। पेड़-पौधे दिखाई देने लगे। शीतल पवन के झकोरे आने लगे। समुद्र की क्षुब्ध लहरें शांत हो गई। कोलाहल सो गया।

मनु ने आकाश की ओर दृष्टि उठाई तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई चित्रकार नीलम के प्याले में स्वर्णिम रङ्ग घोल रहा हो। इस दृश्य ने उनकी चेतना को आध्यात्मिक अन्वेषण की ओर मोड़ा। उन्हें भान हुआ कि इस सृष्टि को परिचालित करने वाला कोई ऐसा परम पुरुष है जिसके आगे सूर्य, चन्द्र, पवन, वरुण सब नगण्य हैं। निश्चित रूप से तो उसके संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता, पर वह महान् है, ब्रह्मांड का शासक है, परम सुन्दर है।

इस रमणीक प्रकृति को देख मनु का मन सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने की आशा से परिप्लावित हो गया और वे सोचने लगे कि यदि संसार में उनका नाम रहे तो कितना अच्छा हो!

मनु सामने दृष्टि डालते हैं। धान के सुनहले खेत हैं। आस पास लताओं और शीतल झरने की धाराओं से युक्त वह हिमालय दिखाई देता है जिसकी विविधवर्णी घनमालाओं से घिरी हिम-मंडित चोटियाँ मुकुटधारिणी सम्राज्ञियों से प्रतीत होती हैं। ऊपर की ओर ताकते हैं तो नीलाकाश अपनी ऊँचाई और विस्तार से चकित करता है। पर मनु को आकाश की शांति में जहाँ जड़ता और उसकी गंभीर नीलिमा में केवल सूनेपन की प्रतीति होती है वहाँ पृथ्वी की नीचाई में आनन्द और हास्य की तरगें परिलक्षित होती हैं। इस प्रकार वैराग्य को वे तिरस्कार और संसार के सुख को ललकभरी दृष्टि से देखते हैं।

एक गुहा में रहने योग्य परिष्कृत स्थान वे छाँटते हैं और तपकर्म में लीन

होते हैं। वायु-सेवन को जब निकलते हैं तब बचे अन्न का कुछ अंश कहीं दूर पर रख आते हैं जिससे किसी भूले-भटके अन्य प्राणी को सन्तोष मिले। स्वयं दुःख सहकर वे दूसरों का दुःख समझने लगे हैं।

तप-कर्म से छुटकारा पा वे अपने अभावपूर्ण जीवन पर विचार करने बैठते हैं, पर अभावपूर्ति का कोई मार्ग उन्हें दिखाई नही देता। उज्ज्वल किरणें, शीतल वायु, रम्य उषा, तारोंभरी रजनी सब जैसे उनके मन को अधीर बनाने के लिये ही बनी हैं। वे रात-दिन सोचते हैं—उनका भी कोई अपना होता!

पृष्ठ २३

उषा सुनहले तीर—सुनहले तीर—सुनहली किरणें। जय लक्ष्मी—विजय की देवी। उदित—प्रकट। पराजित—हारी हुई। काल रात्रि—प्रलय रात्रि, प्रलय का अंधकार। अंतर्निहित—छिपना, विलीन होना।

अर्थ—इधर उषा तीर जैसी सुनहली किरणें बरसाती हुई विजय की देवी के समान प्रकट हुई और उधर प्रलय का वह अन्धकार हार मान कर जल में विलीन हो गया।

वि०—इन पंक्तियों के पीछे युद्ध का पूरा चित्र छिपा हुआ है। युद्ध करने वालों मे एक ओर कालरात्रि है दूसरी ओर उषा। उषा ने किरणों के नुकीले तीर बरसाकर कालरात्रि को ऐसा विचलित कर दिया कि वह अन्त मे परास्त होकर जल मे डूब मरी। उषा विजयिनी हो गई।

वह विवर्ण मुख—विवर्ण—कांतिहीन, फीका। त्रस्त—भयभीत। शरद्—एक ऋतु जो वर्षा के उपरान्त क्वार और कार्तिक के महीनों मे मानी जाती है। विकास—खिलना।

अर्थ—प्रलय से भयभीत प्रकृति का वह कांतिहीन मुख फिर उसी प्रकार खिल उठा जैसे वर्षा के अँधेरे दिनों के उपरान्त शरद् ऋतु के आने से संसार खिल उठे।

वि०—किसी भयोत्पादक वस्तु के सहसा प्रकट और उसके दूर होने से जो परिवर्तन किसी प्राणी के मुख पर घटित होते हैं उन्हीं का स्वाभाविक वर्णन प्रथम दो पंक्तियों मे है। कल्पना कीजिए कि आप किसी घने वन मे हैं और सहसा

दहाड़ता हुआ सिंह सामने से आ रहा है। पहले आपका चेहरा भय से एकदम फीका पड़ जायगा और यदि सौभाग्य से उसने आपको छोड़ दिया तो आप मुस्कराने का अवसर पा सकेंगे।

नव कोमल आलोक—आलोक—प्रकाश। हिम संसृति—हिमराशि। सरोज—कमल। मधु—मकरंद। पिंग—पीला। पराग—पुष्प रज।

अर्थ—हृदय में स्नेह भरकर नवीन कोमल प्रकाश इस प्रकार हिमराशि पर फैलने लगा जिस प्रकार सफेद कमल पर मकरंद से सना पीला पराग बिखर जाता है।

वि०—यहाँ हिमराशि के लिए श्वेत कमल, सुनहले प्रकाश के लिए पीला पराग, अनुराग के लिए मकरंद आया है। दोनों ओर की ये तीनों वस्तुएँ वर्ण, कोमलता और रस में कैसी सम बैठी हैं।

धीरे-धीरे—आच्छादन—तह। धरातल—पृथ्वीतल। वनस्पति—पेड़-पौधे।

अर्थ—धीरे-धीरे पृथ्वीतल से बर्फ की तहें गल कर दूर होने लगीं। उनके नीचे दबे पेड़-पौधे जब उस जल से भीग कर फिर हिलते दिखाई दिए तब ऐसा प्रतीत होता था मानो देर से आलस्य में पड़े वृक्ष अब जो सोकर उठे हैं तो शीतल जल से अपना मुँह धो रहे हैं।

वि०—यहाँ से लेकर आगे की सोलह पंक्तियों में प्रकृति वर्णन के साथ एक नव विवाहिता कोमल रमणी के जागरण का अत्यन्त मनोरम चित्र प्रसाद ने खींचा है।

नेत्र निमीलन करती—निमीलन—पलकों का खोलना बंद करना। प्रबुद्ध—सचेत। लहरियों की अँगड़ाई—तरंगों की चंचलता। सोने जाती—शान्त होने लगी।

अर्थ—जैसे कोई रमणी पूर्ण रूप से जगने के पहले कभी अपनी सुकुमार पलकें खोलती, कभी उन्हें बन्द कर लेती और फिर धीरे से खोल देती है, इसी प्रकार प्रकृति की वस्तुएँ पहले धीरे-धीरे उगीं और फिर पूर्ण विकास को प्राप्त हुईं। मानो प्रकृति क्रमशः सचेत हो गई। इधर जैसे कोई अँगड़ाई लेकर सो जाता है, उसी प्रकार समुद्र की चन्चल लहरें धीरे-धीरे शान्त हो गईं।

वि०--इन पक्तियों में स्पष्ट ही एक कोमलागी के कलात्मक जागरण और अँगड़ाई लेकर फिर पल भर को निद्रामग्न होने का आकर्षक दृश्य है।

अँगड़ाई लेने में शरीर ऐंठ कर तिरछा हो जाता है, इसी से लहरों की अँगड़ाई का अर्थ लहरों की चचलता हुआ।

पृष्ठ २४

सिंधु सेज पर—वधू—दुलहिन। हलचल—कष्ट।

अर्थ—अपार जलराशि में से अभी निकली थोड़ी-सी पृथ्वी ऐसी लगती थी मानो समुद्र की सेज पर कोई दुलहिन सिकुड़ी-सी बैठी हो। प्रलय-रात्रि में जो कष्ट उसे मिला है उसे याद कर-कर के उसने उसी प्रकार मरोड़ में भर कर मान किया है जैसे कोई नव विवाहित बाला पूर्व रात्रि में अपने पति के निर्दय व्यवहार पर—सुकुमार शरीर के निर्दयता से झकझोरे जानेपर—ऐंठ कर इस मान-भावना से भर जाय कि चाहे कुछ हो इनसे अब नहीं बोलूँगी।

वि०—इन पंक्तियों में नारी जीवन की प्रथम स्वाभाविक लज्जा और मान का मधुरतम दृश्य है।

देखा मनु ने—रजित—मनोहर, रगीन। विजन—जनहीन, सूना। श्रात—थका हुआ।

अर्थ—मनु ने उस भू-भाग के एक जनहीन, नवीन, मनोहर, एकान्त स्थल पर दृष्टि डाली। वहाँ की शान्ति को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो उस स्थान का कोलाहल शीतल बर्फ के समान जड़ हो गया हो या फिर थके पथिक के समान आँखों मे गहरी नींद भर कर सो गया हो।

इंद्रनील मणि—इन्द्रनील मणि—नीलम। चषक—प्याला। सोम—चन्द्रमा, सोम रस।

अर्थ—प्रभातकालीन एव सोमहीन (चन्द्ररहित) नीला आकाश ऐसा प्रतीत होता था जैसे किसी ने नीलम का कोई बड़ा प्याला जिसमे से सोम रस झर चुका है ऊपर उलटा लटका दिया हो। भय के उपस्थित होने पर जैसे मनुष्य की साँस पल भर को रुक जाती है और उसके दूर होने पर जैसे वह कोमलता से फिर चलने लगती है उसी प्रकार प्रलय से भयभीत जो पवन रुक

गया था वह उस खटके के दूर हो जाने पर फिर कोमल साँसें लेने लगा अर्थात पवन के मृदु झकोरे अब फिर आने लगे।

वह विराट था—विराट— महान्। हेम—सोना। कुतूहल—विस्मय। राग—विस्तार।

अर्थ—उस महान् (भगवान्) ने पृथ्वी को नवीन रंग से रँगने के लिए सुनहली उषा के रूप में आकाश के उल्टे प्याले में सोना घोला। इस दृश्य पर मनु के हृदय में सहसा एक प्रश्न उठा। इस रंग को घोलने वाला यह कौन है? इसके उपरान्त उनका विस्मय बढ़ता ही गया।

पृष्ठ २५

विश्वदेव सविता—विश्वदेव—विश्वा के दस देव-पुत्र : वसु, सत्य, क्रतु, दक्ष, काल, काम, धृति, कुरु, पुरुरवा और माद्रव। सविता—सूर्य। पूषा—पशुओं का पोषक देव। सोम—चन्द्रमा। मरुत—वायु। चंचल पवमान—आँधी। वरुण—जल के देवता। अम्लान—कभी भंग न होने वाला, शाश्वत।

अर्थ—यह किसका कभी भंग न होने वाला शासन है जिसमें उस चरम शासन की आज्ञा पालन करने के लिये विश्वदेव नाम से प्रसिद्ध दस देवता, सूर्य, पशु-देव, चन्द्र, वायु, आँधी और जलदेव निरन्तर चक्कर काटते रहे हैं।

वि०—सुदूर प्राचीन काल में अनेक देवताओं का नामकरण हुआ था। प्रकृति के प्रत्येक तत्व के पीछे जैसे एक देवता उस समय छिपा हुआ दिखाई देता था। कहीं-कहीं एक ही नाम अनेक शक्तियों के लिये प्रयुक्त हुआ है जैसे विश्वदेव विश्वा के पुत्रों के लिये भी कहते हैं, ईश्वर को भी, विष्णु को भी, शिव को भी। पूषा सूर्य के लिए भी आता है, शिव के लिये भी, पशुओं के पोषक देव के लिये भी और इन्द्र के लिये भी।

विश्वदेव के सम्बन्ध में लिखा है :

> वसुः सत्य क्रतुर्दक्ष· काल·कामो धृतिः कुरु·।
> पुरूरवा माद्रवश्च है विश्वदेवा. प्रकीर्तिता।

किसका था भ्रूभङ्ग—भ्रू् भंग—भौंहें टेढ़ी करना।

अर्थ—वह कौन है जिसकी जरा सी भौंहें टेढ़ी होने से यह प्रलय मन्त्र

गई जिसमें ये सब घबरा गये। इन्हें तो हम प्रकृति की शक्तियों के प्रतीक समझते थे, पर ये तो बड़े दुर्बल सिद्ध हुए।

वि०—जिसकी किंचित अप्रसन्नता से सूर्य वरुण जैसी शक्तियाँ काँपती हैं वह न जाने कितना शक्तिमान् है, ऐसी ध्वनि इन पक्तियों से निकलती है।

विकल हुआ सा—भूत—प्राणी।

अर्थ—प्रलय में पृथ्वी के समस्त चेतन प्राणियों का समूह व्याकुल होकर काँप रहा था। उनकी अत्यन्त बुरी दशा हो गई। उनकी विवशता देखने ही योग्य थी। उनसे कुछ भी करते-धरते न बना।

वि०—चेतन समुदाय से तात्पर्य मुख्यत. देव जाति के प्राणियों से है।

देव न थे हम—तुरग—घोड़ा। पुतले—वस्तु।

अर्थ—समझ में यह आता है कि हम जो अपने को देवता कहते थे वह व्यर्थ बात थी और सूर्य, चन्द्र, वरुण आदि को जो देवता समझते थे वह भी भूल से। न हम शाश्वत हैं न ये देवता। सब परिवर्तनशील हैं। यह दूसरी बात है कि जैसे रथ को खींचने वाला घोड़ा यह समझ ले कि रथ उसकी इच्छा से चल रहा है उसी प्रकार अपने अभिमान में कोई यह समझ बैठे कि ससार उसकी इच्छा पर निर्भर है, पर घोड़ों को जैसे चाबुक चलाता है उसी प्रकार हम सबको भी किसी महाशक्ति के इच्छानुसार विवश होकर कर्म में लीन होना पड़ता है। अन्तिम शासक हम नहीं हैं, केवल वह ही है।

पृष्ठ २६

महानील इस—व्योम—आकाश। अन्तरिक्ष—शून्य, पृथ्वी से ऊपर का सूना स्थान। ज्योतिर्मान—प्रकाश से पूर्ण। ग्रह—चन्द्र, मगल आदि। नक्षत्र—अन्य छोटे तारे। विद्युत्कण—विद्युत् परिमाणु (Electrons) सधान—खोज।

अर्थ—ऊपर महाकाश में प्रकाश से पूर्ण सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह तथा अन्य अगणित तारे और उसके नीचे शून्य में विद्युत्कण किसे खोजते से घूमते हैं ?

छिप जाते हैं—तृण—घास के दल। वीरुध—लताएँ।

अर्थ—सूर्य, चन्द्र तारे छिप जाते हैं और न जाने फिर किसके आकर्षण

से खिंचकर निकल आते हैं ? वह कौन है जिसके रस से सिंच कर लताएँ और घास के दल हरियालापन प्राप्त करते हैं ?

वि०—यहाँ मनु तो सूर्य, चन्द्र, तारागण के छिपने और प्रकट होने से केवल इतना भाव ग्रहण कर रहे हैं कि ये भगवान् को खोजते कहीं अदृश्य हो जाते हैं, पर उनके प्रेम का आकर्षण इतना प्रबल है कि बार बार फिर उन्हीं स्थानों पर नये सिरे से उन्हें खोजने के लिये आना पड़ता है। पर कवि का वह कौशल भी सराहनीय है कि उसने अपनी बात को विज्ञान के अनुकूल रखा है। ये नक्षत्र शून्य में लटके हैं और आकर्षण शक्ति के द्वारा टिके हुए हैं। विद्युतकणों में तो आकर्षण शक्ति होती ही है।

सिर नीचा कर—सत्ता—शक्ति। प्रवचन—व्याख्या करना, घोषणा करना। अस्तित्व—शक्ति।

अर्थ—सिर झुकाकर सारा संसार जिसकी शक्ति को स्वीकार करता है वह कहाँ है ? और कहाँ है वह जिसके सम्बन्ध में चुप रहने पर भी हम घोषित करते हैं कि 'वह है'।

वि०—चुप रहने वाला बोलता ही नहीं, अतः घोषित क्या करेगा, पर बिना बोले हुए भी क्योंकि 'हम हैं' अतः 'हमें बनाने वाला कोई है अवश्य' यह बात स्वतः सिद्ध है।

हे अनन्त रमणीय—रमणीय—सुन्दर।

अर्थ—मेरी शक्ति नहीं जो मैं यह बता सकूँ कि तुम कौन हो ? यह बात स्वयं विचार शक्ति के परे है कि तुम्हारा स्वरूप क्या है ? तुम्हारी विशेषताएँ क्या हैं ? हाँ, ऐसा लगता है कि तुम परम सुन्दर अवश्य हो।

हे विराट !

अर्थ—हे महान ! हे इस विश्व के शासक ! 'तुम कुछ हो' ऐसा तो मुझे आभासित होता है। और सम्भवतः मन्द गम्भीर दृढ़ स्वर से समुद्र भी वही गीत गा रहा है।

वि०—यहाँ विश्वदेव पिछले विश्वदेव शब्द से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

पृष्ठ २७

यह क्या मधुर—झिलमिल—रह-रह कर प्रकट होना। सदय—कोमल व्यक्त—प्रकट। प्राण समीर—प्राण वायु, प्राण पोषक।

अर्थ—मेरे कोमल हृदय में अत्यधिक अधीरता भरने वाली मधुर स्वप्न के समान रह-रहकर प्रकट होने वाली यह कौन है? यह तो प्राणों को सुख देने वाली आशा है जो आज व्याकुलता के रूप में प्रकट हुई।

वि०—जिसका हृदय जितना अधिक कोमल होता है, वह उतना अधिक दु:खी रहता है—अपने लिए भी, दूसरों के लिए भी।

चिन्ता के समान आशा के भी दो पक्ष हैं। वह आगामी सुख या भविष्य में इच्छापूर्ति की सम्भावना जगाती है इससे तो हृदय में प्रसन्नता रहती है पर उस सुख को हम शीघ्र हस्तगत करना चाहते हैं, अतः प्रयत्न-काल में अधीरता और व्याकुलता भी पीछा नहीं छोड़तीं।

आशा कभी पूरी होती है, कभी नहीं भी होती, पर उसका उदय सुखकारी है इसीसे उसे 'मधुर स्वप्न' कहा गया।

यह कितनी स्पृहणीय—स्पृहणीय—वाञ्छनीय, प्रिय। मधुर जागरण—सुख की रातों का जगना। छविमान—सुन्दर। स्मित—मन्द मुसकान मधुमय—मधुर।

अर्थ—आशा का हृदय में होना कितना प्रिय प्रतीत होता है! और इसका जगना वैसा ही सुन्दर है जैसा सुख की रातों का जगना। अतर में यह धीरे-धीरे उसी प्रकार उठती है जैसे ओठों पर मुसकान की लहरियाँ मन्द-मन्द उठती हैं। फिर वह हृदय में वैसे ही तीव्र गति से घुमड़ती है जैसे कोई मीठी तान कहीं चक्कर काटती है।

वि०—इन पक्तियों में पहले किसी सुन्दरी के सोने, फिर जगने, फिर धीरे उठने और फिर नाचने लगने का क्रमशः वर्णन है। आशा भी हृदय में सोयी रहती है, फिर जगती है, फिर उठती और इसके पश्चात् हृदय मे मस्त गति से नृत्य करने लगती है। प्रसाद की पक्तियों में ऐसे न जाने कितने मधुर दृश्य निहित रहते हैं।

जीवन जीवन की—दाह—जलन। नत होना—झुकना, चढ़ना।

अर्थ—हृदय में एक मधुर जलन का अनुभव कर रहा हूँ जो पुकार कर यह कह रही है कि जीवन चाहिए। इस नवीन प्रभात के दर्शन से जो शुभ उत्साह मेरे हृदय में भर गया है उसे किसके चरणों पर चढ़ा दूँ ?

वि०—दाह (आग) को शान्त करने के लिए जीवन (जल) चाहिए ही।

मनु मरते-मरते बचे हैं, अत. उनके जीवन में भी यह दिन एक नवीन दिन है। जैसे दुःख में वैसे ही सुख में भी मनुष्य को कोई न कोई साथी चाहिए।

मैं हूँ यह—शाश्वत—सदैव।

अर्थ—'मेरी भी कुछ सत्ता है' यह बात वरदान के समान मेरे कानों में क्यों गूँजने लगी ? और अब तो मेरी भी ऐसी इच्छा है कि मेरा नाम आकाश में सदैव गूँजता रहे।

पृष्ठ २८

यह संकेत कर रही—यह—आशा। किसकी सत्ता—अपनी (मनु की) सत्ता। विकास—उन्नति। प्रखर—तीव्र, बलवती।

अर्थ—यह आशा किसके जीवन के सरल विकास का संकेत कर रही है ? भाव यह कि यह आशा इस बात का विश्वास मुझे दिलाना चाहती है कि मेरी उन्नति बड़ी सरलता से हो सकती है। सुख-भोग करते हुए जीवित रहने की लालसा आज इतनी बलवती क्यों हो उठी है ?

तो फिर क्या—वेदना—पीड़ा।

अर्थ—तब क्या मुझे अभी और जीवित रहना चाहिए ? इस जीवित रहने से लाभ ? हे प्रभु ! कम से कम मुझे इतना तो बता दो कि कभी न मिटने वाली इस पीड़ा को लेकर मेरे प्राण कब निकलेंगे ?

× × × ×

एक यवनिका हटी—यवनिका—परदा। पट—परदा। आवरण मुक्त—ढँकी वस्तु का खुलना।

अर्थ—पवन के द्वारा जैसे किसी जादू के परदे के हट जाने से और कोई

विलक्षण दृश्य दिखाई दे, उसी प्रकार प्रलय के परदे के हट जाने से प्रकृति का जो सौंदर्य ढँक गया था वह पूर्ववत प्रकट हो गया और वह एक बार फिर हरी-भरी दिखाई दी।

स्वर्ण शालियों की—शालियों—धानों। कलमें—डठल। शरद इंदिरा—शरद लक्ष्मी, शरद ऋतु की देवी।

अर्थ—सुनहले धानों के डटल बहुत दूर तक फैले हुए थे। ऐसा लगता था मानों इनके पार शरद की लक्ष्मी का कहीं कोई मन्दिर है जिस तक पहुँचने के लिए यह एक मार्ग है।

वि०—दूर से धान के खेतों पर दृष्टि डालने से एक सुनहली सड़क-सी दिखाई देती होगी जिसे शरद ऋतु की वैभववान् देवी तक पहुँचने का पथ मानना न्यायसगत है।

पृष्ठ २६

विश्व कल्पना सा—विश्व कल्पना—ससार की सृष्टि कैसे हुई यह कल्पना। निदान—कारण। अचला—पृथ्वी। निधान—खान।

अर्थ—(हिमालय) ससार की सृष्टि की कल्पना जैसा ऊँचा, सुख, शीतलता और सतोष को देने वाला तथा डूबती हुई पृथ्वी के लिये मणि-रत्न-जटित वह अचल सिद्ध हुआ, जिसे पकड़ कर वह बची हुई है।

वि०—इन सब विशेपणों का कर्त्ता 'हिमालय का शरीर' है जो आगे के छुद में दिया हुआ है।

'ससार की रचना कैसे हुई' इस सत्य तक पहुँचने वाली कल्पना जितनी उत्कृष्ट होगी, उतना ही ऊँचा हिमालय है। प्रसाद ने हिमालय की ऊँचाई फिटों मे नहीं बतलाई, क्योंकि यह ठीक नाप-जोख या पैमाइश वाला कथन काव्य के अन्तर्गत न आता। सिंघलदीप के वर्णन में जायसी ने भी घोड़ों की चाल या उनके सिर उठाने को इन्च-फुट मे नहीं बताया।

मन ते अगमन डोलहिं बागा, लेत उसास गगन सिर लागा।

—पद्मावत

डूबता हुआ आदमी पास में खड़े व्यक्ति का कपड़ा पकड़ लेता है। मनु

समुद्र में से निकली हुई पृथ्वी को हिमालय से सटी देखते हैं इसी से यह कल्पना ठीक उतरी है।

अचल हिमालय का—अचल—शांत। शोभनतम—सुन्दरतम। फलित—युक्त। शुचि—पवित्र। सानु—चोटियों वाला, पथरीला। पुलकित—रोमांचित। अधीर होना—आनन्द से सिहर उठना।

अर्थ—हिमालय का पवित्र, शांत, पथरीला, सुन्दर शरीर था जिस पर लताएँ उगी हुई थीं। उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो यह पर्वत निद्रा में मग्न है और किसी सुख-स्वप्न को देखकर रोमांचित हो उठा है, सिहर उठा है।

उमड़ रही जिसके—नीरवता—शान्ति। विभूति—वैभव। अनुभूति—अनुभव।

अर्थ—हिमालय की तलहटी में निर्मल शांति का वैभव छाया हुआ था। पर्वत से झरनों की जो शीतल धाराएँ फूट रही थीं वे ऐसी प्रतीत होती थीं मानो गिरिवर ने अपने जीवन-भर के अनुभव को सब के कल्याण के लिए लुटा दिया है।

उस असीम नीले—नीले अचल—नीले आकाश में।

अर्थ—झरनों की वे धारायें ऐसी भी प्रतीत होती थीं मानो उस अनन्त नीलाकाश में किसी की मुस्कान देख कर हिमालय की हँसी मधुर ध्वनि करती हुई फूट उठी हो।

वि०—किसी को हँसते देख कर हँसी आ ही जाती है।

प्रभात-काल का वर्णन चल रहा है, अतः आकाश की हँसी का तात्पर्य इस स्थान पर सूर्य की उज्ज्वल आभा से है।

शिला संधियों में—शिला संधि—दो चट्टानों के बीच का रिक्त स्थान। दुर्भेद्य—जिसका भेदना कठिन हो। चारण—भाट।

अर्थ—चट्टानों के बीच में जो रिक्त स्थान था उसमें टकरा कर पवन गूँज भर रहा था। जैसे किसी सम्राट् के गुणों का वर्णन कोई भाट करता है उसी प्रकार उस गूँज से पवन यह प्रचार करता प्रतीत होता था कि इस पर्वत को कोई भेद नहीं सकता, यह अविजित है, यह दृढ़ है।

पृष्ठ ३०

सध्या घनमाला—घनमाला—बादलों का समूह। छींट—रंग-बिरगा बेल-बूटेदार कपड़ा। गगन चुम्बिनी—आकाश को चूमने वाली, बहुत ऊँची। शैल श्रेणियाँ—पर्वत की चोटियाँ। तुषार—बर्फ। किरीट—मुकुट।

अर्थ—हिमालय की चोटियाँ ऊँची बहुत थीं मानो आकाश को छू रही हों। उन पर घिरे सध्या के रग-बिरगे बादल ऐसे लगते थे मानो उन्होने छींट की चादर ओढ़ ली है और बर्फ उन पर ऐसा प्रतीत होता था जैसे उनके शीश का मुकुट हो।

वि०—प्रकृति मे जहाँ चारो ओर की परिस्थिति को सूत्र मे गूँथ दिया जाता है उसे सश्लिष्ट या चित्रमय चित्रण कहते हैं। यह वर्णन वैसा ही है। कहाँ बर्फीली चोटियाँ और कहाँ रगीन बादल! पर सबको मिलाकर मुकुट धारण किये एक रानी का चित्र आँखों के सामने आता है। इस प्रकार के चित्र अकित करने के लिए बड़ी क्षमता की आवश्यकता है।

विश्व मौन गौरव—प्रतिनिधि—प्रतिमूर्ति (Representative)। विभा—काति। प्रागण—आँगन।

अर्थ—बर्फ से ढँकी वे चोटियाँ ऐसी लगती थी मानो काति से भरी हुई ससार के मौन गौरव और महत्व की प्रतिमूर्तियाँ हिमालय के विस्तृत आँगन में चुपचाप बैठी सभा कर रही हैं। भाव यह कि हिमालय की चोटियों के दर्शन से शाति झरती थी, गौरव टपकता था, महत्व बरसता था।

वह अनत नीलिमा—व्योम—आकाश। दूर-दूर—विस्तृत। भ्रात—भूला रहना, अपने को बहुत कुछ समझना।

अर्थ—आकाश का वह अनन्त नीलापन जिसकी शाति यद्यपि जड़ता की दशा को पहुँच गई है, पर जो पृथ्वी से केवल बहुत ऊँचा तथा अधिक विस्तृत होने के कारण अभावमय (सूना) होने पर भी अपने को बहुत कुछ समझता है।

वि०—यहाँ कवि आकाश और पृथ्वी की तुलना करना चाहता है। यह सत्य है कि अनन्त नीलिमा से भरा गगन पृथ्वी से आकार मे बड़ा भी है और ऊँचा भी। पर वह केवल अभावमय है। आकाश सूना है। जिसे आकाश

कहते हैं वह कोई वस्तु है ही नहीं। दृष्टि सूने में इससे आगे देख नहीं सकती, अतः धुँधलापन घना होकर नीला-सा प्रतीत होता है। वहाँ शांति है, पर जड़ वस्तुओं की सी जिसका कोई मूल्य नहीं है। पृथ्वी छोटी और नीची है, पर उसमें अनन्त वैभव है।

उसे दिखाती—उल्लास—आनन्द। अनान—सरल। तुग—ऊँचा। सुदर—सुडौल। उठान—चोटियाँ।

अर्थ—हिमालय की वे सुडौल चोटियाँ मानो विश्व में व्याप्त आनन्द की ऊँची-ऊँची लहरें थीं जो आकाश को यह बतला रही थीं कि तू जहाँ जड़ और अभावपूर्ण है वहाँ जगत् में सुख है, हास्य है, सरल प्रसन्नता है।

थी अनत की गोद—अनन्त—विस्तृत पर्वत। विस्तृत—लम्बी-चौड़ी। गुहा—गुफा। रमणीय—मनोरम। वरणीय—रहने योग्य।

अर्थ—वहीं एक लम्बी-चौड़ी मनोरम गुफा थी जो उस विस्तृत पर्वत की गोद जैसी लगती थी। उसमें मनु ने अपने रहने योग्य एक सुन्दर स्वच्छ स्थान बनाया।

पृष्ठ ३१

पहला संचित अग्नि—संचित—इकट्ठी की गई। द्युति—प्रकाश।

अर्थ—निकट में ही किसी प्रकार पहले से इकट्ठी की गई अग्नि जल रही थी जिसकी आभा सूर्य की किरणों के समान फीकी थी। उस आग को मनु ने सुलगाया तो वह शक्ति और जागरण का चिह्न बन कर धक्-धक् ध्वनि करती हुई जलने लगी।

वि०—मनु के प्रज्ज्वलित करने से पहले आग मंद थी, अत अशक्त और सोयी हुई थी, पर जब यज्ञ-कर्म के लिए उन्होंने उसे धधकाया तो वह जग उठी और शक्तिमयी हो गयी।

जलने लगा निरंतर—अग्निहोत्र—हवन, यज्ञ। समर्पण—लीन करना, लगाना।

अर्थ—समुद्र के किनारे मनु नित्य हवन करते। इस प्रकार अत्यन्त धैर्यपूर्वक अपने जीवन को उन्होंने तप करने में लगाया।

सजग हुई फिर—सुर-संस्कृति—संस्कार। देवयजन—देवताओं के निमित्त

किया गया यज्ञ । वर-श्रेष्ठ, सात्विक । माया—आकर्षण । कर्ममयी—कर्मकाड सम्बन्धी । शीतल—मधुर । छाया—प्रभाव ।

अर्थ—मनु मे दैवी सस्कार फिर जाग उठे । देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जब वे यज्ञ करने लगे तो यह सात्त्विक आकर्षण उन पर कर्मकाड का मधुर प्रभाव डालने लगा अर्थात् मनु फिर एक बार कर्मकाड में प्रवृत्त हुए ।

वि०—यज्ञादिक क्रियाओ में लीन होना कर्मकाड कहलाता है । यज्ञ करने से मन शुद्ध होता है जिससे प्राणी उपासना करने के योग्य बनता है ।

उठे स्वस्थ मनु—स्वस्थ—स्फूर्तियुक्त । अरुणोदय—सूर्य का उदय होना । कान्त—आभाभरा । लुब्ध—मुग्ध । विभूति—वैभव, सौंदर्य । मनोहर—रम्य ।

अर्थ—तप समाप्त करने पर मनु उसी प्रकार स्फूर्तियुक्त होकर उठे जैसे आकाश के कोने मे आभाभरा बालसूर्य उगता है । वे प्रकृति के रम्य, शान्त सौंदर्य को मुग्ध दृष्टि से देखने लगे ।

पृष्ठ ३२

पाक यज्ञ करना—पाक यज्ञ—नवीन घर मे रहने के लिए उसकी शुद्धि और अपने कल्याण के निमित्त किया जाने वाला यज्ञ । शालि—धान । वह्नि ज्वाला—अग्नि की लपटें ।

अर्थ—मनु ने निश्चय किया कि वे पाक-यज्ञ करेंगे, अतः उसके लिए वे खेत से बीन कर धान लाये । उसके उपरात यज्ञ प्रारम्भ हुआ और अग्नि की लपटों ने ऊपर धुएँ की एक तह जमा दी ।

शुष्क डालियो से—अर्चियाँ—लपटे । समिद्ध—प्रदीप्त हो उठीं । समृद्ध—भर जाना ।

अर्थ—वृक्षों की सूखी डालों से अग्नि की लपटे प्रदीप्त हो उठी । आहुतियो के सुगधित नवीन धुएँ से वन और आकाश भर गया ।

और सोचकर—लीला रचना—कुछ करते हुए दिन बिताना ।

अर्थ—और अपने मन मे यह सोच कर कि जिस प्रकार प्रलय के आघात से मे बच गया हूँ, उसी प्रकार कुछ आश्चर्य नही यदि कोई दूसरा प्राणी भी कही जीवन बिता रहा हो ।

अग्निहोत्र अवशिष्ट—अग्निहोत्र—यज्ञ, हवन, होम। अवशिष्ट—बचा हुआ। तृप्त—प्रसन्न। सहज—आंतरिक।

अर्थ—यज्ञ की समाप्ति पर जो अन्न बचता उसमें से वे थोड़ा-सा दूर पर कहीं रख आते थे। इस अनुमान से उन्हें बड़ा आंतरिक सुख मिलता था कि कोई अपरिचित प्राणी इसे पाकर संतुष्ट होगा।

वि०—निष्काम भाव से जो उपकार किया जाता है उसके बोध पर अत्यन्त निर्मल हार्दिक आनन्द की प्राप्ति होती है। ऐसे सुख को सहज सुख कहते हैं।

दुख का गहल—गहन—गहरा, भारी। पाठ पढ़ना—ज्ञान होना। सहानुभूति—दूसरे के दुःख का अनुभव करना। नीरवता—शांत मन। मग्न—तन्मय।

अर्थ—उन्होंने स्वयं भारी दुःख उठाया था, इसी से वे दूसरे के दुःख में दुःखी होना सीख गये थे। इधर अकेले बैठे वे अपने शांत मन में गहरे उतर कर तन्मय हो जाते थे।

पृष्ठ ३३

मनन किया करते—मनन—चिंतन।

अर्थ—प्रज्ज्वलित यज्ञकुंड के निकट बैठकर वे चिंतन करते रहते थे। वहां उस सूनेपन में बैठे वे ऐसे लगते मानों स्वयं तप ही शरीर धारण करके तप कर रहा हो।

नोट—तपस्या का प्रयोग यहां कवि ने पुल्लिंग में किया है जो अशुद्ध है। पुल्लिंग शब्द का ही प्रयोग करना था तो ऐसी दशा में 'तप' शब्द को किसी प्रकार पंक्ति में खपाना था।

फिर भी धड़कन—धड़कन—लालसाओं का खटकना। अस्थिर—अनिश्चित। दीन—अभावपूर्ण।

अर्थ—इतने पर भी उनके हृदय में कभी लालसाएं खटकतीं, कभी कोई नवीन चिंता उठती। इस प्रकार उनका दैनिक जीवन, जो एक प्रकार से अभावपूर्ण और अनिश्चित था, दयनीय होने लगा।

पृष्ठ ३५

नीचे दूर दूर—विस्तृत—फैला। उर्मिल—लहराता हुआ। व्यथित—क्षुब्ध। अधीर—चचल। अतरिक्ष—शून्य। व्यस्त—फैला या भरा। चद्रिका निधि—चाँदनी का सागर।

अर्थ—नीचे दूर तक लहराता हुआ क्षुब्ध चचल समुद्र फैला हुआ था और ऊपर वैसा ही चाँदनी का गम्भीर सागर भरा था।

खुली उसी रमणीय—रमणीय—सुन्दर। अलस आँखें—सुप्त। मधु—रस। पाँखें—पखुड़ियाँ।

अर्थ—उस सुन्दर दृश्य के प्रभाव से मनु की जो चेतना अभी तक सुप्त थी वह जाग्रत हो गयी। जैसे फूल की सरल पखुड़ियाँ खिल जाती हैं, उसी प्रकार उनके हृदय के सरल भाव खिलने लगे।

वि०—वातावरण का बहुत भारी प्रभाव मन पर पड़ता है। सगीत, रम्य उद्यान, खिली चाँदनी आदि प्रेम के भावों को 'उद्दीप्त' करते हैं। पुष्प-वाटिका मे सीता को देखकर राम जैसे सयमी पुरुष का मन भी डाँवाडोल हो गया था।

व्यक्त नील में—व्यक्त—खुले हुए। नील—नीलाकाश। चल—चचल। प्रकाश—चद्रमा की किरणें। कपन—सिहरन। अतीन्द्रिय—अलौकिक। स्वप्न-लोक—कल्पनालोक।

अर्थ—खुले और नीले आकाश से आने वाली चद्रमा की किरणें जब मनु के शरीर को स्पर्श करती तब एक सिहरन उत्पन्न होती जिससे उन्हें एक प्रकार का सुख मिलता था। ऐसी स्थिति में एक रहस्यपूर्ण, अलौकिक, मधुर कल्पना-लोक मे मनु का मन पहुँच जाता।

वि०—चाँदनी रातो मे बैठकर मनु का मन प्रेम के काल्पनिक ससार में विचरण करने लगता। कल्पना तो सत्य नहीं, इसलिए जो रम्य मूर्ति आँखों मे झूलती उसे छूने में असमर्थ होने के कारण 'अतीन्द्रिय' लिखा। वह सदैव साथ नहीं रह सकती थी इसी से 'स्वप्न' समझा, पर उसके छाया-दर्शन से भी सुख मिलता था, इसी से 'मधुर' कहा और वह किसी परिचित-व्यक्ति की न थी इसी से 'रहस्यपूर्ण' या अस्पष्ट माना।

नव हो जगी—अनादि—हृदय में स्थायी रूप से रहने वाली। वासना—

कामेच्छा । मधुर—अनुकूल, तृप्तिदायिनी । प्राकृतिक—स्वाभाविक । द्वन्द्व—दो । सुखद—सुखदायी ।

अर्थ—जैसे भूख का लगना स्वाभाविक और शरीर के अनुकूल है उसी प्रकार हृदय में स्थायी रूप से रहने वाली तृप्तिदायिनी कामेच्छा मनु के मन में एक बार फिर से जाग उठी। उन्होंने अनुमान किया कि दो प्राणियों के साथ-साथ रहने से बड़ा सुख मिलता होगा और वे इच्छा करने लगे कि वे किसी के साथ रहते तो सुखी होते। यह इच्छा उन्हें अत्यन्त स्वाभाविक लगी।

पृष्ठ ३६

दिवा रात्रि या—दिवा—दिन। मित्र—सूर्य। मित्रबाला—उषा। वरुण—समुद्र। वरुणबाला—चन्द्रमा। अनन्त—अनन्त। शृंगार—सौंदर्य। ऊर्मिल—लहरों वाले, यहाँ उलझनमय।

अर्थ—मनु दिन में उषा के और रात में चन्द्रमा के अनन्त सौंदर्य को देखते। उन्हें लगता कि समुद्र की लहरों के समान जीवन की उलझनों को जब पार कर लेंगे तब किसी से उनका मिलन अवश्य होगा।

वि०—मान लीजिए कि समुद्र के इस किनारे प्रेमी खड़ा है। बीच में लहरें हैं। दूसरे किनारे पर प्रेमिका है। उस तक पहुँचने के लिए पुरुष को सागर की लहरों को चीरना होगा। अन्य उपाय नहीं है। इसी प्रकार जीवनपथ में पड़ने वाली उलझनों को सुलझा कर ही हम प्रेमास्पद से मिल पाते हैं। मनु के जीवन की सब से बड़ी उलझन तो यह है कि चारों ओर किसी प्रेमिका का अस्तित्व तक नहीं। यह उलझन दूर हुई कि मिलन हुआ।

तप से संयम—तृप्ति—प्रेम का प्यासा। अट्टहास कर उठा—जोर पकड़ गया। रिक्त—सूना हृदय। तम—निराशा। सूना राज—प्रेम का सूनापन।

अर्थ—मनु तपस्या काल में संयम से रहे थे जिससे उनमें शारीरिक बल की वृद्धि हुई थी। अतः उनका स्वस्थ शरीर प्रेम की प्यास से अकुला उठा। उनका मन किसी प्रेमिका के न मिलने से बहुत दिन से सूना था और अब तो उनकी अधीरता, निराशा और प्रेम का सूनापन और जोर पकड़ गये।

वि०—प्रेम मन की वस्तु है, पर शरीर के स्वास्थ्य से भी उसका बड़ा सम्बन्ध

नहीं। यह नित्य परिचय का विषय है कि कोई युवक किसी सफेद बाल वाली बुढ़िया के प्रति आकर्षित होते नहीं देखा गया।

धीर समीर परस—धीर—मंद। समीर—पवन। परस—स्पर्श। श्रात—थका-सा। अलक—बाल। मधुगन्ध—सरस और सुरभित।

अर्थ—उनके थके से शरीर को जब मन्द पवन ने आकर स्पर्श किया तब वह रोमाञ्चित हो उठा और एक प्रकार की आकुलता उसमें भर गई। जैसे किसी के उलझे बालों को सुलझाते समय उनसे सरस गध की चचल लहरें फूटें उसी प्रकार आशा के भीतर से मनु के मन को अधीर करने वाली सुख की एक लहर उठी।

वि०—श्रात शरीर—युवा काल में मन के भावों का दब जाना या कुचला जाना शरीर को सबसे अधिक हानिकारक सिद्ध होता है। ऐसी दशा में जब मन का उत्साह भङ्ग हो जाता है, तब शरीर भी स्वतः शिथिल-सा रहने लगता है। जब जीवन में कुछ है ही नहीं तब इच्छा होती हैं कि जहाँ पड़े हैं वहीं पड़े रहें। पर रम्य प्रकृति अपना थोड़ा बहुत प्रभाव डाल ही देती है।

'उलझी आशा' इसलिए कहा कि मनु की प्रेमिका अभी निश्चित नहीं। वह किसी को जानता-पहचानता नहीं। पर प्रेम की कल्पना मात्र से भी सुख मिलता है जैसे युवक या युवतियाँ जब एक-दूसरे को जानते-पहचानते तक नहीं, तब भी किसी की एक अस्पष्ट-सी कल्पना करके सुखी हो लेते हैं।

मनु का मन—सवेदन—सहानुभूति प्राप्त करने की इच्छा। कटुता—पीड़ा।

अर्थ—कोई मेरे दुख के प्रति भी सहानुभूति दिखाने वाला होता, इस चोट (अभाव के आघात) से मनु का मन व्याकुल हो गया। हमारे दुःख को बाँटने वाला होता यह भावना ससार में मनुष्य के जीवन को पीड़ा से पीस डालती है।

वि०—मनुष्य के दुःख का सबसे प्रमुख कारण यह है कि वह किसी न किसी के प्यार का भूखा है। यह प्यार मिलता नहीं, इसी से जीवन में मधुरता का अभाव है।

पृष्ठ ३७

आह कल्पना का—स्वप्न—कल्पना। दल—समूह। छाया—हृदय के भीतर। पुलकित—प्रसन्न।

अर्थ—यदि केवल कल्पना से काम चल जाता तो यह संसार बड़ा सुन्दर होता, बड़ा मधुर होता। उस दशा में प्रसन्नता प्रदान करने वाली सुख की कल्पनाएँ हृदय के भीतर उठतीं और विलीन हो जातीं। कोई बाधा न होती।

वि०—जीवन में केवल कल्पना से काम नहीं चलता, यही तो दुःख है। प्रेम में इच्छा होती है कोई पास बैठे, कोई बात करे, कोई अपने हाथ से खिलावे। कोई कल्पना में बैठ जाय, कल्पना में बातें कर जाय, कल्पना में खिला जाय, इतने से तो मन तुष्ट नहीं होता।

संवेदन का और—संवेदन—प्रेम प्राप्ति। संघर्ष—विरोध। गाथा—कहानी। बकता—व्यर्थ सुनाता।

अर्थ—प्रेम-प्राप्ति का हृदय से यदि विरोध न होता, तो पृथ्वी में कहीं कोई अपने अभाव और असफलताओं की कहानियाँ व्यर्थ न सुनाता।

वि०—हृदय चाहता है प्रेम। प्रेम मिलता नहीं। यही विरोध है।

'बकने' शब्द का भाव यह है कि हम अपनी निराशा की कहानी सुना रहे हैं, पर ध्यान देकर कोई उसे सुनता नहीं। उसे सुनाना न सुनना बराबर है।

कब तक और—निधि—हृदय का भेद।

अर्थ—मनु कहने लगे—हे मेरे जीवन! मैं कितने दिन तक अभी और अकेला रहूँगा, इस बात का उत्तर दो। अपने प्राणों की कहानी मैं किसे सुनाऊँ! अच्छा, तुम्हें चुप रहना चाहिये। अपने हृदय का भेद किसी को बताना ठीक नहीं। उससे कुछ लाभ नहीं।

रहिम ने कहा है—

> रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखिये गोय।
> सुनि अठिलैहैं लोग सब बाँटि न लैहैं कोय।

तम के सुन्दरतम—तम—अन्धकार। रहस्य—आश्चर्य। कान्ति—किरण

रजित—शोभा की किरणों से युक्त, आभाभरा। व्यथित—ताप-दग्ध। सात्विक—शात, निर्विकार।

अर्थ—हे आभाभरे तारे, तुम अधकार का सबसे रम्य आश्चर्य हो। अर्थात् इस अन्धकार में ऐसा उजला तारा कहाँ से आता है यह एक बहुत बड़े आश्चर्य की बात है। तुम नवीन रस से पूर्ण ऐसी बूँद हो जो दुःखी संसार को थोड़ी निर्विकार शीतलता प्रदान करती है।

वि०—'व्यथित विश्व' को बाह्य और आतरिक दोनों अर्थों में समझना चाहिए। जो ससार दिन में सूर्य के ताप से दग्ध था वह तारे की छाया में शीतलता प्राप्त करता है और जिनका मन दुखी है उन्हें भी उसके रम्य दर्शन से थोड़ी शान्ति मिलती है।

'बिंदु' शब्द की यह विशेषता है कि जहाँ तारा आकार में बूँद जैसा प्रतीत होता है वहाँ शीतलता का 'बिंदु मात्र' है। शीतलता का सागर तो चन्द्रमा है।

पृष्ठ ३८

आतप तापित जीवन—आतप—गर्मी, दुःख। जीवन—जल, जिन्दगी। छाया का देश—घनी शीतलता। अनन्त—असख्य। गणना—गिनती।

अर्थ—हे तारे जैसे तुम गर्मी से तप्त जल को शीतलता प्रदान करते हो, उसी प्रकार दुःख से दग्ध जीवन को सुख और शान्ति की घनी शीतलता देते हो। गिनती में तुम असख्य हो। तुम्हारे उदित होते ही विश्राम की वेला आती है, अतः तुम मधुरता के सूचक हो।

आह शून्यते—शून्यते—शात रात्रि। रजनी—रात। इन्द्रजाल-जननी—जादूभरी।

अर्थ—हे शात रात्रि चुप रहने की यह भारी चतुराई तूने क्यों ग्रहण की है? जादूभरी रात इन दिनों तू इतनी मधुर मुझे क्यों प्रतीत होती है?

वि०—चुप रहने से एक तो भेद नहीं खुलता, दूसरे आकर्षण बढ़ता है इसी से चुप रहना एक कौशल है। मनु रात से अनेक प्रश्न करते हैं, पर वह उत्तर नहीं देती। यदि वह अपना रहस्य खोल दे तो फिर उसे पूछे कौन?

से नियति के अत्याचारों में कोई अतर पड़ सकता है। पृथ्वी पर उसे जितना अत्याचार करना है उतना करेगी ही।

पृष्ठ ३६

विश्व कमल की—विश्व—ससार। मृदुल—कोमल। मधुकरी—भ्रमरी। टोना—जादू।

अर्थ—जिस प्रकार कोई कोमल भ्रमरी किसी कोने से आकर फूल को चूमती और उसे मोहित कर देती है उसी प्रकार हे रात! यह तो बतला कि तू किस कोने से इस विश्व को चूमने आती है? तेरे चुम्बन से जगत् निद्रा-मग्न होने लगता है, अत. ऐसा लगता है कि कहीं दूर बैठा हुआ कोई तेरे बहाने ससार को मोहित करने वाला टोना (जादू) पढ़ रहा है।

वि०—इस विस्तृत विश्व पर ऊपर से उतरती हुई श्यामा रजनी वास्तव में कमल पर भ्रमरी-सी प्रतीत होती है।

किस दिगत रेखा—दिगत रेखा—दिशा का कोना। सचित—एकत्र, इकट्ठी। सिसकी—आह। समीर—वायु। मिस—बहाने।

अर्थ—ठडी हवा को चलते देख मनु कहने लगे—हे रात्रि! दिशा के किस कोने में इतनी आहभरी साँसें तुमने एकत्र कर रखी थीं जो अब छोड़ रही हो? यह वायु नहीं चल रही, तुम तीव्र वेग से किसी से मिलने जा रही अतः हाँफने लगी हो। बताओ तो किससे मिलना है?

गया ? इसे सँभाल। इससे तारा रूपी मणियाँ गिर कर बिखर गई हैं। अरी मस्त, अरी चुलबुली, उन्हें तो समेट ले।

फटा हुआ था—वसन—वस्त्र। अकिञ्चन—दरिद्र।

अर्थ—हे यौवन से मदमत्त रात तेरा नीला वस्त्र क्या स्थान-स्थान पर फटा हुआ है ? ऐसा न होता तो साड़ी के उन फटे हुए अशों के भीतर से तारों के रूप में तेरा गात वहाँ कैसे दिखाई पड़ जाता ? इतना तो समझ कि तुझे पता तक नहीं है और यह दरिद्रजगत् जिसने रम्य रूप के कभी दर्शन नहीं किए तेरी भोली-भाली छवि को घूर-घूर कर ताक रहा है।

वि०—यदि किसी सुदरी की नीली साड़ी कहीं से फटी हो तो उसमें होकर भीतरी अग चमक उठेगा ही और जिस दरिद्र ने कभी रूप देखा ही नहीं वह शिष्टता का ध्यान छोड़ उधर आँख फाड़ कर ताकने भी लगेगा।

फटे वस्त्र में से भीतरी अङ्ग के दमकने और दिखाई पड़ने की कल्पना श्री मैथिलीशरण गुप्त ने एक भिन्न स्थिति में की है—

> इसी समय पौ फटी पूर्व में पलटा प्रकृति पटी का रग,
> किरण कटकों से श्यामाम्बर फटा, दिवा के दमके अङ्ग।

ऐसे अतुल अनंत—अतुल—जिसकी समता न हो सके। अनत—असीम, जिसका अन्त न हो। विभव—ऐश्वर्य। जीवन की छाती—जीवन का मध्य और मार्मिक अश अर्थात् यौवन। दाग—आघातों के चिह्न।

अर्थ—रात्रि मे उदासी की कल्पना करते हुए मनु कहते हैं—चाँदनी और तारागणों के रूप में तुम्हारा ऐसा ऐश्वर्य है कि न जिसकी कोई समता है और न जिसका कोई अत। पर इससे तुम विरक्त क्यों हो ? क्या तुम्हारे यौवन के दिनो मे आघातों के जो चिह्न शेष रह गए हैं उन पर सोच-विचार करती हुई तुम सब कुछ भूल गई हो ?

मैं भी भूल गया—

अर्थ—जैसे तू भूल गई है वैसे ही अपने अतीत जीवन की घटनाओं को आज मे भूल-सा गया हूँ। स्मरण नहीं कि जिस भावना में डूब कर मेरा मन सुख की नींद में मग्न था वह प्रेम-भावना थी, मधुर पीड़ा की स्थिति थी, मेरा भ्रममात्र था या और कोई ऐसी वृत्ति थी जिसे मैं नाम नहीं दे पा रहा।

पृष्ठ ४९

मिले कहीं वह—वह—सुख ।

अर्थ—हे रजनी ! तुम तो सभी स्थानों पर घूमती हो । अतः मेरा खोया सुख यदि तुम्हें कहीं अचानक पड़ा मिल जाय तो उसे लापरवाही से न फेंक देना । यदि तुमने उसे मुझे वापस ला दिया तो उसका कुछ अंश मैं कृतज्ञता स्वरूप तुम्हें भी दूँगा । इतना तुम विश्वास रखना ।

वि०—प्रलय में सब कुछ नष्ट होने पर मनु का सुख भी नष्ट हो गया । किसी नवीन प्रेमिका की प्राप्ति पर यदि वह सुख फिर लौट आया, तो जीवन मधुर हो जायगा । उस दशा मे उन दोनों को रातें प्यारी होंगी । रातें उनकी संगिनी होंगी, रातें फिर सूनी न रहेंगी । यह एक प्रकार से रातों को सुख का अंश देना हुआ ।

श्रद्धा

कथा—नित्य की भाँति एक दिवस मनु अपने विचारों मे लीन बैठे थे कि अकस्मात् किसी ने आकर पूछा . इस जनहीन प्रदेश को अपनी रूपछटा से आलोकित करने वाले तुम कौन हो ? इस मधुर वाणी को सुनते ही मनु ने जो दृष्टि उठाई तो देखा कि दीर्घ आकार की एक विलक्षण-सौंदर्य-सपन्न बालिका उनके सामने खडी है। नील रोओं वाली भेड़ो के चिकने चर्म-खडों से ढका उसका अर्द्ध-नग्न शरीर ऐसा लगता था जैसे काले बादलों के वन मे बिजली के फूल खिल उठे हों और उसकी मुस्कान तो इतनी मधुर थी कि मनु देखते ही रह गए। यह श्रद्धा थी जिसका वास्तविक निवास-स्थान,गाधार-प्रदेश था। हिमालय के दर्शन के लिये वह घर से निकल पड़ी थी और एक वृक्ष के नीचे अन्न एकत्र देख उसने अनुमान किया था कि प्रलय होने पर भी कोई व्यक्ति इधर निकट मे अभी जीवित है।

मनु ने कहा, "मैं एक अभागा व्यक्ति हूँ जिसके जीवन का कोई निर्दिष्ट लक्ष्य नहीं। भाग्य अब मुझसे जो कराये वही करना होगा, और सच तो यह है कि प्राणी सब ओर से विवश है। कुछ भी तो ससार में स्थायी नहीं। मैंने अपनी आँखों ऐश्वर्य के शव पर विनाश का क्रूर नृत्य देखा है। मुझे निश्चय हो गया है कि जीवन का अन्त सदैव घोर निराशा मे होता है।"

श्रद्धा बोली, "परिस्थितियों के चक्र मे पिस कर कभी-कभी ऐसी अशुभ भावनाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, पर इन्हें पोषित करना अनुचित है। तुम्हारा अतीत दुःखमय रहा, यह सत्य है, पर तुम उसी प्रकार से भविष्य की भी व्यर्थ कल्पना किस आधार पर करते हो ? वह सुखमय हो सकता है। जीवन का उद्देश्य निश्चित रूप से वैराग्य नहीं है। जब स्वय भगवान् रात-दिन सृष्टि के परिचालन मे व्यस्त हैं, तब उन्हीं द्वारा निर्मित प्राणी कर्म-क्षेत्र से विमुख हो

बैठे, यह तो समझ में नहीं आता। दुःख के रहस्य को तुमने समझा नहीं। वह मनुष्य को सहृदय बनाकर मनुष्य के निकट खींचता है। जीवन में यदि केवल सुख ही सुख होता, तो भी प्राणी उससे ऊब जाते। वस्तुओं के स्थायित्व को लेकर तुम क्या करोगे ? जो वस्तु जीर्ण हो चुकी है, या जिसका उपयोग नष्ट हो चुका है, उसे मिट जाने दो। परिवर्तन को नित्य नवीनता के रूप में देखो। सृष्टि विकासशीला है इसी से वह दिन प्रतिदिन एक से एक अच्छी वस्तु का निर्माण करती बढ़ रही है। एक जाति के मिटने पर दूसरी जाति के जन्म लेने का यही तात्पर्य है। कितनी सुन्दर, कितनी विभूतियों से भरी यह सृष्टि है ! तुम मन में उत्साह भर कर इसका उपभोग करो। किसी का एकाकी जीवन कभी सफल नहीं रहा, अतः बिना किसी प्रकार की हिचक के तुम्हारे जीवन में सुख भरने के लिए मैं तुम्हारे साथ आजीवन रहूँगी। देवताओं से अपने जीवन में भूलें हुई थीं। उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। मैं चाहती हूँ कि आगामी मानव-जाति एक ऐसी मानव-संस्कृति की प्रतिष्ठा करे जिसमें संयम के साथ मन के सभी मनो-विकारों के विकास के लिये पूर्ण अवकाश मिले। यह जाति सभ्य और शक्ति-शालिनी हो, क्योंकि भगवान् का स्पष्ट आदेश है : शक्तिशाली हो, विजयी बनो।'

पृष्ठ ४५

कौन तुम—संसृति—संसार। जलनिधि—समुद्र। तरंगों—लहरों, आघातों। मणि—रत्न, भव्य पुरुष। निर्जन—सूनापन। प्रभा—कांति। अभिषेक—जग-मगाना, शोभाशाली बनाना।

एक दिन मनु जब उदास बैठे थे अकस्मात् किसी ने आकर पूछा—

अर्थ—जिस प्रकार लहरें समुद्र के तल से मणि को निकाल कर तट पर पटक देती हैं, उसी प्रकार सांसारिक आघातों से ठुकराये हे भव्य पुरुष तुम कौन हो ? जैसे वह मणि अपनी कांति की किरणों से सूनेपन को जगमगा देती है, उसी प्रकार तुम भी चुप-चाप बैठे इस जनहीन स्थान को अपनी सुन्दरता की छटा से शोभाशाली बना रहे हो।

वि०—राजा को सिंहासन पर बिठाते समय कर्मकाण्डी ब्राह्मण मांगलिक मन्त्र पढ़ते हुए उसके शरीर पर जल के छींटे मारते हैं। इसे अभिषेक कहते हैं।

यहाँ 'निर्जन' सम्राट् है, 'प्रभा की धारा' अभिषेक का जल, मनु जल के छींटे देने वाले। यह दूसरी बात है कि इस दृश्य को देखने के लिए भीड़ उपस्थित नहीं। इसी से यह अभिषेक-कर्म चुप-चाप हो रहा है।

मधुर विश्रात—विश्रात—शात। रहस्य—भेद। मौन—चुप।

अर्थ—तुम्हारी आकृति से मधुरता टपकती है और कुछ ऐसे शान्त भाव से तुम इस एकान्त में बैठे हो जैसे ससार के रहस्य को तुमने पूर्ण रूप से समझ लिया हो! तुम्हारे मौन (चुप रहने) से जहाँ तुम्हारी बाहरी सुन्दरता का पता चलता है वहाँ यह भी झलकता है कि तुम्हारा हृदय करुणा (कोमलता) से भरा है और तुम्हारे मन की सारी चचलता शान्त हो गई है।

वि०—मन को अशान्त रखने वाले दो कारण हैं—लोक में नारी के रूप का आकर्षण जो मन को चचल रखता है और अध्यात्म के क्षेत्र में इस तत्व की जिज्ञासा कि यह संसार क्या है? इसकी उत्पत्ति क्यों हुई? आदि। जब रूपासक्ति मिट जाती है और अपने तथा सृष्टि के स्वरूप का ज्ञान प्राणी को हो जाता हे तब एक अपूर्व शान्ति की उपलब्धि उसे होती है। यहाँ मनु के मुख पर शान्ति की झलक पा यह समझ लिया गया है कि इसका मन अचचल है और तत्व-ज्ञान इसे हो चुका है।

सुना मनु ने—मधु गुजार—मधुर वाणी। मधुकरी—भ्रमरी। प्रथम कवि—वाल्मीकि।

अर्थ—ग्रीवा झुकाये कमल के समान कोमल मुख की यह वाणी मनु ने प्रसन्न होकर सुनी। उसमें भ्रमरी के गान जैसी मिठास थी और वह अनायास वैसे ही निकल पड़ी थी जैसे एक दिन वाल्मीकि के मुख से कविता का प्रथम सुन्दर छद निकल पड़ा था।

वि०—मुख को जब कमल माना है तब उसकी वाणी को भ्रमरी की गूँज मानना उपयुक्त ही है।

वाल्मीकि की काव्य-रचना के मूल में यह प्रसिद्ध है कि एक दिन उन्होंने क्रौंच के क्रीड़ाशील जोड़े में से एक को किसी व्याध के बाण से आहत होकर पृथ्वी पर गिरते देखा। करुणा से उनका हृदय भर आया और उन्होंने जो शाप

उस समय उस वधिक को दिया वह काव्य बन कर अनुष्टुप छंद के रूप में प्रकट हुआ। वह छंद यह था—

मा निषाद ! प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

वैसे हमारे आदि ग्रंथ वेद भी छंद-बद्ध हैं, पर वे विवरण से भरे पड़े हैं। वाल्मीकि की रामायण लौकिक छंदों में भावपूर्ण (रसात्मक) रचना होने से आदि महाकाव्य कहलाती है। रामायण उपर्युक्त घटना का ही जैसे परिवर्तित विस्तार है। रावण रूपी वधिक ने क्रौंच-क्रौंची के समान राम-सीता को एक दूसरे से पृथक कर दिया।

वाल्मीकि के प्रसंग में भी, और यहाँ भी वाणी सहानुभूति के कारण अनायास निसृत हुई। इससे पता चलता है कि भावनाओं का विस्तार पीड़ा में ही अच्छा होता है।

एक झिटका-सा—झिटका—धक्का। लुटे से—आकर्षित होकर। कुतूहल—उत्सुकता।

अर्थ—मनु के मन में प्रसन्नता का एक धक्का-सा लगा अर्थात् इन शब्दों ने मनु को सहसा प्रसन्न कर दिया। जैसे कोई किसी की मूल्यवान् वस्तु को लेकर भागा जा रहा हो, वैसे ही मनु को लगा कि उनके हृदय को कोई खींच रहा है, अतः आकर्षित होकर उन्होंने इधर-उधर दृष्टि डाली। उन्होंने जानना चाहा, यह मधुर वाणी किसकी है ? अपने मन की इस उत्सुकता को वे अधिक समय तक दबाए न रह सके।

पृष्ठ ४६

और देखा वह—इन्द्रजाल—जादू। अभिराम—मोहक। कुसुम वैभव—फूलों से भरी।

अर्थ—उन्होंने ऐसी सुन्दर मूर्ति देखी जो आँखों पर मोहक जादू डाल रही थी—आँखों को बड़ी आकर्षक लगती थी। उसका गात ऐसा था जैसे फूलों से भरी कोई लता हो या फिर कोई श्याम बादल जो चाँदनी से घिरा हो।

वि०—'चंद्रिका से लिपटा घनश्याम' से यह भ्रम न होना चाहिये कि प्रसाद की श्रद्धा श्याम वर्ण की थी। नीले रोम वाले चर्म-खंडों ने उसका शरीर

ढका था इसी से 'घन श्याम' शब्द लाए हैं। आगे की पंक्तियों में ही उसके शरीर को 'बिजली का फूल' बतलायेंगे।

हृदय की अनुकृति—अनुकृति—किसी वस्तु जैसे होना, अनुकरण, अनुसार। काया—शरीर। उन्मुक्त—खुला हुआ, सरल और संकीर्णता रहित। साल—शाल वृक्ष। सौरभ—सुगंध, गुण।

अर्थ—उसके उदार हृदय जैसा ही उसका बाहरी शरीर था। यदि शरीर लंबा था तो हृदय भी विशाल था, यदि शरीर खुला हुआ था तो हृदय भी सरल और संकीर्णता-रहित था। जैसे कोई छोटा-सा शाल वृक्ष जिससे गंध फूट रही हो सरस पवन के झोंकों से झूमता हुआ प्यारा लगता है, वैसे ही उस शरीर से भीनी गंध आ रही थी और लावण्य (मधुरता) से युक्त होने के कारण वह शोभाशाली प्रतीत होता था।

वि०—श्रद्धा के सम्बन्ध में भी शाल के ही समान 'मधु पवन क्रीड़ित' का अर्थ यह भी हो सकता है कि मधुर पवन उसके अङ्गों से अठखेलियाँ कर रहा था और 'हृदय की अनुकृति बाह्य' को अधिक खींचें तो श्रद्धा के हृदय को लेकर 'मधु पवन क्रीड़ित' का अर्थ होगा—उसके हृदय के मधुर भाव लहरा रहे थे तथा वह हृदय अनेक शुभ गुणों का भंडार था।

मसृण गांधार देश—मसृण—चिकने। गांधार—कंधार देश। मेष—भेड़। चर्म—चमड़ा। वपु—शरीर। कांत—सुन्दर। वर्म—आवरण।

अर्थ—गांधार प्रदेश की चिकने नीले रोओं वाली भेड़ों के चर्म से उसका आभायुक्त शरीर ढका था। उसके शरीर पर चर्म के वे टुकड़े ही कोमल आवरण (वस्त्र) का काम दे रहे थे।

'वह कोमल वर्म' मे एक वचन है और 'मेषों के चर्म ढक रहे थे' मे चर्म बहुवचन है। 'वह' मेषो के चर्म के लिये आया है, अत. व्याकरण की दृष्टि से यहाँ वचन-दोष है।

नील परिधान बीच—परिधान—आवरण, वस्त्र। मृदुल—कोमल। मेघ वन—बादलों के वन मे।

अर्थ—उस नीले आवरण मे उसका सुकुमार कोमल शरीर यहाँ-वहाँ से

खुला हुआ इस प्रकार शोभित था जैसे बादलों के वन में गुलाबी रंग के बिजली के फूल खिल रहे हों।

वि०—यहाँ 'नील रोओं वाले चर्म-खण्डों' के लिये 'बादल' और उनसे अनावृत—जैसे ग्रीवा के नीचे या नाभि के आसपास के—अंग के लिए 'बिजली के फूल' आया है। श्रद्धा ने कंधों, वक्ष और कटिप्रदेश को ही केवल ढका होगा। यह उदाहरण कितना उपयुक्त और रम्य है।

आह वह मुख—व्योम—आकाश। अरुण—लालिमायुक्त।

अर्थ—और उस सुन्दर मुख का वर्णन मैं कैसे करूँ? संध्या समय पश्चिम के आकाश में जब काले बादल घिर आते हैं और उन्हें चीरता हुआ लालिमा से युक्त सूर्य-मण्डल झाँकता हुआ जैसा शोभाशाली प्रतीत होता है, वैसा ही वह था।

वि०—यहाँ मुख के लिये 'अरुण रवि' और श्रद्धा के काले बालों के लिए 'घनश्याम' का प्रयोग हुआ है।

पृष्ठ ४७

या कि नव—इंद्रनील—नीलम। शृंग—चोटी। माधवी रजनी—वसंत की रात। अश्रांत—निरन्तर।

अर्थ—अथवा नीलम के उस छोटे से ज्वालामुखी पर्वत की चोटी पर जो अभी उमड़ने वाला नहीं, वसंत की रात में जैसे सुन्दर लपटें भीतर से फूट-फूट कर धधकती हैं, वैसी ही उस मुख की शोभा थी।

वि०—श्रद्धा की अवस्था थोड़ी है, इसी से उसे छोटा-सा पर्वत कहा। नील परिधान से उसका शरीर ढका है, इसी से उस पर्वत को नीलम का बताया। चोटी शब्द का प्रयोग उसके कन्धे से ऊपर के भाग के लिये किया। श्रद्धा का यौवन-काल है। इसी से उस पर्वत को वसंत की रात में धधकते देखा। ज्वालामुखी की कान्त लपटों को उसके मुख की आभा बताया। पर श्रद्धा ने अभी कहीं प्रेम नहीं किया है, यही कारण है कि उसके अन्तर के ज्वालामुखी (उद्दाम भावनाओं) को अचेत या सुप्त दिखलाया।

घिर रहे थे—अंस—कंधा। अवलम्बित—लटके हुये। घन शावक—छोटे बादल। विधु—चन्द्रमा।

अर्थ—कधों तक लटकने वाले उसके घुँघराले बाल मुख के पास घिर आए थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो काले सुकुमार मेघ-खण्ड चन्द्रमा के निकट अमृत पान करने आये हों।

वि०—यहाँ 'घुँघराले श्याम बालों' के लिए 'नील घन शावक', 'मुख' के लिए 'विधु' और उस मुख की मधुरता के लिए 'सुधा' शब्द का प्रयोग हुआ है।

काव्य मे नीले और काले रग में प्राय. अंतर नहीं मानते।

और उस मुख पर—रक्त—लाल। किसलय—कोंपल, नवीन कोमल पत्ती। अरुण—प्रभातकालीन सूर्य। अम्लान—उज्ज्वल। अभिराम—रम्य, सुन्दर।

अर्थ—और उस पर मद हास्य ऐसा लगता था मानो किसी लाल कोंपल पर प्रभातकालीन सूर्य की कोई उज्ज्वल किरण लेटी हुई रम्य प्रतीत होती हो।

वि०—यहाँ अरुण अधर के लिए रक्त किसलय और मुस्कान की रेखा के लिए उज्ज्वल किरण का प्रयोग हुआ है। ऐसी कल्पना तो कोई सामान्य कवि भी कर लेता। पर जैसे शयन करती कोई गौर वर्णी कोमलागी रमणी आकर्षक लगती है, उसी प्रकार प्रसाद ने किसलय पर उजली किरण को अलसाते देखा है और इधर अधर पर मुस्कान को रुकते।

नित्य यौवन छवि—दीप्त—झलकना। कामना—भावना। मूर्ति—मूर्तिमती, सजीव। स्पर्श—छूना। स्फूर्ति—चेतना।

अर्थ—उस रमणी को देखकर ऐसा लगता था जैसे सारे ससार की करुण-भावना ने ही शरीर धारण कर लिया है और यौवन की जो शोभा उस पर आज झलक रही है वह सदैव ऐसी ही बनी रहेगी। उसे देखकर ऐसा मोह मन में जगता था कि इसे कैसे ही छू लें। वह इतनी सुन्दरी थी कि जड़ वस्तुओं मे भी चेतना को जगा सकती थी।

वि०—मुस्कान का प्रसग चल रहा है। खींचातानी से अर्थ उस ओर भी लगाया जा सकता है। पर ऐसा लगता है जैसे कवि की दृष्टि श्रद्धा के शरीर के अपूर्व लावण्य की ओर एक बार फिर जा पड़ी है।

उषा की पहिली—लेखा—किरण। माधुरी—मधुरता। मोद—आनन्द।

अर्थ—प्रभातकालीन तारे के शात प्रकाश की गोद मे मधुरता में डूबी, प्रसन्नता से परिपूर्ण, मस्ती भरी, लज्जा से युक्त जैसे उषा की प्रथम रम्य किरण उठती है, वैसे ही उस शान्त मुख पर मधुर, प्रसन्न, मस्त लजीली मुस्कान छा रही है।

वि०—'भोर' पुल्लिङ्ग मे है और 'उषा की लेखा' स्त्रीलिंग में। अत. प्रकृति के इस दृश्य के पीछे जीवन का वह दृश्य भी छिपा है जो प्रभात के आगमन पर किसी लजीली नायिका के अपने प्रियतम की गोद मे से उठने पर सामने आता है। मधुरता, मोद और मद जैसे सतुष्ट पलों के विशेषण हैं। कवि ने इसी से जान-बूझ कर गोद शब्द का प्रयोग किया है।

पृष्ठ ४८

कुसुम कानन अचल मे—कानन अचल—वन खंड। पवन प्रेरित—पवन के चलने से। सौरभ—गध। साकार—दिखाई देना। मधु—मकरन्द, रस।

अर्थ—किसी वनखड में जहाँ पुष्प उगे हों मन्द पवन के चलने से गध की ऐसी लहर उत्पन्न हो जो मकरंद से भीगे पराग के कणों से युक्त होने के कारण दिखाई देने लगे—

नोट—भाव आगे के छद मे पूरा होगा।

और पड़ती हो—शुभ्र—उजली। नवल—नवीन। मधुराका—वसंत ऋतु की पूर्णिमा की चाँदनी रात। मन की साध—मन को प्रिय लगने वाली। मद-विह्वल—मस्त। प्रतिबिंब—आभा। मधुरिमा—मधुरता। खेला—खेल, क्रीड़ा। अबाध—निरन्तर।

अर्थ—और उस पर मन को प्रिय लगने वाली नवीन वसन्त की पूर्णिमा की रात की चाँदनी पड़ जाय। उस झलक में मकरन्द से सनी सुगन्ध की वह उज्ज्वल लहर जैसी लगती, वैसी ही उस रमणी के अधर पर रम्य क्रीड़ा करने वाली (मधुरता से मन्द-मन्द उठने वाली) मुस्कान की वह मस्त झलक थी।

वि०—श्रद्धा के अधर की मुस्कान-रेखा का निर्माण कई वस्तुओं से

हुआ—(१) वह गध की लहर थी (२) वह मकरद से भीगी थी (३) वसत की चाँदनी से वह धुली भी थी।

मुस्कान का रग श्वेत माना जाता है, इससे उसे ज्योत्स्ना-स्नात रखा, पर श्रद्धा युवती है, इसीलिये उस चाँदनी को वसत की पूर्णिमा की चाँदनी माना, उसके मुख से गध निकलती थी अतः ओठों पर मुस्कान को सुगन्धित रखा और रस तो उन अधरों में भरा हुआ था ही।

कहा मनु ने—रहस्य—उलझन। उल्का—प्रज्वलित, टूटा तारा। भ्रात भटकता हुआ।

अर्थ—मनु ने उत्तर दिया—इस आकाश और पृथ्वी के बीच मेरे जीवन की उलझन दूर होने का कोई उपाय नहीं है। जैसे टूटा हुआ तारा जलते-जलते सूने में बिना किसी आश्रय के भटकता फिरता है, उसी प्रकार मैं अपने दुःख की जलन को लेकर निर्जन में घूम रहा हूँ। सहारा देने वाला कोई भी नहीं।

शैल निर्झर न बना—शैल—पर्वत। हतभाग्य—अभागा। हिमखण्ड—बर्फ। जलनिधि—समुद्र। पाखड—अस्वाभाविक जीवन।

अर्थ—जिस अभागे पर्वत से कोई झरना न फूटा और जो बर्फ पिघल न सकने के कारण दौड़कर समुद्र की गोद में न पहुँच पाया, वैसा ही अस्वाभाविक जीवन मेरा भी है।

वि०—पर्वत के अस्तित्व की सार्थकता है झरनों के रूप में पिघलने में, नहीं तो वह जड़ है। हिम की सार्थकता है नदी बन कर समुद्र की गोद मे पहुँचने में, नहीं तो उसका होना न होना बराबर है। इसी प्रकार प्राणी के जीवन की पूर्णता है सहृदय होने और अपने प्रेमपात्र को प्राप्त करने में।

पृष्ठ ४६

पहेली सा जीवन—व्यस्त—उलझनमय। विस्मृत—कुछ समझ में न आना। चल रहा हूँ—दिन काट रहा हूँ।

अर्थ—मेरा जीवन पहेली के समान उलझनमय है। उसे सुलझाने का प्रयत्न करता हूँ तब कुछ भी समझ में नहीं आता। अतः बिना कुछ सोचे समझे दिन काट रहा हूँ।

भूलता ही जाता—सजल अभिलाषा—सरस इच्छाएँ। कलित—सुन्दर। अतीत—पिछला जीवन। तिमिर गर्भ—अँधेरी गुफा, निराशा का अँधेरा। संगीत—गान की तान।

अर्थ—मैं दिन-रात अपने पिछले सुन्दर जीवन से सम्बन्धित सरल इच्छाओं को भूलता जा रहा हूँ। जैसे गान की तान अँधेरी गुफा में जितनी आगे बढ़ती है उतनी ही क्षीण होती जाती है, उसी प्रकार मेरे दुखी जीवन की वे आनन्दमयी कल्पनाएँ धीरे-धीरे नित्य ही निराशा के अँधकार में मिटती जा रही हैं।

क्या कहूँ क्या हूँ—उद्भ्रांत—लक्ष्यहीन। विवर—अवकाश, खोखला।

अर्थ—जब मेरा जीवन लक्ष्यहीन है तब मैं क्या बतलाऊँ क्या हूँ? इस नीले आकाश के अवकाश (खोखले) में आज मैं हवा की लहर के समान भटकता फिरता हूँ। तुम मुझे किसी के उस उजड़े हुये राज्य के समान समझ लो जिसके चारों ओर सूनापन छा गया हो।

वि०—श्रद्धा ने आते ही प्रश्न किया था "कौन तुम ?" उसी का उत्तर मनु दे रहे हैं: क्या कहूँ, क्या हूँ मैं? अपने सम्बन्ध में थोड़ा पीछे कह आये हैं, आगे और भी कहेंगे।

एक विस्मृति का—स्तूप—टीला। ज्योति—प्रकाशयुक्त कोई पिंड जैसे सूर्य, चाँद आदि। सकलित—इकट्ठा। संकलित विलब—देर में और देर।

अर्थ—मैं विस्मृति का एक चेतनाहीन टीला हूँ अर्थात टीले के समान जड़ हूँ और सुन्दर भूतकाल की सब बातें भूला हुआ हूँ। किसी प्रकाश-पिंड के आगे बादल इत्यादि के छाने से जैसे उनका धुँधला-सा प्रतिबिंब पड़ता है वैसे ही मेरी गति समझो अर्थात् कीर्तिमान् देवजाति का मैं छुद्र वंशज हूँ। मेरा जीवन जड़ता का ढेर है और उसके सफल होने में देर में और देर लग रही है अर्थात् सफलता नित्य दूर होती जा रही है।

पृष्ठ ५०

कौन हो तुम—वसन्त के दूत—सुख की सम्भावना बँधाने वाले। विरस पतझड़—नीरस सूने जीवन में। तपन—ग्रीष्म काल।

अर्थ—यह सब कुछ तो हुआ, पर पतझड़ में वसन्त के आगमन के समान मेरे इस नीरस सूने जीवन में सुख की सम्भावना बँधाने वाले हे सुकुमार तुम कौन हो? जैसे अंधकार में बिजली की रेखा चमक उठे उसी प्रकार मेरी निराशा में एक आशा की कांति आज फूटी है। तुम्हें देखकर वैसी ही शांति मिली है जैसी ग्रीष्मकाल में मंद पवन के चलने से प्राप्त होती है।

नखत की आशा—नखत—तारिका। कांत—सुन्दर। दिव्य—पवित्र।

अर्थ—मेरे लिए तुम तारिका के समान उज्ज्वल आशा की किरण हो। तुम्हारे दर्शन से मन की हलचल उसी प्रकार शान्ति हो गई है जिस प्रकार किसी कोमल-हृदय कवि के मन को किसी सुन्दर पवित्र कल्पना की एक छोटी-सी लहर के उठने से शान्ति मिलती है।

लगा कहने आगंतुक—आगंतुक—आया हुआ। उत्कंठा—उत्सुकता। सविशेष—पूर्णरूप से। मधुमय—वसन्त के आगमन की। सन्देश—सूचना।

अर्थ—जो प्राणी मनु के निकट आकर खड़ा हो गया था उसने मनु की उत्सुकता को मिटाने के लिए फिर कुछ कहना प्रारम्भ किया। जैसे कोकिल प्रसन्न होकर पुष्प को वसन्त के आगमन की सूचना दे, उसी प्रकार उसकी वाणी ने मनु के आगामी जीवन में सुख की सम्भावना बँधायी।

वि०—'कोकिल' शब्द स्त्रीलिंग है, पर प्रसाद जी उसका प्रयोग सभी स्थानों पर पुल्लिंग अथवा पुंस्कोकिल के अर्थ में करते हैं जैसे—

'आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा' (चन्द्रगुप्त-नाटक)

यहाँ मनु से श्रद्धा की बातचीत चल रही है। पर प्रसाद ने इस ढंग से वर्णन किया है मानो कोई पुरुष बोल रहा हो जैसे—लगा कहने आगंतुक व्यक्ति। प्रसाद महिलाओं को भी कभी-कभी पुल्लिंग में सम्बोधन करते हैं। यह ढंग उर्दू-काव्य का है जैसे—

उनके आने से जो, आजाती है मुँह पर रौनक।
वे समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।

'आँसू' में उन्होंने यही किया है—

शशि मुखपर घूँघट डाले, अंतर मे दीप छिपाए।
जीवन की गोधूली मे, कौतूहल से तुम आए।

पृष्ठ ५१

भरा था मन मे—ललित कला—वस्तु (भवन-निर्माण), मूर्ति, चित्र, संगीत, काव्य कलाओं मे से कोई। गधर्वों के देश—गाँधार प्रदेश में।

अर्थ—अपने पिता की मै अत्यन्त प्यारी पुत्री हूँ। मेरे मन मे यह नवीन इच्छा उगी कि मै गाधार प्रदेश में रहकर ललित कलाओं का अभ्यास करूँ।

घूमने का मेरा—मुक्त—खुले हुए। व्योम तल—आकाश के नीचे। कुतूहल—विस्मय। व्यस्त—उलझन। हृदय सत्ता—मन।

अर्थ—इस खुले आकाश के नीचे। मेरा घूमने का अभ्यास दिन प्रति दिन बढ़ता ही चला गया। भ्रमण-काल में भिन्न-भिन्न दृश्यों को देख कर विस्मय उत्पन्न होना, अत. मन मे उठी उलझन को सुलझाने के लिए मैं उन सुन्दर वस्तुओं के सत्य स्वरूप की जानकारी की खोज मे रहती थी।

दृष्टि जब जाती—हिमगिरि—हिमालय। सिकुडन—सलवट। पीर—पीडा।

अर्थ—हिमालय की ओर जब मेरी आँख उठती तभी मन अधीर होकर मुझसे पूछता किस भय के कारण पृथ्वी के माथे पर यह सलवट (शिकन) पडी है? पृथ्वी के हृदय मे भला ऐसी क्या पीड़ा है?

वि०—जब मनुष्य पीडित होता है और चिता करता है तब उसके माथे पर शिकन आ जाती है। श्रद्धा हिमालय को पृथ्वी के ललाट की शिकन बतलाती है।

मधुरिमा मे अपनी—मधुरिमा—सुन्दरता। सोया—सुप्त। सजग—स्पष्ट रूप से। चेतना—भावना, मन। मचल उठी—आग्रह करने लगी। अनजान—भोली।

अर्थ—हिमालय मुझे स्पष्ट रूप से यह सकेत करता प्रतीत हुआ कि

उसकी मौन सुन्दरता भगवान् का कोई महान् एव गुप्त सदेश है। इस विचार के उठते ही मेरा भोला मन उसे अधिक निकटता से देखने लगा।

बढा मन और—शृंगार—रमणीयता। आँख की भूख—नेत्रों की तृष्णा। सम्भार—सामग्री, दृश्य।

अर्थ—मन में उत्साह के उठते ही मेरे पैर बढ़ चले। पर्वत की रमणीय चोटियों में यह देखकर कि वहाँ अगणित सुन्दर दृश्य भरे पड़े हैं, मेरे नेत्रों की सारी तृष्णा पूरी हो गई।

पृष्ठ ५२

एक दिन सहसा—क्षुब्ध—गरजता हुआ। निरुपाय—विवश। विश्रब्ध—चुपचाप, शात भाव से।

अर्थ—एक दिन अचानक सीमाहीन होकर समुद्र पर्वत के नीचे गरजता हुआ टकराने लगा। उसी समय से आज तक मैं विवश-सी चुपचाप घूम रही हूँ।

यहाँ देखा कुछ—बलि—यज्ञ। भूतहितरत—प्राणियों के कल्याण में लीन रहने वाला।

अर्थ—यही निकट में मैंने यज्ञ से बचे अन्न को देखकर सोचा—प्राणियों के कल्याण के लिए यह दान किसने किया है? फिर मन में ऐसा अनुमान उठा कि प्रलय से सब कुछ नष्ट होने पर भी इस ओर अभी कोई व्यक्ति जीवित है अवश्य।

वि०—इस अन्न के सम्बन्ध मे 'आशा' सर्ग मे पहले ही कह आए हैं:—

> अग्निहोत्र अवशिष्ट अन्न कुछ, कहीं दूर रख आते थे।
> होगा इससे तृप्त अपरिचित, समझ सहज सुख पाते थे।

तपस्वी क्यों इतने—क्लात—हारे हुए। वेदना—पीडा। वेग—अधिकता। हताश—निराश। उद्वेग—अशाति।

अर्थ—हे तपस्वी! तुम इतने हारे हुए से क्यों हो? इतनी अधिक पीडा किस बात से उत्पन्न हुई है? तुम इतने निराश क्यों हो? तुम अपनी अशाति मुझे तो बताओ।

हृदय में क्या—लालसा—मोह। निश्शेष—बचा हुआ। वञ्चित करना—धोखा देना।

अर्थ—जो सभी को अधीर बनाये रखता है, जीवन का वह मोह क्या तुम्हारे हृदय में नहीं बचा ? तुम्हारे मन का त्याग सुन्दर वेश धारण करके कहीं तुम्हें धोखा न दे रहा हो। अर्थात् तुम त्याग की ओर इस लिए विवश होकर तो नहीं मुड़ गए कि तुम्हें अनुराग नहीं मिला।

दुःख के डर से—अज्ञात—अपरिचित। जटिलताओं—झंझटों। अनुमान—कल्पना। कर्म—कर्म क्षेत्र। झिझकना—मुख मोड़ना।

अर्थ—तुम पहले से ही अपरिचित झंझटों की कल्पना करके उनसे उत्पन्न होने वाले दुःख से भयभीत हो गए हो और उसका परिणाम यह है कि आज कर्म-क्षेत्र से मुख मोड़ बैठे हो। तुम नहीं जानते कि जिस भविष्य की तुम कल्पना कर रहे हो वह उससे भिन्न (सुखपूर्ण) भी हो सकता है।

पृष्ठ ४३

कर रही रही लीलामय—लीलामय—मायामय। महाचिति—व्यापक चेतना, भगवान। सजग होना—हृदय में भावना का जगना। अभिराम—सुन्दर।

अर्थ—आनन्द की सिद्धि के लिए भगवान के हृदय में एक दिन यह भावना जगी कि मैं (अनेक रूपों में) प्रकट हो जाऊँ। इसी से यह सुन्दर संसार बना। यह सभी को तो प्यारा है।

वि०—संसार की सृष्टि के सम्बन्ध में हिंदुओं का यह विश्वास है कि निष्क्रिय ब्रह्म एक बार एकाकीपन के भार से अकुला उठा। उसने इच्छा की कि मैं एक से बहु हो जाऊँ—एकोऽहं बहुस्याम। अतः उसने अपनी माया-शक्ति से इस संसार को रच दिया।

जब परमात्मा ही कर्म में लीन है तब उसका बनाया हुआ पुतला मनुष्य कर्म से मुख मोड़ बैठे यह समझ में नहीं आता।

काम मंगल से—मण्डित—युक्त। श्रेय—कल्याण। सर्ग—सृष्टि। तिरस्कृत—तिरस्कार, उपेक्षा। भवधाम—सांसारिक जीवन।

अर्थ—सृष्टि में इच्छा करने से कर्म उत्पन्न होता है। शुभ कर्म करने से कल्याण आता है। अत वैराग्यवान् होने से तुम इच्छा (काम) का तिरस्कार करते हो और परिणाम यह होता है कि तुम्हारा सासारिक जीवन असफल सिद्ध होता है।

दु ख की पिछली—पिछली—अतिम, समाप्ति। रजनी—रात। नवल—नवीन। झीना—हल्का। नील—अधकारपूर्ण। गात—शरीर।

अर्थ—रात के समाप्त होते-होते जैसे नवीन प्रभात फूटने लगता है, उसी प्रकार दु ख के जाते-जाते सुख प्रारम्भ हो जाता है। उषा का शरीर अधकार के हल्के पट से ढका रहता है.। उसी प्रकार दु.ख के हल्के आवरण में सुख छिपा रहता है।

वि०—दु.ख स्थायी नहीं है। उसकी एक अवधि है। उसके पश्चात् सुख अवश्य आता है। इस दृष्टि से दु.ख से ही सुख का जन्म होता है। पर दुःख में ही सुख के छिपे रहने से मनुष्य उसे देख नहीं पाता है। इसी से उसके ओझल रहने से घबरा उठता है।

जिसे तुम समझे—अभिशाप—शाप। ज्वालाओं—कष्टों। मूल—कारण।

अर्थ—जिस दु ख को तुम शाप और सासारिक कष्टों का कारण समझते हो. स्मरण रखो वह भगवान का वरदान है। इस रहस्य को प्रत्येक प्राणी नहीं जानता।

पृष्ठ ५४

विषमता की पीड़ा—विषमता—विपत्ति। व्यस्त—घबराना। स्पंदित—सहृदय, सहानुभूतिपूर्ण। भूमा—भगवान।

अर्थ—यह विशाल विश्व विपत्तियों से उत्पन्न होने वाली पीड़ा से घबरा कर ही सहृदय बना है—जिसने स्वय पीड़ा सही है वही दूसरे के दु.ख को समझ सकता है। सत्य बात यह है कि यह दु.ख ही मनुष्य के सुख और उसकी उन्नति का कारण है। अत दु ख प्राणी को भगवान् का वह दान है जो जीवन में मधुरता लाता है।

वि०—दुःख मनुष्य के हृदय को कोमल, उदार और विशाल बना कर उसे इस ओर प्रवृत्त करता है कि वह दूसरों के दुःख में हाथ बँटावे और लोक में सुख का विधान करे। इस दृष्टि से दुःख का निराला स्थान है।

नित्य समरसता—समरसता—सुख ही सुख, एकरसता। व्यथा—पीड़ा। द्युतिमान्—प्रकाशपूर्ण।

अर्थ—यदि मनुष्य के जीवन में उतार चढ़ाव न हों और उसे केवल सुख-भोग का ही अधिकार भगवान् दे दें, तब केवल इसी कारण से वह ऐसे उकता उठेगा जैसे एकदम शांत समुद्र ज्वार के रूप में उमड़ (घबरा) उठता है। और जैसे समुद्र की प्रकाशपूर्ण मणियाँ तल से निकल कर नीली लहरों में मारी-मारी फिरती हैं, उसी प्रकार उसका सुख पीड़ा से छिन्न-भिन्न हो जायगा।

लगे कहने मनु—मारुत—पवन। उच्छ्वास—बातें। अबाध—निरंतर। सविलास—सरस, सुख की।

अर्थ—मनु ने दुःख की साँस लेकर कहा—तुम्हारी बातें मेरे मन में सुख और उत्साह के बहुत से भाव उसी प्रकार उठा रही हैं जैसे पवन के चलने से मानसरोवर में सरल लहरें निरन्तर उठती रहती हैं।

किंतु जीवन कितना—निरुपाय—विवशतापूर्ण। परिणाम—अंत। कल्पित गेह—कल्पना-गृह।

अर्थ—परन्तु मनुष्य का जीवन अत्यन्त विवशतापूर्ण है, इसमें मुझे कुछ भी संदेह नहीं। प्रलय के दिनों में मैं यह देख चुका हूँ। जीवन सफलता का कल्पना-घर है अर्थात् जीवन में सफलता प्राप्त करना कल्पनामात्र है—सफलता प्राप्त हो ही नहीं सकती। उसका अन्त निराशा में होता है।

पृष्ठ ४५

कहा आगंतुक ने—आगंतुक—आया हुआ। अधीर होना—घबराना। जीवन का दाँव—जीवन का अवसर, जीवन। मरकर—मृत्यु की चिंता न करके।

अर्थ—इस आये हुए प्राणी (श्रद्धा) ने स्नेह में भर कर कहा—अरे तुम

तो यहाँ तक घबरा गए हो कि जिस जीवन की रक्षा वीर लोग मृत्यु की चिंता न करके करते हैं उससे तुम निराश हो बैठे हो।

वि०—यहाँ जीवन का चित्र कवि ने जुए के खेल के रूप में अकित किया है। ससार जुआ-घर है, मनुष्य खिलाड़ी, जीवन धन। जो निर्भीक होकर खेलता है वह जीतता है, जो हताश हो जाता है वह हार जाता है।

तप नहीं केवल—तप—ससार से विरक्ति। जीवन—ससार मे लीन रहना। करुण (pitiable)—अशुभ। क्षणिक—थोड़ी देर रहने वाला, अस्थायी। तरल—स्वस्थ, चचल। आशा का आह्लाद—आनद देने वाली आशा।

अर्थ—ससार से विरक्त होना ठीक नहीं, उसमे लीन रहना ही ठीक है। दीनता से भरे शोक का भाव जो बीच-बीच मे थोड़ी देर के लिए उठता है वह तो बड़ा अशुभ है। इस हृदय मे स्वस्थ इच्छाओं से पूर्ण आनन्द देने वाली आशाएँ छिपी पड़ी हैं, उन्हे उभारो।

प्रकृति के यौवन—बासी—जिसका उपयोग न हो रहा हो।

अर्थ—जिस प्रकार युवतियों का शृङ्गार बासी फूलों से नहीं होता और उस प्रकार के पुष्पों का उचित परिणाम जैसे धूल में मिल जाना है, इसी प्रकार प्रकृति के अपनी युवावस्था मे बने रहने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जिस वस्तु का उपयोग नहीं हो रहा है वह शीघ्र से शीघ्र धूल में मिल जाय अर्थात् नष्ट हो जाय।

वि०—मनु के हृदय में अनेक सन्देह हैं। पहला तो यह कि जीवन सत्य नहीं है। उस धारणा का श्रद्धा विरोध करती हैं। कहती है—'तप नहीं केवल जीवन सत्य'। मनु ने विनाश देखा है, उसके लिए उसका कहना है कि जिस वस्तु का उपयोग समाप्त हो गया उसे कलेजे से चिपटाये रखने से क्या लाभ? तीसरा सन्देह परिवर्तन पर है। श्रद्धा का कहना है कि जिसे तुम परिवर्तन कहते हो, वह नित्य-नवीनता है।

पुरातनता का यह—पुरातनता—प्राचीनता, वस्तु का उपयोगी न होना। निर्मोक—केंचुली। टेक—टिकना, रहना, छिपना।

अर्थ—प्राचीनता की केंचुली को प्रकृति एक पल भी नहीं सह सकती

अर्थात् जहां वस्तु अनुपयोगी हुई कि उसने नष्ट किया। और जिसे तुम परिवर्तन कहते हो उसके अन्दर ही नित्य नवीनता का आनन्द छिपा है।

वि०—परिवर्तन का अर्थ है नवीनता। मनुष्य वृद्ध होकर मर जाता है, शिशु बन कर जन्म लेता है। पुरानी वस्तु टूट जाती है, नई बन जाती है। यह परिवर्तन न हो तो जीवन पहाड़ हो जाय, संसार भार हो जाय। टेनीसन का कहना है—

The old order changeth yielding place to new,
And God fulfils himself in many ways

पृष्ठ ५६

युगों की चट्टानों—पदचिह्न—छाप। गंभीर—गहरी, सँभल-सँभल कर। अनुसरण—पीछे चलना। अधीर—तीव्रता से।

अर्थ—जिस प्रकार कोई यात्री चट्टानों पर सँभल-सँभल कर चरण रखता है, उसी प्रकार यह सृष्टि प्रत्येक युग में अपनी गहरी छाप छोड़ती हुई आगे बढ़ रही है। देवता, गंधर्व और असुरों का समूह बड़ी तीव्रता से उधर जा रहा है जिधर वह ले जा रही है।

वि०—भाव यह कि न देवता अमर हैं, न गंधर्व और न असुर। एक जाति के उपरान्त दूसरी जाति उत्पन्न होती और नष्ट हो जाती है। प्रकृति अपना काम नवीन जाति को लेकर करती है। थोड़े दिनों में वह जाति भी पुरानी होकर नष्ट हो जाती है। फिर किसी नवीन जाति का जन्म होता है। इसी प्रकार सृष्टि का विकास सम्पन्न हो रहा है और समय बीत रहा है।

एक तुम यह विस्तृत—विस्तृत—विशाल। भूखण्ड—पृथ्वी। वैभव—ऐश्वर्य। अमद—स्थायी। कर्म का भोग—कर्मानुसार सुख दुःख की प्राप्ति। भोग का कर्म—भोगानुसार भाग्य निर्माण। जड़—प्रकृति। चेतन—चेतन प्राणी।

अर्थ—एक ओर तुम हो जो थके से बैठे हो और दूसरी ओर यह विशाल भूमि है जो स्थायी प्राकृतिक ऐश्वर्य से परिपूर्ण है। पूर्व जन्म में जो मनुष्य जैसे शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है उनका वैसा ही फल वह इस जन्म में भोगता

है और इस जन्म में जैसा जीवन व्यतीत करेगा वैसा ही उसका आगामी भाग्य बनेगा। इस जड प्रकृति में चेतन प्राणी के सुख का विधान इसी नियम के अनुसार होता है।

अकेले तुम कैसे—यजन—जीवन यज्ञ। आत्म विचार—अपना विकास।

अर्थ—एकाकी जीवन व्यतीत करने का निश्चय क्या कोई अच्छा विचार है ? अच्छा बतलाओ जीवन-यज्ञ को बिना सहधर्मिणी की सहायता के तुम अकेले कैसे पूरा कर सकोगे ? हे तप में लीन रहने वाले प्राणी ! आकर्षण को परे फेंक कर अपनी आत्मा का विकास तुम नहीं कर सकते।

वि०—यज्ञ करने के लिए पति-पत्नी दोनों को बैठना पड़ता है। अश्वमेध के लिए जब राम बैठे तो सीता की अनुपस्थिति में उन्हें उनकी सोने की मूर्ति निकट रखनी पड़ी। जीवन भी एक यज्ञ है जो पति-पत्नी दोनों के सहयोग से पूरा होता है। जीवन का रथ एक पहिए के सहारे नहीं चल सकता।

यहाँ आत्मविस्तार से तात्पर्य सासारिक उन्नति से है।

दब रहे हो—बोझ—दुःख का भार। अवलब—सहायक, सहारा। सहचर—जीवन सगिनी। उऋण होना—कर्तव्य की पूर्ति करना।

अर्थ—अपने दु.ख का बोझ उठाना एक ओर तुम्हें भारी पड़ रहा है, दूसरी ओर तुम इस कष्ट निवारण के लिए किसी सहायक तक को नहीं खोज रहे। क्या मैं अब किसी प्रकार की व्यर्थ देर किए बिना तुम्हारी जीवन सगिनी बन कर अपने कर्तव्य की पूर्ति नहीं कर सकती ?

वि०—यहाँ भी प्रसाद ने अपने स्वभाव के अनुसार श्रद्धा के लिए 'सहचरी' के स्थान पर 'सहचर' शब्द का प्रयोग किया है।

पृष्ठ ५७

समर्पण लो सेवा—समर्पण—अपने को देना या सौंपना। सजल ससृति—ससार सागर। उत्सर्ग—न्यौछावर। विगत विकार—स्वार्थहीन, निष्काम भाव से।

अर्थ—तुम्हारी सेवाएँ करने के लिए मैं तुम्हें अपने को दिए डालती हूँ। मेरा यह आत्म-समर्पण ससार-सागर में बहने वाली तुम्हारी जीवन नैया के लिए

पतवार के समान सिद्ध होगा। आज से तुम्हारे चरणों में मैं बिना किसी स्वार्थभावना के अपने जीवन को न्यौछावर कर रही हूँ।

दया माया ममता—माया—मोह। रत्ननिधि—रत्नों का भण्डार। स्वच्छ—निर्मल।

अर्थ—मेरा हृदय निर्मल भाव-रत्नों का भंडार है। वह अब तुमसे दूर नहीं है। उसमें से दया, मोह, ममता, माधुर्य, अटूट विश्वास जिसकी आवश्यकता हो, प्राप्त कर सकते हो।

बनो संसृति के—संसृति—नवीन सृष्टि। मूल रहस्य—मुख्य आधार। बेल—लता, आगामी नवीन जाति। सौरभ—गंध, यश।

अर्थ—नवीन सृष्टि के तुम मुख्य आधार बनो अर्थात् आगामी जाति के तुम आदि पुरुष सिद्ध हो। आगामी नवीन जाति की लता तुम से ही बढ़ सकती है। लता पर जैसे फूल छाते हैं और उन फूलों से गंध फैलती है, उसी प्रकार फूलों के समान तुम्हारी सुन्दर संतति के कर्मों से तुम्हारा यश सारे संसार में छा जायगा।

और यह क्या—विधाता—भगवान्। मङ्गल वरदान—कल्याणकारिणी वाणी।

अर्थ—और क्या तुम भगवान की इस कल्याणकारिणी वरदान-वाणी को नहीं सुन रहे कि शक्तिशाली बन कर विजय प्राप्त करो? यह ध्वनि तो सारे संसार में फैल रही है।

वि०—संसार के विचारक इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि शक्ति की ही उपासना होनी है। विकासवाद के अनुसार भी योग्यतमावशेष (Survival of the fittest) का सिद्धान्त ही ठहरता है। हमारे यहाँ भी प्रसिद्ध है—वीर भोग्या वसुधरा।

पृष्ठ ५८

डरो मत अरे अमृत—अमृत संतान—देव पुत्र। अग्रसर—तुम्हारे आगे। मङ्गलमय वृद्धि—कल्याण और विकास। समृद्धि—वैभव।

अर्थ—हे देव-पुत्र! निडर होकर कर्म करो। आगे कल्याण और विकास

ही विकास है। यदि तुम अपने जीवन को आकर्षण का शक्तिशाली केन्द्र बना सकोगे तो ससार का समस्त वैभव स्वय खिंच कर तुम तक आ जायगा।

देव असफलताओं—ध्वस—नाश। प्रचुर—अधिक। उपकरण—सामग्री। जुटाना—इकट्ठी करना। मन का चेतन राज—मन के भाव।

अर्थ—जिस प्रकार टूटी-फूटी वस्तु को गला-ढालकर एक नवीन वस्तु का निर्माण कर लेते हैं, उसी प्रकार देवताओं को अपने जीवन मे जिन कारणों से असफलता मिली और जिनसे उनका नाश हुआ वे हमारे विचार के लिये बड़ी सामग्री और सम्पत्ति छोड़ गये हैं। इस नवीन विचारधारा के आधार पर मानव सस्कृति नाम से एक नवीन सभ्यता का निर्माण हो सकता है जिसमें मन के भावो का पूर्ण विकास हो—देवताओं की भाँति आगे की जाति अधी होकर वासना में लीन न रहे।

चेतना का सुन्दर—अखिल—सभी। सत्य—प्रकृति (Natural), स्वाभाविक रूप मे। हृदय पटल—हृदय पट। दिव्य अक्षर—ज्ञान, स्पष्टता से किसी बात को समझना।

अर्थ—मैं चाहती हूँ सभी भाव अपने स्वाभाविक रूप मे ससार के प्राणियों के हृदय-पट पर स्पष्ट अक्षरों में रात-दिन अकित हों और इस प्रकार चेतना का एक सुन्दर इतिहास प्रस्तुत हो अर्थात् सब मनुष्य अपने-अपने हृदय में यह बात अत्यन्त स्पष्टता से समझ लें कि मनोभावों को उनके स्वाभाविक रूप में ग्रहण करना ही सच्चा जीवन है। सकोच या भय से किसी स्वाभाविक इच्छा का दमन नहीं करना चाहिये।

वि०—इस छन्द के पीछे लेखन-क्रिया का चित्र निहित है। कागज के स्थान पर हृदय, अक्षरों के स्थान पर दिव्य अक्षर (ज्ञान), और भावो के प्रयोग के स्थान पर अखिल मानव भाव हैं। इस प्रकार मानो चेतना के इतिहास या भावों के विकास की कहानी का निर्माण हो रहा है।

विधाता की कल्याणी—कल्याणी—मगलमय। भूतल—पृथ्वी। पटना—भरना।

अर्थ—इस पृथ्वी पर भगवान की मगलमय सृष्टि को पूर्ण सफलता मिले।

चाहे सभी स्थानों पर समुद्र ही समुद्र (जल ही जल) हो जाय, चाहे सूर्य, चन्द्र, तारे अपने स्थान से विचलित हो जायँ, चाहे ज्वालामुखी पर्वत फटने लगें।

नोट—भाव आगे के छन्द में पूरा होगा।

उन्हें चिनगारी सदृश—सदृश—समान। सदर्प—अभिमान से।

अर्थ—पर जैसे पैरों से चिनगारी को कुचल देते हैं, वैसे ही इन बाधाओं को कुचल (तुच्छ समझ) कर मानव जाति प्रसन्नता से अपना सिर ऊँचा रखे और आज से जहाँ कहीं पवन की गति है, जहाँ पृथ्वी है, जहाँ जल है वहाँ सब कहीं उसका यश फैल जाय।

पृष्ठ ५६

जलधि के फूटे—उत्स—धार। उतरना—जल के ऊपर निकलना। अभ्युदय—उन्नति।

अर्थ—चाहे समुद्र की धार फूट उठे और उनमें द्वीप कच्छप के समान कभी डूबे, कभी बाहर निकल आवें, पर मानव जाति का साहस किसी दृढ़ मूर्ति के समान कभी टूटे न। वह अपनी उन्नति के उपाय ही सोचती रहे।

विश्व की दुर्बलता—पराजय का बढ़ता व्यापार—हार पर हार। सविलास—प्रसन्नतापूर्वक। क्रीड़ामय—सुखदायिनी। सञ्चार—उत्पादन, जन्म, कारण।

अर्थ—अपनी दुर्बलताओं से संसार के प्राणी हताश न हों, उन पर विजय प्राप्त करने का बल सञ्चय करें। यदि जीवन में हार ही हार मिले, तब भी वे प्रसन्नतापूर्वक हँसते रहें और उससे शक्ति का उत्पादन करें।

वि०—पराजय के आघात को जो जितना सहने में समर्थ है वह उतना ही शक्तिशाली है। निरन्तर कष्ट सहने से कष्ट की शक्ति क्षीण हो जाती है। गालिब का कहना है—

रंज से खूगर हुआ इन्साँ, तो मिट जाता है रंज।
मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसाँ हो गईं॥

महादेवी ने इस बात को और भी सुन्दर ढँग से रखा है :

चिर ध्येय यही जलने का, ठंडी विभूति बन जाना !
है पीड़ा की सीमा यह, दुख का चिर सुख हो जाना !

शक्ति के विद्युत्कण—विद्युत्कण (Electrons)—विद्युत् परमाणु। व्यस्त—बिखरे। विकल—अशांत। निरुपाय—निस्सहाय। समन्वय—एकत्र।

अर्थ—जैसे विद्युत्कण जब तक शून्य में इधर-उधर बिखर कर घूमते रहते हैं तब तक कुछ भी करने में असमर्थ हैं, पर मिल कर वे लोकों की रचना करते हैं, इसी प्रकार मनुष्य की शक्ति जब इधर-उधर बिखरी पड़ी है तब तक वह अशांत रहता है और निस्सहाय-सा लगता है। मै चाहती हूँ अपनी शक्ति को एकत्र करके मानव-जाति जय प्राप्त करे।

काम

कथा—मनु बैठे-बैठे सोच रहे हैं कि शरीर में यौवन का प्रवेश भी कितने विलक्षण परिवर्तन ला देता है! रूप में आकर्षण, मन में मस्ती, भावों में विकास, जीवन में उल्लास इसी की कृपा-कोर का परिणाम है। सहसा उन्हें अपने अतीत जीवन की सुधि विह्वल करती है और वे एक साँस भरकर रह जाते हैं।

दृष्टि उठाते ही देखते हैं—चन्द्रमा आकुल-सा घूम रहा है, आकाश नील कमल-सा रमणीक है, पवन गन्ध विकीर्ण कर रहा है, अणु नृत्य निरत हैं। सोचते हैं: यह अनन्त सौन्दर्य क्या मिथ्या है? ईश्वर क्या इस सुन्दरता को छोड़ और किसी अन्य तत्व का नाम है? अच्छा, फिर वह छिप क्यों रहा है? आकाश का परदा और चाँदनी का घूँघट उसने क्यों डाल रखा है? क्या मुझे इस सौंदर्य के प्रति उदासीन हो जाना चाहिये? नहीं! शरीर स्पर्श करने के लिए, रूप निहारने के लिये, रस आस्वाद के लिए और गन्ध सूँघने के लिये बनी हैं। तब मैं प्रवृत्ति-पथ का पथिक बनूँगा, परिणाम कुछ भी हो।

इसी बीच तंद्रा की स्थिति में उन्हें एक स्पष्ट ध्वनि सुनाई पड़ती है—

मेरा नाम काम है और मेरी पत्नी का रति। हम दोनों इस सृष्टि से भी पुराने हैं। सूक्ष्म प्रकृति के हृदय में वासना रूप से हम रहते थे। उस वृत्ति के उभरते ही उपयुक्त समय पर पुरुष (ईश्वर) के समागम से सब से पहले दो अणु उत्पन्न हुए। वे बढ़ते बढ़ते असंख्य हो गए। इन्हीं अणुओं से मिल कर सृष्टि बनी। जब इस पृथ्वी पर देव-जाति अस्तित्व में आई तब हमने भी शरीर धारण किया। रति और काम हमारे उसी समय के नाम हैं। प्रलय में हम भी नष्ट हो गए थे। अब तो भावना-मात्र रह गए हैं। देवताओं का सारा जीवन हमारी इच्छाओं के अनुकूल संचालित होता था। पर उन्होंने विलास की अति कर दी थी, इसी से वे सदैव को नष्ट हो गये। संयम से उनका परिचय

न था। मै चाहता हूँ कि आगामी मानव-जाति वासना को कुचले तो न, क्योंकि यह वृत्ति भूख और प्यास के समान ही स्वाभाविक है, पर इसमें सयम आने से जीवन उन्नतिशील बन सकता है। वैराग्य का उपदेश मैं नहीं दे सकता, क्योंकि इस ससार में वही प्राणी ठहर पाता है जो इसे अनुराग की दृष्टि से देखे और स्वय को शक्तिशाली सिद्ध करे।

इस जगत की रचना प्रेम से हुई है। उस प्रेम का सदेश लेकर मेरी पुत्री (श्रद्धा) आई है। वह सुन्दर है, भावमयी है, शातिदायिनी है। हे मनु, यदि तुम्हारे हृदय में उसे पाने की आकाक्षा हो, तो तुम उसके योग्य बनो। इतना कह कर वह वाणी शात हो गई। मनु ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, "देव उसे प्राप्त करने का उपाय तो बताते जाते।" पर उनके प्रश्न का कोई उत्तर न मिला।

पृष्ठ ६३

यहाँ वसत के रूप मे यौवन का वर्णन कवि ने किया है।

मधुमय वसत जीवन—मधुमय—मधुर। अतरिक्ष—शून्य। अतरिक्ष की लहरो—हवा। रजनी—पतझर की अतिम रात।

अर्थ—(वसत के पक्ष में) पतझर की अतिम रात के चौथे प्रहर के समाप्त होते-होते मधुर वसन्त हवा के झकोरे मे बहता हुआ चुप से वन मे छा जाता है।

वसन्त—यौवन। अतरिक्ष—हृदय। लहर—भाव। रजनी के पिछले पहर—किशोरावस्था की पूर्णता।

अर्थ—(यौवन के पक्ष में) किशोरावस्था के पूर्ण होते ही मधुर यौवन हृदय के भावों में लहराता हुआ चुप से जीवन में कब छा जाता है, पता ही नहीं चलता।

वि०—जैसे ऋतुओं में सबसे मधुर काल वसन्त का है, उसी प्रकार जीवन मे सब से मधुर समय यौवन का। भारतवर्ष मे चैत्र और वैशाख के महीनों मे वसन्त माना जाता है।

ग्यारह से पन्द्रह वर्ष की अवस्था किशोरावस्था कहलाती है। सोलहवें वर्ष के प्रारभ होते ही यौवन का आगमन समझना चाहिए। वसन्त का प्रथम

प्रभात जब फूटेगा तब उससे पहले पतझर की पूर्णिमा की रात होगी। रात में चार प्रहर होते हैं, अतः फाल्गुनी पूर्णिमा के चतुर्थ प्रहर की समाप्ति पर वसन्तागम समझना चाहिए। किशोरावस्था एक प्रकार से भूल की अवस्था है और रात भी। इसी से उसे 'रजनी' कहा है। कब किशोरावस्था समाप्त हुई और कब यौवन प्रारम्भ हुआ इस सन्धि काल को हम सहसा परिलक्षित नहीं कर पाते, इससे यौवन को 'चुपके से आये थे' लिखा है।

भावार्थ—हे यौवन, जीवन में तुम उसी प्रकार मधुरता भर देते हो जैसे वसन्त वन में सुन्दरता भर देता है। जैसे पतझर की पूर्णिमा की रात के चौथे पहर की समाप्ति पर वसन्त हवा की हिलोरों में बहता हुआ न जाने किस पल चुपके से वन में छा जाता है, उसी प्रकार किशोरावस्था के पूर्ण होते-होते हृदय के भावों में समाकर तुम हमारे जीवन में किस क्षण में अदृश्य रूप से प्रवेश कर गए थे, हम जान नहीं पाये।

क्या तुम्हें देख—नीरवता—पतझर का सूनापन। अलसाई—बंद। आँखें—पंखुरियाँ।

अर्थ—(वसन्त के पक्ष में) हे वसन्त, क्या तुम्हीं को चुपचाप आते देख कोकिल मस्त होकर कूकने लगती है? क्या तुम्हें समीप समझ कर ही पतझर के दिनों की बंद कलियाँ अपनी पंखुड़ियों को खोल देती हैं।

कोकिला—मन। नीरवता—किशोरावस्था का हलचलरहित जीवन। अलसाई—सुप्त। कलियों—भावों। आँखें खोलना—जागना।

अर्थ—(यौवन के पक्ष में) हे यौवन, क्या तुम्हें आते देख कर ही मन मस्त होकर कुछ कहने लगता है? क्या तुम्हारे प्रभाव से ही किशोरावस्था के हलचलरहित दिनों के सुप्त भाव सहसा जगने लगते हैं?

वि०—किशोरावस्था में न अपने शरीर के सौंदर्य का ज्ञान होता है और न मन की मस्ती का। यौवन का पदार्पण हुआ नहीं कि मन कुछ और प्रकार का हो जाता है, कुछ चाहने लगता है। प्रेम के सुप्त भाव मनमन्थन से उभर कर ओठों से टकराने लगते हैं।

भावार्थ—जैसे वसन्त के आगमन पर कोकिल मस्ती में भर कर कूक

लगती है, उसी प्रकार यौवन के प्रारम्भ होते ही मन मस्त होकर प्रेम-चर्चा करना चाहता था। वसन्त के आते ही जैसे सूने वातावरण में अब तक बन्द कलियों की पखुरियाँ खुलने लगती हैं, उसी प्रकार यौवन के शरीर में व्याप्त होते ही किशोरावस्था के सुप्त (शान्त) भाव जग (आन्दोलित हो) उठते थे।

जब लीला से०—लीला—मनोविनोद, क्रीड़ा। कोरक—कली। लुकना—छिपना। शिथिल—मद गति से बहने वाली। सुरभि—गध। बिछलन—फिसलना, सरसता आना।

अर्थ—(वसन्त के पक्ष में) हे वसन्त, जब अपने मनोविनोद के लिए तुम कलियों के भीतर छिप जाते हो, तब उनके खुलने से जो गध मद गति से बहती है, सच बतलाओ, उसके प्रभाव से आसपास की भूमि में सरसता आती है अथवा नहीं ?

कोरक— नव युवतियाँ। शिथिल सुरभि—मस्त उच्छ्वास।

अर्थ—(यौवन के पक्ष में) हे यौवन, जब अपने मनोविनोद के लिए तुम नवीन-यौवना बालिकाओं के शरीर में आ छिपते हो तब तुम्हारे प्रभाव से प्रेम के जो मस्त उच्छ्वास उनके भीतर से फूटते हैं, सच बतलाना, उनके प्रभाव से पृथ्वी में आसपास चारों ओर सरसता छाती है अथवा नहीं ?

वि०—कुछ खेल ऐसे होते हैं जिनमें खिलाड़ियों को कुछ देर को कहीं छिपना पड़ता है। यहाँ वसन्त और यौवन ऐसे ही खिलाड़ी हैं जिन्हें कलिकाओं और बालिकाओं के रम्य शरीर छिपने को मिलते हैं।

काली की गध को जो सूँघेगा वही मस्त हो जायगा, इसी प्रकार तरुणियों के यौवन-काल की बातों को सुनने का अवसर जिस सौभाग्यशाली को प्राप्त होगा वह भी मस्त और मोहित हो जायगा। भीनी गध को सूँघ जैसे चलता पथिक रुक जाता है, उसी प्रकार प्रेम के उच्छ्वासों को सुनकर बड़े-बड़े सयमी डिग जाते हैं।

भावार्थ—क्रीड़ा करने के लिए जब वसन्त कलियों के भीतर प्रवेश करता है तब उनके खुलने से जो भीनी गध फूटती है उससे आसपास की भूमि

सरस हो जाती है। इसी प्रकार युवतियों के गात में छाकर जब यौवन उनके हृदय से धीरे-धीरे प्रेम की बातें उभारता था तब उन्हें सुनने वाले व्यक्तियों के जीवन में रस भर जाता था, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

जब खिलते थे—हँसी खिलाना—खिलना, विकसित करना। फूलों, के अंचल—पखुड़ियाँ। कल—मधुर। कंठ मिलाना—उसी लय में गाना, यहाँ मधुर लय उत्पन्न करना।

अर्थ—(वसन्त के पक्ष में) हे वसन्त, जब तुम फूलों की पखुड़ियों को सरस बनाते और उन्हें खिलाते थे अथवा झरनों के कोमल कल-कल स्वर से एक मधुर लय उत्पन्न करते थे।

सरस हँसी—मधुरता और लावण्य। फूलों के अंचल—सुमन के समान कोमल बालिकाओं के शरीर में। कलकंठ मिलाना—समर्थन करना। झरनों—मन के भावों।

अर्थ—(यौवन के पक्ष में) हे यौवन, जब तुम सुमन के समान कोमल बालाओं के शरीर में मधुरता और लावण्य भर रहे थे अथवा जब उनके मन की कोमल वाणी का समर्थन कर रहे थे—

वि०—वाणी का समर्थन करने से यह तात्पर्य है कि बालाओं के अंतर से जो प्रेम की मधुर वाणी उमड़ती है वह यौवन की प्रेरणा से। चन्द्रगुप्त नाटक में सुवासिनी कार्नेलिया से कहती है—

"धड़कते हुए रमणी-वक्ष पर हाथ रखकर उसी कम्पन में स्वर मिला कर कामदेव गाता है।"

भावार्थ—जैसे वसन्त के आते ही फूलों की पखुड़ियाँ मधुरता से विकसित हो उठती हैं, उसी प्रकार यौवन के आते ही बालाओं के शरीर में मधुरता और लावण्य छा जाता था। जैसे वसन्त की अनुकूलता से झरनों से कोमल कल-कल ध्वनि फूटती है, उसी प्रकार युवतियों में मन की कोमल मधुर वाणी यौवन की प्रेरणा प्राप्त कर अन्तर से उमड़ती थी।

निश्चिन्त आह वह—निश्चिन्त—चिंताहीनता। उल्लास—प्रसन्नता। काकली—कोकिल की ध्वनि। दिगन्त—दिशा।

अर्थ—(वसन्त के पक्ष में) कोकिल जब कूकती है तब उस काकल
से चिंताहीनता (बेफिक्री) और प्रसन्नता टपकती है। उससे उठी आनन्द क
ध्वनि आकाश के कोने-कोने में गूँज उठती है।

काकली—मधुर मन। स्वर—बात। दिगन्त—अंग।

अर्थ—(यौवन के पक्ष में)। मधुर मन से जो बात निकलती है उससे बहु
भारी निश्चिंतता और प्रसन्नता प्रकट होती है और आकाश के समान व्याप
जीवन के सभी अंगों में आनन्द की गूँज भर जाती है।

वि०—प्रारम्भ में यौवन चिंताओं में ठोकर मार कर चलता है और सुख
की खोज में रहता है, अतः जब तक समाज, धर्म या गुरुजन स्नेह सम्बन्ध
बाधा डालते दिखाई नहीं देते, तब तक चारों ओर आनन्द की वर्षा-सी होत
रहती है।

भावार्थ—जैसे कोकिल की मधुर कूक सुनकर यह अनुमान होता है कि
यह निश्चिंत और प्रसन्न मन से गा रही है, उसी प्रकार प्रेमी-प्रेमिकाओं क
मधुर प्रणय वाणी से यह आभास मिलता था कि ये प्रसन्न हैं और इन्हें को
चिन्ता नहीं सता रही है। कोकिल का स्वर जैसे आकाश के कोने-कोने में गूँ
उठता है, उसी प्रकार हमारे विस्तृत जीवन के सभी अंगों में आनन्द की ध्वनि
भर उठी थी।

पृष्ठ ६४

शिशु चित्रकार—शिशु—बालक। आशा—भावना। अस्पष्ट—ऊट
पटाँग। ज्योतिमयी लिपि—रङ्ग।

अर्थ—(बालक के पक्ष में)। किसी चचल बच्चे को जब चित्र बनाने क
सूझती है, तब उसके मन में जो भावनाएँ उठती हैं अपने ढग से वह अंकि
कर देता है। यदि उसे आँख बनाने की इच्छा होती है तो उनमें प्रकाश दिखा
के लिये वह ऊटपटाँग ढग से किसी प्रकार का रङ्ग भर देता है।

शिशु—भोले। चित्रकार—कल्पना प्रधान प्रेमी। चञ्चलता—अल्हड़पन
ज्योतिमय लिपि—सुख पूर्ण भावना। जीवन की आँख—यौवन।

अर्थ—बच्चों के समान भोले कल्पना-प्रधान प्रेमी-प्रेमिका अपने अल्हड़

पन में अनेक प्रकार की आशाओं के चित्र खींचते हैं और ऐसा विश्वास रखते हैं कि उनके यौवन के दिन उज्ज्वल सुखपूर्ण होंगे। कैसे होंगे, क्या करने से होंगे, इसकी कोई स्पष्ट भावना उनके हृदय मे नहीं होती।

वि०—जैसे शरीर मे आँख सबसे सुकुमार और मूल्यवान अंग है, उसी प्रकार जीवन में यौवन भी। इसी से जीवन की आँख को यौवन माना।

शेक्सपियर का कहना है कि कवि, प्रेमी और पागल एक ही श्रेणी के व्यक्ति हैं क्योंकि वे तीनों ही केवल कल्पना से निर्मित होते हैं—

The poet, the lover and the lunatic
Are of imagination all compact.

भावार्थ—अपने चचल स्वभाव के कारण बालकों को कभी-कभी चित्र बनाने की इच्छा होती है और वे चट से अपनी समझ के अनुसार कुछ टेढ़ी-सीधी रेखाएँ कहीं खींच लेते हैं। यही दशा इन सरल प्रेमी-प्रेमिकाओं की थी जो अपनी अल्हड़ता में अनेक प्रकार के सुख-स्वप्नों के कल्पना-चित्र बनाते रहते थे। बच्चे जैसे अपनी बनायी हुई रेखाओं में रंग भरने लगते हैं, उसी प्रकार ये भी ऐसी रगीन आशा रखते थे कि उनका भविष्य सुखपूर्ण अवश्य होगा। किस मार्ग का अनुसरण करने से होगा, इसकी कोई स्पष्ट भावना उनके मन में न थी। उस समय उनका विश्वास ही उनके लिए सब कुछ था।

लतिका घूँघट से—घूँघट—पत्ता। दुग्ध—श्वेत। मधुधारा—मकरद। प्लावित—भरना। अजिर—थाला, भूमि।

अर्थ—(वसन्त के पक्ष में) लताएँ पत्तों का घूँघट काढ़ जब अपने सुमन-नयनों की श्वेत चितवन से मकरद बरसाती हैं, तब उनके आसपास की भूमि रस से भर जाती है। इस रस के सामने ससार का समस्त वैभव तुच्छ प्रतीत होता है।

लतिका—लता सी रमणी। अजिर—आँगन।

अर्थ—(यौवन के पक्ष में) रमणियाँ जब लज्जा से घूँघट काढ़ सुमन जैसे सुकुमार नयनों की श्वेत (उज्ज्वल) चितवन से मधुर-मधुर ताकती हैं, तब देखने वालों के मन का आँगन रस से भर जाता है। इस रस के समक्ष ससार का समस्त वैभव फीका लगता है।

भावार्थ—जैसे लताएँ पत्तों की आड़ में छिपे श्वेत पुष्पों के कोने से मकरद बरसाती हैं और उनसे नीचे की भूमि भर उठती है उसी प्रकार अप्सराएँ जब अपने मुख पर अवगुठन डाल सुमन-नयनों की दुग्ध जैसी उज्ज्वल कनखियों से मधुर-मधुर ताकती थीं, तब मन अपूर्व प्रेम रस से परिपूर्ण हो जाता था। उस एक चितवन का मूल्य ससार के समस्त वैभव से कहीं अधिक था।

वे फूल और—फूल—फूल सी सुकुमार देवियाँ। सौरभ—गध। कलरव—प्यार की मीठी बातें। कोलाहल—आनद की ध्वनि। एकात—सूनापन।

अर्थ—एक दिन था कि फूल-सी सुकुमार देवियों की हँसी यहाँ बिखरती रहती थी। सुमन की गध के समान उनकी सुरभित साँसें निकलती थीं। पास बैठी वे प्यार की मीठी बातें करती रहती थीं। गाना होता रहता था। आनन्द की ध्वनि छा जाती थी। पर अब तो एक-मात्र सूनापन शेष रह गया है।

कहते कहते कुछ—निश्वास—साँस फेंकना। प्रगति—गति। प्रगति न रुकी—तार न टूटा।

अर्थ—इसी समय मनु को अपने व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित किसी बात का स्मरण हो आया। इस पर उन्होंने निराशा की एक साँस फेंकी, पर इससे उनकी विचारधारा का तार न टूटा।

पृष्ठ ६५

ओ नील आवरण—आवरण—परदा। दुर्बोध—कठिनाई से ज्ञान होना। अवगुठन-परदा, घूँघट। आलोक रूप—प्रकाशपूर्ण पदार्थ।

अर्थ—हे नीले आकाश, तुम्हारे सामने छाने से यह पता नहीं चलता कि तुम्हारे पीछे क्या है, अत तुम ससार की आँखों के लिए परदे का काम कर रहे हो। पर मैं देखता हूँ कि केवल तुम्हारे कारण-ही हमें तुमसे परे की वस्तुओं का ज्ञान कठिनाई से होता हो, ऐसी बात नहीं है, प्रकाशपूर्ण पदार्थ भी—जैसे सूर्य चद्र आदि—हमारे नेत्रों के लिए परदे का काम कर रहे हैं। उनकी चकाचौध में भी हम गगन से परे की वस्तुओं को नहीं देख पाते।

वि०—प्रकाश के कारण तो वस्तुओं के सत्य स्वरूप का ज्ञान होता है, पर यहाँ नीलाकाश के साथ ही सूर्य, चद्र नक्षत्र आदि के सामने आने से इनके

घूँघट में छिपा उस परम तत्व का मुख दिखाई नहीं देता। यह आश्चर्य की बात है।

चल चक्र वरुण—वरुण का ज्योतिभरा चल चक्र—प्रकाश और चञ्चलता से पूर्ण चन्द्रमा।

अर्थ—हे चन्द्रमा, तू आकुल होकर क्यों चक्कर काटता-फिरता है। ये तारे नहीं हैं, ऐसा प्रतीत होता है किसी की उपासना के लिए तू फूल लिए जा रहा था, वे हाथ से गिरकर बिखर गये हैं। निश्चय ही तारे नहीं हैं, तेरी असफलताएँ बिछी पड़ी हैं। भाव यह कि जितने ये तारे हैं, उतनी ही असफलताएँ तुम्हें जीवन में प्राप्त हुई।

वि०—वरुण जल के देवता हैं। प्रत्येक देवता के हाथ में किसी अस्त्र या शस्त्र की कल्पना हिन्दुओं ने की है। विष्णु के हाथ में चक्र, इन्द्र के हाथ में वज्र, शिव के हाथ में कोदंड (धनुष) और यमराज के हाथ में गदा मानते हैं। वरुण के हाथ में कवि ने चक्र देखा है। इस चक्र की दो विशेषताएँ हैं। (१) यह प्रकाश से पूर्ण है। (२) यह चञ्चल है। चन्द्रमा प्रकाश से भरा है और प्रतिपल घूमता रहता है। इसी से 'चलचक्र वरुण का ज्योतिभरा' को चन्द्रमा के अर्थ में ग्रहण किया।

नव नील कुंज—नीलकुंज—नील लतागृह के समान आकाश। झीमना—मस्ती से झूमना। कुसुमों—तारों। कंपा—कंपन। अतरिक्ष—वायुमंडल। आमोद—गंध। हिमकणिका—ओस की बूँद।

अर्थ—आकाश ऐसा प्रतीत होता है मानो बहुत से फूटे हुए नीले लता-गृह हों जो पवन के झकोरों से झूम उठे हों। ये कंपित तारे ऐसे लगते हैं जैसे कलियाँ चटख रही हों। वायु-मंडल में गंध भर गई है मानो इन्हीं तारा-पुष्पों से निकली सुगंध का प्रभाव हो। पृथ्वी पर पड़ी ओस की बूँदें ऐसी दिखाई देती हैं जैसे ऊपर से मकरंद झर पड़ा हो।

इस इंदीवर से—इंदीवर—नील कमल, यहाँ नीलाकाश। मोहिनी—मोहित करने वाली, रम्य। कारा—बंदीगृह।

अर्थ—जैसे कमल से सुगंधित मकरंद की बूँदें झर कर पृथ्वी पर एक जाल-सा बुन देती हैं, वैसे ही नीले कमल के समान इन नीले आकाश से झरने

वाले सुरभित सरस पवन के झकोरों का जाल इस शून्य में फैल गया है। जिस प्रकार भौंरा प्रेम-भाव में भर कर उस मोहक वातावरण में फँस जाता है, उसी प्रकार अनुराग उत्पन्न करने वाले इस रम्य वातावरण ने मेरे (मनु के) मन को अपना बंदी बना लिया है।

वि०—कारागृह से सभी घबराते हैं, पर प्रेम का बन्दीगृह ऐसा रम्य होता है कि उसमें अपनी ओर से बन्द होने के लिए प्राणी तरसते हैं।

अणुओ को है—अणु—परमाणु। विश्राम—ठहरना, रुकना। कृतिमय—कर्म करने का। वेग—गति। अविराम—निरतर, रातदिन। कपन—पुलकित होना, रोमाचित होना। सजीव—जगना।

अर्थ—ये परमाणु कर्म में इस चचल गति से लीन हैं कि पल को भी कहीं नहीं रुकते। अपने काम से इनके हृदय में इतना आनन्द जग उठा है कि उससे पुलकित होकर ये रात-दिन नाचते रहते हैं।

वि०—सृष्टि में प्रवृत्त होने के लिए यह आवश्यक है कि प्राणी कर्म में लीन हो। प्रकृति हमें यही उपदेश देती है। मनुष्य फिर भी रात में विश्राम कर लेते हैं, पर प्रकृति की वस्तुएँ, जैसे परमाणु, रात-दिन घूमते रहते हैं।

अणुओं के कपन को कवि ने उल्लास की अधिकता माना है। यह अनुभव की बात है कि जब व्यक्ति बहुत प्रसन्न होता है, तब नाचने लगता है। नृत्य का जन्म ही प्रसन्नता की अधिकता से हुआ है।

पृष्ठ ६६

उन नृत्य शिथिल—शिथिल—थकना। मोहमयी—मोहक। माया—जादू। समीर—शीतल मद पवन। छनना—मद और सूक्ष्म। छाया—शांति प्रदान करना।

अर्थ—अणु जब नृत्य करते-करते थक जाते हैं तब उनकी साँसें तीव्र गति से चलने लगती हैं। वे ही साँसें छनती-छनती (मद और सूक्ष्म होती) शीतल सुरभित पवन का रूप धारण कर लेती हैं तथा इतनी मोहक और जादू का-सा प्रभाव रखने वाली होती हैं कि शरीर को वायु-बन कर स्पर्श करते ही प्राणों तक को शांति प्रदान करती हैं।

वि०—कल्पना कीजिए कि किसी सभा में कोई नर्तकी नृत्य कर रही है और सभी की आँखें उसकी ओर लगी हुई हैं। थक कर वह एक व्यक्ति के निकट आती है और उसकी सुगन्धित तीव्र श्वास उसके शरीर को स्पर्श करती है। कितना सुख मिलता होगा उस व्यक्ति को जिस पर उस नर्तकी का इतना अनुराग निखरा है? इसी दृश्य के आधार पर समीर को नृत्य-शील अणुओं की छूती साँस माना है।

आकाश रंध्र हैं—रंध्र—छिद्र, यहाँ तारे। गहन—गंभीर वातावरण वाला। आलोक—तारे तथा चंद्रमा की किरणें।

अर्थ—ये तारे नहीं हैं आकाश के छिद्र हैं जो उजले प्रकाश से भर दिए गए हैं। इस समय सृष्टि का वातावरण कुछ गम्भीर हो उठा है। तारागण बेहोशी की-सी दशा में पड़े हैं और चंद्रमा की किरणें चंचल नहीं हैं। मेरी आँखें इनके रूप को देखते-देखते थक गईं, परन्तु तृप्त नहीं हुईं, इसी से दुख-सी उठी हैं।

सौंदर्यमयी चञ्चल कृतियाँ—कृतियाँ—मूर्तियाँ, चंद्र तारे। नाच रहीं—घूम रहीं। जाँच रहीं—परीक्षा ले रहीं, अवसर नहीं देतीं।

अर्थ—ये तारे और चंद्रमा जो प्रकाश की सुन्दर और चंचल मूर्तियाँ हैं रहस्य बने घूम रहे हैं। ये इतने मनहर हैं कि इनके रूप पर मेरी आँखें टिक गई हैं और दृष्टि आगे नहीं बढ़ पाती।

वि०—रम्य रूप की पहचान ही यह है कि उसे व्यक्ति देखता ही रह जाय, इधर-उधर न झाँक सके। रूप की मानो देखने वालों की आँखों को ललकारता है कि शक्ति हो तो तल्लीन मत हो।

मैं देख रहा हूँ—घन—ईश्वर।

अर्थ—सृष्टि में दिखाई पड़ने वाली यह सुन्दरता क्या सत्य नहीं, किसी की छायामात्र है? या केवल मन को उलझाकर हमारे लक्ष्य से दूर करने वाली है? सुन्दरता के इस परदे के पीछे क्या ईश्वर नाम की कोई अनन्त विभूति छिपी बैठी है?

वि०—दार्शनिकों का विश्वास है कि सृष्टि का समस्त सौंदर्य भगवान् के रूप की छायामात्र है। वह बिंब है और सुन्दरता प्रतिबिंब। मुसलमान सूफी भी

भीतर उषा का रहस्य छिपा है अर्थात् इस काले बादल के भीतर से ही अभी थोड़ी देर में अरुण उषा झलकेगी।

वि०—मनुष्य विश्वास न करे यह दूसरी बात है, पर किसी लक्ष्य के आश्रय में दुःख की काली घटा कुछ समय के उपरान्त फट जाती है और उषा के समान सुख उसके भीतर से झलकने लगता है।

पृष्ठ ६८

उठती हैं किरनों—किसलय—नवीन कोमल पत्ती। छाजन—छप्पर, आवरण, ढकना। निस्वन—गूँज। रध्र—छेद, यहाँ तारे।

अर्थ—चद्रमा की किरणों ने इस श्याम घटा को इस तरह अपनी नोंक पर सँभाल रखा है जैसे डडी पर कोमल नवीन पत्तियों का छप्पर छाया हो। पवन मधुर स्वर से गूँज रहा है। ऐसा लगता है जैसे आकाश एक विस्तृत वशी है, तारे उसके छिद्र और दूर पर छिपा बैठा कोई उसे बजा रहा है।

वि०—जैसे किरणें काले बादल को उठा लेती हैं, उसी प्रकार यदि मनुष्य धैर्य न खोये तो आशा की किरणें निराशा के काले बादल को सँभाले रह सकती हैं। ऐसी स्थिति में उस दु.ख में भी हृदय एक प्रकार की मिठास का अनुभव करता रहता है।

सब कहते हैं—खोलो-खोलो—परदा हटाओ। जीवनधन—जीवन सर्वस्व, भगवान्। आवरण—परदा।

अर्थ—घिरते बादलों, अगणित नक्षत्रों और आकुल चन्द्रमा को देख कर ऐसा लगता है मानो सब पुकार कर यह कह रहे हों—सामने से (आकाश के) परदे को हटाओ, हम अपने जीवन-सर्वस्व (भगवान्) की झाँकी पाना चाहते हैं। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि उनके दर्शन के लिये इन्होंने जो भीड़ लगा रखी है इससे दूसरों की दृष्टि के लिये ये स्वय एक परदा बन गये हैं।

वि०—किसी उत्सव, तमाशे या मन्दिर में भीड़ लगाकर धक्का-मुक्की करने वाले व्यक्ति न स्वय कुछ देख पाते हैं और न दूसरों को देखने देते हैं। ऐसा ही दृश्य ऊपर के छन्द में है।

चाँदनी सदृश खुल जाय—चाँदनी सदृश—चाँदनी जैसा, चाँदनी का। अवगुंठन—घूँघट। कल्लोल—आनन्द।

अर्थ—चाँदनी का यह घूँघट जो आकाश रूपी समुद्र की पवन-हिलोरों में असीम आनन्द में डूबकर मस्ती से हिल रहा है और जिसे उस सुन्दरी (भगवान्) ने सँभाल कर अपने मुख पर डाल रखा है, यदि किसी प्रकार खुल जाय।

नोट—भाव आगे के छन्द में पूरा होगा।

अपना फेनिल फन—फेनिल—फेन जिससे झरे। उनिद्र—उनींदी, झूमते हुये। उन्मत्त—आवेश। मणियाँ—चन्द्र और तारों।

अर्थ—चाँदनी का यह उपर्युक्त घूँघट आकृति में शेषनाग के फण के समान है। जैसे फण के झटका खाते ही मुख से फेन गिरने लगता है और शीश से मणियाँ झरने लगती हैं, उसी प्रकार चाँदनी के हिलते ही चन्द्रमा और नक्षत्रों के रूप में फेन और मणिजाल बिखर जाता है। जैसे शेषनाग प्रेम के आवेश में झूमते हुये भगवान् का निरन्तर गुण गान करते रहते हैं, उसी प्रकार यह चाँदनी उनींदी सी प्रतीत होती है और पवन के रूप में कुछ मत्त रागिनी गाती रहती है। चाँदनी का यह घूँघट यदि खुल जाय तो उसके दर्शन हो जायँ।

वि०—क्योंकि घूँघट कुछ-कुछ झुके फण की आकृति का होता है, इसी से प्रसाद ने चाँदनी रूपी घूँघट की तुलना शेषनाग के फण से की है। पर यह कल्पना हमारी समझ में न तो रम्य है और न उपयुक्त।

'प्रसाद' जी इसके पूर्व ही आकाश के साथ प्रकाश को अवगुंठन मान चुके हैं। देखिए—

> ओ नील आवरण जगती के दुर्बोध न तू ही है इतना,
> अवगुंठन होता आँखों का आलोक रूप बनता जितना।

यहाँ स्पष्टता से समझ लेना चाहिये कि, चाँदनी शेषनाग के फण के लिये, पवन लहरों के लिये, फेन और मणियाँ चन्द्र और तारागणों के लिये तथा वायु की सनसनाहट सर्पराज के मुख से निकले भगवान के निरन्तर कीर्तन के लिये प्रयुक्त है।

अर्थ—जैसे दूर आकाश के कोने में श्याम मेघ एकत्र हो जाते हैं, उसी प्रकार मनु के मन के किसी कोण में भूतकाल की धुँधली स्मृतियाँ घिर कर अपना एक नवीन ससार रचने लगीं। यह मन स्वभाव से ही चचल है। प्रतिपल कुछ न कुछ सोचता रहता है।

जागरण लोक था—जागरण लोक—बाहरी ससार। स्वप्न—कल्पना। सुख—मधुर। सचार—जगाना। कौतुक—कौतूहल, विस्मय। क्रीड़ागार—खेलने का स्थान।

अर्थ—बाहरी ससार का मनु को कुछ भी ज्ञान न रहा। उनके मन में (सृष्टि-रचना सम्बन्धी) एक कौतूहल उठा जिसने अनेक मधुर कल्पनाओं को जगाया। इन भावनाओं से उनका हृदय बहुत देर तक खेलता रहा।

था व्यक्ति सोचता—सजग—जाग्रत। कानों के कान खोल कर—स्पष्ट शब्दों में।

अर्थ—जब मनुष्य आलस्य में पड़ा-पड़ा कुछ सोचता है, तब उसकी चेतना और भी जाग्रत हो जाती है। मनु ने ऐसी ही स्थिति में पहुँच कर अत्यत स्पष्ट वाणी में किसी को बोलते सुना।

वि०—आलस्य में चेतना के अधिक सजग होने का कारण यह है कि एकाग्रता (Concentration) बढ़ जाती है।

यह एक प्रकार से आकाश-वाणी है, पर किसी को आपत्ति न हो इसी से उन्होंने ऊपर 'स्वप्न' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि स्वप्नावस्था में उन्होंने काम की वाणी सुनी।

× × × ×

पृष्ठ ७१

प्यासा हूँ मैं—प्यासा—अतृप्त। ओघ—वासना की बाढ़। तृष्णा—कामना। चैन—शाति।

अर्थ—कामदेव बोला—मैं अब भी अतृप्त हूँ। देवताओं के जीवन में वासना की बाढ़ आई जो चढ़ कर उतर भी गई, पर मेरा जी न भरा। मेरी कामना कुछ भी शात न हुई।

देवों की सृष्टि—सृष्टि—जाति। विलीन—नष्ट। अनुशीलन—चिंतन। अनुदिन—प्रतिदिन। अतिचार (Excess) अत्यधिक आसक्ति।

अर्थ—रात दिन मेरा (काम का) चिंतन करने से देवजाति नष्ट हो गई। मेरे प्रति उनकी अत्यधिक आसक्ति कभी कम न हुई। वासना से सब उन्मत्त रहते थे।

मेरी उपासना करते—विधान—नियम। विलास वितान तना—विलास का चँदोवा तान दिया, विलास फैला दिया।

अर्थ—वे मेरे (काम के) उपासक थे। मेरी प्रेरणा से उनके नियम बनते थे। मेरे प्रति अत्यधिक आकर्षण ने उनमें घना विलास फैला दिया।

वि०—'संकेत विधान बना' का तात्पर्य यह है कि यदि काम भावना यह प्रेरणा करती थी कि देवता और अप्सरियाँ स्वतन्त्रता से मिलें तो वे लोग ऐसा नियम चट से बना देते थे कि स्वतन्त्रता से मिलना सभ्यता का सूचक है, अतः यदि दो प्राणी कभी किसी से कहीं मिलना चाहें तो किसी को कोई आपत्ति न होगी।

मैं काम रहा—सहचर—संगी। साधन—कारण। कृतिमय—कर्ममय, गति।

अर्थ—देवताओं के जीवन में मैं सदैव संगी रहा। उनके मनोरंजन का एकमात्र कारण मैं था। उन्हें प्रसन्न करने में मुझे प्रसन्नता प्राप्त होती थी। सच पूछो तो उनके जीवन में गति भरने वाला मैं ही था।

पृष्ठ ७२

जो आकर्षण बन—हँसना—रूप का झलकना। अनादि—स्थायी। अव्यक्त—सूक्ष्म। उन्मीलन—विकास।

अर्थ—देवियों के हृदय में स्थायी रूप से रहनेवाली वासना का ही दूसरा नाम रति है। उस वृत्ति के उभरते ही रूप झलक उठता है और प्रेमियों को आकर्षित करता है। सूक्ष्म प्रकृति से जब स्थूल सृष्टि बनी उस समय उनके हृदय में भी वासना का निवास था।

वि०—चन्द्रगुप्त नाटक में सुवासिनी कहती है—

पृष्ठ ७४

हम भूख प्यास—आकाङ्क्षा—कामना। समन्वय—मेल। यौवन वय—यौवनावस्था।

अर्थ—जैसे भूख लगती है, प्यास लगती है, उसी स्वाभाविकता से हम सब के प्रिय हुए। हम आकाङ्क्षा का तृप्ति से मेल कराने लगे अर्थात् मन में हम प्रेम की कामना जागरित करते और उसकी पूर्ति का उपाय बतलाते। देवताओं की उस सृष्टि में जो युवक युवतियों से पूर्ण थी, हमारा नाम 'काम' और 'रति' पड़ गया।

वि०—सुनते हैं देवता शरीर से कभी वृद्ध नहीं होते।

सुर बालाओं की—तन्त्री—वीणा। लय—स्वर में स्वर मिलाना, विरोध न करना। राग भरी—प्रेममयी।

अर्थ—रति देवियों की सखी बनी। वह उनकी हृदय-वीणा के सुर में सुर मिलाती रहती थी अर्थात् सदैव सुरागनाओं के मन के अनुकूल बात कहती। क्योंकि वह प्रेम के मधुर जीवन से परिचित थी, अतः उनके प्रेम-पथ की उलझनें दूर करती रहती थी।

मैं तृष्णा था—तृष्णा—इच्छा। तृप्ति—प्राप्ति, सतोष। आनन्द समन्वय—आनन्द मिलना। पथ—प्रेम का मार्ग।

अर्थ—इधर मैं देवताओं के हृदय में इच्छाओं को उभारता और उधर रति अप्सरियों को ऐसे उपाय सुझाती रहती जिनसे इच्छाओं की पूर्ति हो। इस प्रकार आनद प्रदान करते हुए हम अपने इच्छित मार्ग पर इन्हें ले जा रहे थे।

वे अमर रहे न—अमर—देवजाति। विनोद—भोग विलास। अनग—जिसके अग (शरीर) न हों, कामदेव का एक नाम। अस्तित्व—जीवन। प्रसग—कहानी।

अर्थ—आज न वह देवजाति रही और न उनका भोग-विलास। मैं भी उस रूप में न रहा। एक चेतना मात्र रह गया, अशरीरी हो गया। मेरी सरल कहानी इतनी-सी है। मेरा जीवन एक भावमात्र में सिमिट कर रह गया है और आज मैं इधर-उधर भटकता फिरता हूँ।

पृष्ठ ७५

यह नीड़ मनोहर—नीड़—घोंसला। कृतियों—कर्म। रंगस्थल—रंगमंच। परंपरा—क्रम, एक के पीछे एक का आना।

अर्थ—संसार कर्म की रंगभूमि है। जैसे घोंसले की शोभा सुंदर पक्षियों से होती है, उसी प्रकार जगत में शोभा केवल उस मनुष्य की है जो शुभ कर्म करता है। यहाँ एक जाता है, दूसरा आता है। जिसमें जितनी शक्ति है वह उतनी ही देर यहाँ रुक पाता है।

वि०—शेक्सपियर के 'मर्चेन्ट आव वेनिस' में एन्टोनियो कहता है—

The world is a stage, Gratiano
Where every man must play his part
And mine a sad one.

ये कितने ऐसे—साधन (Tools), दूसरों की इच्छापूर्ति के लिए प्रयुक्त होना। सब धागे बुनना—काम पूरा करना।

अर्थ—संसार में बहुत से मनुष्य ऐसे हैं जिनका जन्म दूसरों की इच्छा पूर्ति के लिए ही होता है। जैसे कपड़ा बुनते समय धागों का छुटकारा तब तक नहीं जब तक वस्त्र पूरा न बुन जाय, उसी प्रकार जो काम लेने वाले व्यक्ति हैं वे ऐसे मनुष्यों से प्रारम्भ करा कर उस समय तक काम लेते रहते हैं जब तक उनका काम पूरा न हो जाय।

वि०—संसार में थोड़े व्यक्ति स्वामी हैं, शेष सेवक। अधिकतर व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका जीवन दूसरों की स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही होता है।

ऊषा की सजल—सजल—सरस। गुलाली—लालिमा। घुलती—फैलती। वर्ण—रंग। नेपथ्य—संध्या समय के बादल।

अर्थ—प्रभात काल में ऊषा की सरस लालिमा जो नीले आकाश में फैलती है उससे तुम क्या समझते हो? संध्या समय रंग बिरंगे जो बादल छाते हैं, वे किस भाव का आभास देते हैं, बता सकते हो?

अंतर है। दिन—साधक कर्म—कर्म की साधना।

अर्थ—पहले द्वार को तुम दिन कहते हो और दूसरे को [illegible] प्रारम्भ।

पर यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखो तो कर्म की साधना चल रही है। यह आकाश नहीं है, माया का नीला अंचल है। यह उषा और संध्या की लालिमा नहीं, उस अंचल से प्रकाश की बूँदें बरस रही हैं।

वि०—भाव यह कि इस संसार में माया का राज्य है और जैसे-जैसे रात-दिन ढलते हैं वैसे ही वैसे प्रकृति अपना कर्म पूरा किए जा रही है। अतः मनुष्य को भी कर्म से विरत न होना चाहिए।

रहस्य सर्ग में 'इच्छा लोक' के प्रसंग में आया है।

घूम रही है यहाँ चतुर्दिक, चल चित्रों की संसृति छाया,
जिस आलोक बिंदु को घेरे, वह बैठी मुस्क्याती माया।

पृष्ठ ७६

आरंभिक वात्या उद्गम—वात्या उद्गम—पवन का जन्म। प्रगति—विकास। संसृति—संसार। शीतल छाया—संयमपूर्ण आश्रय। ऋण शोध—सुधार। कृति—भावना।

अर्थ—जैसे सबसे पहिले शून्य आकाश से पवन का जन्म होता है, उसी प्रकार मेरा जन्म सबसे पहिले हुआ है। जैसे उस वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी का विकास हुआ उसी प्रकार चेतन जगत मेरे (काम के) द्वारा विकास को प्राप्त हुआ है। देवताओं के यहाँ अति होने से जो वृत्ति विकृत हो गयी थी, वही भावना मानव जाति के संयमपूर्ण आश्रय में सुधर जायगी।

दोनों का समुचित—दोनों—वासना और संयम। समुचित—उचित। प्रतिवर्त्तन—आदान प्रदान, विशेषमात्रा या अनुपात (Ratio) में होना। प्रेरणा—काम की भावना। विप्लव—नाश। ह्रास— संयमित।

अर्थ—जीवन का ठीक विकास, वासना और संयम के उचित अनुपात में होने से ही होता है। देवताओं के जीवन मे काम की प्रेरणा एक अंधवृत्ति के रूप मे थी। उसका परिणाम यह हुआ कि उस जाति का नाश हो गया। अब वह प्रेरणा उतनी उग्र न होगी, संयमित रहेगी।

यह लीला जिसकी—यह लीला—सृष्टि। मूलशक्ति—आदि शक्ति। उसका—प्रेम का। संसृति—संसार। वह अमला—श्रद्धा।

अर्थ—उस आदि शक्ति का नाम जिसने सृष्टि का निर्माण हुआ 'प्रेम' है और उस प्रेम का संदेश सुनाने के लिए संसार में एक उज्ज्वल शक्ति आई है।

वि०—यहाँ 'वह अमला', से तात्पर्य 'श्रद्धा' अथवा कामायनी से है। स्थूल जगत में वह श्रद्धा काम और रति की पुत्री थी, और भावजगत में वह वृत्ति है जिसका अर्थ आस्था का होता है।

पृष्ठ ७७

हम दोनों की संतान—दोनों—रति काम।

अर्थ—वह मेरी और रति की पुत्री है। स्वभाव की भोली और सुन्दर है। वह रंगीन फूलों की शाखा के समान आकर्षक है।

वि०—कामायनी के 'आमुख' में प्रसाद ने श्रद्धा को काम की पुत्री इस पंक्ति के आधार पर माना है—"कामगोत्रजा श्रद्धानामर्षिका"। परन्तु यदि उसे भाव भी मानें तो इस प्रकार समझना चाहिए कि काम रति प्रेम के प्रेरक हैं, प्रेम से श्रद्धा उत्पन्न होती है अर्थात् जिसे हम प्रेम करते हैं उसमें आस्था रखते हैं, उस पर संदेह नहीं करते।

जड़ चेतनता की—जड़—जड़ प्रकृति। चेतनता—चेतन प्राणी। गाँठ—अनुराग का बंधन। सुधार—ठीक। दारुण विचार—क्षोभ उत्पन्न करने वाले विचार।

अर्थ—चेतन प्राणी का जड़ प्रकृति में अनुराग उसी के कारण स्थापित होता है। भूलों को ठीक कर वह सारी समस्याओं को सुलझा देती है। जीवन में जब क्षोभ उत्पन्न करने वाले विचार उठते हैं, तब वह शीतलता और शांति प्रदान करती है।

वि०—नारी के कारण सृष्टि प्यारी लगने लगती है और जब दुःख अथवा होता है तब वह अपने दुलार का हाथ फेर कर उसे अगाध शांति देती है।

भाव पक्ष में इस छन्द को इस दृष्टि से देखना चाहिये कि जब तक संसार में आस्था न होगी—यह संदेह बना रहेगा कि संसार असत्य है—तब तक प्रकृति प्रिय लग ही नहीं सकती। जब किसी में विश्वास होता है तब उसकी

भूलों को भी क्षमा कर देते हैं और यदि उसके प्रति विरोधी भाव उठते भी हैं तो थोड़ी देर में शात हो जाते हैं।

उसके पाने की—वह ध्वनि—काम की वाणी।

अर्थ—हे मनु, यदि उसे पाने की इच्छा है तब उसके योग्य बनो। ऐसा कहती हुई वह वाणी उसी प्रकार शात हो गई जैसे बजते-बजते वशी बद हो जाती है।

वि०—जीवन में जिसे हम प्रेम करना चाहें उसके योग्य हम हैं भी अथवा नहीं यह देख लेना चाहिए। यदि कोई दुराचारी किसी अत्यत सभ्य, शिक्षित और सुशील रमणी से प्रेम प्रदर्शित करता है, तब वह अपना, अपनी स्नेहपात्री और प्रेम तीनों का अपमान करता है।

मन अस्थिर है, अतः यदि श्रद्धा को अतर में बसाना चाहता है तो उसे सशयशील न होना चाहिए। इस श्रद्धा के होने से ही कर्म, भक्ति और ज्ञान में सफलता मिलती है।

मनु आँख खोल—पथ—उपाय। देव—कामदेव।

अर्थ—मनु ने आँख खोलकर (सचेत होकर) पूछा : हे देव, जिस निर्मल ज्योतिर्मयी की आपने चर्चा की उस तक पहुँचने का कौन-सा मार्ग (उपाय) है? यदि कोई उसे प्राप्त करना चाहे तो कैसे प्राप्त करे?

पर कौन वहाँ—स्वप्न—कल्पना। भग—टूटना। प्राची—पूर्व दिशा। अरुणोदय—सूर्य का उगना। रसरग—सरस लालिमा।

अर्थ—पर, वहाँ उत्तर देने वाला कोई था ही नहीं। मनु जो सपना देख (कल्पना कर) रहे थे, वह टूट गया। इसी समय रम्य पूर्व दिशा में सूर्य उदित हुआ और सरस लालिमा छा गई।

पृष्ठ ७८

उस लता कुंज—झिलमिल—झलक। हेमाभिरश्मि—सुनहली आभा से युक्त किरण। सोम सुधा रस—प्राचीन काल की किसी लता से खिचा हुआ एक मधुर मादक रस।

अर्थ—उस झलकते हुए लता-गृह के साथ सुनहली किरण क्रीड़ा कर रही थी और वह बेल जिससे देवता लोग सोम रस तैयार किया करते थे आज मनु के हाथ में थी।

वि०—आगे चल कर मनु और श्रद्धा एक दूसरे को आत्म-समर्पण करेंगे; अतः यहाँ पृष्ठभूमि में पहले से ही प्रकृति की वस्तुओं को प्रेम-मग्न दिखाया है। 'कुंज' 'पुल्लिंग' है और 'रश्मि' स्त्रीलिंग। राम-सीता के दृष्टि-मिलाप के पहले भी तुलसी ने यही किया है—

भूप बाग वर देखेउ जाई।
जहँ बसंत ऋतु रही लुभाई।

वासना

कथा—इस सर्ग में बाह्य कथानक का उतना विकास नहीं हुआ जितना आतरिक वृत्तियों का। दो प्राणी जब एक दूसरे के सम्पर्क में आकर चुप-चुप आकर्षण का अनुभव करते हैं, तब क्या होता है, कैसा लगता है, यही दिखाना इसका मुख्य उद्देश्य है।

श्रद्धा मनु के साथ रहने तो लगी, पर दोनों ही अपने-अपने मन की बात कहने में सकुचाते थे, अतः उस निकटता में भी एक प्रकार की दूरी बनी रही। एक दूसरे का परिचय पाकर भी जैसे वे एक दूसरे को जान न पाये। एक दिन सध्याकाल था, मनु चिंतन में लीन थे। उसी समय उन्होंने देखा कि श्रद्धा बड़े भोलेपन के साथ एक पशु से खेल रही है और वह पशु उसके चारों ओर स्नेह से भर कर चक्कर काट रहा है। इससे उन्हें बड़ी पीड़ा हुई। वे सोचने लगे: हम से तो यह पशु ही अच्छा है जिसे श्रद्धा का स्नेह तो मिला है। ईर्ष्या-भावना कुछ और तीव्रता पकड़ गई। झुँझलाहट में भर कर वे कहने लगे : ये पशु मेरे ही दिए अन्न से तो इस घर में पल रहे हैं। यदि मैं अन्न न जुटाऊँ तो सब मर जायँ। पर मेरा तिरस्कार करने पर जैसे सब तुले हैं, कोई भी मुझे प्रेम नहीं करता। मैं चाहता हूँ कि ससार की सभी उपयोगी और सुन्दर वस्तुएँ केवल मेरे सुख-विधान के लिए प्रयुक्त हों। आज से यही होगा।

इस बीच श्रद्धा निकट आ गई और मनु की आकृति को देखते ही उसने भाँप लिया कि आज इनका हृदय किसी कारण से आदोलित और क्षुब्ध है। उसने अत्यन्त स्नेह से उनके शरीर को अपनी सुकुमार उँगलियों से स्पर्श किया जिससे मनु के अतर की ईर्ष्याग्नि एकदम शान्त हो गई।

मनु बोले . यह क्या बात है कि तुम आकर्षित करती हुई भी मुझसे दूर-दूर रहती हो ? कितने परिताप की बात है कि तुम्हारे होते हुए भी मैं इतना दुःखी

हूँ। मेरी पूछो तो मुझे ऐसा लगता है जैसे जिसकी खोज में मैं आज तक घूम रहा था, तुम्हारे रूप में वही मुझे प्राप्त हो गई है। संसार में एक-एक वस्तु आकर्षण-पाश में बद्ध है, फिर हम ही दोनों पास रहते हुए क्यों बिछुड़े हुए हैं? बताओ, क्या मैं कभी सुखी न हो सकूँगा? श्रद्धा ने उत्तर दिया: ऐसी बातें मैंने पहली ही बार तुम्हारे मुख से सुनी हैं। सच, मुझे पता नहीं था कि मेरे कारण तुम इतने व्यथित हो! इतना कह कर मनु का हाथ पकड़ वह चाँदनी में उन्हें खींच लायी। उस रम्य वातावरण के प्रभाव से मनु का हृदय और भी अधिक धड़कने लगा और आवेग की बातें बराबर उनके अंतर से उमड़ती रहीं: मेरा मन वेदना की चोटों से आहत होकर छटपटा रहा है। उसे यदि कहीं विश्राम मिल सकता है तो केवल तुम्हारे प्रणय की शांत शीतल छाया में ही। आज अपने मधुर अतीत की स्मृति मुझे सता रही है। बचपन में मेरी भी एक संगिनी थी जिसका नाम श्रद्धा था। काम उसके पिता थे। प्रलय में वह मुझसे बिछुड़ गई, पर तुम्हारी छवि उसकी छवि से एकदम मेल खाती है; अतः मैं समझ रहा हूँ कि उसी को मैंने फिर प्राप्त किया है। तुम्हारी मुस्कान ने न जाने कितने सुख के सपने मेरे हृदय में जगाये हैं!

श्रद्धा सब सुन रही थी, सब समझ रही थी। यों उसे बड़ा सुख मिल रहा था, पर लज्जा ने उसी समय उसके हृदय पर अधिकार जमा लिया और मनु के लिए आकुलता और मधुरता का अनुभव करने पर भी वह न तो कुछ कह ही सकी और न कुछ कर ही।

पृष्ठ ८१

चल पड़े कब से—अश्रांत—निरंतर। भ्रांत—जिसका गंतव्य-स्थान (Destination) निश्चित न हो। विगत विकार—पवित्र हृदय वाला। प्रश्न—अभाव। उत्तर—पूर्ति।

अर्थ—जैसे दो दिशाओं से चलने वाले दो पथिक जिनके पहुँचने का स्थान निश्चित न हो, मार्ग में भटकते-भटकते निरन्तर चलते रहें और सहसा कहीं एक दूसरे को मिल जायँ, वैसे ही श्रद्धा और मनु जीवन-पथ के दो पथिक थे, दोनों का हृदय जीवन-साथी खोजने को बहुत दिनों से भटक रहा था, अकस्मात् हिमालय की तलहटी में (मनु के निवास-स्थान पर) दोनों की भेंट हो गई।

एक (मनु) घर का स्वामी था और दूसरा (श्रद्धा) पवित्र हृदय वाला अतिथि। एक (मनु) अभावों से भरा था और दूसरा (श्रद्धा) उन अभावों की पूर्ति करने वाला।

वि०—श्रद्धा नारी है, पर उसे व्यक्ति मानकर कवि 'दूसरा था' से पुल्लिङ्ग में सम्बोधन कर रहा है। आगे भी उसने ऐसा ही किया है।

एक जीवन सिंधु था—जीवन—जल। लघु—छोटी। लोल—चचल। नवल—नवीन। अमोल—अमूल्य। सजल उद्दाम—घना जल बरसाने वाले। रञ्जित—युक्त। श्री कलित—शोभा भरी।

अर्थ—मनु यदि जल से भरे समुद्र के समान थे तो श्रद्धा उसमें उठने वाली एक छोटी सी चंचल लहर थी। मनु यदि नव प्रभात के सदृश थे, तो श्रद्धा एक अमूल्य सुनहली किरण जैसी।

मनु यदि घना जल बरसाने वाले वर्षाकालीन आकाश के समान थे, तो श्रद्धा किरणों से झलकती शोभाभरी बदली जैसी।

वि०—समुद्र और लहर, प्रभात और किरण, आकाश और बादल सभी में यह बात ध्यान देने योग्य है कि पहली वस्तुएँ व्यापक हैं, दूसरी उनका अंश। साथ ही ये वस्तुएँ एक दूसरे से चिर-सबधित हैं। तीसरे पहली वस्तुओं की शोभा दूसरी वस्तुओं से ही है। कहना चाहिए कि यदि दूसरे वर्ग की वस्तुएँ न हों तो पहले वर्ग की वस्तुएँ व्यर्थ सिद्ध हों। यही दशा स्त्री पुरुष की है। स्त्री के बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण है, शोभाहीन है, व्यर्थ है।

नदी तट के क्षितिज—नव जलद—नवीव बादल। मधुरिमा—मधुरता, रम्यता। अविरत—निरन्तर। युगल—दो। पाश—फन्दा।

अर्थ—सन्ध्या समय सरिता के उस पार सुदूर आकाश के कोने में उठे किसी नवीन बादल में जैसे बिजली की दो रेखायें एक दूसरे से उलझती हुई रम्य प्रतीत होती हैं, वैसे ही श्रद्धा और मनु दोनों की चेतनायें एक दूसरी से टकरा रही थीं, पर इनमें से अभी तक एक में भी इतनी शक्ति न थी कि वह दूसरी को उलझा ले।

वि०—भावधारा सरस और निरन्तर प्रवाहशीला है, अतः 'नदी' शब्द

लाए। एक दूसरे को आकर्षित करने की भावना अभी हृदय की बहुत गहराई में है और स्पष्टता से उभर नहीं पाई, यही कारण है कि 'क्षितिज' और 'सायकाल' शब्दों का प्रयोग किया। 'नव जलद' इसलिए लिखा कि दोनों के अन्त.करण सच्चे अर्थ में प्रथम बार ही प्रेम करने को उत्सुक हुए हैं।

था समर्पण में—समर्पण—अपने को सौंपना। ग्रहण—अधिकार। सुनिहित—छिपा हुआ। प्रगति—आकर्षण की वृद्धि। अटकाव—सकोच। विजन पथ—हृदय का सूनापन। मधुर जीवन खेल—प्रेम की मधुर भावना। नियति—भाग्य, विधाता।

अर्थ—श्रद्धा और मनु ने एक दूसरे के हाथ अपने को सौप दिया था, पर इसमें एक दूसरे पर अधिकार करने की भावना भी छिपी हुई थी। एक का दूसरे के प्रति आकर्षण वैसे बढ रहा था, पर संकोच के बीच में आने से वे अपने हृदय की बात स्पष्टता से कह न पाते थे। अपने सूने हृदय में वे अभी तक एक दूसरे के प्रति प्रेम की मधुर भावना पोषित कर रहे थे, पर अब विधाता की ऐसी इच्छा थी कि ये जो पास-पास रहते हुए भी अपरिचित के समान जीवन व्यतीत कर रहे हैं, प्रेमी-प्रेमिकाओं की भाँति मिल कर रहें।

नित्य परिचित हो रहे—अतर का विशेष गूढ़ रहस्य—प्रेम। सतत—निरंतर। नयन की गति रोक—दृष्टि गड़ाए।

अर्थ—नित्य कोई न कोई ऐसी घटना हो जाती थी जिससे उन्हें एक दूसरे के आकर्षण का पता चल जाता था, पर दोनों में से खुल कर बात कोई न करता था। इससे उनके हृदय का जो अधिक गम्भीर रहस्य (प्रेम) था वह छिपा ही रह जाता था। समीपता का अनुभव करते हुए भी वे एक दूसरे से उसी प्रकार दूर थे जैसे घने बन में होकर जाने वाला पथिक पथ के अत का प्रकाश देख कर उसे निकट ही समझता है, पर जैसे-जैसे वह उसकी ओर दृष्टि गड़ाए बढ़ता है वैसे ही वैसे वह दूर होता जाता है।

पृष्ठ ८२

गिर रहा निस्तेज—निस्तेज—आभाहीन। गोलक—गोल पिंड, यहाँ सूर्य।

घन पटल—बादलों का समूह । समुदाय—समूह । कर्म का अवसाद—निरंतर काम करने से उत्पन्न थकावट । छल छद—बहाना, धोखा । सुरस—मधुर मकरंद ।

अर्थ—आभाहीन सूर्य विवश होकर समुद्र में डूब रहा था और किरणों का समूह बादलों में विलीन हो रहा था। जैसे सेवक जब काम करते-करते थक जाता है और कठोर स्वामी उस समय भी काम लेना चाहता है तो वह कोई न कोई बहाना बनाकर काम से छुट्टी पा लेता है, उसी प्रकार सूर्य निरंतर चलते-चलते थक गया था और अब उसने किसी बहाने दिन से छुट्टी ली। इधर भ्रमरी ने मधुर मकरंद का सचय बद कर दिया।

वि०—इस वर्णन से यह सकेत मिलता है कि सध्या हो गई।

उठ रही थी कालिमा—धूसर—धूलभरे । अरुण आलोक—सूर्य का प्रकाश । करुणालोक—करुण वातावरण । निर्जन—सूना वन । निलय—निवास स्थान । कोक—चकवा चकवी ।

अर्थ—धूल भरे हुए दीन आकाश में कालिमा छाने लगी जिसे (क्षितिज को) सूर्य के अन्तिम फीके प्रकाश ने आलिगन किया। कालिमा और प्रकाश के विवशता के इस मिलन ने एक करुण वातावरण की सृष्टि की। उसी समय वन मे शोक से भरे हुए चकवा और चकवी अपने निवास स्थान से दूर होकर एक दूसरे से बिछुड़ गये।

वि०—यहाँ सूर्य और कालिमा तथा कोक और कोकी का दुहरा वियोग-मिलन दिखाकर कवि ने सध्या के वातावरण में उदासी को अत्यधिक घनीभूत कर दिया है।

प्रसिद्ध है कि चकवा-चकवी के किसी जोड़े ने किसी मुनि की साधना में अपनी क्रीड़ा और कोलाहल से विघ्न उपस्थित किया और उस मुनि ने उन्हें रात में चिर-वियोग का शाप दिया। उसी समय से कोक-कोकी रात को नहीं मिल पाते।

मनु अभी तक—मनन—चिंतन । लगाए ध्यान—एकाग्र चित्त से ।

उपकरण—सामग्री। अधिकार—अपनी सम्पत्ति। शस्य—धान। धान्य-अन्न। सचार—वृद्धि, ढेर।

अर्थ—मनु अभी तक एकाग्र चित्त से चिंतन में लीन थे। कल रात के अन्तिम प्रहर में कामदेव ने जो बातें कही थीं, वे उनके कानों में गूँज रही थीं, उन्हें वे अभी भूले न थे। इधर उनके घर में कुछ ऐसी सामग्री एकत्र हो रही थी जिसे वे अपनी सम्पत्ति कह सकें। वे पशु पालने लगे और उनके यहाँ धान तथा अन्न का ढेर होने लगा।

पृष्ठ ८३

नई इच्छा खींच—खींच लाती—उत्साहित करती। सुरुचि समेत—सुरुचिपूर्ण। चमत्कृत—विस्मय में भर। नियति—भाग्य। खेल बधन-मुक्त—खुला खेल।

अर्थ—श्रद्धा को किसी भी नवीन इच्छा की पूर्ति मनु बड़े उत्साह से करते। इस प्रकार इस अतिथि के सकेत ही अत्यन्त सुरुचिपूर्ण (Refined) आदेश बन कर उन पर सहज भाव से शासन करने लगे।

यज्ञशाला में बैठे हुए मनु ने विस्मय और कौतूहल से भर कर एक दिन भाग्य का एक खुला खेल देखा।

एक माया आ रहा था—माया—विलक्षण दृश्य। मोह—प्यार से भरा पशु। करुणा—ममतामयी श्रद्धा। सजीव—प्राणवान। सनाथ—धन्य। चपल—फुर्ती से। सतत—बराबर। चमर—पूँछ। उद्ग्रीव—गर्दन उठाना।

अर्थ—मनु ने एक विलक्षण दृश्य देखा। श्रद्धा के साथ एक पशु लगा चला आ रहा था। उन दोनों को देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे करुणा (श्रद्धा) ने मोह (पशु) में आज प्राण डाल कर उसे धन्य कर दिया है। अर्थात् यदि श्रद्धा करुणा थी, तो पशु साकार मोह और यह पशु श्रद्धा की ममता प्राप्त कर इस समय अपने को सौभाग्यशाली समझ रहा था।

इधर श्रद्धा अपने कोमल कर से बड़ी फुर्ती के साथ बराबर पशु के अगों को सहला रही थी और उधर वह पशु प्यार में भर कर पूँछ हिलाता और गर्दन उठाकर उसकी ओर ताकता रह जाता था।

कभी पुलकित—पुलकित—रोमाञ्चित। रोम—रोंगटे। राजी—समूह। भाँवर—चक्कर। सन्निधि—निकट। वदन—मुख। दृष्टिपथ—चितवन।

अर्थ—श्रद्धा के स्पर्श से जब पशु के रोंगटे खड़े हो जाते तो बीच-बीच में वह अपने शरीर को उछाल देता था। फिर निकट आकर चक्कर काटता हुआ उसके बाँधने का प्रयत्न करता। कभी-कभी अपनी भोली-भाली आँखों से श्रद्धा के मुख को ताकते हुए हृदय का समस्त स्नेह एक चितवन में भर कर उस पर ढलका देता था।

पृष्ठ ८४

और वह पुचकारने—स्नेहशबलित—प्रेमपूर्वक। चाव—उत्साह। मजु—सुन्दर। सद्भाव—कोमलता। शोभन—सुन्दर। विलास—खेल, क्रीड़ा।

अर्थ—और इधर स्नेह तथा उत्साहपूर्वक श्रद्धा का उसे पुचकारना मानो उसके हृदय की कोमलता और सुन्दर ममता का परिचायक था।

इस प्रकार थोड़ी देर में वे दोनों मनु के निकट आ गए और सरल, सुन्दर, मधुर, मुग्धकारी खेल करने लगे।

वह विराग विभूति—विराग—वैराग्य। विभूति—भस्म और वैभव। व्यस्त—तितर-बितर होकर। ज्वलन कण—अंगारे, आंतरिक जलन। अस्त—छिपे, ढके। डाह—ईर्ष्या।

अर्थ—जैसे पवन के चलने से राख बिखर जाती है और उसके नीचे ढके अंगारे चमकने लगते हैं, वैसे ही पशु को प्यार करते देख मनु के हृदय में ईर्ष्या जगी और वैराग्य-भावना तितर-बितर होकर बिखर गई। जो जलन कलेजे में छिपी पड़ी थी, उभर आई।

मनु सोचने लगे : यह क्या! जैसे कड़वी चीज के घूँट को न पचा सकने के कारण हिचकी आती है वैसी ही दशा मेरी क्यों हो रही है? मेरे मन में किसने यह दुखदायिनी ईर्ष्या जगाई?

आह यह पशु—प्राप्य—अधिकार।

अर्थ—भाग्य की बात है कि पशु होकर भी इसे श्रद्धा का कितना सुन्दर, कैसा सरल स्नेह मिला है! ये पशु इस घर में मेरे ही दिये हुये अन्न से तो

पल रहे हैं। आज ही मैं अन्न न दूँ तो ये जीवित तक न रहें । और मैं ? मुझे कौन पूछता है ? मेरी कमाई में जो जिसका भाग है वह ले लेता है और यह समझ कर कि यह तो केवल उपेक्षा का अधिकारी है, जैसे किसी के सामने कोई हीन-भाव से रोटी का टुकड़ा फेंक देता है, उसी प्रकार ये रात-दिन मुझसे विरक्ति प्रकट कर रहे हैं।

अरी नीच कृतघ्ने—कृतघ्नता—किसी के उपकार को स्वीकार न करने वाली वृत्ति। पिच्छल—रपटीली। सलग्न—लगी हुई। राजस्व—राजकर। अपहृत—छीन कर। दस्यु—डाकू। निर्बाध—लगातार।

अर्थ—कृतघ्नता एक नीच मनोवृत्ति है। रपटीली शिला पर मलिन काई जब जम जाती है तब उस पर जो भी चरण रखता है वही फिसल कर अपना अग-भग कर लेता है, इसी प्रकार हृदय तो स्वभाव से चचल है ही, उसमें कृतघ्नता की मलिन वृत्ति जिस समय उग आती है, उस समय वह अनेक हृदयों को आघात पहुँचाती है।

मै इस घर का राजा हूँ, अतः इसमें रहने वाले प्राणियों पशु, पक्षी और श्रद्धा का धर्म है कि अपने-अपने हृदय का कर (प्रेम) मुझे दें। उसे न देकर इन्होंने बहुत बड़ा अक्षम्य अपराध किया है। दूसरी ओर ये डाकू यह भी चाहते हैं कि मै इन्हें सदैव लगातार सुख देता रहूँ ।

पृष्ठ ८५

विश्व में जो—सरल—स्वाभाविक रूप से। विभूति—ऐश्वर्य की वस्तु। प्रतिदान—काम में आना। ज्वलित—धधकती हुई। बाड़व अग्नि—समुद्र के अतर में रहने वाली आग।

अर्थ—ससार में ऐश्वर्य की जो वस्तुएँ स्वाभाविक रूप से ही सुन्दर या फिर महान् हैं, उन सब का स्वामी मै ही तो हूँ, अतः मैं चाहता हूँ कि वे सब मेरे ही उपभोग के काम आवें। इसके अतिरिक्त मैं कोई दूसरी बात नहीं सुनना चाहता। मैं समुद्र के अन्तर में रहने वाली धधकती हुई चिर प्यासी ज्वाला हूँ; अतः और सभी का यह कर्तव्य है कि समुद्र की लहरों के समान मेरे

हृदय की आग को शीतल और शात करें अर्थात् मेरी लालसाओं को तृप्त करें।

× × × ×

आगया फिर पास—क्रीड़ाशील—खेलती-खेलती । अतिथि—मनु के घर में अतिथि बन कर रहने वाली श्रद्धा। उदार—उदार स्वभाव की। शैशव—बाल्यकाल ।

अर्थ—उदार स्वभाव वाली श्रद्धा पशु के साथ खेलती-खेलती मनु के और निकट आ गई। जैसे कोई चचल बालक जब भूला-भूला-सा फिरता है तब बड़ा प्यारा लगता है, वैसी ही रम्य चपलता और भूल की गहरी भावना उसकी मुखमुद्रा में अङ्कित थी।

उसने आकर मनु से पृछा ' अरे, क्या तुम अभी तक ध्यान में मग्न यहीं बैठे हो ? तुम्हारी आकृति से तो ऐसा आभासित होता है कि तुम्हारी आँखें कहीं और काम कर रही हैं और तुम्हारे कान कहीं और ।

मन कहीं यह क्या—कैसा रग—कैसा परिवर्तन । दृप्त—उठा हुआ, अहकार भरा। उमग—आवेश। कान्त—सुन्दर । रूप सुषमा—रूप का लावण्य ।

अर्थ—और तुम्हारा मन कहीं और ही घूम रहा है। क्या हो गया है तुम्हें ? आज यह परिवर्तन क्यों ? इस पर, जैसे बीन की मधुर ध्वनि सुनते ही सर्प का उठा हुआ फण झुक जाता है और फुसकारना बन्द हो जाता है, वैसे ही श्रद्धा की मीठी वाणी के प्रभाव से मनु की अहकार भरी ईर्ष्या कुछ कम हुई और आवेश तो एकदम समाप्त हो गया । तब श्रद्धा ने अपने कोमल सुन्दर कर से मनु के शरीर को सहलाना प्रारम्भ किया और मनु उसके रूप-लावण्य को निहार कर कुछ-कुछ शान्त हुए।

पृष्ठ ८६

कहा अतिथि—अज्ञात—अपरिचित से । सहचर—साथी, मनु । सुलभ—सुन्दर। चिरतन—बराबर।

अर्थ—मनु ने कहा : हे अतिथि, अभी तक तुम एक अपरिचित के समान मुझसे दूर-दूर भागते फिरे हो और मैं तुम्हारा साथी एक सुन्दर भविष्य की कल्पना कर रहा हूँ। यद्यपि तुमसे गभीर स्नेह मुझे बराबर मिलता रहा है, पर न जाने क्यों आज मैं तुम्हारे प्रेम की प्राप्ति के लिए अधिक व्याकुल हो उठा हूँ ?

कौन हो तुम—ललचाते—मोहित करने ! ज्योत्स्ना—चाँदनी। निर्झर—झरना। सास—विश्वास।

अर्थ—मैं तुम्हें पूर्ण रूप से अभी नहीं जान पाया। यह क्या बात है कि पहले तुम्हीं मुझे आकर्षित करती हो और जब मैं मोहित होकर तुम्हारी ओर बढ़ता हूँ तो पीछे हट जाती हो ? चाँदनी के झरने-सा तुम्हारा रूप है जिसे देखते-देखते मन भरता नहीं। अतः अनेक बार देख कर भी मैं यह विश्वास खो बैठा हूँ कि तुम्हें ठीक से पहचान पाया हूँ।

वि०—इस दृश्य में अनुपम सजीवता भरी हुई है और पहली दो पंक्तियों में तो चलचित्रों का-सा आकर्षण है।

कौन करुण रहस्य—करुण—कोमल। छविमान—सुन्दर। वीरुध—पौधे। नृत्य का नव छन्द—आनन्द के नवीन स्वर।

अर्थ—तुम्हारे व्यक्तित्व में ऐसा कौन-सा सुन्दर कोमल जादू है कि मैं और पशु-पक्षी तो दूर, ये लता-पौधे भी तुम्हें अपनी छाया बड़ी प्रसन्नता से प्रदान करते हैं।

आज मैं इस रहस्य से अवगत हुआ हूँ कि कोई पशु हो अथवा पाषाण ही क्यों न हो सब आनन्द के नवीन स्वरों में स्वर मिला रहे हैं और इस आनन्द की उपलब्धि के लिए एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हुए एक-दूसरे का आलिंगन करना चाहते हैं।

वि०—प्रसाद जी ने अपनी यह धारणा 'एक घूँट' में व्यक्त की है कि आत्मा आनन्द की उपलब्धि के लिए सौंदर्य की ओर आकृष्ट होती है और प्रेम करती है, अत. प्रणय-व्यापार अत्यन्त प्राकृतिक होने से अत्यन्त अनिवार्य है।

'सब में नृत्य का नव छन्द' स्कदगुप्त में देवसेना की इस विचार-धारा की छाया मे भी स्पष्टता से समझा जा सकता है :—

"प्रत्येक परमाणु के मिलने में एक सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने मे एक लय है। मनुष्य ने अपना स्वर विकृत कर रखा है, इसी से तो उसका स्वर विश्व-वीणा में शीघ्र नहीं मिलता। पाडित्य के मारे जब देखो, जहाँ देखो, बेताल बेसुरा बोलेगा। पक्षियों को देखो, उनकी 'चह-चह', 'कलकल', 'छलछल' मे, काकली मे, रागिनी है।"

राशि-राशि बिखर—राशि—राशि—ढेर का ढेर। शात—मौन भाव से, चुपचाप। सचित—एकत्र किया हुआ। ललित—सुन्दर। लास—नृत्य। दिनात निवास—सध्या समय।

अर्थ—प्रकृति में न जाने कब का एकत्र किया हुआ ढेर का ढेर प्यार शात भाव से बिखर रहा है जिसे दीन ससार के पशु-पक्षी, लता-पौधे उधार माँग-माँग कर ढोने मे व्यस्त हैं।

सध्या हो गई। लाल बादलो की शीतल छाया में सुन्दर लता झूम रही है और मै आकर्षण के इस दृश्य को चकित नेत्रों से देख रहा हूँ।

और उसमे हो चला—सहज—चुपचाप। सविलास—इठलाती। मदिरा—मदमाती, मस्त। माधव—वसत। यामिनी—रात। धीर—मन्द गति से। पदविन्यास—चरण रखना। ध्वस्त—टूटा हुआ।

अर्थ—इसी सध्या में वसत की मदमाती रजनी चुपचाप इठलाती मन्द गति से चरण रखती हुई उतर आई है।

और इधर मेरे टूटे हृदय-मन्दिर का दीन और सूना-सूना-सा कोना है जो तिरस्कृत पड़ा है और जिसे बसाने की किसी को चिन्ता नहीं।

पृष्ठ ८७

उसी में विश्राम—माया—मोह। आवास—डेरा। नींद—मस्ती। हिमहास—बर्फ जैसी उजली हँसी। विश्राम—शाति। छविधाम—सुन्दरी।

अर्थ—आश्चर्य है कि इसी मग्न-हृदय के मन्दिर में सासारिक मोह ने

अचल डेरा डाल रखा है। निश्चित रूप से जानता हूँ कि मेरा जीवन अभाव-पूर्ण है, फिर भी एक मस्ती भरे सुख की कल्पना में मैं लीन हूँ और आशा की हिम जैसी उज्ज्वल हास्य-किरण मेरे अंतःकरण में झलक-झलक उठती है—अर्थात् आज मैं आशावादी हूँ।

"और हे छविमयी! तुम कौन हो, यह तुम्हीं बताओ? तुम्हें देख मधुर दाम्पत्य-सुख की भावना हृदय में जगती है। तुम्हीं मेरा स्वास्थ्य हो, तुम्हीं मेरी शक्ति हो अर्थात् मेरा यह स्वस्थ शक्तिशाली शरीर तुम्हारे ही उपयोग के लिए है। ऐसा लगता है जैसे आन्तरिक शान्ति केवल तुम्हारे ही संसर्ग से प्राप्त होगी। बहुत दिनों से एक सुन्दर प्रेमिका की काल्पनिक मूर्ति मैंने अपने मन में बसा रखी थी, तुम्हें देख कर यह भ्रम हो रहा है कि आज वह साकार हो गई है।

कासना की किरन—कामना—इच्छाओं। ओज—तेज। कुदमदिर—खिला हुआ कुंद पुष्प। सुषमा—लावण्य। रुद्ध—बद। कपाट—किवाड़।

अर्थ—तुम्हारी इस सौंदर्य-प्रतिभा से इच्छाओं की तेजोमयी किरणें फूट रही हैं अर्थात् जो तुम्हारे दर्शन करता है वह कर्म की एक उज्ज्वल नवीन स्फूर्ति का अनुभव अपने अंतःकरण में करता है। मेरा हृदय जिसे खोजने के लिए इतने दिनों से भटक रहा था वही तो तुम हो। सच बताओ, क्या हो तुम?

अच्छा एक प्रश्न का उत्तर दोगी? विकसित कुन्द पुष्प-सी तुम्हारी मुस्कान जैसे चारों ओर लावण्य बिखेर रही है वैसे ही मेरे हृदय के बद कपाट क्यों नहीं खोलती? अर्थात् क्या कारण है कि न मैं अपने हृदय की बात किसी से कह पाता हूँ और न मुक्त हृदय से खिलखिला कर हँस पाता हूँ?

कहा हँस कर—उद्विग्न—विह्वल। जलद लघुखड—मेघखड, बादल का टुकड़ा। वाहन—सवारी।

अर्थ—श्रद्धा हँसकर बोली : मैं तुम्हारी अतिथि हूँ। इससे अधिक परिचय की भला क्या आवश्यकता है? तुमने जो कहा वह ठीक है, परन्तु यह पहला ही अवसर है जब तुमने इतनी विह्वलता मेरे प्रति प्रदर्शित की है। यदि ऐसा ही है तो बातों में समय नष्ट करना व्यर्थ है। आओ। देखो, मेघखड की

सवारी पर जो मुस्कुराता सरल चद्र बढ़ा चला आ रहा है, वह हमे ही तो बुलाने के लिए।

कालिमा धुलने लगी—कालिमा—अधकार। घुलने लगा—छा गया। आलोक—प्रकाश। निभृत—शून्य। अनत—सीमाहीन आकाश। लोक—नक्षत्र समूह। निशामुख—चन्द्रमा जो रजनी का मुख है। सुधामय—सरल। दु:ख के अनुमान—काल्पनिक दु:ख।

अर्थ—अधकार मिट गया और प्रकाश छा गया। इस सूने आकाश में अब तो नक्षत्रों का एक ससार बस गया। इस समय हमारे लिए भी उचित है कि इस चद्रमा की मनोहर सरल मुस्कान को देख कर अपने समस्त काल्पनिक दु:खो को भुला दे।

पृष्ठ ८८

देख लो ऊँचे शिखर—शिखर—चोटी। व्यस्त—अधीरता से। अस्त—छिपना। कौमुदी—चाँदनी। साधना—इच्छा।

अर्थ—देखो, पर्वत की यह ऊँची चोटी आकाश का किस अधीरता से चुबन कर रही है। अन्त होने वाली अतिम किरण विदा के समय पृथ्वी पर किस प्रकार लोट रही है।

तब चलो, इस चाँदनी मे आज हम भी इच्छाओं के राज्य में प्रकृति का सपनो पर शासन देख आवें अर्थात् आज इस रम्य प्रकृति की गोद में अपनी इच्छाओ से उत्पन्न अपने मन के सपने पूरे करें।

सृष्टि हँसने लगी—राग-रजित—प्रेम-रस में सराबोर। स्वप्न—साध, कल्पना। सबल—पाथेय, मार्ग व्यय, सामग्री।

अर्थ—चारो ओर के उस प्रसन्न वातावरण के कारण सृष्टि उन्हें मुस्कुराती-सी दिखाई दी। उन दोनो की आँखों में अनुराग झलकने लगा। चाँदनी प्रेम के रस से सराबोर थी और पुष्पो से पराग उड़ रहा था।

श्रद्धा ने मनु का हाथ पकड़ लिया और हँसने लगी। इस प्रकार वे दोनो स्नेह की सामग्री लेकर अपनी साधो को पूरा करने चले।

देवदारु निकुंज गह्वर—गह्वर—गुफा। स्नान—डूबे, नहाये हुए।

उत्सव—मंगल । मदिर—मस्त । माधवी—एक लता । घन—झोंके । मधु अंध—मकरंद से लदे ।

अर्थ—देवदार के वृक्ष, लताभवन और गुफाएँ सब मधुर चाँदनी में डूबे थे । ऐसा लगता था जैसे आज सभी ने मंगल मनाने के लिए रात भर जगने का निश्चय किया है । माधवी लता की मस्त, भीनी गंध फूट उठी और मकरंद से लदे पवन के झोकों पर झोंके आने लगे ।

शिथिल अलसाई पड़ी—कांत—रम्य, सुन्दर । शिशिर कण—ओस की बूँदें । विश्रांत—थक कर । झुरमुट—लता समूह, झाड़ियाँ । भ्रांत—बहकना ।

अर्थ—ओस की बूँदों पर पड़ी छाया ऐसी प्रतीत होती थी मानो वह रम्य चाँदनी रात का छाया-शरीर है जो थक कर, शिथिल होकर, अलसा कर उन जल-कणों की शय्या पर पड़ा है । उन लता-समूहों को देखकर जिनकी छाया एक आकर्षक कौतूहल उत्पन्न करती थी, मन की भावना बहकने लगती थी ।

वि०—यह ध्यान देने की बात है कि जिस समय कवि इन दोनों को आत्म-समर्पण करने को उद्यत कर रहा है, उस समय का वातावरण भी उसने भावना के एकदम अनुकूल कर दिया है ।

पृष्ठ ८६

कहा मनु ने—स्पृहणीय—वाञ्छनीय । मदिर—मस्ती से भरे । घन—बादल । वासना—भावना ।

अर्थ—मनु बोलेः हे अतिथि, इससे पहले भी मैंने तुम्हें अनेक बार देखा है, पर तुम इतने सुन्दर (सौंदर्य के आधिक्य से दबे) तो कभी नहीं दिखाई दिए ।

मेरा अतीत इतना मधुर था कि उसकी वाञ्छा आज भी हृदय में बनी हुई है । कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे वे बातें इस जन्म की नहीं हैं, मेरे पूर्व जन्म की हैं । उस समय जब मस्ती से उमड़ कर बादल गरजते तो ऐसा प्रतीत होता मानो मेरे हृदय की भावनाओं को ही वे ध्वनित कर रहे हैं ।

भूल कर जिस हृदय—अचेत—अभावुक। सव्रीड़—लज्जा सहित, क्षीण रूप में। सस्मित—हँसता-सा, सुखदायक। चेतना—अनुभव करने की शक्ति। परिधि—घेरा।

अर्थ—उस दृश्य को भुलाकर आज मैं अपनी सारी चेतना (भावुकता) खो चुका हूँ, पर तुम्हारे सपर्क में आकर अत्यन्त क्षीण रूप में उसी प्रकार की कोई भावना सुख की ओर फिर इशारा कर रही है।

मेरी चेतना के घेरे में आज एक दृढ़ विचार बार-बार चक्र के समान गोल चक्कर काट रहा है और वह यह कि—"मैं केवल तुम्हारा हूँ।"

मधु बरसती विधु किरन—विधु—चद्रमा। पुलक—रोमाच। मधु भार—मकरद से लदा होने के कारण। सुरभि—गध। घ्राण—नासिका।

अर्थ—चद्रमा की सुकुमार किरणें सिहरती और रस बरसाती उतर रही हैं। स्वय पवन रोमाचित सा प्रतीत होता है और रस के भार से दब कर उसकी गति मद हो गई है। जब तुम मेरे इतने समीप हो फिर इन प्राणों में इतनी विकलता क्यों है? मेरी नासिका न जाने किस गध को पा तृप्त हो गई है, छक गई है।

वि०—भाव यह कि इस वातावरण का कुछ ऐसा मोहक प्रभाव है कि थोड़ी देर में मुझे अपनी सुध-बुध न रहेगी।

आज क्यों सदेह—धमनी—वे नाड़ियाँ जिनमें शुद्ध रक्त बहता है। वेदना—पीड़ा।

अर्थ—न जाने क्यों मुझे ऐसा सदेह हो रहा है कि तुम मुझसे रूठ गई हो। भीतर से इच्छा होती है कि मैं तुम्हें मनाऊँ, पर साहस नहीं होता। आज मेरी नाड़ियों का रक्त कुछ पीड़ा देता हुआ बह रहा है और हृदय की धड़कनों में विशेष कॅपकपी है जैसे उन पर हल्का-सा किसी बात का बोझ रखा हो।

पृष्ठ ९०

चेतना रगीन ज्वाला—ज्वाला—वासना की आग। सानन्द—आनन्द-पूर्वक। दिव्य—अलौकिक। छद—मल्ल राग। अग्नि कीट—समन्दर नाम का कीड़ा जिसका निवास अग्नि में माना जाता है। दाह—जलन।

अर्थ—मेरी चेतना वासना की रगीन आग के घेरे में घिरी आनद का एक मस्त राग अलाप रही है और एक अलौकिक सुख का अनुभव कर रही है अर्थात् जीवन में सामान्य जलन यद्यपि पीड़ादायक होती है, पर वासना के उमड़ने पर जो आकुलता की जलन होती है उसकी अनुभूति में एक प्रकार का रस आता है।

इस आग में मेरी चेतना यद्यपि उसी उत्साह से गिर पड़ी है जिस उत्साह से समदर नाम का कीड़ा अग्नि में रह सकता है, और जैसे वह उस आग में जीवित रहता है उसी प्रकार यह मिट नहीं गई है, और जिस प्रकार उसके शरीर पर न तो छाला पड़ता है और न उसे जलन का अनुभव होता है उसी प्रकार यह जलन न तो हृदय मे कोई छाया डालती है और न उसे झुलसाती ही है।

वि०—मनोविकारों की अनुभूति के स्पष्ट चित्रण 'प्रसाद' की प्रतिभा की एक विशिष्टता है। हृदय में वासना के उमड़ने पर प्राणी कैसा अनुभव करता है, इसकी ठीक-ठीक परिचिति 'धमनियों मे वेदना सा' ...से लेकर 'छाले है न उसमें दाह' तक छः पक्तियों में दी है। शरीर का रक्त खौल उठता है, हृदय जोर से धड़कने लगता है, मीठी-मीठी-सी जलन होती है आदि।

अग्नि में भी एक कीड़ा होता है, यह कवि प्रथा ही है, उसे किसी ने देखा नहीं है। इतनी प्रशसा प्रसाद की अवश्य करनी जाहिए कि वे वासना में चेतना के जलने के लिए एक अत्यन्त उपयुक्त उपमान ढूँढ़ लाये जो दूसरे को कठिनाई से सूझता।

कौन हो तुम—विश्वमाया—महामाया। कुहक—जादू, इद्रजाल। व्यजन—पखा, पवन झकोरे, शीतल व्यवहार। ग्लानि—थकावट, चिंता।

अर्थ—हे नारी, तुम क्या हो? लगता है कि जो माया ससार भर को प्रभावित कर रही है, उसका पूर्ण जादू तुममें साकार हो गया है अर्थात् तुम ससार का सब से प्रबल आकर्षण हो। तुम्हारा रहस्य उतना ही सूक्ष्म और मनोहर है जितना प्राणी की सृष्टि का। अर्थात् जो यह जान जायगा कि प्राणी की रचना क्यों हुई, वह यह भी जान जायगा कि नारी की रचना क्यों हुई।

जैसे थका हुआ पथिक वृक्ष की रम्य छाया में सन्तोष की साँस लेता है और

पवन के झकोरे पा अपनी थकावट दूर करता है, उसी प्रकार नारी के प्रेम की मनोहर छाया में जीवन-पथ पर थकान का अनुभव करने वाले मनुष्य का हृदय निश्चितता की साँस लेता और उसके शीतल व्यवहार से अपनी सारी चिंताओं को धो डालता है।

वि०—स्कन्दगुप्त नाटक में धातुसेन कहता है :—

"पहेली ! यह भी रहस्य ही है। पुरुष है कुतूहल और प्रश्न और स्त्री है विश्लेषण, उत्तर और सब बातों का समाधान ! पुरुष के प्रत्येक प्रश्न, का उत्तर देने को वह प्रस्तुत है। उसके कुतूहल—उसके अभावों को परिपूर्ण करने का उष्ण प्रयत्न और शीतल उपचार।"

श्याम नभ में—श्याम—नीले। मधु किरण—सरस किरण। मृदु—मधुर। हिलकोर—तरग। दक्षिण का समीर—मलय पवन। विलास—मादक। अव्यक्त—अर्द्ध विकसित। अनुरक्त—प्रेमपूर्वक।

अर्थ—श्रद्धा-मधुर-मधुर मुस्का दी। उसके अधर पर मुसकान की वह रेखा ऐसी लगती थी जैसे नीलाकाश में कोई सरस किरण झलक रही हो या समुद्र में कोई तरग उठी हो, या फिर शून्य में मलयपवन की कोई मादक हिलोर हो। जैसे कुज में कोई अर्द्ध विकसित कली खुलते समय चट् ध्वनि द्वारा एक मद गूँज छोड़ती है वैसे ही श्रद्धा ने कुछ कहना प्रारभ किया जिसे मनु बड़े अनुराग से सुनने लगे।

पृष्ठ ६१

यह् अतृप्ति अधीर—अतृप्ति—कामनाओं की अपूर्ति। अधीर—विह्वल। क्षोभ—विचलता। उन्माद—असयम। तुमुल—कोलाहल करती। उच्छ्वास—तीव्र साँस। सवाद—बात। राका मूर्ति—पूर्णिमा का चद्रमा। स्तब्ध—मौन।

अर्थ—हे सखे ! कोलाहल मचाती हुई लहरों के समान तीव्र साँसे भरते हुए तुमने जो बातें अपने मुख से कही हैं उनसे तुम्हारे मन की विह्वलता का पता चलता है। उनसे यह भी स्पष्ट है कि तुम्हारी कामनाएँ अभी पूर्ण नहीं हुई जिनसे विचलित होकर तुम असयत बातें करने पर उतारू हो गये हो। यह सब मैं समझती हूँ। पर मैं कहती हूँ यह सब कुछ प्रकट करने की आवश्यकता ही क्या

है ? न कुछ कहो और न कुछ पूछो। देखो तो सही, चन्द्रमा निर्मल मूर्तिमती पूर्णिमा के रूप में कैसा मौन धारण किये है ! कितना अचंचल है !

विभव मतवाली प्रकृति—विभव मतवाली—अत्यधिक ऐश्वर्य शालिनी। आवरण—साड़ी। प्रचुर–अधिक परिमाण में । मगल खील—मगलसूचक भुने धान। अर्चना—पूजा। अश्रात—निरतर। तामरस—लाल कमल। चरण के प्रात—चरणों के निकट।

अर्थ—इसे आकाश न समझो, यह अत्यधिक ऐश्वर्यशालिनी प्रकृति की नीली साड़ी है जो इस रम्य वातावरण के प्रभाव से शरीर से खिसक पढी है। ये तारे नहीं इसमें मगलसूचक बहुत सी खीलें भरी हुई हैं। जहाँ तुम चद्रमा को उगते देख रहे हो उसके नीचे आकाश पीला-पीला-सा लगता है और वहीं आसपास ढेर के ढेर तारे बिखरे पड़े हैं। यह रजनी का लाल कमल के समान सुन्दर चरण है जिसके निकट पूजा के पुष्प निरंतर चढ़ाये जा रहे हैं।

वि०—पूर्णिमा की रात को चद्रमा के उदित होते समय आकाश मे पीताभा छा जाती है। कवियों के ही शब्दो में—

> मैंने देखा मैं जिधर चला, मेरे सँग-सँग चल दिया चाँद ।
> पीले गुलाब-सा लगता था, हल्के रँग का हल्दिया चाँद ।
>
> —नरेन्द्र शर्मा

> तू कहती है—"चन्द्रोदय ही काली में उजियाली।"
> सिर आँखों पर क्यों न कुमुदिनी, लेगी वह पद-लाली ?
>
> —साकेत : मैथिलीशरण

मनु निरखने लगे—प्रगाढ़—गाढ़ी। छाया—काति, चाँदनी। अपरूप—अपूर्व। मदिर कण—रस की बूँदें। सतत्—निरतर। श्रीमत सगीत—रम्य और मधुर वातावरण।

अर्थ—मनु जैसे-जैसे रात के सौंदर्य को अवलोकने लगे, वैसे ही वैसे वह अपूर्व चाँदनी गाढ़ी होकर अनंत अवकाश में फैलने लगी। किरणों का

उतरना मानो ऊपर से निरतर अनत उज्ज्वल रस-बूँदों का बरसना था। प्रेमी-प्रेमिकाओं के मिलनेके लिए यह अत्य त रम्य और मधुर वातावरण था।

वि०—रात उजली है, अत उनकी छाया भी उजली है। इसी से छाया का अर्थ चाँदनी ग्रहण किया।

'अपरूप' शब्द का अर्थ कुरूप के साथ ही सुन्दर रूप का भी होता है। यह शब्द इस अर्थ में हिन्दी में तो कम, पर बँगला में अधिक प्रयुक्त होता है—

कठे तार की माला दुलाये, कोरिले वरण।
रूप हीन मरणेर मृत्युहीन अपरूप साजे।

शाजहान रवीन्द्रनाथ

पृष्ठ ६२

छूटती चिनगारियाँ—चिनगारियाँ—उष्ण भाव। उत्तेजना—वासना। उद्भ्रान्त—असयत। वक्ष—छाती। वातचक्र—बवडर। लेश—शेष।

अर्थ—मनु के हृदय में असयत वासना के उष्ण भाव फूटने लगे। एक प्रकार की मधुर जलन तीव्र हो उठी। छाती के भीतर आकुलता और अशाति भर गई। जैसे पृथ्वी पर धूल का बवडर चक्कर काटता है, उसी प्रकार मन में आवेश घुमड़ने लगा। इस समय मनु अपने हृदय के धैर्य को एक साथ खो बैठे।

कर पकड़ उन्मत्त से—उन्मत्त से—आवेश में भर कर। दूसरा—भिन्न ही प्रकार का। मधुरिमामय साज—लावण्य। विस्मृति—भूल। स्मृति—याद। विकल—भटकना। अकूल—बिना किनारे के।

अर्थ—मनु ने आवेश में भर कर श्रद्धा का हाथ पकड़ लिया और बोले: आज तुम्हारे शरीर में मुझे भिन्न ही प्रकार का लावण्य दिखाई दे रहा है। वही छवि है, निश्चित रूप से वही। किन्तु मुझसे इतनी भूल आज हुई कैसे? सभवत किनारा (प्रेम का आधार) न पाने के कारण ही मेरी स्मृति (याद) की नौका विस्मृति (भूल) के समुद्र में आज तक भटकती फिरी।

वि०—इस स्वीकृति से पता चलता है कि प्रलय से पूर्व मनु अपने देव-जीवन में किसी बालिका को प्रेम की दृष्टि से देखते थे। जलप्लावन में उन्होंने

उसे खो दिया। उसकी स्मृति बार-बार सताती, पर यह समझ कर कि वह ऐसे लोक को चली गई जहाँ से लौट न सकेगी, उन्होंने संतोष कर लिया। आज यह देख कर कि इस लड़की के मुख पर वही छवि झलक मारती है जो उनकी प्रेमिका की आकृति में निहित थी। मनु का मन बहुत विह्वल हुआ और आकर्षण तीव्रता पकड़ गया। इस बात का संकेत उन्होंने आशा सर्ग में भी किया है :—

मैं भी भूल गया हूँ कुछ, हाँ स्मरण नहीं होता, क्या था।
प्रेम, वेदना, भ्रांति या कि क्या, मन जिसमें सुख सोता था।
मिले कहीं वह पड़ा अचानक उसको भी न लुटा देना।
देख तुझे भी दूँगा तेरा भाग, न इसे भुला देना।

आगे के छन्द में बात को और भी स्पष्ट करेंगे।

जन्म संगिनि एक—जन्म संगिनि—बचपन की साथिनी। काम-बाला—काम की पुत्री। विश्राम—शांति। सतत्—सदैव। फूल—मन। अर्घ—आगत के स्वागत के लिए जल छोड़ना। सुषमामूल—रूपवती।

अर्थ—मेरी एक बचपन की साथिनीथी। उसके पिता का नाम था काम। और उसका नाम तो बड़ा ही मधुर था—श्रद्धा। हमारे प्राणों को तो सदैव उसी के सम्पर्क से शांति मिलती थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। जब कोई आता है, तब जल छोड़कर उसे अर्घ देते हैं, इसी प्रकार जब कभी वह हमारे निकट आती तब मेरा हृदय-सुमन अपने भावों के मकरंद का अर्घ भेंट कर उसका स्वागत करता था।

प्रलय में भी बच—मोद—आनन्द। ज्योत्स्ना—चाँदनी। नीहार—कुहरा। प्रणय विधु—अनुराग का चन्द्र। तारक—तारात्रों।

अर्थ—हमारे हृदय में क्योंकि मिलन के आनन्द की उत्कण्ठा शेष थी, अतः इस सूने जगत् की गोद में फिर भेंट करने के लिए हम प्रलय में भी जीवित रहे। जैसे कुहरे को भेद कर चाँदनी छा जाती है, उसी प्रकार प्रलय को पार कर तुम मेरे समीप आई हो। जैसे आकाश में चंद्रमा तारों का हार सजाये खड़ा है, उसी प्रकार मेरे सूने हृदय के नभ में अनुराग का चंद्र तुम्हारे लिए कोमल भावों का हार लिये प्रस्तुत है। उसे स्वीकार करो।

का प्रयत्न करते हुए भी, उस पर नहीं चढ़ पाती, उसी प्रकार श्रद्धा अपनी ही सुकुमारता और लज्जा से दबकर मनु का खुला आलिंगन न कर पायी। मनु ने जब उसकी ओर भुजा बढ़ाई तो वह सिकुड़ गई। इतना होने पर भी उनकी ओर से प्रणय चेष्टाओं को देख वह उनके शरीर से लगी ही रह गई।

वि०—'पंत' जी ने गुञ्जन की 'मधुवन' कविता में 'नर्म' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में किया है—

देख चंचल मृदु-पटु पद-भार, लुटाता स्वर्ण-राशि कनियार,
हृदय फूलों में लिये उदार, नर्म-मर्मज्ञ मुग्ध मन्दार।

और वह नारीत्व—नारीत्व—नारी होने के नाते। मूल—प्रधान। मधु—प्रेम। अनुभाव—वृत्ति। हँसना—विकसित होना। व्रीड़ा—लज्जा। कूजन—गूँज। रास—नृत्य करना, छाना।

अर्थ—साथ ही नारी-हृदय की वह प्रधान वृत्ति जिसे प्रेम कहते हैं उभर कर विकसित हुई और उसने श्रद्धा के मन में एक नवीन उत्कंठा को जन्म दिया। इस समय उसके हृदय में एक साथ ही मधुर लज्जा, चिंता और आह्लाद के भाव उठे, पर सब मिल कर हृदय में एक विलक्षण आनन्द की गूँज छा गई।

वि०—ऐसी स्थिति में मन में 'लज्जा', 'चिंता' और 'उल्लास' तीनों का संयोग दिखाना काव्य-पटुता और मनोवैज्ञानिक अध्ययन का परिचय देना है। प्रणय की बातें प्रथम बार ही कही-सुनी जा रही है, अतः लजाना बहुत ही स्वाभाविक है। प्रेम की मीठी बातें सुनने से एक प्रकार की गुदगुदी का अनुभव होता है, अत. उल्लास भी हृदय में उमड़ता ही है। पर ऐसी बातें कहते-करते समय यह भी पता रहता है कि हम बहे किस ओर जा रहे हैं, अतः यह आशंका कि हमारे इस आवेश का कहीं दुष्परिणाम न निकले, यह व्यक्ति कहीं विश्वासघात न करे, उस आह्लाद पर 'चिंता' का हल्का पुट भी दे जाती है।

गिर रही पलकें—गिर रहीं—धीरे-धीरे मुँदती आई। नोक—अग्रभाव। वे रोक—एकदम। स्पर्श करना—छूना। ललित—सुन्दर। कदंब—एक पेड़ और उसके पुष्प का नाम, कदम।

अर्थ—श्रद्धा की पलकें धीरे-धीरे मुँदती आयीं, नासिका का अग्र-भाग

झुकने लगा, भौहें एकदम कान तक खिंच गईं और लज्जा ने उसके सुन्दर कान और कपोलों में लाली भर दी, कदम्ब पुष्प के समान उसका शरीर रोमाञ्चित हो उठा और वाणी गद्गद् हो गई।

वि०—कदम्ब की उपमा रोमाञ्चित होते समय दी जाती है। मैथिलीशरण जी ने 'द्वापर' में राधा-कृष्ण के सम्बन्ध में लिखा है:—

ऊपर घटा घिरी थी नीचे पुलक कदम्ब खिले थे,
झूम-झूम रस की रिम-झिम में दोनों हिले-मिले थे।

किंतु बोली—समर्पण—शरीर और हृदय का सौंपना। बध—बंधन। दान—प्रेम का दान। उपभोग—भोगना, धारण करना। विकल—आनन्द विह्वल।

अर्थ—श्रद्धा बोली हे देव, मेरा आज का यह आत्म-समर्पण कहीं नारी हृदय के लिए युग-युग के बन्धन का कारण तो न हो जायगा? मैं बड़ी दुर्बल हूँ। तुम्हारे इस स्नेह-दान को, जिसके धारण करने में मेरे प्राण आनन्द से अधीर हो उठे हैं, सहेजने की शक्ति भी मुझमें आ सकेगी, इतना तो बतला दो।

वि०—सृष्टि की प्रथम नारी श्रद्धा ने जिस दिन आत्म-समर्पण किया, उसी दिन मानो समस्त नारी जाति ने अपना सब कुछ पुरुष को दे डाला। श्रद्धा के हृदय के संस्कार आज की सभी नारियों में विद्यमान हैं। विश्वासघात होने और अत्याचार सहने पर भी नारी पुरुष को बराबर प्रेम किये चली जा रही है। उसके लिए अपने शरीर, प्राण, धर्म, लोक, परलोक किसी की चिन्ता नहीं करती।

लज्जा

कथा—ज्योत्स्ना-धौत रजनी में मनु के मुख से अपने लिए प्रेम की मधुर विह्वल बातें सुनकर श्रद्धा को एक प्रकार का सुख मिला और वह सोचने लगी कि जो व्यक्ति मेरी अनुराग-दृष्टि प्राप्त करने के लिए इतना छटपटा रहा है, उसे आत्म-समर्पण क्यों न कर दूँ ? ठीक इसी समय लज्जा ने उसके अन्तर में प्रवेश किया और वह जो कुछ करना चाहती थी न कर सकी। इस पर उसे बड़ी झुँझ-लाहट उत्पन्न हुई।

श्रद्धा सोचने लगी . क्या हो गया है मुझे जिसके कारण आजकल जहाँ एक ओर शरीर रोमाञ्चित हो उठता है, वहाँ मन को एक ऐसे संकोचभाव ने आ दबाया है जिससे मैं अपने में ही सिकुड़ती चली जाती हूँ। मेरे अंग मोम से कोमल हो गये हैं, खिलखिलाकर मैं हँस नहीं पाती, चितवन में वक्रता आ गई है, पलकें स्वतः झुक-झुक जाती हैं। अभी-अभी की तो बात है कि मैं मनु के जीवन को सुखी बनाना चाहती थी, पर इच्छा होने पर भी उधर बढ़ने से मुझे न जाने किसने रोक लिया ? यह कैसी परवशता है कि स्वतन्त्रता से मैं कुछ भी नहीं कर सकती ?

लज्जा बोली : इतने चकित होने का कोई कारण नहीं है। यह मैं हूँ जिसके कारण स्त्रियाँ मनमानी नहीं कर सकतीं। इस यौवन की शक्ति को तुम जानती नहीं हो। यह बड़ा चंचल है। प्राणी को कहाँ से कहीं बहाकर यह ले जाता है। पर इस पर मेरा अंकुश रहता है। ठोकर खाने वाली रमणी को मैं एक बार समझा अवश्य देती हूँ। यदि वह मेरी बात सुनती है तो मर्यादा के भीतर रहने के कारण परिणाम में सुख पाती है।

श्रद्धा बोली ; तुम्हारा कहना सच है। पर मैं क्या करूँ ? मैं जानती हूँ कि शरीर से मैं दुर्बल हूँ, पर यह मन भी जिस पर मेरा पूर्ण अधिकार है क्यों ढीला

हो चला है ? क्यों ऐसी भावना हृदय में जगती है कि नारी-जीवन की सार्थकता पुरुष की समता करने में नहीं उस पर विश्वास करते हुए उसका आश्रय पाने में है। मैं ऐसी जागृति में विश्वास नहीं रखती जो जीवन-पथ पर पुरुष से होड़ करने को बाध्य करे। यह बात नहीं है कि मेरी चेतना विलुप्त हो गयी हो, पर पुरुष के सम्पर्क में आते ही इच्छा होती है कि पूर्ण आत्म-समर्पण करके निश्चिन्त हो जाना ही भला है। पुरुष पर अधिकार जमाने की भावना नारी के स्वभाव के बहुत अनुकूल नहीं है।

लज्जा ने उत्तर दिया : यदि ऐसी बात है तब तुम्हें समझाना व्यर्थ है। यदि तुम्हारा ऐसा ही निश्चय है तब तुम अत्यन्त स्पष्टता से यह भी समझ लो कि तुमने अपने जीवन की सभी प्रिय साधों की आज आहुति दे डाली। आज से नारी विश्वास की प्रतीक होगी और अतर में अनन्त हाहाकार लिये रहने पर उसे मुस्काते हुए रात-दिन पुरुष के लिए बलि देनी होगी।

पृष्ठ ६७

कोमल किसलय—किसलय—कोंपल। अचल—आड़। गोधूलि—दिन और रात्रि की सधि का वह समय जब गायें बन से लौटती हैं और अपने खुरों से धूल उड़ाती चलती है, सन्ध्या वेला। धूमिल—धुँधले। पट—वातावरण। स्वर—लौ। दिपती—उजली।

अर्थ—कोमल कोपलों की आड़ में छिपी नन्ही कली जैसे और भी सुन्दर प्रतीत होती है, सन्ध्या के धुँधले वातावरण में दीपक की लौ जैसे और भी उजली दिखाई देती है।

नोट.—भाव चौथे छद पर जाकर पूरा होगा।

मंजुल स्वप्नों—मजुल—सुन्दर। विस्मृति—सुध-बुध भूले रहना। निखरता—तीव्रता पकड़ता। सुरभित—सुगधित। छाया—आड़। बुल्ले—बुलबुला। विभव—रम्यता। बिखरना—बढ़ना।

अर्थ—मन वैसे ही मस्त है, इस पर सुन्दर स्वप्न देखते समय जब मनुष्य अपनी सुध-बुध भूले रहता है, उसकी मस्ती और भी तीव्रता ग्रहण

करती है। बुलबुला वैसे ही सुन्दर लगता है, पर जब सुगधित लहरें उठ-उठ कर उस पर छाती हैं तब वह और भी रम्य प्रतीत होता है।

वि०—स्वप्न मन की कल्पना का परिणाम होते हैं। जैसी कल्पनाएँ हम करते हैं, या जो स्मृतियाँ अतस्सज्ञा में निहित रहती हैं, वे ही स्वप्न बन कर दिखाई दे जाती हैं। प्रायः अनुभव की वस्तुएँ ही स्वप्न में आती हैं, पर यदि हम कोई ऐसी वस्तु भी सपने में देखें जिसे हम ससार में सामान्यत. नहीं देखते, तब विश्लेषण करने पर पता चलता है कि हमारे अनुभव की कई वस्तुएँ घुलमिल गई हैं जैसे सोने का पर्वत यदि दिखाई दे तो सोना और पर्वत दोनों जाने पहचाने हैं। मन की जो भावनाएँ जाग्रतावस्था में सुप्त रहती हैं वे ही सपनों में तीव्रता ग्रहण करके भव्य या भयकर रूप धारण कर लेती है।

वैसी ही माया—माया—आकर्षण । लिपटी—युक्त । माधव—वसत । पानी भरे—सुन्दरता लिये ।

अर्थ—उसी प्रकार के अतिरिक्त आकर्षण से युक्त, अधरों पर उँगली रखे तथा आँखों में एक कौतूहल भावना और वसत की सरसता की सुन्दरता लेकर—

वि०—'आँखों में पानी भरे हुए' में 'पानी' शब्द उस विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिसमें किसी वस्तु पर 'चाँदी या सोने का पानी चढ़ाना' आता है। 'आँखों में सरसता का पानी था' का भाव हुआ 'आँखों में सरसता झलक रही थी'।

नीरव निशीथ में—नीरव—स्तब्ध, शात । निशीथ—रात । जादू—आकर्षण।

अर्थ—स्तब्ध रजनी में कहीं दिखाई देने वाली लता के समान तुम कौन हो जो मेरी ओर बढ़ती चली आ रही हो ? तुमने अपनी कोमल भुजाएँ फैला रखी हैं। उनमें इतना आकर्षण है कि मैं चाहने लगी हूँ कि तुम उनसे मेरा आलिंगन करतीं।

वि०—इन चारों छदों के पढ़ने से लगता है कि श्रद्धा कहीं एकात में बैठी है। सभवतः रात्रि का समय है। सामने से एक छाया-मूर्ति जो किसी

रमणी की है, अपनी ओर बढ़ती उसे दिखाई देती है। क्योंकि उसका रहस्य खुला नहीं है; इसी से हृदय में वह एक कुतूहल की भावना उत्पन्न करती है। कौन है? क्यों आई है? क्या काम है? ऐसे प्रश्न स्वाभाविक हैं। परन्तु वास्तविक बात यह है कि श्रद्धा के सामने न कहीं कभी कोई आया और न किसी ने इस सर्ग में उससे बातें की। यह छायामूर्ति मन की लज्जा-वृत्ति है। जब मन में प्रथम बार लज्जा जगती है, तब अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्पों का जन्म होता है। अपनी बुद्धि के अनुसार मन में उठे कुतूहल का समाधान श्रद्धा स्वय ही कर लेती है। परन्तु वृत्ति के शुष्क विश्लेषण में वर्णन और भी दुरूह हो जाता, इसी से कवि ने दो रमणी पात्रों में कथोपकथन की शैली का प्रयोग किया है।

अधरों पर उँगली रखना स्त्रियों की एक मुद्रा है जो बड़ी प्यारी लगती है, परन्तु यहाँ बाह्य आकृति-चित्रण से कहीं अधिक गहरा कवि का आशय है। वासना की प्रेरणा से जब नारी पुरुष को आत्म-समर्पण करना चाहती है तब उसके अंतर की स्वाभाविक लज्जा उसे एक बार अवश्य टोकती है और बिना बोले ओठों पर उँगली रखकर वर्जन भी किया जाता है। उसी अर्थ में 'अधरों पर उँगली धरे हुए' आया है। श्रद्धा जैसे ही अपने शरीर को सौंपना चाहती है, वैसे ही लज्जा टोकती है और कहती है—रुको, यह क्या करने जा रही हो?

किन इन्द्रजाल के—इन्द्रजाल—अद्भुत। सुहागकण—सुहावना पराग या पुष्परज। राग—रस, मकरद। मधुधार—माधुर्य।

शब्दार्थ—न जाने सुहावने पराग और मकरद से परिपूर्ण किन अद्भुत पुष्पों को लेकर तुम सिर नीचा किये एक माला गूँथ रही हो? इस दृश्य से एक विलक्षण माधुर्य की सृष्टि हो रही है।

फूल—भाव। सुहाग—सौभाग्य। राग—प्रेम। सिर नीचा करना—लजाना।

भावार्थ—आज कुछ ऐसे अद्भुत भाव मेरे मन में विकसित हो रहे हैं जो प्रेमपक्ष के हैं और मेरे सौभाग्य के सूचक हैं। उन भावों की लड़ियों को पिरोने में अर्थात् उन्हें अपने हृदय में सञ्चित रखने में मेरा सिर लाज से झुका

रह गया है। अर्थात् मैं लज्जा का अनुभव करने लगी हूँ। इस भावना के उदित होते ही एक निराले माधुर्य की सृष्टि अन्तःकरण में हो रही है।

श्रद्धा के पक्ष में—अपने सौभाग्य को स्थिर करने के लिये मैं प्रेम के अलौकिक भावों की एक माला मन मे गूँथ रही हूँ, पर मन के गले में उसे पहनाते समय हाथ ऊपर को उठते नही अर्थात् मन मे तो प्रेम की बड़ी मीठी-मीठी भावनाएँ उठती हैं, पर ज्यों ही मै उन्हें मनु से कहना चाहती हूँ त्यों ही लजा कर रह जाती हूँ।

वि०—सिर झुकाये पुष्प गूथती हुई किसी बाला का मनोरम दृश्य इस छंद से आँखों के आगे नाचने लगता है।

पृष्ठ ६८

पुलकित कदंब—पुलकित—रोमाञ्चित। फलभरता—फलों से भरे रहने के कारण। दब—भार के आधिक्य से।

अर्थ—जैसे कदंब-माला का एक-एक पुष्प देखने मे रोमाञ्चित-सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार तुम (लज्जा) मन में एक भाव के उपरात दूसरे भाव की गुदगुदी उत्पन्न करती हो, जैसे फलों के बोझ से डाल स्वतः झुक जाती है, उसी प्रकार मन पर जब तुम्हारा (लज्जा का) बोझ छा जाता है तब वह दबा रहता है—कुछ भी नहीं कह पाता।

वरदान सदृश हो—वरदान—कल्याणमय। नीली किरनों—धुँधले प्रकाश का। सौरभ से सना—सुगन्ध से युक्त।

अर्थ—तुमने मेरे हृदय पर धुँधले प्रकाश से युक्त बड़ा हल्का और अत्यत सुगन्धित अपना (लाज का) अंचल डाल दिया है। यह अंचल नारी के लिए कल्याणमय सिद्ध होता है।

वि०—लाज का घूँघट ऐसा नहीं होता जिसके भीतर से नारी के मन मुख का दर्शन न हो सके। उसके रहने पर भी हृदय की भावनाएँ छिपती नहीं, पर शिष्ट समाज में भावों की नग्नता हेय समझी जायगी, अत. वह एक आवश्यक वस्तु है। लाज दोनों ओर के असयम की बाढ़ को रोके रहती है, इसी से नारी के लिए वह वरदान सिद्ध होती है।

सब अंग मोम से—मोम से—कोमल। वल खाना—लचकना। सिमटना—सिकुड़ना, सकोच का अनुभव करना। परिहास—उपहास, व्यग्य करते हुए किसी पर किसी का हँसना।

अर्थ—मेरे सभी अग मोम के समान कोमल हो रहे हैं। इस कोमलता के कारण तन लचक-लचक जाता है। जैसे जब कोई किसी बात को लेकर किसी पर व्यग्य करता हुआ मुस्कराता है तो सुनने वाला सकोच का अनुभव करता है, उसी प्रकार मुझे ऐसा लगता है जैसे मेरे शरीर के परिवर्तनों पर व्यग्य कसता हुआ कोई कह रहा है कि तुझे हो क्या गया है, और मैं उसे सुनकर सिकुड़ी-सी जा रही हूँ।

स्मिति बन जाती है—स्मिति—मद हास्य। तरल हँसी—खिलखिला कर हँसना। बाँकपना—तिरछापन। प्रत्यक्ष—आँखों के सामने।

अर्थ—मै खिलखिला कर हँसना चाहती हूँ पर सकोच ऐसा आ घर दबाता है कि अट्टहास मद मुसकान में परिवर्तन हो जाता है। चितवन तिरछी हो जाती है।

वस्तुओं को आँखों के सामने देखकर भी ऐसा लगता है जैसे मैं उन्हें सपने में देख रही हूँ अर्थात् एक विचित्र मादकता की दशा मे आजकल रहने के कारण ठोस वस्तुएँ भी छाया-चित्र-सी लगती हैं।

मेरे सपनो मे—सपनों—कल्पनाओं। कलरव—आनन्द, सुख, मधुर ध्वनि। ससार—जीवन, पक्षी जगत्। आँख खोलना—प्रारम्भ होना, जगना। समीर—वातावरण, पवन। इतराना—इठलाना।

अर्थ—जैसे स्वप्न-काल (रात) की समाप्ति पर पक्षियों का संसार जगकर कल-कल ध्वनि करने लगता है और मधुर स्वर-लहरी पवन की लहरों पर तैरती हुई इतराती फिरती है, उसी प्रकार मेरी कल्पनाओं की समाप्ति पर जब मेरे आनन्द का जीवन प्रारम्भ हुआ और यह सुख प्रेम के वातावरण में समा कर इठला उठा—

नोट—भाव तीसरे छन्द में पूर्ण होगा।

पृष्ठ ६६

अभिलाषा अपने यौवन—यौवन—तीव्रता । वैभव—भावनाओं की विभूति । सत्कृत—सत्कार ।

अर्थ—हृदय की अभिलाषा अपनी पूर्ण तीव्रता (Intensity) के साथ जब उस सुख का स्वागत करने चली और अपने जीवन भर की शक्ति और भावनाओं की विभूति से जब उसने बहुत दूर से आये (कठिनाई से प्राप्त) उस आनन्द (मनु के मिलन) का सत्कार करना चाहा ।

वि०—यद्यपि मनु श्रद्धा के पास नहीं आये, श्रद्धा ही मनु के पास दूर देश (गाँधार प्रदेश) से आई है—कुँआ ही प्यासे के पास आया है—पर यह भूल है कि पुरुष ही स्त्री के प्रेम का प्यासा होता है, स्त्री भी पुरुष के प्रेम की प्राप्ति के लिए छटपटाती रहती है, इसी से मनु के प्रेम की महत्ता की चर्चा श्रद्धा कर रही है ।

किरनों का रज्जु—किरनों—साहस । रज्जु—डोर । समेट—खींच । अवलबन—सहारा । रस—प्रेम । निर्झर—झरना । धँस—प्रवेश करके । शिखर—चोटी । प्रति—ओर ।

अर्थ—तुमने साहस की वह किरण-डोर खींच ली जिसके सहारे मैं प्रेम के झरने में प्रवेश करके आनन्द की चोटी (सीमा) की ओर बढ़ती ।

वि०—इस छंद मे इस प्रकार का एक दृश्य निहित है कि एक ऊँचा पर्वत है, उससे झरना फूट रहा है जिसका जल चारों ओर फैल गया है । इस जल के परे एक युवती खड़ी है । वह पर्वत की चोटी पर पहुँचना चाहती है, पर तैरना नहीं जानती । देखती है पर्वत के शिखर से लेकर जल में होती हुई उसके चरणों तक एक डोर आई है । उसे बड़ी प्रसन्नता होती है और आशा करती है अब उसकी साध पूरी हो जायगी । पर रस्सी को पकड़ कर आगे बढ़ने की वह ज्यों ही आकाँक्षा करती है कि गिरि-शिखर पर अधिष्ठित कोई अन्य रमणी मूर्ति चट से उस डोर को खींचकर उस युवती को निराश कर देती है ।

रूपक को हटा कर देखते हैं तो यह पर्वत आनन्द का है, यह निर्झर प्रेम का है, यह डोर साहस की है, वह पथिक युवती श्रद्धा है औह डोर को खींचने वाली रमणी-मूर्ति लज्जा ।

छूने मे हिचक—हिचक—झिझक। कलरव—मधुर। अधरों पर आकर रुकना—न कह सकना।

अर्थ—मनु को छूना चाहती हूँ तो एक प्रकार की झिझक का अनुभव करती हूँ। उन्हें आँखें भर कर देखना चाहती हूँ तो पलकें नीचे की ओर झुक जाती हैं। मधुर परिहासपूर्ण बातें हृदय से उमड़ती हैं, पर ओठों तक आकर रुक जाती हैं आगे नहीं बढ़ पातीं अर्थात् जो मैं उनसे कहना चाहती हूँ, वह भी नहीं कह पाती।

वि०—हिचकना, आँखें भर कर न देख सकना, मन की बात न कह सकना, सब लज्जा के लक्षण हैं।

संकेत कर रही—सकेत करना—कहना। रोमाली—रोम समूह। वरजना-टोकना, विरोध करना। भ्रम में पड़ना—अर्थ न खुलना।

अर्थ—मनु को स्पर्श करने या आलिंगन करने की कामना ज्यों ही मन मे जगती है कि शरीर के ये रोम खड़े होकर मानों मेरी भावना का विरोध करते हुए से कहते हैं—ऐसा न करना।

मुँह से मैं कुछ कह नहीं सकती, पर मेरी काली भौहों का चचल हो जाना, यदि उस चचलता की भाषा को पढ़ने वाला कोई हो तो, यह व्यजित करता है कि मेरे हृदय में किसी का प्रेम है। पर जैसे किसी पुस्तक में लिखी काली पक्तियों की भाषा का अर्थ उस समय तक नहीं खुल सकता जब तक उन्हें कोई पढ़ने वाला न हो, इसी प्रकार मेरी भौंहों के इशारों का अर्थ उस समय तक स्पष्ट न होगा जब तक मनु अपने आप उसे न समझे।

तुम कौन हृदय—परवशता—विवशता। स्वच्छंद सुमन—ऋतु की प्रेरणा से उगे पुष्प और यौवन की प्रेरणा से उठे भाव।

अर्थ—तुम कौन हो? क्या तुम्हारा ही दूसरा नाम विवशता है? भाव यह कि जब लज्जा हृदय में प्रवेश करती है तब लाख इच्छा होने पर भी नारी क्रियात्मक रूप से कुछ नहीं कर पाती। मुझे लगता है कि मन के अनुकूल कुछ भी कर दिखाने में मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। जैसे बन में ऋतु की प्रेरणा से जो फूल स्वतः खिलें उन्हें कोई बीन ले जावे, उसी प्रकार मेरे जीवन् मे यौवन की प्रेरणा से जो भाव स्वाभाविक रूप से फूटे, उन्हें तुमने खिलने न दिया।

वि०—'हृदय की परवशता' से अधिक सुन्दर 'लज्जा' की परिभाषा नहीं हो सकती।

पृष्ठ १००

सध्या की लाली—आश्रय—शरीर धारण करना। छायाप्रतिमा—छाया-मूर्ति, सूक्ष्म शरीर वाली।

अर्थ—सध्या की लालिमा-सा जिसका अग था और सुनहली किरणों सा जिसका हास्य, वह सूक्ष्म शरीरधारिणी लज्जा श्रद्धा के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए धीरे से बोली।

वि०—जैसा प्रारम्भ में कह आये हैं कोई छाया-मूर्ति कहीं नहीं है। श्रद्धा ने जो प्रश्न किये हैं, उनका उत्तर श्रद्धा की बुद्धि ही दे रही है।

प्रेम और लज्जा दोनों का रग लाल माना जाता है, इसी से छायामूर्ति के शरीर और हास्य की कल्पना सध्या की लालिमा के रूप मे अत्यन्त उपयुक्त हुई है।

छाया-प्रतिमा शब्द से यह न भ्रम होना चाहिए कि लज्जा का रग (छाया-सा) काला होगा। छाया-शरीर, मनुष्यों के स्थूल शरीर से भिन्न, सूक्ष्म शरीर के अर्थ में आता है। चाँदनी को साकार मानें तो उसका छाया-शरीर उजला होगा और इसी प्रकार उषा का अरुण। वनदेवियों का छाया-शरीर उज्वल होता है।

इतना न चमत्कृत—चमत्कृत—चौंकना। उपकार—हित। पकड़—रोक।

अर्थ—हे बाले, मुझे देखकर तुम इतनी चौंको मत। मेरे समझाने पर यदि तुम अपने मन को नियन्त्रण में रख सकीं तो इसमें उसी का हित है। जो स्त्रियाँ प्रेम में उतावली हो जाती हैं उनके आवेशपूर्ण मन के लिए मैं एक 'रोक' हूँ जो यह समझाती है कि तुम जो कुछ करने जा रही हो, उसके परिणाम पर मेरे कहने से पल भर रुक कर थोड़ा सोच-विचार कर लो।

वि०—श्रद्धा का पहला सीधा प्रश्न यह था कि तुम हो कौन? आक्षेप यह था कि तुम्हारे होने से मैं परतन्त्रता का अनुभव कर रही हूँ। लज्जा ने दोनों बातों का बड़ा सुन्दर छोटा सा-उत्तर दिया—मैं एक 'पकड़' हूँ।

नोटः—आगे के ग्यारह छन्दों में यौवन का वर्णन है जिसके अन्त में लज्जा ने अपने को उस चपल (यौवन) की धात्री बताया है। यह बात भी इस ओर सकेत करती है कि लज्जा युवतियों की हित-साधिका है।

अंबर चुम्बी हिम शृंगों—अम्बर चुम्बी—आकाश को छूने वाली, ऊँची। शृंग—चोटी। कलरव—मधुर। प्राणमयी—चेतना की लहरें। उन्माद—मस्ती।

अर्थ—आकाश को चूमने वाली पर्वत की ऊँची चोटियों पर जमे बर्फ के पघलने से जल की धाराएँ जैसा मधुर कोलाहल करती हुई बहती हैं, यौवन काल में भी भावों के फूटने से वैसी ही मधुर गूँज हृदय में भर जाती हैं। इस यौवन के आते ही चेतना की मस्तीभरी लहरें उठाती एक बिजली की धार मन में बहती है।

मंगल कुकुम की श्री—मगल—मागलिक या शुभ लक्षण सम्पन्न। कुकुम—रोली। श्री—शोमा। सुहाग—सौभाग्य। इठलाना—इतराना। हरियाली—प्रसन्नता।

अर्थ—जैसे रोली एक मगलसूचक शोभा की वस्तु है उसी प्रकार सुन्दरता से युक्त यौवन जीवन का सब से शुभ काल है। उसके आते ही शरीर में उषा से भी अधिक निखरी अरुणिमा छा जाती है। उसमें सुन्दर सौभाग्य इतराता फिरता है। वह हराभरापन या प्रसन्नता लाता है।

पृष्ठ १०१

हो नयनों का—कल्याण—सुख। वासन्ती—वसन्त ऋतु। वनवैभव—वन की ऐश्वर्यशालिनी वस्तुएँ यथा हरे-भरे खेत, खिले सुमन, मौर से युक्त रसाल-वृन्द, पक्षियों का चहकना। पञ्चम स्वर—मधुर कूक, उत्कृष्टता, उत्तमता। पिक—कोकिल।

अर्थ—देखने वालों के नेत्रों को वह सुख देता है। उसमें खिले पुष्प के समान आनन्द अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। वसन्त ऋतु आने पर वन की सभी ऐश्वर्यशालिनी वस्तुओं में कोकिल का स्वर में कूकना जैसे पृथक्

पहचाना जा सकता है, उसी प्रकार जीवन की सभी विभूतियों मे यौवन की उत्कृष्टता स्पष्ट प्रकट रहती है।

वि०—चन्द्रगुप्त नाटक मे इसी भाव को दूसरे ढग से प्रसाद जी ने व्यक्त किया है—

"अकस्मात् जीवन-कानन मे एक राका-रजनी की छाया मे छिपकर मधुर वसन्त घुस आता है। शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं। सौंदर्य का कोकिल—'कौन ?' कह कर सबको रोकने-टोकने लगता है, पुकारने लगता है।"

वाद्यों के सात स्वरों मे से पाँचवें स्वर को बाह्य प्रकृति मे कोकिल के स्वर के समान कोमल और मधुर माना जाता है।

जो गूंज उठे फिर—गूँजना—भरना। मूर्च्छना—मधुर तान, (Melody)। रमणीय—सुन्दर।

अर्थ—कोकिल की तान जैसे सुनने वाले के रोम-रोम मे छा जाती है, उसी प्रकार यौवन का दर्शन करते ही उसका माधुर्य दर्शक की नस-नस में भर कर उमड़ता है।

जैसे साँचे में ढलकर पदार्थ एक भिन्न ही आकार प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार देखने वालों की आँखें साँचे हैं जिनमें भर कर यौवन सुन्दर रूप के दृश्यों में परिवर्तित हो जाता है।

वि०—यौवन और रूप दो भिन्न वस्तुएँ हैं। यौवन जीवन का एक काल विशेष है और रूप शरीर के अगों की सुडौलता और चारुता पर निर्भर करता है। जीवन में यौवन एक बार सभी प्राप्त करते हैं, पर रूपवान होना सभी के भाग्य में नहीं। फिर भी यौवन का ऐसा प्रभाव है कि उसके आने पर शरीर में एक विलक्षण आकर्षण आ जाता है। जो रूपवान है उनके यौवन का तो कहना ही क्या ?

नयनो की नीलम—नीलम की घाटी—काली पुतलियाँ। रस घन—रस भरे बादल। कौंध—बिजली की चमक।

अर्थ—जिसके आते ही नीलम के पर्वतों की घाटियों में उमड़ने वाले जल भरे बादलों के समान काली-काली पुतलियों वाली रमणियों की आँखों में रस

भर जाता है और जैसे उन बादलों में बिजली की बाहरी चमक के साथ भीतर शीतल जल भी भरा रहता है, उसी प्रकार यौवन में रूप की बाहरी चकाचौंध के साथ अन्तर में प्रेम की शीतल धारा भी रहती है।

हिल्लोल भरा हो—हिल्लोल—आनन्द। ऋतुपति—वसत। गोधूलि—सध्या। ममता—करुणा, अनुराग। मध्याह्न—दोपहर।

अर्थ—उस यौवन में वसत ऋतु का आनन्द, गोधूलिवेला की ममता, प्रभात काल की जागृति और दोपहर का तीव्रतम ओज समाया रहता है।

भाव यह कि जैसे वसत आते ही प्रकृति हरी-भरी और पक्षियों की चहचहाहट से परिपूर्ण हो जाती है तथा देखने वालों की आँखों को आकर्षित करती है, उसी प्रकार यौवन के आते ही शरीर स्वस्थ और सुन्दर तथा मन प्रेम के कोलाहल से भर जाता है। यह शोर अपनी रम्यता से दर्शकों के मन को लुभाता है। सध्या-वेला जैसे ताप-दग्ध थके व्यक्तियों को घनी छाया और विश्राम देकर अपनी ममता प्रकट करती है, उसी प्रकार युवतियाँ संसार के ताप से दग्ध और कार्यभार से शिथिल अपने प्रेमियों को कोमल करके शीतल स्पर्श और चितवन की स्निग्धता से विश्राम पहुँचा अपना अनुग्रह प्रकट करती हैं। रात का समय जैसे सोने में व्यतीत होता है और प्रभात के फूटते ही जैसे सब जग पड़ते हैं, उसी प्रकार किशोरावस्था भूल का समय है और यौवन के पदार्पण करते ही जीवन को आँख खोल कर देखना पड़ता और सभी को उत्तरदायित्व निभाना होता है। मध्याह्न में सूर्य जैसे अपनी प्रखरता की सीमा पर होता है, उसी प्रकार यौवन में शरीर की सभी शक्तियाँ अपना पूर्ण विकास प्राप्त करती हैं।

हो चकित निकल—चकित—चौंकने का भाव। सहसा—अकस्मात्। प्राची के घर—पूर्व दिशा के आकाश। नवल—नवीन। फिछलना—फिसलना। मानस—सरोवर, मन। लहरों—तरगो, भाव।

अर्थ—जैसे पूर्व दिशा के गगन से चाँदनी आश्चर्य-चकित होकर इधर-उधर देखती है, उसी प्रकार यौवन-काल में सौन्दर्य शरीर से अकस्मात् फूट कर उसको ताकता है। जैसे नवीन चाँदनी सरोवर की लहरों पर पड़ कर

फिसल-फिसल जाती है, उसी प्रकार भावों से लहराते प्रेमियों के हृदय रूप की चाँदनी को सँभाल नहीं पाते।

पृष्ठ १०२

फूलों की कोमल—अभिनन्दन—आदरभाव। मकरंद—पुष्प रस। कुंकुम—केसर।

अर्थ—इसी यौवन के प्रति अपना आदरभाव प्रदर्शित करने के लिए फूल अपनी पंखुरियों को मानों प्रस्फुटित कर (खोल) देते हैं। केसर मिश्रित चंदन से जैसे किसी का स्वागत किया जाता है, उसी प्रकार सुमन अपने अन्तर में रस रक्षित रखते हैं।

फूलों—हृदयों। पखड़ियाँ—भाव। मकरंद—प्रेम का रस।

भाव पक्ष में—इसी यौवन के प्रति अपना आदर-भाव प्रकट करने के लिए प्रेमियों के हृदय अपनी भाव-निधि खोल देते हैं और इसी के स्वागत के लिए प्रेम-रस की केसर और चंदन को सुरक्षित रखते हैं।

वि०—एक बात यहाँ ध्यान देने की है। सुमन के रस या हृदय के रस के लिए कवि केवल कुंकुम या चंदन नहीं लाया, दोनों लाया है। ऐसा लगता है कि कवि की दृष्टि दोनों के मिश्रण पर इसलिए है कि पुष्प के पक्ष में एक ओर तो मकरंद में पीले पराग का घुलना सार्थक हो जाता है और दूसरी ओर कुंकुम और चंदन के मिलने से जो द्रव्य उत्पन्न होगा, वह काव्य में निर्दिष्ट अनुराग के रंग से मेल खाता है।

कोमल किसलय—किसलय—कोंपल, पल्लव, पत्ती। मर्मर—वह शब्द जो पत्तों के हिलने पर सुनाई देता है। रव—ध्वनि। जय घोष—जय-ध्वनि, जय के नारे। उत्सव—पर्व, कोई मांगलिक या प्रसन्नता का अवसर।

अर्थ—जैसे किसी सम्राट् के आगमन पर 'महाराज की जय' हो की ध्वनि चारों ओर गूँज जाती है, उसी प्रकार कोमल पल्लवों से जो मर्मर ध्वनि निकलती है वह मानो यौवन की विजय-घोषणा है।

जैसे चार आदमी मिल कर किसी आनन्दोत्सव को मनाते हैं वैसे ही यौवन में सुख और दुःख के सम्मिश्रण से जीवन का उत्सव मनाया जाता है।

वि०—सभी उत्कृष्ट विचारक अन्त मे इसी निर्णय पर पहुँचे हैं कि दुःख के उचित सामजस्य मे ही जीवन का आनन्द है। प्रसाद ने इस तथ्य की घोषणा अपनी कृतियों मे बराबर की है, पर सभवत. पन्त जी से अधिक स्पष्ट और सरल शब्दों में इसे कोई नहीं कह पाया—

जग पीडित है अति-दुख से, जग पीड़ित रे अति सुख से।
मानव-जग मे बँट जावे, दुख सुख से औ सुख दुख से।

उज्ज्वल वरदान—उज्ज्वल—शुभ्र, सुन्दर, मगलमय। चेतना—चेतना से युक्त प्राणियों के लिए। सपने—कामना। जगना—बना रहना।

अर्थ—चेतन प्राणियो के लिए यौवन भगवान का शुभ वरदान है। इसी का दूसरा नाम सौंदर्य है। यह काल ऐसा है जिसमे अगणित इच्छाओ की पूर्ति की कामना बनी रहती है।

मैं उसी चपल की—चपल—चचल यौवन। धात्री—धाय, सरक्षिका। गौरव—गरिमा। ठोकर—आघात, पतन। धीरे से—सहृदयता से।

अर्थ—लज्जा बोली, हे श्रद्धा मैं इसी यौवन की जो स्वभाव से अत्यन्त चचल है सरक्षिका (धाय) हूँ। जैसे धाय अपने नियन्त्रण में रहने वाले चपल बालक की पल-पल पर रक्षा करती है और उसे गौरव और महानता का पाठ पढ़ाती है, उसी प्रकारा नारी-जाति को मैं गरिमा और महत्ता के साथ व्यवहार करना सिखलाती हूँ। जैसे जब बच्चे के ठोकर लगने वाली होती है तभी धाय उसे धीरे से बतला देती है कि देखकर न चलने से ठोकर खा जाओगे, इसी प्रकार जब स्त्री आवेश मे आकर उच्छृङ्खलता की ओर बढ़ती है जिससे उसे हानि पहुँचने की सभावना रहती है, तब मैं एक बार उससे चुपचाप अत्यन्त सहृदयता से यह अवश्य कह देती हूँ कि देखो यदि इस ओर तुम बढ़ीं तो पतन की सभावना है। आगे तुम जानो।

मैं देवसृष्टि की रति—देवसृष्टि—देव जाति। रति—काम की पत्नी, एक देवी। पचबाण—कामदेव का एक नाम।

अर्थ—जिस समय देव जाति इस पृथ्वी पर निवास करती थी, उस समय मेरा नाम रति था। प्रलय में उस जाति के विनाश पर अपने पति कामदेव से

मुझे बिछुड़ना पड़ा। तब से मैं निषेध की दीन मूर्ति मात्र हूँ अर्थात् पहले जैसे देवियों के मन में मैं प्रबल उत्तेजना उत्पन्न करने की शक्ति रखती थी, वह अब मुझसे छिन गई। इसी से अपनी अतृप्ति की भावना को एकत्र करके—

नोट—भाव आगे के छन्द में पूरा होगा।

वि०—कामदेव के पाँच बाण ये हैं—द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्माद।

पृष्ठ १०३

अवशिष्ट रह गई—अवशिष्ट—शेष। अतीत—भूतकाल। लीला—प्रणय क्रीड़ा। विलास—भोग। अवसाद—थकावट। श्रमदलित—श्रम से चूर।

अर्थ—अब तो मैं अपने अतीत काल की असफलता के सस्कार के समान सबके अनुभव में ही शेष रह गई हूँ।

मेरी तीव्रता आज उसी प्रकार कम हो गई, जिस प्रकार प्रणय-क्रीड़ा में भोग के उपरात श्रम से चूर होने पर उत्साहपूर्ण मन खिन्नता और (सबल) शरीर में थकावट का अनुभव होता है।

मैं रति की प्रतिकृति—प्रतिकृति—प्रतिमा। शालीनता—विनम्रता (Modesty)। नूपुर—घुँघरू।

अर्थ—मेरा नाम लज्जा है। मैं रति की प्रतिमा हूँ। नारियों को विनम्रता सिखलाना मेरा काम है। जैसे नृत्य के समय मस्ती से घूमने वाले चरणों में नूपुरों के सयोग से नियन्त्रण रहता है, उसी प्रकार उन सुन्दरियों में जो यौवन की मस्ती में न जाने क्या कर बैठें, मेरे अनुनय से एक सयम रहता है।

वि०—'मनाने' शब्द का सौंदर्य यह है कि यदि नूपुर चरणों में न हों तो वे निश्चिन्त होकर तीव्रता से घूमें, पर घुँघरुओ को भी एक गति से बजाने की ओर नर्तकी का ध्यान रहता है, अतः उस गति में अधिक बन्धन और सयम आजाता है। इसी प्रकार मस्त रमणियों के पैरों पर गिर कर मानो लज्जा यह विनय बराबर करती रहती है कि तुम्हारे मन में आवे वही करना, पर भाई,

थोड़ा मेरा भी ध्यान रहे। जहाँ लज्जा का तनिक भी ध्यान रखा जाता है, वहाँ संयम स्वतः आ जाता है और संयम आने से आवेग चमक उठता है।

लाली बन सरल—लाली—लालिमा। अंजन—काजल। कुंचित—बल खाती हुई। घुँघराली—गोल लच्छेदार। मरोर—ऐंठन।

अर्थ—मेरे कारण रमणियों के सरल कपोल लाल हो जाते हैं। उनकी आँखों में अंजन न लगा रहने पर भी मेरी (लज्जा की) अनुभूति में ऐसा लगता है जैसे वह लगा हुआ हो। बल खाती हुई घुँघराली लटों के समान मैं रमणियों के मन में ऐंठन (टीस) उत्पन्न करती हूँ।

वि०—'लज्जा' संयम और सौंदर्य दोनों की पोषिका है। कपोलों के साथ 'सरल' विशेषण की यह सार्थकता है कि लज्जा की लाली झलकने पर ही रमणियों के कपोल सुन्दर और आकर्षक प्रतीत होते हैं, नहीं तो वे सामान्य कपोल हैं।

चन्द्रगुप्त नाटक मे 'मन की मरोर' और 'कपोल की लाली' को स्पष्टता से समझा दिया है—

"राजकुमारी, काम-संगीत की तान सौंदर्य की रंगीन लहर बनकर, युवतियों के मुख में लज्जा और स्वास्थ्य की लाली चढ़ाया करती है।"

चंचल किशोरता—किशोरसुन्दरता—वे सुन्दरियाँ जो अभी किशोरावस्था में हैं। मसलन—उँगलियों से किसी वस्तु को दबाते हुए मलना या रगड़ना।

अर्थ—सुन्दर किशोरियों के मन जब चंचल होते हैं तब मैं उन पर नियन्त्रण रखती हूँ। जैसे कानों को हल्के-हल्के कोई मसले तो वे लाल हो जाते हैं। इस क्रिया से एक ओर थोड़ी पीड़ा होती है, पर सुन्दरता भी झलकने लगती है। इसी प्रकार मेरे नियन्त्रण में रहने वाली रमणी यद्यपि थोड़ी क्षुब्ध रहती है, पर उस संयम से प्रेम में विलक्षण माधुर्य आ जाता है।

पृष्ठ १०४

हाँ ठीक परन्तु—पथ—मार्ग, निर्दिष्ट कर्मों की सूची। निविड़—घोर।

निशा—अनिश्चित भविष्य। ससृति—ससार । आलोकमयी—प्रकाशपूर्ण, आशाभरी । रेखा—किरण, सहारा ।

अर्थ—श्रद्धा बोली, तुम जो कहती हो, वह सच है। पर मुझे इस बात का उत्तर दो कि मै अपना जीवन किस मार्ग का अनुसरण करती हुई काटूँ ! ससार रूपी इस घोर रात्रि मे प्रकाश की किरण मैं कहाँ पाऊँगी ?

भाव यह कि यदि मेरा भविष्य अनिश्चित रहा तो मै कुछ भी नहीं कर पाऊँगी। जैसे अँधेरी रात मे किरणों के फूटने की आशा लिये आँखें बैठी रहती हैं, उसी प्रकार उस सहारे का सकेत तुम करो जिसके आश्रय मे मै अपने पल सफल बना सकूँ ।

यह आज समझ—दुर्बलता—शारीरिक बल की हीनता। अवयव—शरीर। सबसे—प्रकृति के अन्य प्राणियो विशेष कर पुरुष जाति से ।

अर्थ—आज इतनी बात तो मै जान गई हूँ कि नारी होने के नाते मैं बलहीन हूँ । भगवान ने हमारे शरीर को सुन्दर और कोमल बनाया है, पर इस कोमलता का अर्थ शारीरिक बल की हीनता है। अपनी इस कमी के कारण ही नारी-जाति सभी से सदैव पराजित होती रहेगी।

पर मन भी क्यों—ढीला—पराधीन, परवश। अपने ही—स्वतः, बिना किसी प्रकार के दबाव के। घन श्याम खड—काले बादलों के टुकड़े ।

अर्थ—थोड़ी देर के लिए शरीर की बात छोड दो। मै पूछती हूँ मेरा यह मन अपने आप ही क्यों पराधीन हो रहा है ? पानी से भरे काले बादलों के समान मेरी आँखें आँसुओं से क्यों भरी हुई है ?

वि०—काले बादलों से कोई कहता नहीं कि तुम बरसो, पर वे अपने स्वभाव से विवश हैं, बरसते हैं। इसी प्रकार प्रेम करना भी नारी का स्वभाव है।

सर्वस्व समर्पण करने—समर्पण—न्यौछावर। महातरु— विशाल वृक्ष। छाया—आश्रय। ममता—इच्छा, कामना। मायामें—मोहमयी।

अर्थ—जैसे कोई ताप-दग्ध प्राणी किसी विशाल वृक्ष की छाया में पहुँच कर यह इच्छा, करता है कि अब तो यहीं चुपचाप पड़ा रहूँ तो अच्छा है, वैसे ही मेरे मन में ऐसी मोहमयी कामना क्यों जगती है कि मैं किसी पुरुष का भारी

विश्वास प्राप्त कर अपना सब कुछ उस पर न्यौछावर कर दूँ और उसके आश्रय में अपना जीवन चुपचाप काट दूँ।

छाया पथ में—छायापथ—आकाश गंगा। तारक द्युति—तारिका का प्रकाश। झिलमिलाना—टिमटिमाना। लीला—भावना। अभिनय—क्रीड़ा। निरीहता—भोलापन। श्रमशीला—श्रम का जीवन।

अर्थ—मेरे मन में ऐसी मधुर कामना क्यों क्रीड़ा कर रही है कि आकाश-गंगा में मंद टिमटिमाने वाली तारिका के समान मैं अपने जीवन का आदर्श रखूँ अर्थात् एक ओर तो मैं यह नहीं चाहती कि मेरा अस्तित्व बिल्कुल मिट जाय, दूसरी ओर मैं यह भी नहीं सोचती कि सूर्य अथवा चन्द्र के समान आभासित होने वाले पुरुष से अपने व्यक्तित्व को प्रधानता दूँ।

मैं कोमलता, भोलेपन और श्रम के जीवन को क्यों पसन्द करती हूँ?

पृष्ठ १०५

निस्सबल होकर—निस्सबल—बिना सहारे के। मानस—सरोवर, मन। गहराई—गहरापन, गंभीरता। जागरण—जाग्रति (Awakening)। सपने—भावनाएँ। सुघराई—सुन्दरता।

अर्थ—जैसे किसी गहरे सरोवर में तैरने वाला प्राणी सोचे कि उसे किसी भी समय सहारे की आवश्यकता पड़ सकती है, वैसे ही अपने मन में जब मैं गंभीरता से विचार करती हूँ तभी इस निर्णय पर पहुँचती हूँ कि मैं यदि अकेले जीवन यापन करूँ तो आश्रयहीन हूँ।

अपनी इस रम्य भावना में डूबकर कि पुरुष का आश्रय पाकर फिर कुछ करना शेष नहीं, मैं अन्य किसी प्रकार की जाग्रति की कल्पना कभी नहीं करना चाहती।

नारी जीवन का चित्र—चित्र—सत्य, सत्ता, रहस्य। विकल—इधर-उधर, अस्त-व्यस्त। अस्फुट—टेढ़ी सीधी। आकार—जन्म।

अर्थ—बतलाओ नारी जीवन का वास्तविक चित्र क्या यही है जो मैंने तुम्हें अपने शब्दों द्वारा अभी खींच कर दिखलाया?

जैसे कोई चित्रकार टेढ़ी-सीधी रेखाओं में जब इधर-उधर रंग भरता है, तब एक कला-कृति का निर्माण करता है, इसी प्रकार नारी का शरीर त्वचा की सीमा में हड्डियों और नसों का एक ढाँचा मात्र है, जब तुम्हारा (लज्जा का) रंग इधर-उधर भर जाता है, तब उसी में रम्यता आजाती है।

वि०—'चित्र' शब्द यहाँ विशेष रूप से 'सत्ता' के अर्थ में आया है। श्रद्धा पीछे कह आई है कि उसकी दृष्टि में नारी शरीर से ही बलहीन नहीं है, पुरुष के लिए मन से भी दुर्बल है। वह उसके ऊपर विश्वास करना चाहती है। आत्म-समर्पण ही उसका स्वभाव है। उसकी सेवा में वह अपनी सारी शक्ति लगाने को उत्सुक रहती है, उसकी बराबरी करने की स्पर्द्धा उसमें बिलकुल नहीं है। इतना कहकर वह जानना चाहती है कि नारी की वास्तविक सत्ता, उसके जीवन का वास्तविक सत्य क्या इसके अतिरिक्त और कुछ है ?

रुकती हूँ और—अनुदिन—रातदिन। बकती—ऊटपटाँग बातें सोचती।

अर्थ—भाव की प्रेरणा से कुछ करने के लिए कटिबद्ध होने पर बीच-बीच में कभी-कभी थोड़ी रुक-ठहर जाती हूँ, पर वह रुकना सोच-विचार में पड़ कर दूसरी ओर मुड़ने के लिए नहीं होता। एक बार जो निश्चय कर लिया वह कर लिया।

जैसे कोई पागल स्त्री रातदिन कुछ ऐसा बड़बड़ाती रहती है जिसमें एक बात का सम्बन्ध दूसरी बात से नहीं होता, उसी प्रकार मेरा मन भीतर-भीतर रात-दिन न जाने क्या ऊटपटाँग बातें सुझाता रहता है।

मैं जभी तोलने—तोलने—अधिकार करने। उपचार—प्रयत्न, उपाय। तुल जाना—अधिकार में होना। झूले-सी झोंके खाना—आकर्षण के बंधन में आना।

अर्थ—प्रयत्न तो मैं यह करती हूँ कि पुरुष पर अधिकार कर लूँ, पर होता यह है कि मैं उसके हाथों बिक जाती हूँ—वशीभूत हो जाती हूँ।

अपनी भुजाएँ उसके गले में डालती तो इसलिए हूँ कि उसे इनमें फाँस लूँ, पर जैसे वृक्ष को बाँधने का प्रयत्न करने वाली लता अपने लघुभार के कारण स्वयं झूले-सी लटक कर उसमें फँसी रह जाती है, वैसे ही मैं भी जिस

व्यक्ति को भुजाओं मे बाँधना चाहती हूँ उससे बँधकर (आकर्षित होकर) रह जाती हूँ।

इस अर्पण मैं—अर्पण—आत्म समर्पण। उत्सर्ग—त्याग। दे दूँ—त्याग करूँ। कुछ न लूँ—स्वार्थ का सम्बन्ध न रक्खूँ।

अर्थ—मे आत्म समर्पण स्वार्थ के लिए नहीं, त्याग के लिए करती हूँ। मेरा हृदय इतना भोला है कि वह केवल देना जानता है, लेना नहीं सीखा।

पृष्ठ १०६

क्या कहती हो—क्या कहती हो—आश्चर्य की बात है। ठहरो—अपनी बात बंद करो। सकल्प—दृढ़ निश्चय। सोने मे सपने—सुनहली साधें।

अर्थ—लज्जा बोली : हे नारी, तुम यह कह क्या रही हो? आश्चर्य होता है मुझे ऐसा सुनकर। अपनी बात को अब यहीं थाम कर मुझसे इतना और सुनती जाओ कि यदि यह सब कुछ सत्य है, तब मेरे समझाने के पूर्व ही तुमने जीवन की सुनहली साधो को आँखो की अजलि मे आँसुओ का जल भर कर दृढ़ निश्चय का मत्र पढ़ते हुए किसी को दान में दे डालो।

वि०—अजली मे जल भर कर मत्र का उच्चारण करते हुए दान देने का विधान है। यहाँ पुरुष के लिए नारी द्वारा अपने जीवन की अत्यत प्रिय साधों को उत्सर्ग करने की चर्चा है। अश्रुजल का भाव यह है कि पुरुप के कारण स्त्री का जीवन यद्यपि रोते ही व्यतीत होता है, तथापि अपने स्वभाव से विवश होने के कारण वह उसके लिए त्याग किये ही जाती है।

नारी तुम केवल—श्रद्धा—आस्था, विश्वास। रजत नग—रुपहला पर्वत, कैलास। पग तल—तलहटी। पीयूष—अमृत, मधुर। स्रोत—झरना।

अर्थ—हे नारी, तुम्हारा ही दूसरा नाम श्रद्धा है। जैसे कैलास पर्वत के चरणों (तलहट) की समभूमि मे मीठे पानी के सोते बहते हैं, उसी प्रकार पुरुष पर अगाध विश्वास करती हुई तुम प्रेम की धार से जीवन के पथ को सम (सुगम और सुखमय) करती हुई उसे सुन्दर बनाओ।

देवो की विजय—देवों—अच्छे विचारों। दानवो—बुरे विचारों। नित्य विरुद्ध—स्वाभाविक विरोधी।

जैसे कोई चित्रकार टेढ़ी-सीधी रेखाओं में जब इधर-उधर रग भरता है, तब एक कला-कृति का निर्माण करता हे, इसी प्रकार नारी का शरीर त्वचा की सीमा में हड्डियों और नसों का एक ढाँचा मात्र है, जब तुम्हारा (लज्जा का) रग इधर-उधर भर जाता है, तब उसी मे रम्यता आजाती है।

वि०—'चित्र' शब्द यहाँ विशेष रुप से 'सत्ता' के अर्थ में आया है। श्रद्धा पीछे कह आई है कि उसकी दृष्टि में नारी शरीर से ही बलहीन नहीं है, पुरुष के लिए मन से भी दुर्बल है। वह उसके ऊपर विश्वास करना चाहती है। आत्म-समर्पण ही उसका स्वभाव है। उसकी सेवा में वह अपनी सारी शक्ति लगाने को उत्सुक रहती हे, उसकी बराबरी करने की स्पर्द्धा उसमे बिलकुल नहीं है। इतना कहकर वह जानना चाहती है कि नारी की वास्तविक सत्ता, उसके जीवन का वास्तविक सत्य क्या इसके अतिरिक्त और कुछ है?

रुकती हूँ और—अनुदिन—रातदिन। बकती—ऊटपटाँग बातें सोचती।

अर्थ—भाव की प्रेरणा से कुछ करने के लिए कटिबद्ध होने पर बीच-बीच में कभी-कभी थोड़ी रुक-ठहर जाती हूँ, पर वह रुकना सोच-विचार में पड़ कर दूसरी ओर मुड़ने के लिए नहीं होता। एक बार जो निश्चय कर लिया वह कर लिया।

जैसे कोई पागल स्त्री रातदिन कुछ ऐसा बड़बडाती रहती है जिसमे एक बात का सम्बन्ध दूसरी बात से नहीं होता, उसी प्रकार मेरा मन भीतर-भीतर रात-दिन न जाने क्या ऊटपटॉग बातें सुझाता रहता है।

मैं जभी तोलने—तोलने—अधिकार करने। उपचार—प्रयत्न, उपाय। तुल जाना—अधिकार में होना। झूले-सी झोंके खाना—आकर्षण के बधन में आना।

अर्थ—प्रयत्न तो मैं यह करती हूँ कि पुरुष पर अधिकार कर लूँ, पर होता यह है कि मैं उसके हाथों बिक जाती हूँ—वशीभूत हो जाती हूँ।

अपनी भुजाएँ उसके गले में डालती तो इसलिए हूँ कि उसे इनमें फाँस लूँ, पर जैसे वृक्ष को बाँधने का प्रयत्न करने वाली लता अपने लघुभार के कारण स्वय झूले-सी लटक कर उसमें फँसी रह जाती है, वैसे ही मैं भी जिस

व्यक्ति को भुजाओं में बाँधना चाहती हूँ उससे बँधकर (आकर्षित होकर) रह जाती हूँ।

इस अर्पण में—अर्पण—आत्म समर्पण। उत्सर्ग—त्याग। दे दूँ—त्याग करूँ। कुछ न लूँ—स्वार्थ का सम्बन्ध न रखूँ।

अर्थ—मैं आत्म समर्पण स्वार्थ के लिए नहीं, त्याग के लिए करती हूँ। मेरा हृदय इतना भोला है कि वह केवल देना जानता है, लेना नहीं सीखा।

पृष्ठ १०६

क्या कहती हो—क्या कहती हो—आश्चर्य की बात है। ठहरो—अपनी बात बंद करो। संकल्प—दृढ़ निश्चय। सोने से सपने—सुनहली साधें।

अर्थ—लज्जा बोली, हे नारी, तुम यह कह क्या रही हो? आश्चर्य होता है मुझे ऐसा सुनकर। अपनी बात को अब यहीं थाम कर मुझसे इतना और सुनती जाओ कि यदि यह सब कुछ सत्य है, तब मेरे समझाने के पूर्व ही तुमने जीवन की सुनहली साधों को आँखों की अंजलि में आँसुओं का जल भर कर दृढ़ निश्चय का मंत्र पढ़ते हुए किसी को दान में दे डाला।

वि०—अंजली में जल भर कर मंत्र का उच्चारण करते हुए दान देने का विधान है। यहाँ पुरुष के लिए नारी द्वारा अपने जीवन की अत्यंत प्रिय साधों को उत्सर्ग करने की चर्चा है। अश्रुजल का भाव यह है कि पुरुष के कारण स्त्री का जीवन यद्यपि रोते ही व्यतीत होता है, तथापि अपने स्वभाव से विवश होने के कारण वह उसके लिए त्याग किये ही जाती है।

नारी तुम केवल—श्रद्धा—आस्था, विश्वास। रजत नग—रुपहला पर्वत, कैलास। पग तल—तलहटी। पीयूष—अमृत, मधुर। स्रोत—झरना।

अर्थ—हे नारी, तुम्हारा ही दूसरा नाम श्रद्धा है। जैसे कैलास पर्वत के चरणों (तलहट) की समभूमि में मीठे पानी के सोते बहते हैं, उसी प्रकार पुरुष पर अगाध विश्वास करती हुई तुम प्रेम की धार से जीवन के पथ को सम (सुगम और सुखमय) करती हुई उसे सुन्दर बनाओ।

देवों की विजय—देवों—अच्छे विचारों। दानवों—बुरे विचारों। नित्य विरुद्ध—स्वाभाविक विरोधी।

जैसे कोई चित्रकार टेढी-सीधी रेखाओं मे जब इधर-उधर रग भरता है, तब एक कला-कृति का निर्माण करता है, इसी प्रकार नारी का शरीर त्वचा की सीमा में हड्डियों और नसों का एक ढाँचा मात्र है, जब तुम्हारा (लज्जा का) रग इधर-उधर भर जाता है, तब उसी मे रम्यता आजाती है।

वि०—'चित्र' शब्द यहाँ विशेष रूप से 'सत्ता' के अर्थ मे आया है। श्रद्धा पीछे कह आई है कि उसकी दृष्टि में नारी शरीर से ही बलहीन नहीं है, पुरुष के लिए मन से भी दुर्बल है। वह उसके ऊपर विश्वास करना चाहती है। आत्म-समर्पण ही उसका स्वभाव है। उसकी सेवा में वह अपनी सारी शक्ति लगाने को उत्सुक रहती है, उसकी बराबरी करने की स्पर्द्धा उसमे बिलकुल नहीं है। इतना कहकर वह जानना चाहती है कि नारी की वास्तविक सत्ता, उसके जीवन का वास्तविक सत्य क्या इसके अतिरिक्त और कुछ है ?

रुकती हूँ और—अनुदिन—रातदिन। बकती—ऊटपटाँग बातें सोचती।

अर्थ—भाव की प्रेरणा से कुछ करने के लिए कटिबद्ध होने पर बीच-बीच मे कभी-कभी थोड़ी रुक-ठहर जाती हूँ, पर वह रुकना सोच-विचार में पड़ कर दूसरी ओर मुड़ने के लिए नहीं होता। एक बार जो निश्चय कर लिया वह कर लिया।

जैसे कोई पागल स्त्री रातदिन कुछ ऐसा बड़बड़ाती रहती है जिसमें एक बात का सम्बन्ध दूसरी बात से नहीं होता, उसी प्रकार मेरा मन भीतर-भीतर रात-दिन न जाने क्या ऊटपटाँग बातें सुझाता रहता है।

मैं जभी तोलने—तोलने—अधिकार करने। उपचार—प्रयत्न, उपाय। तुल जाना—अधिकार में होना। झूले-सी झोंके खाना—आकर्षण के बधन में आना।

अर्थ—प्रयत्न तो मैं यह करती हूँ कि पुरुष पर अधिकार कर लूँ, पर होता यह है कि मै उसके हाथों बिक जाती हूँ—वशीभूत हो जाती हूँ।

अपनी भुजाएँ उसके गले में डालती तो इसलिए हूँ कि उसे इनमें फाँस लूँ, पर जैसे वृक्ष को बाँधने का प्रयत्न करने वाली लता अपने लघुभार के कारण स्वय झूले-सी लटक कर उसमें फँसी रह जाती है, वैसे ही मैं भी जिस

कर्म

कथा—मनु में दैवी सस्कार फिर उभर आये और हृदय में यज्ञ करने की प्रेरणा बार-बार होने लगी। सोमरस पान की लालसा उनके हृदय मे जगी। यज्ञ करने से इस इच्छा की पूर्ति भी हो सकती थी। इधर वे चाहते थे कि श्रद्धा का मन किसी प्रकार लगा रहे। अतः उनके हृदय मे साधना के लिए एक नवीन स्फूर्ति का जन्म हुआ।

मनु के समान प्रलय में किसी प्रकार दो असुर पुरोहित बच गये थे। उनके नाम थे आकुलि और किलात। श्रद्धा के हृष्ट-पुष्ट पशु को देखकर आकुलि की जिह्वा उसके मास खाने को तरसने लगी, पर श्रद्धा की सरक्षकता मे रहने के कारण पशु को प्राप्त करना कठिन था। इस लालसा का पता पा उसके मित्र ने कहा: चलो इस सम्बन्ध में कुछ प्रयत्न कर देखें।

इधर मनु सोच रहे थे: यज्ञ करने से मेरे मन के सपने तो पूरे हो जायँगे, पर यह निर्जन प्रदेश है, पुरोहित को कहाँ से लाऊँ? श्रद्धा मेरी प्रेमिका है, उसे यज्ञ मं आचार्य नहीं बनाया जा सकता। ठीक इसी समय असुर मित्रों ने बड़ी गम्भीर वाणी मे कहा: तुम यज्ञ चाहते हो न? इस कर्म से तुम सृष्टि के शासक के प्रतिनिधि जिन सूर्य-चन्द्र को तुष्ट करना चाहते हो, हम दोनों को तुम्हारे पास उन्हीं ने भेजा हे। मनु ने सोचा सयोग की बात है कि पुरोहित स्वय मिल गये। अब जीवन को एक नवीन गति मिलेगी, सूनापन जगमगा उठेगा और श्रद्धा भी प्रसन्नता का अनुभव करेगी।

अग्नि धधकी, आहुतियाँ पड़ने लगीं और यज्ञ समाप्त हो गया, पर श्रद्धा ने उसमें भाग तक न लिया। वेदी के चारों ओर अस्थि खण्ड और रुधिर के छींटे पड़े थे। मनु ने सोम-रस का पान किया। अपनी सगिनी के आचरण पर उन्हे बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। पर वह आती भी कैसे? उसी के प्रिय पशु की हत्या

अर्थ—क्योंकि हृदय की सत् और असत् भावनाएँ एक-दूसरे की स्वाभाविक विरोधिनी हैं, अतः इनमें संघर्ष चलता ही रहता है। इस युद्ध में दैवी भावनाओं (अच्छे विचारों) की अंत में जय होती है और आसुरी भावनाओं (बुरे विचारों) की पराजय।

आँसू से भीगे—स्मिति रेखा—मुस्कान। संधिपत्र—आत्मसमर्पण की प्रतिज्ञा।

अर्थ—जैसे पराजित जाति विजेता को अपना सब कुछ सौंपने को बाध्य होती है और भीतर से मन चाहे रोता हो, पर ऊपर से हँसते-हँसते संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं, उसी प्रकार अब जब पुरुष के सामने मन में विवश होकर तुम झुक गईं, तब इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि मन की सब इच्छाएँ उसे अर्पित करनी होंगी। ऐसा करने में चाहे तुम्हारा अंचल आँसुओं से भीगा रहे—चाहे तुम्हें कितना ही कष्ट हो—पर सर्वस्व-समर्पण की प्रतिज्ञा ओठों पर मुस्कान की रेखा लाकर करनी होगी।

कर्म

कथा—मनु में दैवी सस्कार फिर उभर आये और हृदय में यज्ञ करने की प्रेरणा बार-बार होने लगी। सोमरस पान की लालसा उनके हृदय में जगी। यज्ञ करने से इस इच्छा की पूर्ति भी हो सकती थी। इधर वे चाहते थे कि श्रद्धा का मन किसी प्रकार लगा रहे। अत: उनके हृदय मे साधना के लिए एक नवीन स्फूर्ति का जन्म हुआ।

मनु के समान प्रलय मे किसी प्रकार दो असुर पुरोहित बच गये थे। उनके नाम थे आकुलि और किलात। श्रद्धा के हृष्ट-पुष्ट पशु को देखकर आकुलि की जिह्वा उसके मास खाने को तरसने लगी, पर श्रद्धा की सरक्षकता मे रहने के कारण पशु को प्राप्त करना कठिन था। इस लालसा का पता पा उसके मित्र ने कहा : चलो इस सम्बन्ध मे कुछ प्रयत्न कर देखें।

इधर मनु सोच रहे थे यज्ञ करने से मेरे मन के सपने तो पूरे हो जायँगे, पर यह निर्जन प्रदेश है, पुरोहित को कहाँ से लाऊँ ? श्रद्धा मेरी प्रेमिका है, उसे यज्ञ में आचार्य नही बनाया जा सकता। ठीक इसी समय असुर मित्रो ने बड़ी गम्भीर वाणी में कहा ' तुम यज्ञ चाहते हो न ? इस कर्म से तुम सृष्टि के शासक के प्रतिनिधि जिन सूर्य-चन्द्र को तुष्ट करना चाहते हो, हम दोनों को तुम्हारे पास उन्हीं ने भेजा है। मनु ने सोचा : सयोग की बात है कि पुरोहित स्वय मिल गये। अब जीवन को एक नवीन गति मिलेगी, सूनापन जगमगा उठेगा और श्रद्धा भी प्रसन्नता का अनुभव करेगी।

अग्नि धधकी, आहुतियाँ पड़ने लगीं और यज्ञ समाप्त हो गया, पर श्रद्धा ने उसमे भाग तक न लिया। वेदी के चारों ओर अस्थि खण्ड और रुधिर के छींटे पड़े थे। मनु ने सोम-रस का पान किया। अपनी सगिनी के आचरण पर उन्हे बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। पर वह आती भी कैसे ? उसी के प्रिय पशु की हत्या

उस यज्ञ में हुई थी। उसकी कातर वाणी उसने अपने कानो सुनी थी, जिससे उसे गहरी मानसिक व्यथा हुई थी। बाहर चाँदनी खिल रही थी, पर वह शयन-गुहा में लेटे-लेटे इस बात पर पश्चाताप मना रही थी कि जिस व्यक्ति को मैं इतना प्रेम करती हूँ, वह इतना कुटिल क्यो निकला ? इसके उपरात विचारो के समुद्र मे वह और भी गहरे पैठ गई और सृष्टि, उसके पाप-पुण्य, जगत के दुःख, उसक छल, उसकी निष्ठुरता तथा उसके दुर्व्यवहार पर देर तक वह सोचती रही।

मनु सोम-रस के मद और आतरिक वासना से उत्तेजित हो गुहा मे खिच आये। श्रद्धा उस समय सो रही थी, पर चाँदनी मे उसका रूप और भी निखर उठा था। उसकी चिकनी खुली भुजाओं, उसके उन्नत भरे उरोजो मे अपनी ओर खींचने की असीम शक्ति थी। चारो ओर हल्का प्रकाश हल्के अधकार से मिला हुआ फैला था। उन्होने श्रद्धा की हथेली अपने हाथ मे ले ली और बोले: मानिनी आज तुम्हारा यह कैसा मान है ? सुन्दरी मेरे स्वर्ग-सुख को धूलि मे मिलाने का प्रयत्न न करो। यहाँ मुझे और तुम्हें छोड़कर कोई नहीं। सोम-रस में इन अरुण अधरों को डुबाओ और मस्ती का आनन्द लो।

श्रद्धा की नींद उचट गई थी। उसने अत्यन्त सरल भाव से उत्तर दिया : अभी-अभी मेरे प्रति आकर्षण प्रकट किया जा रहा है। पर हो सकता है कि कल ही यह भाव परिवर्तित हो जाय। तब फिर एक नवीन यज्ञ प्रारम्भ होगा और फिर किसी पशु की बलि दी जायगी। मैं जानना चाहती हूँ कि क्या स्वार्थ और हिंसा के आधार पर ही तुम्हारा मानव-धर्म चलेगा ? मनु बोले . श्रद्धा व्यक्तिगत सुख को तुम जितना हेय समझती हो, वह उतना है नहीं। चार दिन का जीवन है, यदि उसमें भी अपने अभावों की पूर्ति न हुई तो यह पल विफल ही रहे। श्रद्धा ने टोका : यदि मनुष्य अपने स्वार्थ का ही ध्यान रखेगा तो सृष्टि नष्ट हो जायगी। ये कलियाँ यदि सौरभ और मकरन्द का वितरण न करें तो गध-रस तुम कहाँ से पाओगे ? सुख का सग्रह स्वार्थ के लिए नही किया जाता, बरन् इसलिए किया जाता है कि दूसरों को हम सुखी बना सकें।

श्रद्धा तर्क तो सद्विचारों को लेकर कर रही थी, पर उसका हृदय भी प्यासा था। मनु ने उसकी इस दुर्बलता को पहचान लिया और यह कहते हुए कि आगे

से जैसा तुम कहोगी वैसा ही होगा, सोमपात्र उसके अधरो से लगा दिया। बड़े विनय के साथ उन्होंने फिर कहा : श्रद्धा इस लज्जा ने हमें एक-दूसरे से पृथक् कर रखा है। प्राण, इसे दूर कर दो। इसके उपरान्त उन्होंने श्रद्धा का चुम्बन किया जिससे शरीर का रक्त खौल उठा। वे दोनों और निकट आ गये। और तब .

पृष्ठ १०६

कर्म सूत्र सकेत—कर्म—यज्ञ कर्म। कर्म सूत्र—कर्म की डोर, कर्म व्या-पार। सोमलता—प्राचीन काल की एक लता जिसका रस मादक होता था और जिसे वैदिक ऋषि पान करते थे। शिंजिनी—धनुष की डोरी। धनु—धनुष।

अर्थ—मनु के हृदय में सोमरस पान की लालसा जगी और इस मादक रस का पान क्योंकि यज्ञ की समाप्ति पर ही सम्भव था, अत. मनु के लिए सोम लता यज्ञ-कर्म की ओर प्रवृत्त करने वाली हुई। जैसे धनुष की डोरी धनुष के कोनों पर चढ़कर उसे खींच देती है, वैसे ही मनु के जीवन को कर्म की डोर ने कस दिया अर्थात् जैसे खिंचे हुए धनुष से उसी प्रकार उनके जीवन से शिथि-लता दूर हो गई।

हुए अग्रसर उसी—अग्रसर—आगे बढ़ना। उसी—यज्ञ कर्म की ओर। छुटे—धनुष से छूटे हुए। कटु—तीव्र। थिर—स्थिर, शात।

अर्थ—छूटे हुए तीर के समान कर्म-पथ पर मनु बढ़ते ही चले गये। उनके हृदय से 'करो यज्ञ' की एक तीव्र पुकार उठी, अतः शात भाव से बैठे रहना उन्हें कठिन हो गया।

वि०—इन दोनो छन्दों में मिलाकर एक समूचे दृश्य की कल्पना की गई है। यहाँ जीवन धनुष के लिए तथा कर्मसूत्र उसकी डोर के लिए प्रयुक्त है। मनु तीर के स्थानापन्न हैं। जैसे धनुष से छूटा बाण एक दिशा की ओर सरसराता चला जाता है, उसी प्रकार मनु कर्म के पथ पर दौड़े चले जा रहे हैं। स्मरण रखना चाहिये कि कर्म से तात्पर्य यहाँ वेद विहित यज्ञ कर्म मात्र से है।

भरा कान मे कथन—कथन—बात। अभिलाषा—कामना। अतिरजित—तीव्र, रगीन।

अर्थ—कामदेव की यह बात कि इस पृथ्वी पर प्रेम का सन्देश सुनाने के लिए एक शातिदायिनी निर्मल ज्योति आई है और यदि तुम उसे प्राप्त करना चाहते हो तो उसके योग्य बनो अभी तक मनु के कानों मे गूँज रही थी। इसी समय एक नवीन कामना ने उनके मन मे जन्म लिया। उस शक्ति को प्राप्त करने की आशा तीव्रता से हृदय में उमड़ने लगी और वे उस सम्बन्ध मे सोच-विचार करने लगे।

ललक रही थी—ललकना—तीव्र होना। ललित—मधुर, सुन्दर लालसा—आकाङ्क्षा। दीन विभव—दीनता और वैभवहीनता।

अर्थ—मनु के हृदय मे यह मधुर आकाङ्क्षा तीव्र हो उठी कि मै सोमरस पान की अपनी प्यास बुझाऊँ। उनका जीवन वैभवहीन, दीन और उदास था।

जीवन की अविराम—अविराम—निरन्तर। तरणी—नौका। गहरे—गहरे जल मे।

अर्थ—मनु ने निश्चय किया कि अब वे निरन्तर साधना मे लीन रहेंगे। इसी से उनके जीवन में एक उत्साह छा गया। जैसे पवन के उलटने पर नौका कहीं की कहीं गहरे जल मे पहुँच जाती है, उसी प्रकार साधना के उत्साह के नवीन झोंके ने उन्हें जीवन की गम्भीरता की ओर ला पटका।

पृष्ठ ११०

श्रद्धा के उत्साह वचन—उत्साह—अनुराग। प्रेरणा—किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये किसी को उकसाना। भ्रात—उल्टा। तिल का ताड़—छोटी बात को बढ़ाकर कुछ का कुछ समझना।

अर्थ—इधर श्रद्धा ने मनु के प्रति अपने हृदय का उत्साह प्रदर्शित किया था ही और उधर कामदेव ने एक प्रेममयी ज्योति को प्राप्त करने की प्रेरणा दी थी। इन दोनो बातो के सयोग से मनु ने काम के सदेश का अर्थ उल्टा ही लगाया—काम की वाणी का सकेत तो यह था कि श्रद्धा के हृदय का मूल्य पहचानो और उसके सम्पर्क में अपनी लौकिक और आध्यात्मिक उन्नति करो, पर मनु ने यह अर्थ लगाया कि श्रद्धा के शरीर की प्राप्ति ही सब कुछ है। वह छोटी-सी बात को बढ़ाकर कुछ का कुछ समझ बैठे।

बन जाता सिद्धान्त—सिद्धान्त—धारणा, मत, निर्णय। पुष्टि—समर्थन उसी ऋण को—वैसी ही बातों को। सब से—यहाँ-वहाँ से। सदैव—रात-दिन। भरना—इकट्ठा करना।

अर्थ—होना यह चाहिये कि किसी सम्बन्ध मे बहुत से प्रमाण मिलने पर ही हम कोई सिद्धान्त बनावे, पर होता यह है कि मन पहले कोई सिद्धान्त बना लेती है और तब उसका समर्थन होता रहता है। जब वह धारणा हृदय में घर कर लेती है तब बुद्धि रात-दिन यहाँ-वहाँ से अनुकूल बातें इकट्ठा करती रहती है।

मन जब निश्चित—निश्चित—दृढ। मत—धारणा। दैव बल—भाग्य, अदृष्ट। प्रमाण—सत्य सिद्ध होना। सपना—घटनाएँ।

अर्थ—जिस समय मन कोई निश्चित धारणा बना लेता है, उस समय बुद्धि और भाग्य का सहारा पाकर वह उसी को सत्य सिद्ध करने वाली घटनाएँ निरन्तर देखता है।

वि०—यह सामान्य अनुभव की बात है कि यदि किसी प्राणी के मन मे यह बात बैठ जाय कि ससार में छल ही छल है, तब वह जहाँ सदेह का कारण नहीं भी होता वहाँ भी अकारण सदेह करता है।

पवन वही हिलकोर—हिलकोर—झोका। तरलता—चचलता, लहरो। अतरतम—हृदय। नभ तल—आकाश।

अर्थ—तब पवन के झोको, जल की चचल लहरों तथा आकाश मे केवल अपने अतर की धारणा की प्रतिध्वनि ही उसे सुनाई देती है—भाव यह कि वायु की हिलोरें, जल की तरङ्गें और गगन की गूंज अपनी-अपनी भाषा मे मानो उसी के मत की घोषणा करती फिरती है।

सदा समर्थन करती—समर्थन—पुष्टि। तर्क शास्त्र—वे ग्रथ जिनमें वस्तुओ की विवेचना और सिद्धान्तो का खण्डन-मण्डन करना सिखलाया जाता है, युक्ति-शास्त्र, न्याय-शास्त्र (Logic)। पीढी—परम्परा, एक के उपरान्त दूसरा। उन्नति—विकास। सीढी—ऊपर चढने के सोपान या साधन।

अर्थ—तर्क शास्त्रों को उठाता है तो उनमें यही पाता है कि एक के उपरान्त दूसरा उसी की बात की पुष्टि कर रहा है। तब उसे यह निश्चय हो जाता है कि जो वह सोच रहा है वही एकमात्र सत्य है और विकास तथा सुख उसी सत्य का सहारा लेने से प्राप्त हो सकते है।

पृष्ठ १११

और सत्य यह—गहन—गूढ़, कठिन, दुरूह। मेधा—बुद्धि। क्रीड़ा—खेल, कौशल। पञ्जर—पिंजड़ा।

अर्थ—और सत्य? यह एक शब्द आज समझ के लिए कितना गूढ़ (कठिन) हो गया है! पर सच पूछते हो तो यह बुद्धि की क्रीड़ा के पिजड़े में बंद पालतू तोते के समान है। भाव यह कि जैसे पालतू तोते की सीमा पिजड़ा, उसी प्रकार सत्य की सीमा प्राणी की बुद्धि। अपनी बुद्धि से वह जो सिद्ध करदे वही सत्य।

सब बातों मे खोज—बातों—क्षेत्रों। स्पर्श—छूना। छुई-मुई—लजालू नाम का पौधा जो उँगली से छूते ही सकुचित हो जाता है।

अर्थ—सभी क्षेत्रों में तुम्हारी खोज की रट लगी हुई हे अर्थात् दार्शनिक, वैज्ञानिक, साहित्यकार, समाज-सुधारक सभी सत्य को पाने के लिए उतावले हो रहे हैं। किन्तु जैसे हाथ से छूते ही छुईमुई का पौधा कुम्हला जाता है, उसी प्रकार जिसे सत्य कह कर घोषित किया जाता है, उसके सम्बन्ध मे तर्क करो कि वह ठहर ही नही पाता।

असुर पुरोहित—पुरोहित—धर्म गुरु। विप्लव—जल प्लावन। सहना—झेलना।

अर्थ—मनु के समान ही दो असुर पुरोहित जल-प्लावन से किसी प्रकार मरते-मरते बच गये थे और इधर-उधर भटकते फिरते थे। उनके नाम आकुलि और किलात थे। इस बीच उन्होंने अनेक कष्टों को झेला था।

नोट—'जिनने' शब्द का प्रयोग खड़ी बोली के अनुसार अशुद्ध है। 'जिन्होंने' होना चाहिए। छद के अनुरोध से कवि-स्वातन्त्र्य की दृष्टि से ही इसे क्षम्य कहा जा सकता है।

देख-देखकर—व्याकुल—तरसना । आमिष लोलुप—मास-प्रिय । रसना —जिह्वा । कुछ कहना—खाने की लालसा प्रकट करना ।

अर्थ—मनु के पशु को जब वे बार-बार देखते तो उनकी मास-प्रिय जिह्वा चचल हो उठती और तरसने लगती और तब पशु को खाने की लालसा उनकी आँखो में झलकती ।

क्यो किलात—तृण—पत्ते जड़े आदि । लहू का घूँट पीना—क्षोभ से मन मारे बैठे रहना ।

अर्थ—आकुलि बोला . क्यो किलात पत्ते जड आदि चबाकर मे कब तक जीवित रहूँ और कब तक पशु को जीता देख कर खून के घूँट पीता रहूँ—क्षोभ से मन मारे बैठा रहूँ ?

पृष्ठ ११२

क्या कोई इसका—उपाय—ढग । सुख की बीन बजाना—बिना किसी बाधा के सब का उपभोग करना ।

अर्थ—क्या कोई भी ऐसा ढग नही निकल सकता जिससे इस पशु को मैं खा सकूँ ? यदि मास खाने को मिल जाता तो बहुत दिनो के उपरात एक बार तो चैन की वशी बजा लेता —इच्छा की तृप्ति हो जाती ।

आकुलि ने तब कहा—मृदुलता—कोमल स्वभाव की । ममता—अपनत्व की भावना से पूर्ण । छाया—रक्षा करने वाली ।

अर्थ—आकुलि ने उत्तर दिया . क्या तुम्हे इतना नही सूझता कि उस पशु के साथ उसकी रक्षा करने वाली कोमल स्वभाव की एक ममतामयी रमणी (श्रद्धा) हँसती हुई बराबर रहती है ?

नोट —यह उत्तर किलात की ओर से होना चाहिए ।

अधकार को दूर—आलोक—प्रकाश । माया—छल । बिंधना—वेधना. छेदा जाना, नष्ट होना ।

अर्थ—जैसे प्रकाश की किरण अधकार को मिटाती और हल्की बदली को वेध देती है, उसी प्रकार मेरा छल उसके सामने नष्ट हो जाता है, चलता नहीं है ।

तो भी चलो आज—स्वस्थ—शांत। सहज—स्वाभाविक रूप से।

अर्थ—तब भी चलो। आज इस पशु की हत्या के लिए जब तक मैं कुछ करके न दिखाऊँगा, तब तक हृदय को शांति न मिलेगी। इस सम्बन्ध में सभी प्रकार के सुख-दुःखों को मैं स्वाभाविक रूप से अंगीकार करूँगा।

यों ही दोनों—विचार—निश्चय। कुंज—लता गृह। सोचना—तर्क-वितर्क करना। मन से—तल्लीनता से, सच्ची भावना से।

अर्थ—आकुलि और किलात इस प्रकार का निश्चय कर उस लतागृह के द्वार पर आये जिसके भीतर बैठे मनु तल्लीनता से तर्क-वितर्क कर रहे थे।

पृष्ठ ११३

कर्म यज्ञ से जीवन—कर्म यज्ञ—यज्ञ क्रिया। सपनों का स्वर्ग—मधुर कामनाएँ। विपिन—वन, सूना स्थान। मानस—सरोवर, मन। कुसुम—फूल।

अर्थ—यज्ञ क्रिया से मेरे जीवन की मधुर कामनाएँ फलवती होंगी। जैसे बन में स्थित सरोवर में फूल खिलते हैं, वैसे ही इस सूने स्थान में मन की आशा भी खिलेगी।

वि०—देवताओं में 'अहं' भावना की यद्यपि प्रधानता थी, पर यज्ञ-कर्म और उसके सुफल में वे विश्वास करते थे।

किन्तु बनेगा कौन—पुरोहित—आचार्य। प्रश्न—समस्या। विधान—पद्धति, विधि, प्रणाली।

अर्थ—पर एक नवीन समस्या अब यह उठ खड़ी हुई कि इस यज्ञ में आचार्य का काम कौन करेगा? किस पद्धति का अनुसरण होगा? किस ढंग से अन्त तक इसका निर्वाह होगा?

वि०—कर्मकांड की प्रथा और प्रणाली को उस प्रकार के कर्म कराने वाले पंडित ही जानते हैं।

श्रद्धा पुण्यप्राप्य—पुण्य प्राप्य—किसी पुण्य कर्म के फल स्वरूप प्राप्य। अनंत अभिलाषा—सभी इच्छाएँ जिसमें केन्द्रीभूत हैं। निर्जन—जन हीन।

अर्थ—श्रद्धा को अपने किसी पुण्य फल के बल पर ही मैंने प्राप्त

किया है। वह मेरी अगणित अभिलाषाओं की सजीव प्रतिमा है। अतः उसे तो आचार्य के आसन पर मैं बिठा नहीं सकता। और यह भूमि प्राणी-हीन है। ऐसी दशा मे क्या आशा लेकर मैं किसी अन्य को खोजने निकलूँ।

पृष्ठ ११४

कहा असुर मित्रों ने—असुर मित्र—आकुलि और किलात। गम्भीर बनाये—गम्भीरता का भाव धारण करते हुए। जिनके लिए—जिनकी प्रसन्नता के लिए।

अर्थ—इसी समय मुख पर गम्भीरता का भाव लाते हुए आकुलि और किलात ने कहा : तुम जिन्हें प्रसन्न करने के लिए यज्ञ करना चाहते हो, हमें उन्हीं ने भेजा है।

यजन करोगे क्या—यजन—यज्ञ। आशा—प्रतीक्षा।

अर्थ—क्या तुम यज्ञ करोगे ? जब हम उपस्थित हैं तब अब और किसे खोजते हो ? आचार्य की प्रतीक्षा में तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ है यह हमें विदित है।

इस जगती के—प्रतिनिधि—लोक मे भगवान के स्थानापन्न। निशीथ—रात। सवेरा—प्रभात, यहाँ दिन से तात्पर्य है। मित्र—सूर्य। वरुण—चन्द्रमा।

अर्थ—इस लोक में सूर्य और चन्द्रमा भगवान के प्रतिनिधि हैं। सूर्य के कारण दिन होता है। प्रकाश इसी सूर्य का प्रतिबिंब है। चन्द्रमा के कारण रात होती है और अंधकार इसी चन्द्रमा की छाया है।

वे ही पथ दर्शक—विधि—पद्धति, विधान, यज्ञ की क्रिया। वेदी—यज्ञ कर्म के लिए तैयार की हुई मिट्टी या नदी की बालू की वह भूमि जिस पर अग्नि प्रज्वलित की जाती है। ज्वाला—अग्नि। फेरी—चक्कर।

अर्थ—वे ही सूर्य-चन्द्र हमारे पथ-प्रदर्शक बनें। मुझे आशा है कि जिस विधि (पद्धति) से हम यज्ञ करावेंगे, वह सफल होगी। उठो, आज फिर एक बार यज्ञ-स्थल में अग्नि की लपटें उठें।

पृष्ठ ११५

परंपरागत कर्मों की—परंपरागत—पुरखाओं से होकर वंशजों तक आने वाली कोई बात। कर्मों—यज्ञों। लड़ियाँ—लड़ी, तार, शृंखला। जीवन साधन—जीवन व्यतीत होना।

अर्थ—मनु सोचने लगे हमारे पुरखाओं, उनके वंशजों और फिर इसी प्रकार उनकी संतानों द्वारा होने वाले यज्ञों की एक सुन्दर लड़ी-सी बन गई है। इन यज्ञों को दृष्टि में रखते हुए अनेक सुख के पलों से युक्त देवताओं का जीवन व्यतीत हुआ।

जिनमें है प्रेरणामयी—प्रेरणा—स्फूर्ति (Inspiration)। संचित—एकत्र। कृतियाँ—मर्म। पुलकभरी—रोमांचित करने वाली। मादक—मस्तीभरी, नशीली।

अर्थ—इन्हीं यज्ञों से अनेक कर्मों की प्रेरणा देवताओं ने पाई। उन बातों की नशीली स्मृति जगते ही आज भी शरीर रोमांचित हो उठता है और एक प्रकार का सुख-सा मिलता है।

साधारण से कुछ—साधारण—विशेषता-विहीन। अतिरंजित—चमत्कार-पूर्ण। गति—जीवन की मन्द गति में, कठिनाई से कटने वाले जीवन में। त्वरा—तीव्रता।

अर्थ—यज्ञ करने से जीवन की मन्थर गति में एक तीव्रता और उत्पन्न होगी। इस प्रकार विशेषताविहीन पलों में चमत्कार भर जायगा। एक उत्सव होगा और इस निर्जन प्रदेश मे जो चारों ओर उदासी छाई है वह दूर हो जायगी।

एक विशेष प्रकार—विशेष प्रकार—विलक्षण। कुतूहल—आश्चर्य। नाच उठा—थिरक उठा। नूतनता—नवीन घटनाओं का। लोभी—प्रेमी।

अर्थ—श्रद्धा के लिए तो यज्ञ एक विलक्षण आश्चर्य की वस्तु होगा। यह सोचकर मनु का मन जो जीवन में नित्य नवीन घटनाओं का प्रेमी था, प्रसन्नता से थिरक उठा।

पृष्ठ ११६

यज्ञ समाप्त हो चुका—समाप्त—पूर्ण। दारुण—भयकर। रुधिर—
ह, खून। अस्थि—हड्डी। माला—समूह, ढेर।

अर्थ—यज्ञ तो पूर्ण हो गया, पर वेदी की अग्नि अब भी धक्-धक् शब्द
रती जल रही थी। यज्ञ-भूमि का दृश्य बड़ा भयकर था। कहीं रक्त के छींटे
ड़े थे, कहीं हड्डियों के टुकड़ों का ढेर।

वेदी की निर्मम प्रसन्नता—वेदी—वेदी के आसपास अधिष्ठित व्यक्तियों।
िर्मम—बलि कर्म से उत्पन्न। कातर—दीन, कराह से भरी। कुत्सित—
घेनौना।

अर्थ—वेदी के आसापास बैठे मनु और असुर पुरोहित बलि का निर्दय
र्म करके प्रसन्न थे। जिस पशु का गला काटा गया था वह थोड़ी देर दीन
ाणी में कराहा था। सब मिलकर वहाँ के वातावरण से हृदय मे वैसी ही
ीभत्स-भावना भर जाती थी जैसे किसी घिनौने व्यक्ति को देखकर जी घबरा
ठता है।

सोमपात्र भी भरा—पुरोडाश—पिसे चावलों का बना यज्ञ का प्रसाद।
स—दबे हुए। भाव—अह और अधिकार की भावना।

अर्थ—पानपात्र में सोमरस भरा था और यज्ञ का प्रसाद भी मनु के आगे
ा था। परन्तु श्रद्धा वहाँ उपस्थित न थी। यह देखकर मनु के हृदय में
हकार और अधिकार के वे भाव जो दबे पड़े थे फिर उभर आये।

वि०—पुरोडाश—प्राचीन काल मे चावलों को पीस कर एक टिकिया
नाई जाती थी जिसकी आहुतियाँ यज्ञ में दी जाती थीं। जो अश बच रहता
। उसे प्रसाद-स्वरूप उपस्थित प्राणियो मे थोड़ा-थोड़ा बाँट देते थे। पुरोडाश
सम्बन्ध मे कहीं-कहीं ऐसा भी उल्लेख है कि जौ के आटे को पीस कर टिकिया
यार की जाती थी और उसे कपाल में पकाते थे।

जिसका था उल्लास—जिसका—श्रद्धा का। उल्लास—प्रसन्नता। अलग
। बैठना—भाग न लेना। दृप्त वासना—अह भावना। लगी गरजने—तीव्रता
ढ़ गई। ऐंठना—अप्रसन्न होना।

अर्थ—इस यज्ञ से जिसे मैं प्रसन्न देखना चाहता था उसने तो इसमें भाग लिया नहीं। फिर इस सारे बखेड़े से लाभ क्या? ऐसा सोचते ही मनु अप्रसन्न हो उठे और उनकी अह-भावना तीव्रता पकड़ गई।

पृष्ठ ११७

जिसमे जीवन का—सञ्चित—केन्द्रीभूत, समस्त। मूर्त्त—साकार होना, प्रतिमा।

अर्थ—जो श्रद्धा मेरे जीवन के सारे सुखों की सुन्दर प्रतिमा है, उसी के ऐसे रूखे व्यवहार पर मैं जी भर कर कैसे कहूँ कि वह मेरी है।

वही प्रसन्न नहीं—वही—श्रद्धा। रहस्य—भेद। सुनिहित—गहराई में छिपा। बाधक—विघ्न स्वरूप।

, अर्थ—जिसे मैं इस यज्ञ से प्रसन्न करना चाहता था वही अप्रसन्न है। तब अवश्य इसमें कोई गहरा भेद छिपा है। जिस पशु ने अपने जीते जी श्रद्धा के समस्त प्रेम को मुझे न भोगने दिया, क्या वह आज मर कर भी मेरे सुख में विघ्न डालेगा।

श्रद्धा रूठ गई—अर्थ—श्रद्धा रूठ गई। क्या उसे मनाना पड़ेगा? या वह स्वय मान जायगी? इन दोनों बातों में से मैं किसे पकड़े रहूँ? उसे मनाने जाऊँ अथवा जब तक वह स्वय अपनी अप्रसन्नता का परित्याग न करदे तब तक उसकी प्रतीक्षा करता रहूँ।

पुरोडाश के साथ—प्राण के रिक्त अश—हृदय की अभाव भावना।

अर्थ—मनु यज्ञ के प्रसाद के साथ सोम रस पीने लगे। इस प्रकार वे श्रद्धा की अप्रसन्नता से उत्पन्न हृदय के अभाव को नशे से पूरा करने लगे।

सध्या की धूसर—धूसर—धुँधली, मलिन। छाया—अधकार। शैल शृग—पर्वत की चोटी। रेख—कोना। शशिलेखा—चद्रमा की कला।

अर्थ—सध्या के मलिन अधकार में पर्वत की चोटी की नोक कांति हीन चद्रमा की कला को अपने ऊपर धारण किये दूर आकाश में स्थित (उठी हुई) थी।

पृष्ठ ११८

द्धा अपनी शयन—शयन गुहा—विश्राम करने की गुफा। बोझ
सहनीय।

र्थ—श्रद्धा अपनी विश्राम-गुहा में दुःखी होकर लौट आयी। यज्ञस्थल
बलि-पशु की कातर ध्वनि सुनी थी, इससे उसे यज्ञ और मनु के प्रति
री विरक्ति उत्पन्न हुई। उस विरक्ति का असहनीय भार-सा ढोती हुई
ही मन रो उठी।

थी काष्ठ सधि—काष्ठ सधि—लकड़ियों के बीच मे। शिखा—लौ।
-हल्का प्रकाश। तामस—अधकार। छलती—कम करती।

र्थ—सूखी लकड़ियों के बीच में आग की एक पतली लौ उठ खड़ी हुई
अपने हल्के प्रकाश से उस धुँधली गुहा से अधकार को कम कर
।

तु कभी बुझ जाती—शीत—ठडे। कौन रोके—जलने-बुझने मे
थी।

र्थ—किंतु कभी शीत पवन का झोंका आता तो वह बुझ जाती थी और
वा के चलने से फिर जल भी उठती थी। इस प्रकार जलने-बुझने में वह
तत्र थी।

ामायनी पडी थी—कामायनी—श्रद्धा का दूसरा नाम। चर्म—पशु का
। विश्राम करना—लेटकर थकावट दूर करना।

र्थ—श्रद्धा किसी पशु का कोमल चर्म बिछा कर लेटी हुई थी। ऐसा
था मानो आज श्रम ही हल्के आलस्य मे आ लेटकर थकावट दूर कर
।

ीरे-धीरे जगत्—जगत्—प्रकृति। ऋजु—सरल। विधु—चद्रमा।

र्थ—प्रकृति धीरे-धीरे सरल गति से अपने विकास-पथ पर अग्रसर थी।
क करके तारे खिलने लगे और चन्द्रमा के रथ में हिरण जुत गये।

वे०—प्रकृति का नित्य का काम निश्चित-सा है। ठीक समय पर सूर्य,

नक्षत्र, चन्द्रमा उगते हैं। ठीक समय पर ऋतुओं का आगमन होता है। यह सब देखकर यही कहा जा सकता है कि उसका पथ ऋजु है।

पृष्ठ ११६

अंचल लटकाती—निशीथिनी—रात, रजनी। ज्योत्स्नाशाली—चाँदनी का। छाया—आश्रय। सृष्टि—ससार। वेदनावाली—पीड़ित, व्यथित, दुःखी।

अर्थ—रजनी ने चाँदनी के उस लम्बे अचल को लटका दिया जिसके आश्रय में दु·खी जगत् को सुख मिलता है।

उच्च शैल शिखरों—उच्च—ऊँची। शैल-शिखर—पर्वत की चोटियों।

अर्थ—पर्वत की ऊँची चोटियों पर चचल प्रकृति-किशोरी हँस रही थी। उसका उज्ज्वल हास्य ही तो बिखर कर मधुर चाँदनी के रूप में फैल गया था।

वि०—चाँदनी को सर्वत्र छिटकते देख कवि कल्पना करता है कि प्रकृति-बाला अदृश्य रूप से आकाश में कहीं बैठी मुस्करा रही है। कैसी रम्य कल्पना है!

जीवन की उद्दाम—जीवन—यौवन काल की। उद्दाम—दुर्दमनीय। लालसा—वासना। उलझी—लिपटी। तीव्र—विकट, उत्कट। उन्माद—आवेश।

अर्थ—श्रद्धा के हृदय में यौवन काल की दुर्दमनीय वासना उमड़ रही थी, जो लज्जा के कारण खुल न पाती थी। इस समय वह उत्कट आवेशमयी हो रही थी और उसके मन को ऐसी पीड़ा पहुँच रही थी जिस से उसे लगता था जैसे उसके हृदय को कोई मथे डालता है।

मधुर विरक्ति भरी—विरक्ति—उदासीनता, अनुराग का अभाव। आकुलता—पीड़ा। अतर्दाह—अतर्जलन, आग, आतरिक व्यथा।

अर्थ—उसके हृदयाकाश में ऐसी पीड़ा छाई जिसमें एक प्रकार की मधुर उदासीनता की भावना मिश्रित थी। इतना होने पर भी उसके मन में मनु के लिए प्रेम की अतर्जलन (आग) भी शेष थी।

वि०—'मेघ' शब्द का प्रयोग न होने से इस छद का सौन्दर्य प्रच्छन्न ही रह गया है, पर चित्र एकदम स्पष्ट है। आकुलता का मन में घिरना, बादल

का आकाश मे घिरना समझिये, नहीं तो हृदय-गगन की कोई सार्थकता नहीं। बादलो में जल की शीतलता और विद्युत् की जलन होती है। तीसरी पंक्ति में प्रेम की अन्तर्जलन और स्नेह का जल दोनो विद्यमान हैं।

वे असहाय नयन—असहाय—विवश, जो कुछ कर न सकें। भीषणता में—भीषण दृश्य की कल्पना करके। पात्र—अधिकारी। कुटिल—दुष्ट, यहाँ दुष्टता। कटुता—खिन्नता।

अर्थ—एक प्रकार की विवशता की भावना लिये हुए श्रद्धा कभी अपनी आँखें खोल देती और पशु की हत्या के भीषण दृश्य की जैसे ही मन में कल्पना उठती तो फिर उन्हें बन्द कर लेती थी। मनु जो उसके स्नेह का अधिकारी था, स्पष्ट ही आज ऐसी दुष्टता कर बैठा जिससे श्रद्धा के हृदय में उसके प्रति खिन्नता उत्पन्न हो गई।

वि०—स्मरण रखना चाहिये यह वही पशु था जिसे श्रद्धा बहुत प्यार करती थी।

× × × ×

पृष्ठ १२०

कितना दुःख जिसे—चाहूँ—प्रेम करूँ। कुछ और—धारणाओं के प्रतिकूल। मानस—मन में। चित्र—कल्पना। सपना—झूठ।

अर्थ—कितने दुःख की बात है कि जिसे मैं प्रेम करती हूँ वह मेरी धारणाओं के प्रतिकूल सिद्ध हुआ। इस व्यक्ति के सम्बन्ध मे मैंने अपने मन में जो सुन्दर कल्पना की थी वह झूठ निकली।

आग उठी है—जगना—लगना। दारुण—भयकर। अनन्त—अक्षय, स्थायी। मधुवन—वसन्त ऋतु का हरा-भरा कानन यहाँ सुख से तात्पर्य है। नीरव—शात, सूने। निर्जन—जनहीन।

अर्थ—मैं अपने जीवन के सुख को अक्षय वसन्त-वन के समान समझती थी। इस व्यक्ति के कुटिल व्यवहार से उसमे आज आग प्रज्ज्वलित हो गई है। जैसे सूने जनहीन प्रदेश मे चिल्लाने से भी कोई आग बुझाने नहीं आ सकता,

उसी प्रकार यहाँ कोई भी तो ऐसा नहीं जो यह उपाय सुझावे कि मेरा मन जो उसकी ओर से क्षुब्ध हो उठा है अब कैसे शात होगा ?

यह अनन्त अवकाश—अनन्त—सीमाहीन। अवकाश—पृथ्वी और आकाश के बीच का सूना स्थान, अतरिक्ष, यहाँ ससार से तात्पर्य है। नीड—घोंसला। व्यथित बसेरा—किसी के रहने का वह स्थान जिसमें शान्ति न हो। अलस—आलस्य, थकावट। सवेरा—लालिमा।

अर्थ—जो वेदना इस सीमाहीन अतरिक्ष (सृष्टि) के घोंसलों मे सभी कहीं समाकर उसकी शान्ति नष्ट कर रही है वही आज मेरी पलकों मे थकावट और लाली भर कर सजग (तीव्र) हो उठी है। भाव यह कि बडी गहरी व्यथा का अनुभव आज मैं कर रही हूँ और मेरी आँखे जगते-जगते लाल हो उठी हैं, साथ ही दुख रही हैं।

काँप रहे हैं—काँपना—थर्राना, किसी आतक से सिहर उठना। चरण—हिलोरें। विस्तृत—चारों ओर, विराट्। नीरवता—सन्नाटा। घुलना—छाना।

अर्थ—पवन की हिलोरें थर्रा उठी हैं। चारों ओर सन्नाटा है। सभी दिशाओं से एक प्रकार का म्लान उदास वातावरण घिर कर आकाश को छा रहा है।

पृष्ठ १२१

अंतरतम की प्यास—अतरतम—मन। विकलता—छटपटाहट। अव-लम्बन—सहारा। चढ़ना—तीव्र होना।

अर्थ—मन प्यार पाने को प्यासा है। उसके न मिलने से उसमें छटपटाहट समा गई है। अतः यह पिपासा और बढ़ गई है। ऐसा लगता है जैसे मैं तो युग-युग से प्रेम में असफल होती आई हूँ और इस विचार का सहारा पाकर वह प्यास और भी तीव्र हो उठी है।

विश्व विपुल आतक—विपुल—अत्यधिक। आतकत्रस्त—भय से काँपना। ताप—पीड़ा। विषम—भयकर। घनी नीलिमा—नभ का नीलापन। अतर्दाह—अतर्जलन। परम—भारी।

अर्थ—ससार में जिस भयकर पीड़ा का अनुभव करना पड़ रहा है, उससे

यह अत्यधिक भयभीत हो उठा है, कॉप उठा है। यह नीला आकाश नहीं है, जगत की भारी अन्तर्जलन का धुँआ फैल कर घनीभूत हो गया है।

वि०—'घनी नीलिमा' का अर्थ जीवन के पक्ष में घोर निराशा का भी है। भाव यह कि आतरिक जलन से निराशा का घना अधकार भी आँखों के आगे फैल रहा है।

उद्वेलित है उदधि—उद्वेलित—अशान्त। लोटना—करवट बदलना। चक्रवाल—कभी-कभी चन्द्रमा के चारो ओर धुँधले प्रकाश का एक घेरा छा जाता हे जिसे चक्रवाल या परिवेश कहते हैं, गाँवो में इसी को 'पारस' बैठना कहते हैं।

अर्थ—समुद्र अशात है और लहरे व्याकुलता से करवट बदल रही हैं। ऊपर देखती हू तो आकाश मे चन्द्रमा के चारो ओर जो प्रकाश का धुँधला गोलक है वह अपनी ही आग से जैसे झुलसा जा रहा है।

सघन धूम कुडल—सघन—घना। धूम-कुडल—धुँए का चक्र। तिमिर—अधकार। फणी—सर्प।

अर्थ—नीले आकाश मे तारात्रों का समूह ऐसा लगता है जैसे धुँए के घने चक्र मे अग्नि-कण उड रहे हो या फिर अधकार के सर्प ने अपनी मणियों की माला धारण की हो।

वि०—यहाँ आकाश की समता (१) धूम्रकुडली तथा (२) अधकार के सर्प से की गई है, साथ ही तारात्रों के लिए भी दो उपमान लाये है (१) अग्नि-कण (२) मणियाँ। सर्प से तात्पर्य यहाँ शेष-नाग का लेना चाहिये क्योंकि इतनी अधिक मणियाँ केवल उन्हीं के सहस्र शीशों मे सभव है।

जगतीतल का—क्रदन—रोना। विषमयी—दुःखदायी। विषमता—असमानता, कभी कुछ, कभी कुछ। अन्तरग—छिपा हुआ। दारुण—भयकर। निर्ममता—निर्दयता।

अर्थ—इस दुःखमयी असमानता के कारण कि सुख सदैव नहीं मिलता और किसी भी व्यक्ति का व्यवहार सदा एक-सा नहीं रहता, ससार मे मन कहीं

रोना ही रोना है। मनुष्य ऊपर से भला प्रतीत होता है, पर भीतर उसके छल भरा है, अत. जिस दिन उसकी अतिशय भयकर निर्दयता से परिचय होता है, उस दिन वह व्यवहार कलेजे मे चुभ जाता है।

पृष्ठ १२२

जीवन के वे निष्ठुर—निष्ठुरदशन—निर्दय व्यवहारो की चोट। आतुर—घबरा देने वाली। कलुष चक्र—पाप कर्म। आँखों की क्रीडा—आँखो के सामने निरन्तर बने रहने की क्रिया।

अर्थ—जीवन मे उन निर्दय व्यवहारो की चोट से जो घबरा देने वाली पीड़ा मिलती है, वह आँखो के सामने पाप-कर्म के समान निरन्तर घूमती रहती है।

वि०—सुनते हैं पापी की आँखो के सामने उनका पाप-कर्म निरन्तर चक्कर काटता रहता है और इसी से उसे सोते-जागते कभी चैन नहीं मिलता। निष्ठुर व्यवहार की चोट भी ऐसी ही बेचैन करने वाली होती है।

स्खलन चेतना के—स्खलन—असावधानी। चेतना—बुद्धि। कौशल—चतुर बुद्धि। बिंदु—छोटी-सी घटना। विपाद—शोक। नद—नदी।

अर्थ—चतुरा बुद्धि से जब किसी प्रकार की असावधानी हो जाती है तब उसी का नाम भूल पड जाता है। और भूल की किसी भी छोटी-सी घटना से शोक की सरिताएँ उमडने लगती हैं।

आह वही अपराध—अपराध—दोष। माया—चिह्न। वर्जित—वंचित रहना। मादकता—सुख से। सचित—एकत्र। तम—निराशा।

अर्थ—ससार मे भूल दुर्बलता का चिह्न है। उसकी गणना अपराधों मे होती है। भूल करते ही ससार के सुख से हम वचित रहते हैं और जीवन मे निराशा की छाया एकत्र हो जाती है।

नील गरल से भरा—गरल—विष, हलाहल। कपाल—खप्पर। निमीलित—टिमटिमाती।

अर्थ—हे प्रभु, यह चद्रमा तुम्हारे हाथ का खप्पर है और इसके अन्तर की श्यामता इसके भीतर भरा नील हलाहल। आकाश की टिमटिमाती ये

तारिकाएँ जो शाति की वर्षा-सी कर रही हैं, तुम्हारी पुतलियों में समाई हुई शाति का परिचय दे रही है।

वि०—यद्यपि यहाँ स्पष्ट नाम नहीं लिखा, पर वर्णन से ही स्पष्ट है कि भगवान शिव को सम्बोधन करके कहा जा रहा है।

अखिल विश्व का—अखिल—समस्त। विप—पाप और ताप का हलाहल। अमर—शाश्वत, चिरतन , सदा रहने वाली।

अर्थ—तुम्हारे सम्बन्ध मे जो यह प्रसिद्ध हे कि तुम विपपान करते हो, वह वास्तव मे ससार भर की पीड़ा का विष है। सृष्टि इस पीड़ा और पाप के कारण जीवित नहीं रह सकती थी, पर उन्हें तुमने अगीकार कर लिया है, इसी से वह नवीन रूप से जी उठी है। पर मै यह पूछना चाहती हूँ कि यह शाश्वत शान्ति तुम किस दिशा से प्राप्त करते हो?

वि०—विप पीने वाला तो अशान्त रहना चाहिए, पर शिव हलाहल पान करके भी शान्त हैं, यही आश्चर्य है।

पृष्ठ १२३

अचल अनंत नील—अचल—अडिग। श्रमकण—पसीने की बूँदें।

अर्थ—यह नीला आकाश समुद्र की अनन्त नीली लहरो के समूह-सा प्रतीत होता है। इस पर अडिग आसन जमाये तुम बैठे हो। हे प्रभु, तारे जिसके शरीर से भारी पसीने की बूँदो से प्रतीत होते हैं, ऐसे तुम कौन हो?

वि०—आकाश में शिव की मूर्ति सामान्य दृष्टि को कही दिखाई नहीं देती, पर ताराओं को शरीर के श्रमकण मान उनके वहाँ कहीं ध्यानस्थ बैठे रहने का अनुमान कर लिया है।

इन चरणो मे—इन—तुम्हारे। छायापथ—आकाश गगा।

अर्थ—आकाश-गगा में पथिकों के समान भ्रमण करने वाले अनत तारे जो अनेक लोक है, क्या तुम्हारे चरणों में अपने कर्म सुमन की अजलि चढ़ाने आ रहे हैं और निरन्तर चलते-चलते थक गये हैं?

किंतु कहाँ वह—दुर्लभ—कठिनाई से प्राप्त होने वाली । नित्य—प्रति दिन आने वाला ।

अर्थ—परन्तु कठिनाई से प्राप्त होने वाली तुम्हारी इतनी स्वीकृति उन्हें कहाँ मिलती है कि वे चरण-वदन कर सकें। वे निराश करके उसी प्रकार लौटा दिए जाते हैं जैसे प्रतिदिन माँगने वाला भिखारी द्वार से लौटा दिया जाता है।

वि०—विज्ञान ने सिद्ध किया है कि आकाश गंगा में पड़ने वाले सटे-अनत तारे अनत लोक हैं, यहाँ तक कि उनके सूर्य-चद्र भी भिन्न हैं। वे निरतर चक्कर काटते हैं और आकर्षण से खिचे अधर में स्थित हैं। इसी सत्य का उपयोग कवि ने कैसे विलक्षण रस के साथ किया है।

प्रखर विनाशशील—प्रखर—तीव्र । विनाशशील—टूटना फूटना । नर्तन—चक्कर। विपुल—विराट्। माया—रहस्य। उसकी—सृष्टि की।

अर्थ—सृष्टि का रहस्य यह है कि चक्कर काटता हुआ यह विराट् ब्रह्मांड यद्यपि तीव्रता से यहाँ-वहाँ से टूट-फूट रहा है, पर इससे उसका शरीर पल-पल में नवीन रूप धारण करके प्रकट हो रहा है।

वि०—विज्ञान के अनुसार अनत लोक बनते-बिगड़ते हैं, पर सृष्टि विकास की ओर ही जा रही है।

सदा पूर्णता पाने—पूर्णता—सुधार, त्रुटिहीनता (Perfection)।

अर्थ—भूल सभी से क्या इसलिए होती है कि उसका सुधार कर वे भविष्य में पूर्ण बनें? अपना जीवन पूरा करके जो मृत्यु को प्राप्त होते हैं वह क्या इसलिये कि फिर नवीन जन्म लेकर नवीन यौवन मिले?

पृष्ठ १२४

यह व्यापार महा—व्यापार—सृष्टि। महा गतिशाली—निरतर चक्कर काटता हुआ। बसता—स्थित। क्षणिक विनाशों—पल पल पर नाशवान्। स्थित—स्थायी। मगल—कल्याण। चुपके—छिपा हुआ है। हँसता—झिलमिलाता।

अर्थ—यह ब्रह्मांड जो निरतर चक्कर काट रहा है, क्या कहीं स्थित नही

है ? क्या पल-पल पर नाशवान् इस सृष्टि में छिपा हुआ मगल स्थायी रूप से झिलमिलाता (व्याप्त) रहता है ?

वि०—हिन्दू दार्शनिकों के दो निर्णय हैं। (१) ससार परिवर्तनशील है (२) क्योंकि कण-कण मे प्रभु व्याप्त हैं, अतः नश्वर होने पर भी सृष्टि आनदमय है।

यह विराग सम्बन्ध—विराग—अप्रेम । मानवता—मानव धर्म । निर्ममता—निर्दयता ।

अर्थ—मनुष्य अपने हृदय मे दूसरों के प्रति अप्रेम पोषित कर रहा है। क्या यही मानव-धर्म है ? शोक की बात है कि प्राणी के मन मे प्राणी के लिए केवल निर्दयता शेष रह गई है।

वि०—इस बात को विस्मरण न कर देना चाहिए कि श्रद्धा अपने प्रिय पशु के प्रति मनु की निर्ममता का ध्यान करके निर्णय दे रही है।

जीवन का सतोष—सतोष—तृप्ति की भावना। रोदन—रोने की क्रिया। हँसना—पूर्ण रूप से। विश्राम—रुकावट। प्रगति—उन्नति। परिकर—कटिवस्त्र।

अर्थ—ऐसा क्यों है कि एक व्यक्ति तब तक पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं होता, जब तक दूसरे को रुला न ले ? और क्यों हमारे जीवन की प्रत्येक रुकावट उन्नति को वैसे ही बाँधे रखती है जैसे कटिवस्त्र कमर को कसे रहता है।

दुर्व्यवहार एक का—दुर्व्यवहार—कटु व्यवहार। गरल—कटुता। अमृत—मधुरता।

अर्थ—और एक व्यक्ति के कटु व्यवहार को दूसरा व्यक्ति कैसे भुला देगा ? जो विष को अमृत कर दे अर्थात् तीखी कटुता को मधुरता मे परिणत कर दे, ऐसा कोई उपाय नहीं है।

पृष्ठ १२५

जाग उठी थी—तरल—चचल। मादकता—नशा।

अर्थ—मनु के हृदय में चचल वासना फिर जाग्रत हुई। यज्ञ की समाप्ति पर

उन्होंने जो सोमरस का पान किया था उसके नशे का प्रभाव भी सम्मिलित था। आवेश की ऐसी दशा में उन्हें श्रद्धा के पास आने से कौन रोक सकता था ?

खुले मसृण भुज—मसृण—चिकने। भुजमूलों—कंधे। आमंत्रण—अपने पास बुलाना। उन्नत—उठे हुए। वक्ष—उरोज। सुख लहरों—आनंद के भाव।

अर्थ—श्रद्धा के चिकने खुले कंधों में इतना भारी आकर्षण था मानो वे सामने खड़े व्यक्ति को अपने निकट आने के लिए बुलाते हों और उसके उठे उरोज सुख की लहरियाँ हृदय में जगाते आलिंगन करने को विवश करते थे।

नीचा हो उठता—निश्वास—साँस का बाहर फेंकना। जीवन—जल और जीवित रहने की क्रिया दोनों। ज्वार—समुद्र की लहरों का चढ़ाव। हिमकर—चन्द्रमा और मुख। हास—चाँदनी और उज्ज्वलता।

अर्थ—कामायनी के उरोज थोड़े नीचे होकर साँस फेंकने के साथ ऊपर को उठ जाते थे। जैसे चंद्रमा की चाँदनी को छूकर समुद्र के जल में बाढ़ आती है, उसी प्रकार उसके चंद्र-मुख के प्रकाश में वक्ष के ऊँचे-नीचे होने से ऐसा लगता था मानो उसके जीवन में भी (यौवन की) बाढ़ आई है।

जागृत था सौंदर्य—जागृत—खिला हुआ। चंद्रिका—चाँदनी। निशा—रात, यामिनी।

अर्थ—यद्यपि वह सुकुमारी सो रही थी पर उसका सौंदर्य खिल उठा था। जैसे यामिनी चाँदनी से युक्त होकर उजली लगती है, वैसे ही श्रद्धा रूप की चाँदनी में जगमगा रही थी।

वि०—सुन्दरी स्त्रियाँ सोती हुई और भी सुन्दर लगती हैं।

वे मांसल परमाणु—मांसल—मांस से युक्त, स्वस्थ, भरी हुई। परमाणु—अंग, शरीर, देह। अलकों—केशों।

अर्थ—श्रद्धा का स्वस्थ शरीर जो किरण-सा उजला था अपने प्रकाश की बिजली बिखेर रहा था तात्पर्य यह कि उजली भरी देह को देखकर उत्तेजना उत्पन्न होती थी। उसके केशों की डोर में मनु के जीवन का कण-कण उलझ गया।

पृष्ठ १२६

विगत विचारों के—विगत थोड़ी देर पहले के। श्रमसीकर—पसीने की बूँदें। मण्डल—गोल आकार का।

अर्थ—मुख पर पसीने की बूँदें थी, मानों थोड़ी देर पहले जिन विचारों में वह मग्न थी उन्होंने ही यह रूप धारण कर लिया हो। जैसे मोतियो की माला कोई रमणी पिरोती है, उसी प्रकार उसके मुख की उन बूँदों को एक करुण भावना गूँथ रही थी। भाव यह कि अपने प्यारे पशु की हत्या पर विचार करते-करते श्रद्धा सो गयी थी, अतः आनन पर उन विचारों की छाप-सी बन कर एक करुण-भावना झलक उठी थी।

छूते थे मनु—कंटकित—जैसे लता का काँटों से युक्त होना वैसे ही शरीर का रोमान्चित होना। बेली—लता। स्वस्थ—गहरी।

अर्थ—मनु जैसे-जैसे उसे छूते थे वैसे-वैसे लता के समान श्रद्धा रोमांचित हो रही थी। उसकी देह लता के समान फैली थी और उसके शरीर में गहरी व्यथा की लहरें उठ रही थी।

वह पागल सुख—पागल—मस्त करने वाला। जगती का सुख—वासना या शरीर भोग का सुख। विराट्—बड़े रूप में। मिश्रित—मिला हुआ।

अर्थ—वासना के नाम से प्रसिद्ध यह सांसारिक सुख जो व्यक्ति को पागल बना देता है, आज मनु के सामने बहुत बड़े रूप में आया। इस समय जहाँ ये दोनों प्राणी थे वहाँ हल्के प्रकाश और हल्के अन्धकार का एक चँदोवा-सा छाया हुआ था अर्थात् वातावरण अत्यन्त उत्तेजक और उपयुक्त था।

कामायनी जगी थी—चेतनता—सुध-बुध। मनोभाव—मन के भाव। आकार—चिह्न। स्वय—बिना प्रयत्न के।

अर्थ—कामायनी की नींद इस समय तक कुछ खुल गई थी और मनु के स्पर्श से वह स्वय अपनी सुध-बुध खो बैठी। उसके मुख पर बिना प्रयास उसके मन के भावों का एक चिह्न अंकित होता, फिर मिट जाता, दूसरा चिह्न झलक उठता।

जिसके हृदय सदा—नाता—अधिकार, सम्बन्ध।

अर्थ—कुछ ऐसा होता है कि जिसे हम हृदय से निरन्तर चाहते हैं, वही हमसे दूर भागता है और हम अप्रसन्न भी उसी से होते हैं, जिस पर हम अपना अधिकार समझते हैं।

वि०—यहाँ भर्तृहरि के वैराग्य-शतक की वह प्रसिद्ध पक्ति स्वत. स्मरण हो आती है—

या चिंतयामि सतत मयि सा विरक्ता।

पृष्ठ १२७

प्रिय को ठुकरा—प्रिय—जिसे हम प्यार करते हैं। माया—मोह। उलझा लेती—नहीं छोड़ती, बाँधे रखती है। प्रत्यावर्तन—लौटाना।

अर्थ—और यह भी सत्य है कि जिसे हम प्यार करते हैं उसे ठुकराने के उपरान्त भी उसके प्रति मन में जो मोह होता है वह उसे छोड़ने नहीं देता। जैसे शिला से दूर फेंका हुआ जल फिर उसके चारों ओर घूमकर पहली दिशा में आ जाता है, उसी प्रकार प्रेम में दूर फेंका हुआ व्यक्ति कुछ क्षणों के उपरात फिर अपनी पूर्व स्थिति प्राप्त करता है।

वि०—यह एक सहज परिचित प्राकृतिक व्यापार है कि जल की धारा किसी शिला-खण्ड से टकरा कर उसके चारों ओर चक्कर काटती रहती है।

जलदागम मारुत से—जलदागम—जब बादलों का आगमन हो अर्थात् वर्षा ऋतु। मारुत—वायु।

अर्थ—वर्षा ऋतु की वायु से काँपती हुई नवीन पत्ती के समान श्रद्धा की हथेली को मनु ने धीरे से अपने हाथ में ले लिया।

वि०—अत्यन्त कोमल दृश्य-विधान को अकित करने वाली ये पक्तियाँ हैं। सभी जानते हैं कि वर्षा ऋतु की वायु गीली होती है, अतः पल्लव को छूते ही वह किंचित् भीग उठेगा। श्रद्धा की हथेली भी पसीज उठी थी और काँप रही थी। प्रेम में शरीर के अग सिहर पसीज उठते हैं और। इन्हें रस की भाषा में 'कम्प' और 'प्रस्वेद' सात्विक कहते हैं। पर कवि ने अपनी बात किस सहज भाव से कही है, यही कला है।

अनुनय वाणी में—अनुनय—विनय, प्रार्थना, याचना । उपालभ—शिकायत । मानवती—मानिनी । माया—मन ।

अर्थ—उनकी वाणी यद्यपि याचना भरी थी, पर उनकी आँखों में उपालंभ के सकेत थे । मनु बोलेः हे मानिनी, तुम्हारा यह कैसा मान है ?

स्वर्ग बनाया है—स्वर्ग—स्वर्गीय सुख । विफल—नष्ट । अप्सरा—सुन्दरी । नूतन—नवीन रूप में ।

अर्थ—पृथ्वी पर जिस स्वर्गीय सुख की कल्पना मैंने की है, उसे न नष्ट करो । हे अप्सरा सी सुन्दरी रमणी, पिछले दिनों प्रेम की जो बातें तुमने कही थीं, उन्हें नवीन रूप देकर आज थोड़ा फिर गुनगुनाओ ।

वि०—पृथ्वी को स्वर्ग मानने पर श्रद्धा को अप्सरा कहना उचित ही हुआ है ।

इस निर्जन में—निर्जन—जनहीन प्रदेश । ज्योत्स्ना—चाँदनी । पुलकित—प्रसन्न, खिला हुआ ।

अर्थ—चद्रमा से युक्त आकाश के नीचे चाँदनी से खिले हुए इस जनहीन प्रदेश में मुझे और तुम्हे छोड़कर यहाँ और कौन है ? ऐसे में तुम सो रही हो, यह तो ठीक नहीं है । भाव यह है कि यह एकान्त रम्य वातावरण प्रणय-चर्चा के लिए उपयुक्त है, सोकर समय नष्ट करने के लिए नहीं ।

पृष्ठ १२८

आकर्षण से भरा—भोग्य—भोगने के लिए, सुख प्राप्त करने के लिए । जीवन—मनु श्रद्धा के जीवन । कूल—तट

अर्थ—आकर्षण से सराबोर यह ससार हमारे भोग के लिए भगवान् ने बनाया है । मैं चाहता हूँ कि मेरे और तुम्हारे दो जीवनों के तटों के बीच वासना की एक धार बहती रहे ।

श्रम की इस अभाव—श्रम की—परिश्रम करने को बाध्य करने वाली । अभाव—इच्छाओं की अपूर्ति । आकुलता—दु:ख । भीषण चेतनता—वह चेतना जो पीड़ा दे ।

अर्थ—श्रम और अभावों से परिपूर्ण इस ससार को, इसमें मिलने वाले

सभी प्रकार के दुःखों को, साथ ही पीड़ा देने वाली अपनी चेतना को, जिस क्षण हम भुला सकें—

वि०—'प्रसाद' दुःखों से छुटकारा पाने का सबसे सरल उपाय यह समझते हैं कि किसी प्रकार हृदय से चेतना-शक्ति लुप्त हो जाय। यह बात उन्होंने मनु के मुख से 'चिंता' सर्ग में भी कहलाई है—

चेतनता चल जा, जड़ता से आज शून्य मेरा भर दे।

नोट —भाव आगे के छंद में पूर्ण होगा।

वही स्वर्ग की—स्वर्ग—विलक्षण सुख। अनन्त—अक्षय। मुसक्यान—प्रसन्नता भरना। दो बूँद—प्रेम की थोड़ी-सी बूँदें।

अर्थ—वही क्षण अक्षय स्वर्ग-सुख का सृजन कर जीवन में प्रसन्नता भरता है। देखो, मेरी बात मानो, जीवन का आनन्द प्रेम की दो बूँदों में ही भरा हुआ है।

देवों को अर्पित—अर्पित—समर्पित। मधु—शहद। मिश्रित—मिला हुआ, घुला हुआ। सोम—प्राचीन काल का एक मादक रस। मादकता—मस्ती। दोला—झूला। प्रेयसि—प्रेमिका।

अर्थ—मधु (शहद) की बूँदें जिसमें घुली हुई हैं और जो देवताओं को समर्पित हो चुका है, वह सोमरस पीलो (उसके पीने में कोई दोष नहीं है) इस पात्र को अपने अधरों से लगाओ। हे प्रिये, आज मस्ती के झूले पर हम तुम दोनों ही मिल कर झूलें।

पृष्ठ १२६

श्रद्धा जाग रही—मादकता—नशा। मधुर-भाव—प्रेम-भाव, पति-पत्नी भाव। छकता—तृप्त करने को भरा हुआ था।

अर्थ—यद्यपि श्रद्धा जाग पड़ी थी, फिर भी एक प्रकार का नशा-सा उस पर छाया हुआ था, उससे शरीर और मन दोनों में माधुर्य-भाव का रस उसे तृप्त करने को भरा हुआ था।

बोली एक सहज—सहज—सरल। मुद्रा—भाव। किसी भाव—मुझे प्रसन्न करने की इच्छा। धारा—आवेश। वहना—कहना।

अर्थ—श्रद्धा सरल भाव से बोली : तुम्हारी बातों पर विश्वास नहीं होता। आज इस समय तो मुझे प्रसन्न करने की इच्छा से, आवेश में आकर तुम यह सब कह रहे हो।

कल ही यदि—परिवर्तन—प्रलय। साथी—पुरोहित।

अर्थ—कल तुम्हारी हिंसा-वृत्ति और वासना की अति से सृष्टि के शासक के अप्रसन्न होने पर पूर्ववत् फिर प्रलय मच सकती है। उसमें सम्भव है मैं न बचूँ। और बहुत सम्भव है फिर तुम्हें कोई नवीन पुरोहित मिले और नवीन यज्ञ का आरम्भ करावे।

और किसी की फिर—किसी की—पशु की। नाते—बहाने। धोखा—प्रवचना।

अर्थ—और किसी देवता के बहाने तुम फिर किसी पशु की हत्या करोगे। अपनी जिह्वा के रस के लिए देवताओं के नाम की आड लेना एक बहुत बड़ी प्रवचना है। इसमें तो हम केवल अपना ही सुख देखते है, अपनी जिह्वा के रस को पाते हैं।

ये प्राणी जो—प्राणी—प्राणधारी, यहाँ विशेष रूप से पशुओं से तात्पर्य है। अचला—स्थिर। फीके—सत्ताहीन।

अर्थ—इस अचला पृथ्वी पर जो जीव इस प्रलय मे बच गये हैं, क्या जीवित रहने के उनके अपने कोई अधिकार नहीं हैं? क्या उनके अधिकार अपनी कोई सत्ता नहीं रखते?

वि०—कुछ हिंदू विचारकों का ऐसा विश्वास था कि पृथ्वी घूमती नहीं, अतः पृथ्वी को अचला कहा जाता था।

पृष्ठ १३०

मनु क्या यही—मानवता—मानव धर्म। हत—खेदसूचक शब्द। शवता—प्राणहीनता।

अर्थ—हे मनु, जिस नवीन उज्ज्वल मानव-धर्म की तुम प्रतिष्ठा करने जा रहे हो, क्या उसका यही स्वरूप होगा? जिसमें दूसरों के अस्तित्व का प्रयोजन

अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए हो, मुझे अत्यत शोक के साथ कहना पड़ता है कि वह सस्कृति प्राणहीन है, केवल शव समान है।

वि०—इस छद में 'उज्ज्वल' शब्द का प्रयोग व्यग्य में हुआ है, अतः प्रथम दो पक्तियों से यह ध्वनि निकलती है कि तुम्हारी मानवता यदि स्वार्थ और हिंसा पर आधारित रही तो वह एक कलक का प्रतीक होगी।

× × × ×

तुच्छ नहीं हैं—चरम—सबसे महान्। सब कुछ——एकमात्र लक्ष्य।

अर्थ—मनु बोले : श्रद्धा अपना सुख भी तुच्छ नही है, उसकी भी कुछ सत्ता है। यदि तुम उसे तुच्छ समझती ही, तो यह तुम्हारी भूल है। इस छोटे से दो दिन के जीवन का तो सबसे महान् (एकमात्र) लक्ष्य वही है।

इंद्रिय की अभिलाषा—इद्रिय की अभिलाषा—आँख से देखने, जिह्वा से रस लेने, त्वचा से छूने आदि की कामनाएँ। सतत्—निरतर। विला-सिनी—रमणी।

अर्थ—जहाँ हमारी इद्रियों की सारी कामनाएँ निरन्तर पूरी होती चलें, हे रमणी, जहाँ हृदय सतुष्ट होकर मधुर स्वर में गुनगुनाने लगे—

नोट :—भाव तीसरे छद में जाकर पूरा होगा।

रोम हर्ष हो—रोमहर्ष—आनन्द के कारण रोमान्चित होना। ज्योत्स्ना—चाँदनी, यहाँ चाँदनी-सी उजली।

अर्थ—जहाँ मृदु मुस्कान की चाँदनी खिले और उसके आनन्द से शरीर रोमान्चित हो जाय जहाँ मन की आशाओं को पूरा करने के लिए प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे के और निकट आ जायँ और उनकी साँसें आपस में टकरा जायँ—

पृष्ठ १३१

विश्व माधुरी जिसके—माधुरी—मधुरता। मुकुर—दर्पण।

अर्थ—(जैसे दर्पण का प्रयोजन इतना ही है कि वह हमारे मुख को प्रतिबिंबित करे, इसी प्रकार ससार भर के माधुर्य की सार्थकता इसी में है कि हम उसमें अपना मुख देखें) और जहाँ विश्व भर की मधुरता हमारे मुख का

विधान करे, यदि उस अपने आनन्द का नाम स्वर्ग नहीं है तो फिर किस वस्तु का नाम स्वर्ग है ? फिर तुमने व्यक्तिगत सुख का विरोध किस आधार पर किया ?

जिसे खोजता फिरता—जिसे—अभाव की पूर्ति। अचल—तलहटी। स्वर्ग—स्वर्गीय सुख। हँसता—लालसा जगाता। चञ्चल—परिवर्तनशील।।

अर्थ—हिमालय की इस तलहटी मे जिस अभाव की प्रेरणा से मै चक्कर काटता फिरता हूँ, वही अभाव इस परिवर्तनशील जीवन मे अपनी पूर्ति के लिये स्वर्गीय सुख की कल्पना जगा रहा है।

वर्तमान जीवन के—छली—वञ्चक, ठगने वाला। अदृष्ट—भाग्य।

अर्थ—अपने वर्तमान जीवन में जहाँ सुख का योग नहीं हुआ—सुख मिले देर नहीं होती—कि वञ्चक भाग्य किसी अभाव का रूप धारण कर प्रकट हो जाता है।

किन्तु सकल कृतियो—कृतियों—कर्मों। सीमा—लक्ष्य, ध्येय। विफल—व्यर्थ। प्रयास—कार्य।

अर्थ—क्योंकि हम जो कुछ करते हैं उसका लक्ष्य हम ही हैं, अतः हमारी इच्छाएँ पूरी होनी चाहिये, नहीं तो हमारे कार्यों की कोई सार्थकता नहीं।

पृष्ठ १३२

एक अचेतनता लाती—अचेतनता—निद्रावस्था मे आना। सविनय—विनम्रता से। यह भाव—विवेक-शक्ति।

अर्थ—आँखो में फिर नींद सी भरते हुये श्रद्धा ने विनम्र शब्दों में कहा· यह सोचकर ही कि तुममे विवेक कुछ शेष रह गया है, प्रलय के उपरात फिर सृष्टि पूर्ववत् चलने लगी है।

वि०—देव सृष्टि के विनाश का कारण ही यह था कि उन्होंने अधे होकर वासना की उपासना की थी। विवेक को एकदम परे फेंक दिया था। श्रद्धा व्यग्य के द्वारा यह व्यंजित करना चाहती है कि प्रकृति अभी इस भ्रम मे है कि तुममें कुछ विवेक शेष है और उसके आधार पर तुम नवीन सस्कृति की

रचना करोगे। यदि तुम इतना न कर सके तो फिर प्रलय होगी, यह समझ लो। आगे के छन्द से हिसा और स्वार्थ का विरोध वह एक बार फिर करती है।

भेद बुद्धि निर्मम—भेद बुद्धि—भले बुरे का अन्तर बताने वाली वृत्ति, विवेक। निर्मम ममता—घोर-मोह, निर्ममता और ममता। पयोनिधि—समुद्र।

अर्थ—सिधु की लहरें तुम्हें भी निगलने को आकर यही समझ कर लौट गई होंगी कि कम से कम तुममें अपने प्रति सुख के ऐसे घोर मोह से बचने का विवेक अभी शेष है जो दूसरों के प्रति निर्दयता का व्यवहार करावे।

वि०—श्रद्धा यह व्यग्य कर रही है कि प्रकृति ने जिस शुभ गुण को तुममें बचा समझ तुम्हारे प्राण नहीं लिए, ठीक उसी का विरोध तुम अपने आचरण द्वारा प्रदर्शित कर रहे हो। क्या निर्दयता है क्या दया, इसका भेद तुम्हें जानना चाहिए। अपना स्वार्थ ही सब कुछ नहीं है।

अपने में सब—सब कुछ—सारे सुख। भरना—समेटना। एकात स्वार्थ—घोर या केवल अपना स्वार्थ। भीषण—भयङ्कर।

अर्थ—सारे सुखों को अपने में ही समेट कर व्यक्ति अपना विकास किस प्रकार कर सकता है? केवल अपने स्वार्थ की चिन्ता तो बड़ी भयकर भावना है। इससे व्यक्ति की बहुत बड़ी हानि होने की सभावना है।

औरों को हँसते—हँसते—प्रसन्न। विस्तृत करना—बढ़ाना, विस्तार देना, सीमित न रहने देना।

अर्थ—हे मनु, ऐसा स्वभाव बना लो कि दूसरों को प्रसन्न देखकर तुम प्रसन्न और सुखी हो सको। तुम सब को सुखी बनाने का प्रयत्न करो और इस प्रकार अपने सुख का विस्तार करो।

रचनामूलक सृष्टि—रचनामूलक सृष्टि—निर्माणमयी, बिगड़-बिगड़ कर बनना ही जिसका स्वभाव है। यज्ञपुरुष—भगवान विष्णु, ईश्वर। ससृति—ससार।

अर्थ—निर्माणरूपी यह सृष्टि ही यज्ञ-पुरुष (भगवान) का एक यज्ञ है और हमारे द्वारा की गई ससार की सेवा से उसका उसी प्रकार विकास होता है जिस प्रकार आहुतियों से यज्ञ का।

पृष्ठ १३३

सुख को सीमित—सीमित—समेटना। इतर—अन्य। मुँह मोड़ना—विमुख होना, पीठ दिखाना।

अर्थ—यदि सारे सुखों को अपने लिए समेटोगे, तो दूसरों को भोगने के लिए केवल दुःख रह जायगा। ऐसी दशा में अन्य प्राणियों की व्यथा देख कर उस ओर से क्या तुम अपना मुँह मोड़ लोगे।

ये मुद्रित कलियाँ—मुद्रित—बंद। दल—पँखुड़ियाँ। सौरभ—गंध। मकरंद—पुष्प रस।

अर्थ—ये बंद कलियाँ अपनी पंखुड़ियों के भीतर ही यदि सारी गंध बंद रखें और मकरंद की बूँदों का रस खुल कर न दें तो यह इनकी ही मृत्यु है—इनका विकास रुक जायगा।

सूखे झड़े और—कुचले—रुँधे। सौरभ—गंध। आमोद—गंध। मधुमय—रसमय। वसुधा—पृथ्वी।

अर्थ—ऐसी दशा में ये सूख कर झर जायँगी और एक प्रकार की रुँधी हुई गंध तुम्हें मिलेगी। फिर पृथ्वी पर रसमयी गंध तुम्हें कहाँ से प्राप्त होगी?

वि०—यहाँ 'आमोद' और 'मधुमय' दुहरे अर्थों में प्रयुक्त हैं। जीवन के पक्ष में यह अर्थ है कि यदि अपने गुणों और प्राणों के रस को हमने अपने तक ही सीमित रखा तो पृथ्वी पर न आमोद (आनंद) रहेगा और न रस (मधु)।

सुख अपने संतोष—संग्रहमूल—इकट्ठा करना, जुटाना। प्रदर्शन—दर्शन करना। देखना—पाना। वही—वास्तविक।

अर्थ—सुख को इसलिए नहीं जुटाया जाता कि उससे केवल अपना ही जी भरे। वास्तविक सुख तो तब है जब उसके दर्शन दूसरों को भी कराये जायँ और वे उसे पा भी सकें।

निर्जन में क्या—प्रमोद—आनंद और गंध।

अर्थ—इस निर्जन में सुख की गंध क्या तुम एकाकी ही लोगे? क्या इससे किसी दूसरे का मन-सुमन विकसित न होगा?

पृष्ठ १३४

सुख समीर पाकर—समीर—पवन की लहर । एकात—एक व्यक्ति का, व्यक्तिगत । सीमा—विकास । ससृति—ससार । मानवता—उदारता आदि सद्‌गुण ।

अर्थ—सुख की लहर यदि तुम्हें मिली है तो वह व्यक्तिगत प्रसन्नता तो दे सकती है इसमें सदेह नहीं, पर ससार का विकास तो उदारता के निरतर आदान-प्रदान से ही सभव है ।

× × ×

हृदय हो रहा था—उत्तेजित—वासना से उभरना । अधर—ओंठ । मन की ज्वाला—मन में लगी वासना की आग ।

अर्थ—यद्यपि श्रद्धा उदारता अहिंसा आदि की चर्चा कर रही थी, पर उसका हृदय इस समय स्वय वासना से उत्तेजित था । मन की इस आग से उसके ओंठ शुष्क हो चले ।

वि०—तीव्र कामोद्दीपन की अवस्था मे ओंठ सूख जाते हैं ।

उधर सोम का पात्र—समय—उपयुक्त अवसर । बुद्धि के बधन—बुद्धि की मदता ।

अर्थ—उधर मनु के हाथ में सोमरस से भरा पात्र था । उन्होंने समझ लिया कि श्रद्धा की दुर्बलता से इस समय लाभ उठाया जा सकता है । वे कहने लगे : श्रद्धा इस रस का पान करो । इससे बुद्धि तीव्र होती है ।

वही करूँगा जो—मनुहार-विनय । प्याला—सोमरस से भरा पात्र ।

अर्थ—तुम जैसा कहती हो भविष्य में वैसा ही करूँगा । यह तो तुम सच ही कहती हो कि सुख का अकेले भोगना ठीक नहीं । जब इतनी विनय की गई, तब क्या कोई ऐसा भी सुख हो सकता था जो प्याला पीने से रुक जाता ?

पृष्ठ १३५

आँखे प्रिय आँखों में—प्रिय—मनु । रस—सोमरस । काल्पनिक—अवास्तविक, झूठी । चेतना—उत्तेजना ।

अर्थ—श्रद्धा ने अपनी आँखें मनु की आँखों से मिलाईं। उसके अरुण ओंठ सोमरस से भीग गए। उसका हृदय इस विजय पर सुखी था कि मनु ने उसकी बात मान ली, पर वह विजय वास्तविक न थी क्योंकि मनु ने ऊपरी मन से वह सब कुछ कहा था। ठीक इसी समय उसकी नस-नस में उत्तेजना भर गई।

वि०—श्रद्धा वास्तव में बहुत सरल स्वभाव की थी।

छल वाणी की—प्रवचना—धोखा। शिशुता—बालकों का-सा भोलापन। विभुता—सद्भावों का ऐश्वर्य।

अर्थ—जैसे बालकों को मीठी वाणी से बहला कर खेल में लगा दिया जाता है और अपना काम करते रहते हैं, उसी प्रकार भोले हृदयों को भी छल भरी वाणी से ठगकर बहुत से व्यक्ति उन्हें उँगली पर नचाते हैं और सद्भावों (सद्गुणों) के ऐश्वर्य को उनके भीतर से दूर कर देते हैं।

जीवन का उद्देश्य—उद्देश्य—लक्ष्य। प्रगति—आगे बढ़ना, विकास। इंगित—संकेत, इशारे। छल में—छलभरी।

अर्थ—छलभरी वाणी अपने एक मधुर संकेत के द्वारा क्षणमात्र में जीवन के उद्देश्य से, लक्ष्य की ओर आगे लेजाने वाली दिशा से, हमें दूसरी ओर मोड़ सकती है।

वही शक्ति अवलंब—वही—छल की। अवलंब—सहारा। अभिनय—दिखावटी हाव-भाव।

अर्थ—छल की उसी आकर्षण शक्ति का सहारा इस समय मनु को मिला जो अपने दिखावटी हाव-भाव से किसी दूसरे प्राणी के मन में सुख की संभावना जगा कर उसे उलझाये रखती है।

पृष्ठ १३६

श्रद्धे होगी चन्द्रशालिनी—चन्द्रशालिनी—चन्द्रमावाली, चाँदनी से युक्त, आशाभरी। भव रजनी—संसार जो एक रात्रि के समान है। भीमा—भयंकर।

अर्थ—हे श्रद्धा, यह संसार एक भयंकर रात्रि के समान है। तुम्हारे प्रेम के चन्द्रमा के उगने ही वह जगमगा उठेगी—मेरे सारे अभाव दूर हो जायेंगे।

मै चाहता हूँ कि मेरे सारे सुखों की सीमा तुम बनो अर्थात् तुम्हें पाकर मैं जीवन के समस्त सुख प्राप्त कर लूँ।

वि०—तुलसी ने भी ससार को एक रात माना है, पर ज्ञान की दृष्टि से—

एहि निशि-जामिनि जागहिं जोगी।

लज्जा का आवरण—आवरण—आच्छादन, पर्दा। प्राण—हृदय की बातों को। ढँकना—छिपाना। तम—अधकार। अकिंचन—दरिद्र, कुठित, शक्तिहीन, दुर्बल। अलगाता—अलग करता।

अर्थ—लज्जा का आच्छादन (पर्दा) ऐसा है जो प्राणों की बात को अधकार में छिपा देता है। वह उसकी शक्ति को कुठित बनाता है और एक प्राणी को (मुझे) दूसरे (तुम से) से पृथक कर देता है।

वि०—स्मरण रखना चाहिए कि मनु के लिए हृदय मे प्रम की बाढ़ लिए रहने पर भी श्रद्धा लज्जा के कारण ही खुल कर नहीं मिल पाती। मनु उसी लज्जा को अपने तर्क से छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

कुचल उठा आनन्द—कुचलना—रौंदा जाना। अनुकूल—समान भाव की अनुभूति।

अर्थ—तुम्हारी लज्जा के कारण मेरे हृदय का आनन्द कुचला जा रहा है। हमारे-तुम्हारे मिलन मे यह लज्जा ही बाधा डाल रही है। अतः इसे दूर कर दो। हमारे तुम्हारे दोनों के हृदय इस सम्बन्ध मे समान भाव का अनुभव कर रहे हैं कि मै तुम्हारे शरीर से सुख प्राप्त करना चाहता हूँ और तुम मेरे शरीर से। अत' आओ, हम दोनों मिलकर सुखी हों।

वि०—यह उत्तेजना की ऐसी स्थिति है जहाँ किसी प्रकार का विघ्न असह्य हो उठता है। इस दृष्टि से 'कुचल उठा आनन्द' में 'कुचलना' शब्द पर ध्यान दीजिए।

और एक फिर—व्याकुल—कस कर। रक्त—रुधिर। खौलना—गति तीव्र होना। वधक उठना—उत्तेजित होना। तृषा—काम की प्यास। तृप्ति—सतोप। मिस—बहाने।

अर्थ—इसके उपरात मनु ने श्रद्धा को कस कर ऐसा चुबन दिया जिससे नसों में रुधिर की गति तीव्र हो उठती है। इस चुबन से, शात हृदय भी, काम की प्यास को बुझाने के बहाने उत्तेजित हो उठता है।

दो काठों की संधि—काठ—लकड़ी। सधि—मिले हुए, सटे हुए। निभृत—एकान्त। अग्निशिखा—आग की लौ, काम की उद्दीत भावना।

अर्थ—उस एकान्त गुफा मे दो सटे हुए काठों के बीच जो आग की लौ उठी थी वह थोड़ी देर मे उसी प्रकार बुझ गई जैसे जगने पर सुखदायक सपने मिट जाते हैं।

वि०—'प्रसाद' ने सभोग का वर्णन यहाँ अत्यन्त कौशल से किया है। पर दूसरे पक्ष का अर्थ ध्वनित ही होता है, क्योंकि उस गुहा में कवि ने पहले ही काष्ठ-सधि में अग्नि-शिखा का विधान कर दिया हे—

सूखी काष्ठ-सधि मे पतली अनल शिखा जलती थी।

ईर्ष्या

कथा—पल भर की दुर्बलता के कारण श्रद्धा सदा के लिए मनु के वश में हो गयी और मनु श्रद्धा के हृदय पर अपना पूर्ण अधिकार कर अधिकतर आखेट कर्म में लीन रहने लगे। एक दिन मृगया से लौटते हुए वे सोच रहे थे . श्रद्धा के प्रेम में अब वह आकर्षण नहीं रहा। रह कहाँ से ? न उसके आलिंगन में व्याकुलता है, न अपनी ओर से किसी बात के लिए आग्रह, न मुस्कान में नवीनता, न वाणी में हाव-भाव। इस बीच वे गुहा के द्वार पर आ पहुँचे और आहत पशु के साथ उन्होंने धनुष, बाण, शृंगी आदि को भी पृथ्वी पर पटक दिया।

इधर श्रद्धा सोच रही थी रात होने आयी पर वे तो नहीं लौटे। क्या कोई चंचल पशु उन्हें दूर खींच ले गया ? गर्भ के कारण उसका मुख पीला पड़ गया था। उसका सारा शरीर ही काँपता रहता था। तकली पर वह ऊन कात रही थी। एक काली पट्टी उसके उन पयोधरों को ढक रही थी जो दूध भर जाने के कारण कुछ-कुछ झुक आए थे। मुख पर पसीने की बूँदें थीं। मनु श्रद्धा का वह रूप ललकभरी दृष्टि से देखते रहे। श्रद्धा ने उनके हृदय की भावना को जैसे ताड़ लिया और बदले में वह केवल मुस्कुरा कर रह गयी। बोली : तुम दिन भर कहाँ भटकते रहते हो ? अब तो शरीर क्या, घर की भी सुधि नहीं रहती ! तुम्हारे बिना यह सब कितना सूना लगता है ! और तुम्हें ऐसा क्या अभाव है जिसके कारण तुम मारे-मारे फिरते हो ? मनु बोले : अभाव क्यों नहीं है ? मेरे विकास का सारा पथ ही रुका पड़ा है ! तुम्हारे हृदय में भी मेरे लिए वह विह्वलता अब कहाँ है जो पहले थी ? मेरी चिन्ता न कर तुम सारे दिन तकली से चिपटी रहती हो ? जब मैं कोमल चर्म ला सकता हूँ, तब तुम ऊन क्यों कातती हो ? जब मैं पशु मार कर ला सकता हूँ, तब तुम अन्न की

चिन्ता क्यों करती हो? श्रद्धा ने तुरत उत्तर दिया : प्राणों की रक्षा के लिए आक्रमण करने वाले पशु पर प्रहार करना तो दूसरी बात है, पर स्वाद या स्वार्थ के लिए तो हिंसा का समर्थन मैं कभी नहीं कर सकती। यदि ऐसा है तो फिर हम में और पशुओं में अंतर ही क्या रहा?

मनु बोले : जब सुख अस्थिर है, जब विनाश और मृत्यु ही सत्य है, तब जो पल हमें मिले हैं, उनका उपभोग हम क्यों न करें? संसार के कल्याण की कामना से क्या अपना सुख भी खो दें? रानी, तुम अपना प्यार मुझे दो। इस बात का कोई उत्तर श्रद्धा ने न दिया। मनु का हाथ पकड़ कर वह उन्हें उस कुटिया के भीतर ले गई जहाँ उसने अपनी भावी संतान के निमित्त बेंत का एक झूला बनाया था और पृथ्वी पर पराग का बिछौना बिछा दिया था। मनु यह सब कुछ देखकर भी कुछ न बोले। तब श्रद्धा ने ही उन्हें समझाया : देखो घोंसला तो बन गया, पर आनंद-ध्वनि इसमें अभी नहीं मची। मैं तकली पर ऊन इसलिए कातती रहती हूँ कि भविष्य में हमारी संतान पशुओं के समान नग्न न रहे। वह दिन शीघ्र आने वाला है जब मैं माता बनूँगी। उस समय यदि तुम बाहर चले भी जाया करोगे तो मुझे घर सूना न लगेगा। मैं अपने हृदय के टुकड़े को झूला झुलाऊँगी, प्यार करूँगी, चूमूँगी, उसे लेकर घाटी में घूमा करूँगी। तुम्हारे वियोग में निकले आँसू तब सुख के आँसुओं में परिवर्तित हो जाया करेंगे।

इस बात पर मनु भड़क उठे। कहने लगे : यह नहीं हो सकता। तुम्हारे अनुराग का उपभोग मैं एकाकी ही करना चाहता हूँ। यह तो प्रेम बाँटने का एक दूसरा ढंग निकल आया। मुझे यह सह्य नहीं कि जब तुम्हारे मन में आवे तब तुम प्रेम दो और जब न आवे तब उदासीन रहो। यदि ऐसा है तो इस सुख को लेकर तुम अकेली ही रहो! आज से मैं तुमसे सदैव को पृथक् होता हूँ। इससे चाहे मुझे सदैव दुःख ही क्यों न मिले। ऐसा कहकर वे सचमुच ही श्रद्धा का परित्याग करके चले गए। श्रद्धा चिल्लाती ही रह गई : अरे निष्ठुर, रुक, मेरी पूरी बात तो सुन जा! पर स्वार्थ ने कभी स्नेह की बात सुनी है!

सोने की सिकता—सिकता—बालू । कालिंदी—यमुना जिसका वर्ण श्याम है । उसास भरना—लहरें लेना । स्वर्गङ्गा—आकाश गगा । इन्दीवर—नील कमल । हास—खिलना ।

अर्थ—पयोधरों पर बँधी ऊन की काली पट्टी ऐसी लगती थी मानो सोने की बालुका पर यमुना लहराती बह रही हो, या आकाश मे नीले कमलों की एक पक्ति खिली हो ।

वि०—यहाँ पयोधरों की तुलना सोने की बालुका और आकाश-गगा से की है तथा काली पट्टिका की श्याम यमुना और नीले कमलों की पक्ति से । यद्यपि स्पष्ट शब्दों में कवि ने नहीं लिखा, पर उपमान पक्ष मे यमुना के साथ 'भर उसास' से यह दृश्य उपमेय पक्ष में जग उठता है कि साँसों के लेने में श्रद्धा के पयोधर उठते और नीचे हो-हो जाते थे ।

पृष्ठ १४३

कटि में लिपटा—कटि—कमर । नवल—नवीन । वसन—वस्त्र । दुर्भर—असह्य । जननी—माँ की स्थिति में आने वाली श्रद्धा । सलील—प्रसन्नता से ।

अर्थ—उसकी कमर में पयोधरों पर कसी पट्टी ही जैसा हल्का और नीले रग का बुना हुआ वस्त्र लिपटा था । गर्भ की मीठी पीड़ा वैसे असह्य थी, पर वह एक शिशु की माँ बनने जा रही थी; अतः प्रसन्नता से उसे झेल रही थी ।

श्रम विंदु बना सा—श्रम विंदु—पसीने की बूँदें । गर्व—अभिमान । पर्व—उत्सव ।

अर्थ—उसके ललाट पर पसीने की बूँदें थी मानो श्रद्धा के हृदय का यह सरस अभिमान कि वह एक शिशु की माँ होने जा रही है उस रूप में झलक उठा या यह समझिये कि सन्तानोत्पत्ति का महान् उत्सव निकट आ गया था, अतः वे मस्तक से चूने वाली पसीने की बूँदें न थीं, पुष्प थे जो पृथ्वी पर झड़ रहे थे ।

मनु ने देखा जब—खेद—शिथिलता, खिन्नता । इच्छा—वासना, कामेच्छा । भाव—हाव भाव ।

अर्थ—मनु ने सहज शिथिलता से परिपूर्ण श्रद्धा की वह आकृति देखी जो उनकी वासना-वृत्ति का प्रबल विरोध करती थी। उन्हें ऐसा भी प्रतीत हुआ कि उसमें अब पहले के से अनुपम हाव-भाव शेष नहीं।

वे कुछ भी—साधिकार—अधिकार भावना से।

अर्थ—उन्होंने कहा कुछ भी नहीं। केवल एक प्रकार की अधिकार भावना से चुपचाप उसे देखते रहे। पर श्रद्धा ने उनकी आँखों से उनके हृदय के भाव को ताड़ लिया और उस पर वह थोड़ी मुस्कुरा उठी।

पृष्ठ १४४

दिन भर थे कहाँ—भटकना—भूले व्यक्ति के समान घूमना। हिंसा—शिकार। आखेट—वृत्ति।

अर्थ—अपनी वाणी में मधुर स्नेह भर कर श्रद्धा बोली : तुम दिन भर कहाँ भूले से घूमते रहे? आखेट-वृत्ति इतनी प्यारी हो गयी है कि शरीर और घर की सुधि भी अब तो तुम्हें नहीं रहती!

मैं यहाँ अकेली—अकेली—एकाकिनी। नितांत—एक दम। कानन—वन। मृग—पशु। अशांत—व्यग्र।

अर्थ—मैं यहाँ अकेली बैठी तुम्हारा मार्ग ताकती रहती हूँ। जब वन में व्यग्र होकर तुम पशु के पीछे दौड़ते हो, तब तुम्हारे चरणों की ध्वनि जैसे मेरे कानों में पड़ती रहती है।

ढल गया दिवस—ढल गया—समाप्त हुआ। रागारुण—सूर्य के समान लाल। नीड़ों—घोंसलों। विहग युगल—पक्षियों के जोड़े। शिशुओं—बच्चों।

अर्थ—पीले रंग वाला दिन ढल गया है पर तुम अस्तगत होते हुए शाम का लाल सूर्य बन कर अभी तक घूम रहे हो। देखो, अपने घोंसलों में पक्षियों के जोड़े अपने-अपने बच्चों को चूम रहे हैं।

उनके घर में—कोलाहल—पक्षियों की चहचहाहट। सूना—सन्नाटे से भरा। कमी—अभाव। अन्य द्वार—बाहर।

अर्थ—पक्षियों के घोंसलों में चहचहाहट मची है, पर मेरी गुफा के द्वार पर

सोने की सिकता—सिकता—बालू । कालिंदी—यमुना जिसका वर्ण श्याम है । उसास भरना—लहरें लेना । स्वर्गङ्गा—आकाश गगा । इन्दीवर—नील कमल । हास—खिलना ।

अर्थ—पयोधरों पर बँधी ऊन की काली पट्टी ऐसी लगती थी मानो सोने की बालुका पर यमुना लहराती बह रही हो, या आकाश में नीले कमलों की एक पक्ति खिली हो ।

वि०—यहाँ पयोधरों की तुलना सोने की बालुका और आकाश-गगा से की है तथा काली पट्टिका की श्याम यमुना और नीले कमलों की पक्ति से । यद्यपि स्पष्ट शब्दों में कवि ने नहीं लिखा, पर उपमान पक्ष में यमुना के साथ 'भर उसास' से यह दृश्य उपमेय पक्ष में जग उठता है कि साँसों के लेने में श्रद्धा के पयोधर उठते और नीचे हो-हो जाते थे ।

पृष्ठ १४३

कटि में लिपटा—कटि—कमर । नवल—नवीन । वसन—वस्त्र । दुर्भर—असह्य । जननी—माँ की स्थिति में आने वाली श्रद्धा । सलील—प्रसन्नता से ।

अर्थ—उसकी कमर में पयोधरों पर कसी पट्टी ही जैसा हल्का और नीले रग का बुना हुआ वस्त्र लिपटा था । गर्भ की मीठी पीड़ा वैसे असह्य थी, पर वह एक शिशु की माँ बनने जा रही थी, अतः प्रसन्नता से उसे झेल रही थी ।

श्रम बिंदु बना-सा—श्रम बिंदु—पसीने की बूँदें । गर्व—अभिमान । पर्व—उत्सव ।

अर्थ—उसके ललाट पर पसीने की बूँदें थीं मानो श्रद्धा के हृदय का यह सरस अभिमान कि वह एक शिशु की माँ होने जा रही है उस रूप में झलक उठा या यह समझिये कि सन्तानोत्पत्ति का महान् उत्सव निकट आ गया था, अतः वे मस्तक से चूने वाली पसीने की बूँदें न थीं, पुष्प थे जो पृथ्वी पर झड़ रहे थे ।

मनु ने देखा जब—खेद—शिथिलता, खिन्नता । इच्छा—वासना, कामेच्छा । भाव—हाव भाव ।

अर्थ—मनु ने सहज शिथिलता से परिपूर्ण श्रद्धा की वह आकृति देखी जो उनकी वासना-वृत्ति का प्रबल विरोध करती थी। उन्हें ऐसा भी प्रतीत हुआ कि उसमें अब पहले के से अनुपम हाव-भाव शेष नहीं।

वे कुछ भी—साधिकार—अधिकार भावना से।

अर्थ—उन्होंने कहा कुछ भी नहीं। केवल एक प्रकार की अधिकार भावना से चुपचाप उसे देखते रहे। पर श्रद्धा ने उनकी आँखों से उनके हृदय के भाव को ताड़ लिया और उस पर वह थोड़ी मुस्कुरा उठी।

पृष्ठ १४४

दिन भर थे कहाँ—भटकना—भूले व्यक्ति के समान घूमना। हिंसा—शिकार। आखेट—वृत्ति।

अर्थ—अपनी वाणी में मधुर स्नेह भर कर श्रद्धा बोली : तुम दिन भर कहाँ भूले से घूमते रहे ? आखेट-वृत्ति इतनी प्यारी हो गयी है कि शरीर और घर की सुधि भी अब तो तुम्हें नहीं रहती!

मैं यहाँ अकेली—अकेली—एकाकिनी। नितांत—एक दम। कानन—वन। मृग—पशु। अशांत—व्यग्र।

अर्थ—मैं यहाँ अकेली बैठी तुम्हारा मार्ग ताकती रहती हूँ। जब वन में व्यग्र होकर तुम पशु के पीछे दौड़ते हो, तब तुम्हारे चरणों की ध्वनि जैसे मेरे कानों में पड़ती रहती है।

ढल गया दिवस—ढल गया—समाप्त हुआ। रागारुण—सूर्य के समान लाल। नीड़ों—घोंसलों। विहग युगल—पक्षियों के जोड़े। शिशुओं—बच्चों।

अर्थ—पीले रंग वाला दिन ढल गया है पर तुम अस्तगत होते हुए शाम का लाल सूर्य बन कर अभी तक घूम रहे हो। देखो, अपने घोंसलों में पक्षियों के जोड़े अपने-अपने बच्चों को चूम रहे हैं।

उनके घर में—कोलाहल—पक्षियों की चहचहाहट। सूना—सन्नाटे से भरा। कमी—अभाव। अन्य द्वार—बाहर।

अर्थ—पक्षियों के घोंसलों में चहचहाहट मची है, पर मेरी गुफा के द्वार पर

कितना सन्नाटा है। मैं पूछती हूँ तुम्हें ऐसा किस बात का अभाव है जिसके लिए तुम बाहर घूमते रहते हो ?

पृष्ठ १४५

श्रद्धे तुमको कुछ—विकल घाव—तीखी चोट।

अर्थ—मनु बोले श्रद्धा चाहे तुम्हें किसी बात की कमी न हो, पर मेरा अभाव तो अभी बना हुआ है। कोई ऐसी वस्तु मैं खो बैठा हूँ जिसके न मिलने से हृदय में एक तीखा घाव हो गया है।

चिर मुक्त पुरुष—चिर मुक्त—सदा से स्वतंत्र। अवरुद्ध—परतन्त्रता का। श्वास—जीवन। निरीह—विवशता का। गतिहीन—जड़। पङ्गु—जो चल न सके, जो अपनी उन्नति न कर सके। ढहना—गिरना। डीह—टीला।

अर्थ—पुरुष सदा से स्वतन्त्र प्रकृति का रहा है। वह विवशता और परतन्त्रता का जीवन नहीं बिता सकता। गाँव के उजड़े हुए टीले के समान वह जड़ बना पड़ा रहे, बढ़े न (अपनी उन्नति न करे) ऐसा नहीं हो सकता।

जब जड़ बंधन—मृदु—कोमल। ग्रन्थि—शृंखला। अधीर—छटपटाहट।

अर्थ—प्राणों के कोमल गात को जब मोह के जड़ बंधन से कस दिया जाता है, तब एक सीमा तक तो सहनीय है, पर उसके आगे जब उसे और अधिक जकड़ रखने का आकुल प्रयत्न होता है तब प्राण छटपटा कर शृंखला की सारी कड़ियों को ही तोड़ कर मुक्त हो जाते हैं।

वि०—यह बात नहीं है कि मनु श्रद्धा का प्रेम न चाहते हों। इसके विपरीत वे चाहते थे कि श्रद्धा उन्हें प्यार करने के अतिरिक्त और कुछ करे ही नहीं। पर उनकी दृष्टि से श्रद्धा का प्रेम मोह-मात्र था जिससे उन्हें अपने विकास का पथ अवरुद्ध दिखाई दिया।

हँस कर बोले—निर्झर—झरना। ललित—सुन्दर। उल्लास—प्रसन्नता, आनन्द—आह्लाद।

अर्थ—इतना उन्होंने हँसते हुए कहा जिससे श्रद्धा को कुछ बुरा न लगे।

उस वाणी मे वैसी ही मिठास थी जैसी झरने के मनोहर गान में रहती है। और जैसे झरने की कलकल ध्वनि में एक आनन्द का स्वर रहता है और सुनने वालों के प्राणों को वह मस्त बनाने की शक्ति रखता है उसी प्रकार उनके शब्दों मे एक आह्लाद-भावना भरी थी और प्राणों में मधुरता भर उन्हें प्रभावित करने की शक्ति उनमें विद्यमान थी।

वह आकुलता अब—आकुलता—व्याकुलता। ततु—धागा, तार। सदृश—समान।

अर्थ—तुम्हारे अनुराग मे मेरे लिए वह व्याकुलता अब कहाँ बची है जिसमे मैं सब कुछ भूल जाता। अब तो तुम इस तकली के काम में ऐसी लगी हुई हो जैसे कोई आशा के कोमल तार (भाव) से बँधा रहता है।

पृष्ठ १४६

यह क्यो क्या—यह—तकली चलाना। शावक—पशुओ के बच्चे। मृदुल—कोमल, मुलायम। चर्म—चमड़ा। मृगया—आखेट।

अर्थ—तकली पर ऊन तुम क्यो तैयार करती हो? क्या तुम्हारे लिए पशुओं के बच्चो के सुन्दर मुलायम चमड़े मे नहीं लाता जिनसे तुम अपना शरीर ढक सको? तुम बीज क्यों बीनती हो? क्या मेरे आखेट-कर्म में शिथिलता आ गई है जिससे तुम्हारे भोजन की सामग्री मे न जुटा सकूँ?

तिस पर यह—सखेद—थकावट लाने वाला। भेद—रहस्य।

अर्थ—और इस सबसे ऊपर तुम पीली क्यो पडती जा रही हो? बुनने में तुम इतना श्रम ही क्यों करती हो जिससे थक जाओ? मै जानना चाहता हूँ यह सब तुम किसके लिए कर रही हो? तुम्हारे इस परिश्रम का रहस्य क्या है?

अपनी रक्षा करने मे—रक्षा—बचाव। अस्त्र—वह हथियार जो फेंक कर चलाया जाय जैसे बाण। शस्त्र-मुख्यतः वह हथियार जो हाथ में लेकर चलाया जाय जैसे तलवार। हिंसक—फाड खाने वाले पशु जैसे सिंह, भेड़िया, शूकर आदि।

अर्थ—जगल में कोई तुम पर आक्रमण करदे और अपने बचाव के लिए

तुम उस पर अस्त्र चला दो इस प्रकार हिंसक-जतुओं से शरीर रक्षा के लिए शस्त्र-प्रयोग की बात तो मेरी भी समझ में आती है।

पर जो निरीह—निरीह—भोला, यहाँ सीधे साधे पशु। समर्थ—शक्ति।

अर्थ—पर जो भोले पशु जीवन धारण कर कुछ उपकार करने की शक्ति रखते हैं, वे जीवित रहकर हमारे काम क्यों न आवें, इस बात को मैं समझ न सकी।

पृष्ठ १४७

चमड़े उनके आवरण—आवरण—ढकने वाली कोई वस्तु। मासल—हृष्ट पुष्ट। दुग्ध धाम—दूध से भरे।

अर्थ—उनका चर्म उनके शरीर को ही ढके। शरीर ढकने की जो हमारी आवश्यकता है उसकी पूर्ति ऊन से हो। वे जीवें और हृष्ट-पुष्ट हों। वे दूध से भरे रहें और हम उन्हें दुह कर उनका दूध पीवें।

वे द्रोह न करने—द्रोह—शत्रुता। स्थल—वस्तु। सहेतु—उद्देश्य से। भव—ससार। जलनिधि—समुद्र। सेतु—पुल। रक्षक—उद्धारकर्त्ता।

अर्थ—जो पशु किसी उद्देश्य या प्रयोजन के लिए पाले जा सकते हैं, वे शत्रुता की वस्तु नहीं। हमारा विकास यदि पशुओं से कुछ भी अधिक है, तो हमें चाहिये कि इस ससार रूपी समुद्र में हम उनके उद्धार और रक्षा का कारण बनें।

मैं यह तो—सहज लब्ध—सरलता से प्राप्त। सघर्ष—युद्ध। विफल—असफल। छले जायँ—ऐश्वर्यों से वञ्चित रहें।

अर्थ—मनु बोले : जो सुख सरलता से प्राप्त किये जा सकते हैं उन्हें हम यों ही छोड़ दें, इस बात को मैं नहीं मानता। जीवन एक युद्ध है। उसमें हम असफल रहें और ससार के ऐश्वर्यों से हमें वञ्चित होना पड़े यह भी मुझे स्वीकार नहीं।

काली आँखों की—तारा—पुतली। मानस—मन। मुकुर—दर्पण। प्रतिबिंबित—बिम्ब पड़ना, छवि का बसना। अनन्य—एक व्यक्ति के प्रति दृढ़ निष्ठा।

अर्थ—तुम्हारी आँखों की काली पुतलियों में अपनी ही मूर्ति देख कर मैं न्य हो जाऊँ और मेरे मन के दर्पण में केवल तुम्हारी छवि ही झलकती रहे।

पृष्ठ १४८

अद्धे यह नव—नव—नवीन, विचित्र, विलक्षण। सकल्प—इच्छा। ल दल—पीपल का पत्ता। डोल—अस्थिर, चचल।

अर्थ—हे श्रद्धा, तुम्हारी इस विचित्र इच्छा की पूर्ति मैं नहीं कर सकता। ह जीवन क्षणिक है, अतः अमूल्य है। जीवन का सुख उसी प्रकार अस्थिर है से पीपल का पत्ता प्रतिपल चचल रहता है। पर मैंने निश्चय किया है कि मैं सका भोग करूँगा।

देखा क्या तुमने—स्वर्गीय सुख—बहुत बड़ा सुख। प्रलय नृत्य—नाश। चिरनिद्रा—मृत्यु। विश्वास—निष्ठा। सत्य—अडिग।

अर्थ—क्या ससार के बड़े से बड़े सुख को तुमने छिन्न-भिन्न होते नहीं खा? जब सभी वस्तुओं का अत विनाश में होता है और मृत्यु हमें सदा को लाने के लिए आती है, तब परोपकार, विकास, अहिंसा आदि के प्रति तुम्हारी तनी अडिग निष्ठा क्यों है?

यह चिर प्रशांत—चिर—स्थायी। प्रशात—शात। मगल—कल्याण। अभिलाषा—कामना। सचित—एकत्र, इकट्ठी।

अर्थ—जब सब कहीं अशान्ति और विनाश है, तब एक स्थायी शान्ति और कल्याण की कामना तुम्हारे हृदय में क्यों उमड रही है? तुम हृदय में नेह सँजोकर क्यों रख रही हो? किस अन्य प्राणी के प्रति अब तुम अनुरागमयी हो रही हो?

यह जीवन का—वरदान—सफलता। दुलार—प्यार। वहन—सहन। भार—बोझ।

अर्थ—हे रानी, अपना वह प्यार जो मेरे जीवन की सबसे बड़ी सफलता है मुझे दे दो। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा हृदय केवल मेरी ही चिंता का भार लिए रहे।

तुम उस पर अस्त्र चला दो इस प्रकार हिंसक-जतुओं से शरीर रक्षा के लिए शस्त्र-प्रयोग की बात तो मेरी भी समझ में आती है।

पर जो निरीह—निरीह—भोला, यहाँ सीधे साधे पशु। समर्थ—शक्ति।

अर्थ—पर जो भोले पशु जीवन धारण कर कुछ उपकार करने की शक्ति रखते हैं, वे जीवित रहकर हमारे काम क्यों न आवें, इस बात को मैं समझ न सकी।

पृष्ठ १४७

चमड़े उनके आवरण—आवरण—ढकने वाली कोई वस्तु। मासल—हृष्ट पुष्ट। दुग्ध धाम—दूध से भरे।

अर्थ—उनका चर्म उनके शरीर को ही ढके। शरीर ढकने की जो हमारी आवश्यकता है उसकी पूर्ति ऊन से हो। वे जीवें और हृष्ट-पुष्ट हों। वे दूध से भरे रहें और हम उन्हें दुह कर उनका दूध पीवें।

वे द्रोह न करने—द्रोह—शत्रुता। स्थल—वस्तु। सहेतु—उद्देश्य से। भव—ससार। जलनिधि—समुद्र। सेतु—पुल। रक्षक—उद्धारकर्त्ता।

अर्थ—जो पशु किसी उद्देश्य या प्रयोजन के लिए पाले जा सकते हैं, वे शत्रुता की वस्तु नहीं। हमारा विकास यदि पशुओं से कुछ भी अधिक है, तो हमें चाहिये कि इस ससार रूपी समुद्र में हम उनके उद्धार और रक्षा का कारण बनें।

मैं यह तो—सहज लब्ध—सरलता से प्राप्त। सघर्ष—युद्ध। विफल—असफल। छले जायँ—ऐश्वर्यों से वञ्चित रहें।

अर्थ—मनु बोले : जो सुख सरलता से प्राप्त किये जा सकते हैं उन्हें हम यों ही छोड़ दें, इस बात को मैं नहीं मानता। जीवन एक युद्ध है। उसमें हम असफल रहें और ससार के ऐश्वर्यों से हमें वञ्चित होना पड़े यह भी मुझे स्वीकार नहीं।

काली आँखों की—तारा—पुतली। मानस—मन। मुकुर—दर्पण। प्रतिबिंबित—बिंब पड़ना, छवि का बसना। अनन्य—एक व्यक्ति के प्रति दृढ़ निष्ठा।

अर्थ—तुम्हारी आँखों की काली पुतलियों मे अपनी ही मूर्ति देख कर मैं धन्य हो जाऊँ और मेरे मन के दर्पण में केवल तुम्हारी छवि ही झलकती रहे।

पृष्ठ १४८

श्रद्धे यह नव—नव—नवीन, विचित्र, विलक्षण। सकल्प—इच्छा। चल दल—पीपल का पत्ता। डोल—अस्थिर, चंचल।

अर्थ—हे श्रद्धा, तुम्हारी इस विचित्र इच्छा की पूर्ति मै नहीं कर सकता। यह जीवन क्षणिक है, अत. अमूल्य है। जीवन का सुख उसी प्रकार अस्थिर है जैसे पीपल का पत्ता प्रतिपल चचल रहता है। पर मैने निश्चय किया है कि मे उसका भोग करूँगा।

देखा क्या तुमने—स्वर्गीय सुख—बहुत बड़ा सुख। प्रलय नृत्य—विनाश। चिरनिद्रा—मृत्यु। विश्वास—निष्ठा। सत्य—अडिग।

अर्थ—क्या ससार के बड़े से बड़े सुख को तुमने छिन्न-भिन्न होते नहीं देखा? जब सभी वस्तुओं का अत विनाश में होता है और मृत्यु हमें सदा को सुलाने के लिए आती है, तब परोपकार, विकास, अहिंसा आदि के प्रति तुम्हारी इतनी अडिग निष्ठा क्यों है?

यह चिर प्रशांत—चिर—स्थायी। प्रशात—शात। मगल—कल्याण। अभिलाषा—कामना। सचित—एकत्र, इकट्ठी।

अर्थ—जब सब कहीं अशान्ति और विनाश है, तब एक स्थायी शान्ति और कल्याण की कामना तुम्हारे हृदय मे क्यों उमड रही है? तुम हृदय में स्नेह सँजोकर क्यों रख रही हो? किस अन्य प्राणी के प्रति अब तुम अनुरागमयी हो रही हो?

वह जीवन का—वरदान—सफलता। दुलार—प्यार। वहन—सहन। भार—बोझ।

अर्थ—हे रानी, अपना वह प्यार जो मेरे जीवन की सबसे बड़ी सफलता है मुझे दे दो। मै चाहता हूँ कि तुम्हारा हृदय केवल मेरी ही चिंता का भार लिए रहे।

मेरा सुन्दर विश्राम—विश्राम—शान्ति देने वाला। सृजता हो—निर्माण करता हो। मधुमय—मधुर। लहरें—भावनाओं की तरंगें।

अर्थ—तुम्हारा हृदय मुझे विश्राम देने वाला सिद्ध हो। वह अपने भीतर मेरे प्रेम का एक मधुर ससार निर्मित करे। उस ससार में मेरे अनुराग की ही मधुर धारा बहे और उस धारा में मेरे प्रति भावनाओं की लहरें एक-एक करके उठें।

× × ×

पृष्ठ १४६

मैंने तो एक—कुटीर—कुटिया। अधीर—जल्दी।

अर्थ—मनु की बातों का कोई उत्तर न देती हुई श्रद्धा बोली : चलो, मैंने जो अपनी एक कुटिया बनाई है, उसे देख लो। इतना कह, मनु का हाथ पकड़ वह उन्हें जल्दी-जल्दी ले चली।

उस गुफा समीप—पुआल—दाने झड़े धान के डंठल। छाजन—पटाव, छप्पर। शान्ति पुज—शान्तिप्रद।

अर्थ—गुफा के ही समीप धानों के डठलों का शान्तिप्रद एक पटाव था जहाँ कोमल लताओं की घनी डालों से एक कुज बन गया था।

थे वातायन भी—वातायन—झरोखे, खिड़की। प्राचीर—दीवाल। पर्ण—पत्ते। शुभ्र—स्वच्छ। समीर—पवन। अभ्र—बादल।

अर्थ—पत्तों की बनी स्वच्छ दीवाल थी। उस में काट कर खिड़कियाँ बनाई गई थीं जिनमें होकर यदि पवन और बादल के टुकड़े आवें तो रुके न रहें, भीतर प्रवेश करके स्वच्छदता से शीघ्र ही बाहर जा सकें।

उसमे था झूला—वेतसी लता—बेंत। सुरुचिपूर्ण—सुन्दर। धरातल—पृथ्वी। सुरभि चूर्ण—सुगंधित पराग।

अर्थ—कुटिया के भीतर बेतों का बना सुन्दर झूला पड़ा था। पृथ्वी पर फूलों का चिकना कोमल सुगधित पराग बिछा।था।

पृष्ठ १५०

कितनी मीठी अभिलाषाएँ—अभिलाषाएँ—कामनाएँ। घूमना–विचरण करना। मगल—शुभ, मागलिक।

अर्थ—उस कुटिया मे श्रद्धा के हृदय की बहुत-सी मधुर कामनाएँ चुपचाप विचरण कर रही थीं। उसके कोनों पर श्रद्धा के कितने ही मीठे मागलिक गाने मँडरा रहे थे।

भाव यह कि जब श्रद्धा उस कुटिया में बैठती तभी सोचती थी: मेरा नन्हा-सा बच्चा इस झूले पर झूलेगा, मैं उसे गोद में लूँगी, फूलों की शय्या पर वह घुटनों के बल चलेगा, हँसे रूठेगा आदि। इसी प्रकार वह उन शुभ गीतों को भी गुनगुनाती रहती थी जिन्हें वह अपने शिशु को लोरी रूप में या वैसे ही प्रसन्न करने को सुनावेगी।

मनु देख रहे—चकित—आश्चर्य मे आकर। गृहलक्ष्मी—पत्नी जो घर की लक्ष्मी कहलाती है। गृह-विधान—गृह निर्माण कला। साभिमान—सगर्व।

अर्थ—मनु ने चकित होकर गृहलक्ष्मी श्रद्धा के गृह-निर्माण की इस नवीन कला को देखा। पर उन्हें इससे किसी प्रकार की प्रसन्नता न हुई। वे सोचने लगे . यह सब कुछ क्यों? इस सुख का गर्व के साथ उपभोग कौन करेगा?

चुप थे पर—नीड़—घोंसला। कलरव—चहचहाहट, मधुर ध्वनि। आकुल—चचल। भीड़—बच्चे।

अर्थ—वे चुप हो रहे। इतने मे श्रद्धा ने समझाया देखो यह घोसला तो बन गया, पर इसमे चहचहाहट करने वाली शिशुओं की चचल भीड़ अभी नहीं आई।

तुम दूर चले—निर्जनता—सूनापन। पेठ—डूबना।

अर्थ—जब तुम दूर चले जाते हो उस समय में यहाँ बैठी हुई तकली घुमाती रहती हूँ और अपने चारों ओर के सूनेपन मे डूब जाती हूँ।

मैं बैठी गाती—प्रतिवर्त्तन—चक्कर, घुमाव। विभोर—मग्न। अहेर—आखेट, शिकार।

अर्थ—जैसे-जैसे तकली चक्कर काटती है वैसे ही वैसे मैं लय मे मग्न होकर

बैठी हुई गाती रहती हूँ : मेरी तकली तू धीरे-धीरे घूम। मेरे प्रियतम आखेट करने गए हैं।

पृष्ठ १५१

जीवन का कोमल—ततु—धागे और भावनाएँ। मजुलता—रम्यता।

अर्थ—जैसे तुम्हारे धागे कोमल हैं और बढ़ते जा रहे हैं, जीवन की कोमल भावनाएँ भी वैसे ही रम्यता धारण करें तथा विकसित हों। जैसे तुम्हारे धागों से बुने वस्त्र से नग्न शरीर जब ढक जाता है तब बाह्य सुन्दरता को निखार देता है, वैसे ही सभ्य भावों को अगीकार कर मन के सौंदर्य का मूल्य बढ़ जाय।

किरनों सी तू—प्रभात—प्रातःकाल और नवजात शिशु। निर्वसना—वस्त्रहीन, नग्न। नवल गात—नवीन देह।।

अर्थ—जैसे प्रभात-काल में उज्ज्वल किरनों का वस्त्र ओढे भोली-भाली प्रकृति प्रकाश से। अपने नग्न शरीर को ढक लेती है, वैसे ही मेरे जीवन के मधुर प्रभात अर्थात् मेरे बच्चे को तू अपने किरन जैसे उजले धागों से बुने वस्त्र से ढक देना, जिससे वह नगा सरल शिशु अपने नवीन गात को तेरी शुभ्रता में छिपा ले।

वासना भरी उन—आवरण—पर्दा। कातिमान—रम्य। फुल्ल—खिले।

अर्थ—हे तकली, तेरे द्वारा बुना वस्त्र नग्न शरीर को वासना की दृष्टि से देखने वाली आँखों के लिए एक रम्य आवरण का काम देगा। खुले शरीर का सौन्दर्य वस्त्रों में कुछ-कुछ वैसे ही निखर आवेगा जैसे खिला पुष्प लता की आड़ में और भी रम्य प्रतीत होता है।

अब वह आगन्तुक—आगन्तुक—जो आवे, यहाँ श्रद्धा की आगामी सतति से तात्पर्य है। निर्वसना—वस्त्रहीन। जड़ता—अनुभूति-शून्यता, अनुभव-हीनता। मग्न—प्रसन्न, संतुष्ट।

अर्थ—भविष्य में जो शिशु मेरे गर्भ से जन्म लेगा, वह गुफाओ में

पशुओं के समान वस्त्रहीन और नगा न रहेगा। वह ऐसे जीवन से कभी सतुष्ट न होगा जिसमें अभाव की अनुभूति ही नहीं होती।

सूना न रहेगा—लघु—छोटा। विश्व—ससार, गृहस्थी। मृदुल—कोमल। फेन—पराग।

अर्थ—जब तुम कहीं चले भी जाया करोगे तब भी मेरा यह छोटा-सा ससार सूना न रहेगा। उस बीच मैं अपने शिशु के लिए मकरद से सना फूलों के पराग का बिछौना बिछाऊँगी।

पृष्ठ १५२

झूले पर उसे—दुलरा कर—प्यार से। लिपटा—चिपटा।

अर्थ—मैं उसे झूले पर झुलाया करूँगी। प्यार से उसका मुख चूमा करूँगी। वह मेरी छाती से चिपट कर इस घाटी में सरलता से घूम आया करेगा।

वह आवेगा मृदु—मृदु—कोमल। मलयज—मलय पर्वत से, जिस पर चन्दन के वृक्षों की अधिकता है, चलने वाला पवन। मसृण—चिकने। मधुमय—सरलता। स्मिति—हास्य। प्रवाल—किशलय, नवीन कोमल अरुण-वर्णा पत्ती।

अर्थ—अपने चिकने बालों को हिलाता हुआ वह मृदु मलय पवन के समान मस्त गति से आवेगा। उसके अधरों से नवीन मधुर मुस्कान ऐसे फूट उठेगी जैसे लता से फूटने वाले अरुण किशलय (पत्ते) पर नवीन सरसता।

अपनी मीठी रसना—रसना—जिह्वा, वाणी। कुसुम धूलि—पराग। मकरद—पुष्परस।

अर्थ—अपनी मधुर वाणी से वह ऐसी मीठी बातें मुझसे किया करेगा मानो मेरी पीड़ा को दूर करने के लिए वह पराग को मकरद में घोल कर छिड़क रहा हो।

वि०—मकरद में पराग को घोलने की क्रिया से एक लेप-सा तैयार हो जायगा और प्रसिद्ध है कि शीतल लेप ताप का शमन करता है।

मेरी आँखों का—पानी—अश्रुबिन्दु। अमृत—सुख की बूँदें। स्निग्ध—

कोमल यहाँ सुन्दर। निर्विकार—सरल। अपना चित्र—अपने प्रति ममता।

अर्थ—तुम्हारे वियोग में जब मैं आँसू बहाऊँगी और इधर उसकी सरल आँखो में अपने प्रति ममता देखकर मुग्ध होऊँगी, उस समय वे अश्रुबिंदु सुन्दर अमृत बिंदुओं (सुख के आँसुओं) मे बदल जाया करेंगे।

× × × ×

पृष्ठ १५३

तुम फूल उठोगी—फूल उठना—लता पर फूल आना और मनुष्य का प्रसन्न होना। कंपित—बखेरना और सिहरना। सौरभ—गन्ध। कस्तूरी मृग—एक प्रकार का हिरण जिसकी नाभि में सुगन्धित कस्तूरी रहती है।

अर्थ—श्रद्धा की बातें सुन कर मनु कहने लगे : सुगन्ध की लहरें बखेरती हुई जैसे लता फूल उठती है, उसी प्रकार तुम तो सुख की भावनाओं से सिहर कर अपने में समा न सकोगी, पर मैं फिर भी कस्तूरी मृग की तरह सुगध (सुख) की खोज में जगल-जगल सूने में भटकता फिरूँगा।

यह जलन नहीं—जलन—आतरिक दाह या पीड़ा। ममत्व—प्यार। पञ्चभूत—पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश जो महाभूत कहलाते हैं। रमण—रमाना, भोगना। एक तत्व—अकेला, ईश्वरीय तत्व।

अर्थ—इस आतरिक दाह को मैं और अधिक नहीं सह सकता। मुझे प्यार चाहिये। इस जगत मे जैसे सब कहीं ईश्वरीय तत्व समाया हुआ है, उसी प्रकार मैं इस सम्पूर्ण ससार के सुखो का भोग अकेला ही करना चाहता हूँ।

यह द्वैत अरे—द्वैत—एक दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें आत्मा और परमात्मा दोनों की सत्ता मानी जाती है, पर यहाँ केवल दो व्यक्तियों से तात्पर्य है। द्विविधा—दो टुकड़े। विचार—इच्छा।

अर्थ—मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा तुम्हारे अनुराग का अधिकारी हो यह तो प्रेम के दो टुकड़े करने हुए, प्रेम बाँटने का एक ढग निकल आया। मैं कोई भिखारी हूँ? नहीं? यह सम्भव नहीं। यदि ऐसा होगा तो मैं इस इच्छा को ही खींच लूँगा कि मुझे तुमसे प्रेम प्राप्त करना है।

तुम दानशीलता—दानशीलता—दानियों का स्वभाव । सजल—जल भरे । जलद—बादल । सकल कलाधर—सोलह कलाओं से परिपूर्ण । शरद इदु—शरत् ऋतु का चद्रमा जो सभी ऋतुओं से स्वच्छ और मधुवर्षी होता है।

अर्थ—जलभरे बादलों के समान तुम अपनी दानशीलता प्रदर्शित करती प्रेम की बूंदें सभी कहीं बाँटती घूमो, यह मुझे सहन नहीं । आनन्द के आकाश में पूर्ण कला वाले शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान मैं एकाकी ही विचरण करना चाहता हूँ अर्थात् सुख का उपभोग अकेला ही करूँगा, अन्य को न करने दूँगा ।

भूले से कभी—आकर्षणमय—आकर्षक । हास—मुस्कान । मायाविनि—जादू का प्रभाव रखने वाली । जानु टेक—घुटने टेक, विनम्रता से ।

अर्थ—आकर्षक मुस्कान अधरों पर लाती हुई अब तो तुम भूले से कभी-कभी मेरी ओर देखा करोगी । हे जादू का-सा प्रभाव रखने वाली ! मैं उन व्यक्तियों में से नहीं हूँ जो इस प्रकार के दयाजनित प्रेम को घुटने टेक कर (विनम्रता से) उसे वरदान समझ स्वीकार करें ।

पृष्ठ १५४

इस दीन अनुग्रह—दीन—प्रेम के लिये लालायित व्यक्ति के प्रति । अनुग्रह—दया । बोझ—कृतज्ञता का भार । प्रयास—प्रयत्न । व्यर्थ—विफल, बेकार ।

अर्थ—हे श्रद्धा, तुम जो मुझे दीन समझ कर मेरे ऊपर कृपा कर रही हो, इसके भार से तुम मुझे दबा सकोगी, इस विचार को अपने मस्तिष्क से निकाल दो । तुम्हारा यह प्रयत्न अब व्यर्थ सिद्ध होगा ।

तुम अपने सुख—स्वतन्त्र—पृथक होकर । परवशता—परतन्त्रता, विवशता । मन्त्र—सिद्धान्त ।

अर्थ—अपने सुख को लेकर तुम सुखी रहो । मैं तुमसे पृथक होकर रहना चाहता हूँ, चाहे इससे मुझे दुःख ही मिले । अब मैं इसी सिद्धान्त को बार-बार दुहराऊँगा कि संसार में सबसे बड़ा दुःख है यह कि किसी का मन किसी के प्रति विवश हो जाय ।

लो चला आज—संचित—एकत्र, सँजोया हुआ। संवेदन—प्रेम की अनुभूतियाँ। भार—बोझ, गठरी। पुंज—समूह। काँटे—कष्ट। कुसुम कुंज—सुख।

अर्थ—प्रेम की जिन अनुभूतियों को मैंने अब तक सँजोया था, उनकी गठरी को आज मैं यहीं पटके जाता हूँ। इन्हें सँभालो। मुझे कष्ट मिले, मैं उसी में सुखी रहूँगा। तुम्हारा कुसुम-कुंज (सुख) तुम्हें ही फूले-फले।

कह ज्वलनशील—ज्वलनशील—ईर्ष्या की अग्नि में जलता। अन्तर—हृदय। प्रांत—स्थान। निर्मोही—निष्ठुर, कठोर। श्रांत—थकना।

अर्थ—इतना कहकर और अपने उस हृदय को लेकर, जो ईर्ष्या की अग्नि में जल रहा था, मनु चले गए। वह स्थान तब सूना हो गया। कामायनी अत्यन्त अधीरता से इस प्रकार चिल्लाते-चिल्लाते थक कर शांत हो गई कि अरे कठोर, रुक, मेरी बात तो सुनता जा।

इड़ा

कथा—श्रद्धा का परित्याग कर मनु अनेक स्थानों में घूमते फिरे। पर शान्ति उन्हें कहीं नहीं मिली। एक दिन वे सारस्वत प्रदेश में जा निकले। सरस्वती नदी के किनारे बसा यह राज्य भूचाल से नष्ट-भ्रष्ट हो गया था। मनु थके हुए थे और एक स्थान पर लेटे-लेटे सोच रहे थे : जीवन क्या है? जगत् क्या है? मनुष्य क्या है? हमारे अस्तित्व का तात्पर्य और उद्देश्य क्या है? कुछ हो, मैं जीवन का आदर्श जड़ हिमालय को नहीं बनाना चाहता, पवन और सूर्य को बनाना चाहता हूँ। मैं अकर्मण्यता को प्रश्रय नहीं देना चाहता, कर्मशील बनना चाहता हूँ। अच्छा, जीवन में इतनी भारी निराशा और असफलताओं के बीच हृदय में इतना मोह कैसे बचा रहता है? प्राणों की यह पुकार क्या चाहती है?

उजड़े सारस्वत प्रदेश की ओर देख कर उन्हें बड़ी पीड़ा हुई। विजयी इन्द्र के नगर की ऐसी दुर्दशा! असुरों और देवों के द्वन्द्व के वे दिन याद आये जब अपने-अपने विशिष्ट सिद्धान्तों को लेकर वे एक-दूसरे का व्यर्थ विरोध करते थे। फिर उन्हें श्रद्धा की याद आई। इसी समय आकाश में काम की वाणी उन्हें सुनाई दी : तुम्हारे दुःख का कारण यह है कि संसार को नश्वर समझ कर तुमने उसे भोगना चाहा और भोग से बाहर सुख की कल्पना की ही नहीं। तुम स्वार्थी ही नहीं, अहंकारी भी हो। अपने दुःख के लिए अपना दोष नहीं देखते, दूसरों को दोषी ठहराते हो। श्रद्धा के केवल शरीर के प्रेमी रहे तुम, उसकी निर्मल आत्मा के भीतर तुमने नहीं झाँका, अब तुम जिस नवीन मानव-राष्ट्र की स्थापना करने जा रहे हो उसमें सदा द्वेष, कलह, संकीर्णता, भेद, निराशा-पीड़ा का साम्राज्य रहेगा। भविष्य में प्राणियों की भक्ति में भेद, प्रेम में स्वार्थ रहेगा। रातदिन युद्ध होंगे। मनुष्य भाग्यवादी, अज्ञानी, अहंकारी होंगे। ललित-कलाओं

में कभी किसी स्थायी वस्तु की सृष्टि न कर सकेंगे। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उनके जीवन में घोर अशान्ति छायी रहेगी।

काम की यह वाणी सुन मनु उदास हो गये। इतने में प्रभातकाल हुआ और उस रम्य वातावरण के पट पर उन्होंने एक अनिंद्य सुन्दरी बालिका को देखा। उसका नाम इड़ा था और वह उस प्रदेश की महारानी थी। जब वह मनु के पास आई तो दोनों ने एक दूसरे को अपना परिचय दिया। इडा ने जब अपनी उजड़ी राजधानी मे मनु का स्वागत करना चाहा तब उन्होंने अपने दुःख की चर्चा उससे की। इड़ा ने कहा मैं तो यह समझती हूँ कि सुख-प्राप्ति के लिए मनुष्य को अपनी बुद्धि से काम लेना चाहिए। ईश्वर पर निर्भर रहना सबसे बड़ी मूर्खता है। यह पृथ्वी अनन्त ऐश्वर्यों से परिपूर्ण है और मनुष्य इसका एकमात्र स्वामी है। ऐसी दशा में, उसे क्या आवश्यकता पड़ी है कि वह किसी अलक्ष्य शक्ति के सामने सिर झुकावे।

यह बात मनु की समझ में आ गई और वे उस दिन से ध्वस्त सारस्वत साम्राज्य के पुनर्निर्माण में लगे।

पृष्ठ १५७

किस गहन गुहा—गहन—गहरी। अधीर—आकुल। झंझा—आँधी। विक्षुब्ध—क्रुद्ध। समीर—पवन। विकल—चंचल। परमाणु—अणु। अनिल—वायु। अनल—अग्नि। क्षिति—पृथ्वी। नीर—जल। विलीन—नष्ट। कटुता—पीडा। दीन—दुःखी। निर्माण—रचना। प्रतिपद—पद पद पर। विनाश—नाश कर्म। क्षमता—योग्यता। संघर्ष—युद्ध, प्रतियोगिता। विराग-उदासीनता। ममता—अनुराग।

अस्तित्व—जीवन। चिरतन—सनातन (Eternal)। विषम—तीखा, नुकीला। लक्ष्य—उद्देश्य। शून्य—सृष्टि। चीर—पूर्ति।

किसी एकान्त स्थान में अधिष्ठित मनु जीवन और उसकी समस्याओं पर विचार कर रहे हैं :—

अर्थ—जैसे पवन क्षुब्ध होकर आकाश के खोखले से आँधी का रूप धारण करके निकल पडता है, वैसे ही जीवन भी किसी आकुल क्षुब्ध आँधी के

प्रवाह के समान है, पर वह किस अगम्य गुहा (उद्गम) से प्रकट होता है इस बात का पता नहीं। जैसे आँधी धूलि के चञ्चल कणों को साथ लिये घूमती है, वैसे ही यह भी आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी और जल के चञ्चल अणु-समूहों से निर्मित है।

जीवधारी इधर स्वय सभी से डरता है, पर साथ ही दूसरों को आतंकित भी करता जाता है। इस प्रकार भय की उपासना-सी करता एक दिन वह मृत्यु के मुख में चला जाता है। ससार वैसे ही दीन है, पर मनुष्य अपने आचरण से जो पीड़ा पहुँचा रहा है, उससे जगत और भी अधिक दुःखी है।

पद-पद पर वह अपनी योग्यता इस बात में प्रकट करता है कि अभी एक वस्तु का निर्माण करेगा, फिर दूसरे ही पल उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगा। जब से वह इस ससार में आया है, तब से प्रकृति के अन्य जीवधारियों तथा सहजातियों से सघर्ष (प्रतियोगिता) में लग्न है। अभी सब से विरक्त हो जायगा, फिर एक ही क्षण के उपरात सब पर अपना अनुराग बिखेर देगा।

प्राणी एक तीखे तीर के समान है। इस सम्बन्ध में एक तो इस बात का पता नहीं कि सनातन जीवन (भगवान) रूपी धनुष से वह कब पृथक हुआ और दूसरे इस सूनेपन (शून्य में स्थित सृष्टि) में किस लक्ष्य को विद्ध करेगा—किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बढ़ रहा है ?

देखे मैंने वे—शृङ्ग—चोटियाँ। हिमानी—हिम, बर्फ। रजित—युक्त, मडित, सुशोभित। उन्मुक्त—स्वतन्त्र। उपेक्षा—तिरस्कार। तुंग—ऊँचे। प्रतीक—प्रतिमा। अबोध—सरला। स्तिमित—स्थिर, शात। गत—रहित। स्थिर—जड। प्रतिष्ठा—लक्ष्य, साधना। अबाध—स्वतत्र। मरुत—पवन। आग—जड। जग—चेतन। कपन—हलचल। ज्वलनशील—जलता हुआ। पतग—सूर्य।

अर्थ—मैंने पर्वत की वे चोटियाँ देखी हैं जो अचल हिम से मडित हैं, स्वतत्रता का अनुभव कर रही हैं, ऊँची हैं और नीचे की सभी वस्तुओं को इसी से मानो तिरस्कार की दृष्टि से देखती हैं। पृथ्वी भी जड है, पर इस विषय में इन्होंने उसके अभिमान को भी मिटा दिया है, क्योंकि प्राणियों के रूप में उस

पर कुछ तो कोलाहल पाया जाता है, पर ये तो मानो जड़ता की पूरी प्रतिमा हैं। इन्हें अपनी इस शुद्ध जडता का गर्व है।

पर्वत अपनी मौन साधना में मग्न हैं। बहने वाली सरला सरिताएँ मानो उसी के शरीर की पसीने की कुछ बूँदें हैं। उस स्थिर नेत्र वाले (भाव शून्य) को न शोक होता है और न क्रोध आता है।

इस प्रकार की मुक्ति में एक प्रकार की जड़ता है। अत अपने जीवन का लक्ष्य मैं कम से कम इस प्रकार का नहीं रखना चाहता। मैं तो अपने मन की गति उस स्वतत्र स्वभाव वाले पवन के समान चाहता हूँ जो पग-पग पर हलचल की लहरें उठाता चलता है और जड तथा चेतन सभी को चूमता हुआ आगे बढ़ जाता है।

या फिर अपने जीवन का आदर्श उस सूर्य को बनाना चाहता हूँ जो जलता तो है, पर गति भरा भी है।

पृष्ठ १५८

अपनी ज्वाला से—ज्वाला—हृदय की आग। प्रकाश—आलोक, यहाँ आग लगाना। प्रारभिक—श्रद्धा का घर। मरु अचल—मरुभूमि। विकास—उन्नति का पथ। होड़—सघर्ष। विजन—जनहीन। प्रान्त—स्थान। बिलखना—दुःखी होना। पुकार— पीड़ा। उत्तर—उलझन का समाधान। झुलसाना—कष्ट देना। फूल—कोमल हृदय व्यक्ति। कुसुम हास—फूलों के समान इच्छाओं का खिलना या पूरा होना।

अर्थ—जिस दिन जीवन के प्रथम सुन्दर निवास-स्थल में अपने हृदय की अग्नि (ईर्ष्या) से आग लगा कर उसे छोड़ आया, उसी दिन से वन, गुफा, कुज, मरुभूमि आदि सभी स्थानों में इस उद्देश्य से घूम रहा हूँ कि कहीं अपनी उन्नति का मार्ग पा सकूँ।

मैं पागल हूँ। मैंने किसी पर दया नहीं की। क्या श्रद्धा से मैंने ही ममता का सम्बन्ध नहीं तोडा? किसी पर आकर्षित होकर मैंने उदारता से काम नहीं लिया—सदा अपना स्वार्थ ही देखा। सबसे कड़े सघर्ष के लिए मैं तैयार रहा।

इस निर्जन भूमि में अपनी पीड़ा को लेकर मैं दुःखी घूम रहा हूँ। मेरी

उलझन का समाधान आज तक कहीं न हुआ । लू के चलने से जैसे फूल मुरझा जाता है, वैसे ही मैं जहाँ पहुँच जाता हूँ वहीं सभी किसी को कष्ट देता हूँ। आज तक किसी कोमल हृदय को मैं प्रसन्न न कर पाया।

मेरे सारे सपने उजड़ चुके हैं। कल्पना-जगत में मैं लीन रहता हूँ अर्थात् ऐसी-ऐसी कल्पनाएँ करता हूँ जो कभी पूरी नहीं हो सकतीं। मैंने अपनी इच्छाओं को पूरा होते कभी देखा ही नहीं।

इस दुखमय जीवन—हताश—निराश, हीन। कलियाँ—सुख देने वाली वस्तुएँ। काँटे—दुःख देने वाली वस्तुएँ। बीहड़—सूना, ऊबड़ खाबड़। नितांत—एकदम। उन्मुक्त—स्वतंत्र, खुले हुए। निर्वासित—बहिष्कृत, घर से निकाला हुआ। नियति—भाग्य। खोखली शून्यता—अंतरिक्ष में बसा संसार। कुलाँच—उछलना, वेग धारण करना। पावस रजनी—वर्षा की रात, घोर निराशा। जुगनूगण—सुखप्रद वस्तुएँ। ज्योतिकणों, सुखों। विनाश—नष्ट, छिन्न-भिन्न।

अर्थ—नीला आकाश उस नीली लता के समान है जिसमें अनेक टहनियाँ हों और जैसे टहनियों पर उजले फूल उलझे रहते हैं उसी प्रकार आकाश में सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों के रूप में प्रकाश उलझा हुआ है। इस सुख से हीन दुःखी जीवन में जो आशा का प्रकाश शेष है वह भी नीले आकाश में उलझे आलोक के समान है। वाह्य जगत में अपने चारों ओर जिन वस्तुओं से मैं सुख प्राप्त करने की कामना करता हूँ अन्त में वे दुःख देने वाली सिद्ध होती हैं।

जीवन का सूना पथ मैं बहुत कुछ काट चुका हूँ और जब चलते-चलते एक दम थक जाता हूँ तब रुक जाता हूँ। आज मैं अपने कर्मों के कारण ही अपने घर से बहिष्कृत (निकाल दिया गया) सा हो गया हूँ। कभी-कभी अशांत होने के कारण मैं रोने लगता हूँ। इधर प्रकृति में पर्वत की ये खुली चोटियाँ कोलाहल करती नदियों के रूप में मानो मेरी इस दशा पर हँसती सी रहती हैं।

इस जगत् में भाग्य-नटी का बड़ा भयंकर छाया-नृत्य हो रहा है अर्थात् भाग्य ने सभी को आकुल कर रखा है। इस सूने खोखले में अर्थात अंतरिक्ष में बसे संसार में पद-पद पर असफलता ही अधिक वेग धारण करती दिखाई पड़ती है।

वर्षा की रातों में जुगुनुओं को दौडकर जो इस आशा से पकडता है कि वह इनसे प्रकाश पा सकेगा वह प्रकाश तो पाता नहीं, उल्टे उनकी हत्या और कर देता है। इसी प्रकार अपनी घोर निराशा में जिस वस्तु को भी मै अपनी मुट्ठी में इसलिए भरता हूँ कि इससे सुख मिल जाय, उससे सुख तो प्राप्त होता नहीं, उल्टे उस सुख की सत्ता ही मिट जाती है। तात्पर्य यह कि जुगुनुओं के समान प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र रहकर ही प्रकाश (सहारा) दे सकती है। परतन्त्र होते ही उसकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है।

पृष्ठ १५६

जीवन निशीथ—निशीथ—रात । अधकार—तम, निराशा। तुहिन—कुहरा। जलनिधि—समुद्र । वार पार—एक छोर से दूसरे छोर तक। निर्वि-कार—पवित्र, सात्विक। मादक—मस्त बना देने वाला। निखिल—समस्त। भुवन—सृष्टि। भूमिका—गोद। अभग—पूरी। मूर्तिमान—साकार। अनग-छिपे छिपे। अरुण—सूर्य, लाल रग की, अनुरागमयी। ज्योति कला—प्रकाश। सुहागिनी—सौभाग्यवती स्त्री । उर्मिल—लहराती। कुकुम चूर्ण—रोली या सिंदूर। चिर—सदैव। निवास विश्राम—रहने का स्थान। जलद—बादल। उदार—विस्तृत। केश भार—केश कलाप, केश समूह।

अर्थ—जीवन एक रात के समान है। जैसे अँधेरी रातों में सध्या होते ही आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक अधकार नीले कुहरे के समुद्र के समान फैल जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण जीवन में निराशा का घना समुद्र भर गया है। सध्याकालीन सूर्य की अनन्त पवित्र किरणें जैसे उस अँधेरे में समा जाती हैं, वैसे ही निराशा के छाते ही चेतना की बहुत ही उज्ज्वल किरणें (सात्विक-भावनाएँ) लुप्त हो जाती हैं।

रजनी का तम जो समस्त सृष्टि को अपनी पूरी गोद में भर लेता है स्वभाव से इतना मादक होता कि उसमें प्राण मस्त होकर शयन करते हैं। इसी प्रकार निराशा जो अपने में मनुष्य के सारे जीवन को समेट लेती है स्वभाव से ऐसी तामसी वृत्ति वाली है कि वह जिस पर छाती है उसे निष्क्रिय बना देती है—कुछ भी करने योग्य नहीं रहने देती। पर छिपे-छिपे प्रतिक्षण उसके स्वरूप में कुछ

भी परिवर्तन होता रहता है। अतः कुछ काल के लिए तो अंधकार के समान निराशा साकार होकर हमारी आँखों के सामने खड़ी हो जाती है, पर एक समय आता है जब वह दूर हो जाती है।

प्रभातकाल होते ही रजनी के अंधकार में जैसे सूर्य-किरण की एक ज्योति-रेखा फूट उठती है, उसी प्रकार निराशा में ममता की एक क्षीण उजली अरुण-वर्णी (अनुरागमयी) रेखा विकसित होती है। यह ममत्व भावना निराश प्राणी को वैसी ही प्रिय लगती है जैसे सौभाग्यवती महिलाओं के लहराते बालों के बीच माँग का सिंदूर भला लगता है। हे निराशा, प्राण तो एक प्रकार से सदैव तुम्हीं को अपना विश्राम गृह बनाये रहते हैं अर्थात् प्राण तो सदैव तुम्हीं (निराशा) से घिरे रहते हैं। हे निराशा, तुम मोह रूपी बादलों की विस्तृत छाया हो—भाव यह कि मन में जितना भारी मोह होगा, उतनी बड़ी निराशा जीवन में उत्पन्न होगी। और अरी निराशा, तुम्हें तो माया साम्राज्ञी का केश-कलाप कहना चाहिये—तात्पर्य यह है कि जैसे रमणी की शोभा उसके केशों से है उसी प्रकार माया के शासन की शोभा निराशा से है—यह जगत माया के अधिकार में है और वह निराशा फैलाकर ही अपना प्रभुत्व प्रकट करती है।

वि०—इस छंद में संध्या से लेकर प्रभातकाल होने तक का पूरा दृश्य निराशा के रूप में चित्रित किया गया है।

नोट—इस गीत में एक स्थान पर 'तुहिन' का विशेषण 'नील' आया है। कुहरा श्वेत होता है, पर अलंकार-विधान में दृश्य की अनुरूपता के लिए कवि को यह अधिकार प्राप्त है कि वह सम्भव के साथ ही हेरफेर के साथ असम्भव उपमान भी जुटा सकता है।

जीवन निशीथ के—ज्वलन धूम सा—आग से उठे धुएँ के समान। दुर्निवार—जिसका निवारण न हो सके, अनिवार्य रूप से। लालसा—इच्छा। कसक—टीस, पीड़ा। मधुवन—मथुरा के पास यमुना के किनारे एक वन। कालिंदी—यमुना। दिगन्त—दिशाएँ। [illegible] नौकाएँ—सागर की नावें। कुहुकिनी—मायाविनी। अपलक दृग—खुली या बड़ी आँखें। कल्पना—आकर्षण। धूमिल—धुँधली। नव रचना—नवीन सृष्टि। प्रवास—घर से

दूर होना, सुख से दूर होना। श्यामल पथ—हरे भरे आम्रवनों में, अँधेरे पथ में। पिक—कोकिल।

अर्थ—जीवन एक रात है और उसकी निराशा उस रात में व्याप्त अंधकार—जिसमें कुछ सूझता नहीं, जिसमें सुख का प्रकाश लुप्त हो जाता है।

हे निराशा, जैसे आग से धुँए को पृथक नहीं किया जा सकता वैसे ही कामनाओं की आग से तुरन्त उठें हुए, उस धुँए के समान तुम हृदय में अनिवार्य रूप से घुमड़ती हो, जिससे छुटकारा नहीं। जैसे आग से चिनगारियाँ फूटती हैं, उसी प्रकार तुम्हारे कारण जो इच्छाएँ पूरी नहीं हो पातीं वे अपनी पूर्ति के लिए और जो टीस उठती है वह अपनी शांति के लिए पुकार मचाती रहती हैं।

यौवन मधुवन में बहने वाली यमुना के समान है। जैसे यमुना अपने जल से चारों दिशाओं (दो दिशाएँ लम्बाई की और दो चौड़ाई की) को छूकर बहती है उसी प्रकार यौवन अपनी सरसता से सभी को प्रभावित करता हुआ आगे बढ़ता है। शिशुओं की कागज की नावें जैसे कालिंदी में अनेक बार घूम कर भी किनारा नहीं पा सकतीं, उसी प्रकार यौवन-काल में भोले मन में अनंत भावनायें उठती हैं जो कभी पूरी नहीं होतीं।

जिस प्रकार मायाविनी रमणी की आँखों में अंजन-रेखा काली होने पर भी आकर्षक लगती है, उसी प्रकार हे निराशा, तुम अंधकारमयी होने पर भी यह आकर्षण छिपाये हुए हो कि किसी दिन तुम्हीं से आशा का जन्म होगा।

जिस प्रकार चित्रकार धुंधली रेखाओं ही से सुन्दर सजीव चित्रों की सृष्टि कर देता है उसी प्रकार हे निराशा, तुम्हारे धुँधले आवरण में आशाओं की सजीव मूर्तियाँ चंचलता से घूमती रहती हैं।

जिस प्रकार हरे-भरे कुंजों में कोकिल कूकने लगती है और उसकी वह पुकार असीम आकाश में प्रतिध्वनित हो उठती है, उसी प्रकार हे निराशा, जब तुम सभी प्रकार के सुखों से हमें दूर करती हो तब अपने सामने अँधेरा पक्ष पाकर प्राण पीड़ा से भर कर कराह उठते हैं और तब अनन्त नीले नभ में अर्थात् सभी कहीं वह करुण-ध्वनि व्याप्त हो जाती है। भाव यह कि दुःखी मनुष्य को सभी स्थान पीड़ादायक प्रतीत होते हैं।

पृष्ठ १६०

यह उजड़ा सूना—विध्वस्त—नष्ट। शिल्प—कला कृतियाँ, भवन, मंदिर, मूर्ति आदि। नितात—एकदम। विकृत—अशोभन, असुन्दर। वक्र—टेढ़ी-मेढ़ी। रुचि—इच्छा विकीर्ण—यहाँ वहाँ छितरी हुई। कुरुचि—बीभत्स दृश्य। पत्र-पत्ते। जीर्ण—सूखे। हिचकी—सकोच, हिचकिचाहट। कसक—पीड़ा। आकाशवेलि—अमरवेल नाम की एक पीली लता जिसकी न तो जड़ होती है और न जिस पर पत्ते आते हैं, पर जिस वृक्ष पर यह छाती है उसे सुखा देती है, यद्यपि स्वय हरी-भरी रहती है। अशात—विकपित होकर।

सारस्वत प्रदेश मे पहुँच कर और भूकप से ध्वस्त नगर देखकर मनु कहते हैं—

अर्थ—यह नगर भी उजड़ गया, सूना हो गया। इसके सुख-दुख की व्याख्या इसमें खड़ी शिल्प की वस्तुओं और फिर उनके एकदम नष्ट-भ्रष्ट होने की क्रिया से की जा सकती है अर्थात् सुन्दर भवन, मन्दिर, मूर्तियाँ जैसे कभी यहाँ खड़ी थीं वैसे ही सुख कुछ दिन को आता है और जैसे वे फिर ढह गई वैसे ही वह एक दिन समाप्त हो जाता है और फिर दुःख छा जाता है।

खड़े हुए महल टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ बना रहे हैं। यह दृश्य इस बात की सूचना देता है कि मनुष्य का भाग्य भी इसी प्रकार वक्र और अशातिप्रद है।

अपूर्ण इच्छाओं की बहुत सी सुखद स्मृतियाँ यहाँ वहाँ अभी तक मँडरा रही हैं अर्थात् मैं कल्पना कर सकता हूँ कि इसके बहुत से हत प्राणियों की बहुत-सी कामनाएँ पूरी न हो सकी होंगी और मरते समय करुण श्वासों के रूप में ही वे उन सुखमयी स्मृतियों को यहाँ छोड़ गये होंगे।

जिस प्रकार पत्ता सूख कर डाल से गिर पड़ता है और फिर उसके प्रति कोई आकर्षण नहीं रहता, इसी प्रकार मकानों के ढेर के नीचे आहत प्राणी और पशु आदि दबे पड़े हैं। यह दृश्य कितना बीभत्स (घिनौना) है।

इस नगर का स्वरूप बिगड़ गया है, अत. करुणा उत्पन्न होने पर भी इसे प्यार करने मे हिचक लगती है। इसका कोना-कोना सूना हो गया है, जहाँ अब पीड़ा बरसती है।

जैसे अमरबेल जिस वृक्ष पर छाती है उसे तो सुखा देती है, पर स्वय हरी-भरी रहती है, इसी प्रकार यह नगर उजड़ गया, पर इसकी कामनाएँ जीवित हैं।

समाधि के खँडहर पर यदि कोई दीपक जला दे तो थोड़ी देर तो वे विकपित होकर जलते रहते हैं, फिर स्वय ही बुझ जाते हैं, शात हो जाते हैं। इसी प्रकार इस नगर का जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो गया है, इसे देखने वाले व्यक्ति के हृदय में थोड़ी देर को इसके सम्बन्ध में व्यथित करने वाली कुछ वृत्तियाँ उगती हैं, फिर थोड़ी देर में वे स्वत. मिट जाती हैं, शात हो जाती हैं।

यों सोच रहे—श्रात—थकित। सुखसाधन—सुखदायी। प्रशात—घनी शाति वाला। अटकते—रुकते। विकल—व्याकुल। वाम गति—दुर्दशा। वृत्रघ्नी—वृत्रासुर को मारने वाले इन्द्र। जनाकीर्ण—प्राणियों से भरे। उपकूल—नदी तट पर बसा नगर। दुःस्वप्न—अशुभ दृश्य। क्लात—थका हुआ। ध्वात—अधकार।

अर्थ—मनु थक कर किसी स्थान पर पड़ रहे थे और इस प्रकार सोच-विचार में लीन थे। जिस दिन से उन्होंने श्रद्धा का सुखदायी शातिप्रद निवास-स्थान छोड़ा था, उसी दिन से वे कभी किसी मार्ग पर निकल जाते और कभी किसी मार्ग पर। इस प्रकार भूलते-भटकते-रुकते वे इस उजाड़ नगर के निकट आये।

सरस्वती नदी तीव्र गति से बह रही थी। सन्नाटे से भरी काली रात थी। ऊपर आकाश में तारे टकटकी लगा कर पृथ्वी की वह व्यथा और दुर्दशा देख रहे थे।

वृत्रासुर को मारने वाले इंद्र का नदी तट पर बसा नगर जो कभी प्राणियों से भरा-पूरा था आज कैसा सूना पड़ा था। इसी स्थान पर देवताओं के अधिपति इद्र ने असुरों पर विजय प्राप्त की थी, यह स्मृति और भी दु.ख देती थी।

जैसे कोई मनुष्य दुःस्वप्न देखकर आकुल हो उठे, उसी प्रकार वह पवित्र सारस्वत देश नष्ट-भ्रष्ट नगर के रूप में एक अशुभ दृश्य देख रहा था और किसी थके हुए प्राणी के समान गिरा पड़ा था। उस समय चारों ओर अधकार छा गया था।

पृष्ठ १६१

जीवन का लेकर—नव विचार—नवीन दृष्टिकोण। द्वन्द्व—संघर्ष। प्राणों की पूजा—शारीरिक सुख की प्राप्ति। आत्म विश्वास—अपनी शक्ति पर विश्वास। निरत—लीन। वर्ग—समूह। आराध्य—पूज्य। आत्म-मंगल—आत्म-कल्याण। विभोर—लीन। उल्लासशील—आनन्द का भोक्ता। शक्ति केन्द्र—शक्ति का उद्‌गम। उच्छलित—उछलना, फूटना। स्रोत—झरना, उद्‌गम। वैचित्र्यभरा—विचित्रताओं से पूर्ण, अद्‌भुत घटनाओं से पूर्ण संलग्न—लीन। दुर्निवार—कठिन।

अर्थ—जीवन के एक नवीन दृष्टिकोण के कारण असुरों का सुरों से संघर्ष प्रारम्भ हुआ। असुरों ने समझा शरीर का सुख ही सब कुछ है अतः उसकी पूजा (प्राप्ति) का प्रचार उनमें बढ़ा।

दूसरी ओर देवताओं को अपनी शक्ति पर इतना भारी विश्वास था कि वे पुकार पुकार कर कहते थे कि हमसे परे कोई शक्ति नहीं है। सदैव हम ही पूजनीय हैं। अपनी कल्याण कामना में लीन रहना ही उपासना है। हम ही आनंदमय और शक्ति के केन्द्र हैं। फिर हम किसे अपने से बड़ा स्वीकार कर उसकी शरण ग्रहण करें?

जैसे झरने से जल की धारा फूटती है, उसी प्रकार हमारे भीतर वह शक्ति भरी हुई है जिसके उद्‌गम से आनन्द ही आनन्द उमड़ कर बहता है। जीवन का जैसे-जैसे विकास होता है, वैसे ही वैसे अद्‌भुत घटनाओं के दर्शन इसमें होते हैं। इस प्रकार यह संसार नवीन-नवीन वस्तुओं को जन्म देता हुआ सदैव बना रहता है।

इधर असुर शारीरिक सुख-प्राप्ति के प्रयत्न में लीन अपने जीवन में नवीन सुधार कर रहे थे और कड़े से कड़े नियमों में बँधते जा रहे थे।

वि०—इस द्वन्द्व से यह नहीं स्पष्ट होता कि जब असुर शारीरिक सुख चाहते थे तब सुर क्या यही नहीं चाहते थे? यदि वे भी शरीर-सुख के अभिलाषी थे तब उनकी मनोवृत्तियों में कहाँ अन्तर था? और असुरों के वे कौन से नियम थे जिनमें वे बँधते जा रहे थे? वास्तविक बात यह है कि शक्ति और

सुख की प्राप्ति के लिए असुर घोर तपस्या करते थे और वरदान प्राप्त कर सबल होते थे, पर देवता अपने से परे किसी को मानते ही नहीं थे।

था एक पूजता—एक—असुर वर्ग। दीन—तुच्छ। अहंता—अहंकार। प्रवीण—पूर्ण। हठ—आग्रह। दुर्निवार—कठोर। विश्वास—आस्था। तर्क—प्रमाण। विरुद्ध—विरोधी। ममत्वमय—ममता से भरा। आत्ममोह—अपने स्वार्थ की चिन्ता। उच्छृङ्खलता—बन्धन विहीनता। भीत—डर कर। व्याकुलता—उत्सुकता। द्वन्द्व—संघर्ष। परिवर्तित—दूसरे रूप में। दीन—दुःखी।

अर्थ—इधर असुर लोग तुच्छ शरीर के सुख में लीन थे और उधर देवता अनेक अपूर्णताओं के विद्यमान रहने पर भी अहंकार के कारण अपने को पूर्ण समझते थे। अपने-अपने विश्वासों के प्रति दोनों का कठोर आग्रह था और दोनों अपने विरोधियों के सिद्धान्तों में आस्था न रखते थे। असुर तर्क देकर देवताओं को अपनी बात समझाने का प्रयत्न करते और देवता प्रमाण देकर अपनी बात, पर जब वे एक दूसरे को न समझा सके तब उन्होंने एक दिन शस्त्र उठा लिये। ऐसी दशा में युद्ध होना अनिवार्य था। उनमें जो युद्ध प्रारम्भ हुआ उसने अशांति फैला दी। वे विरोधी भाव अब तक नहीं मिटे।

मैं एक ओर अपने स्वार्थ के प्रति घोर ममतावान हूँ और बन्धनविहीन स्वतंत्रता चाहता हूँ, दूसरी ओर प्रलय के दृश्य को देखकर भयभीत हो उठा हूँ और यह मानने लगा हूँ कि देवताओं से भी प्रबल कोई शक्ति है, अतः शरीर की रक्षा के लिए उस शक्ति की पूजा करने को मैं उत्सुक हूँ। अहंकार और उपासना के सिद्धान्तों को लेकर जो संघर्ष देवताओं और असुरों में कभी चला था वही आज दूसरे रूप में मेरे हृदय में चल रहा है और मुझे दुःखी बना रहा है।

मैंने बाह्य जगत में ही श्रद्धा को नहीं खोया, हृदय में भी आज किसी सिद्धान्त के प्रति श्रद्धा नहीं रही।

पृष्ठ १६२

मनु तुम श्रद्धा—आत्म विश्वासमयी—आत्मा की प्रेरणा के अनुकूल आचरण करने वाली। उड़ा दिया—उपेक्षा की। तूल—रूई। असत्—नाश-

वान्। धागे में झूलना—एक झटके में नष्ट हो जाने वाली वस्तु। स्वर्ग—प्रमुख सुख। उलटी मति—दुर्बुद्धि। मोह—अहकार। समरसता—समानता। अधिकार—सेविका। अधिकारी—स्वामी।

अर्थ—हे मनु, तुमने श्रद्धा को विस्मरण कर दिया। आत्मा की प्रेरणा के अनुकूल पूर्णरूप से आचरण करने वाली उस नारी को तुमने इतना हल्का समझा जैसे रुई। इसी से उसकी बातों पर ध्यान न दिया।

तुम्हें यह विश्वास हो गया कि संसार नाशवान् है और जीवन एक कच्चे धागे में झूल रहा है अर्थात् किसी समय भी मृत्यु के एक हल्के झटके से वह नष्ट हो सकता है।

तुमने केवल उन पलों को सार्थक समझा जो सुख भोग मे कटे। वासना की तृप्ति ही तुम्हारे लिए सबसे प्रमुख सुख की बात हुई। तुम्हारी दुर्बुद्धि ने यह थोथा ज्ञान तुम्हें समझाया।

'मै पुरुष हूँ' इस अहकार में तुमने यह भुला दिया कि नारी का भी ससार में अपना एक स्थान है। तुम नहीं जानते कि अधिकारी (पुरुष) और अधिकृत वस्तु (नारी) के बीच वास्तविक सम्बन्ध यह है कि उनमे पारस्परिक समानता का व्यवहार रहे अर्थात् पुरुष की यह बहुत भारी भूल है यदि वह अपने को स्वामी समझे और नारी को सेविका-मात्र।

असीम आकाश को कँपाती हुई जब यह तीखी ध्वनि गूँजी तब मनु के हृदय मे काँटे-सी कसक उठी।

यह कौन अरे—भ्रम—चक्कर। विराम—शान्ति। वरदान—सुखमय जीवन। अन्तरग—हृदय। अभिशाप ताप—दुःख और पीड़ा। भ्रान्त धारणा—झूठा पथ। सस्नेह—आग्रह के साथ। अमृतधाम—मधुर कल्पनाओं से परिपूर्ण। पूर्ण काम—सतुष्ट।

अर्थ—यह कौन बोल रहा है? यह तो निश्चयपूर्वक फिर वही कामदेव है जिसने मुझे चक्कर मे डाल रखा है और सुख तथा शान्ति का अपहरण किया है। इसकी वाणी को सुनते ही अतीत की जो घटनाएँ केवल नाममात्र को शेष रह गई थीं वे आँखों के सामने फिर एक-एक करके आने लगीं।

उन बीते दिनों का सुखमय जीवन हृदय को आज हिला जाता है। आज मेरा मन और शरीर दोनों दु.ख और पीड़ा की आग मे झुलसे जा रहे हैं।

मनु ने पूछा . मेरी बात का उत्तर दो। क्या अब तक जो मैंने किया वह ठीक नही था ? क्या तुमने अत्यन्त आग्रह के साथ मुझसे यह नहीं कहा था कि मैं श्रद्धा को प्राप्त करूँ ? मैंने तुम्हारी बात मान कर उसे प्राप्त किया भी और उसने मुझे अपना वह हृदय अर्पित किया जो केवल मधुर कल्पनाओं से परिपूर्ण था। मैं जानना चाहता हूँ कि इतना होने पर भी मै सन्तुष्ट क्यों न हुआ ?

पृष्ठ १६३

मनु उसने तो—प्रणय—प्रेम। मान—कसौटी (Standard)। चेतनता—अनुभूतियाँ। शान्त—सात्विक। प्रभा—कान्ति। ज्योतिमान—आलोकित। पात्र—जीवन या मन का प्याला। अपूर्णता—कमियाँ। परिणय—वैवाहिक बधन। रुकना—विकास बद करना। राग—स्वार्थ। सकुचित—सीमित। मानस—मन। जलनिधि—समुद्र। यान—नौका।

अर्थ—हे मनु, श्रद्धा ने तो अपना वह हृदय तुम्हें दे डाला जो छलविहीन प्रेम से परिपूर्ण और जीवन की वास्तविक कसौटी था। वह हृदय सात्विक अनुभूतियों की कान्ति से आलोकित था। पर तुमने श्रद्धा के चेतन हृदय को न देखा। उसके सुन्दर जड़ शरीर के प्रमी बने रहे तुम। शोक की बात है कि सुन्दरता के समुद्र मे से तुमने केवल हलाहल का प्याला भरा।

तुम अपने को बुद्धिमान समझते हो। मैं कहता हूँ तुम बहुत बड़े मूर्ख हो। अपनी कमिया को तुम स्वय ही नही समझ सके। श्रद्धा से विवाह करके उसके सहयोग से उन कमिया की पूर्ति तुम कर सकते थे। पर तुमने अपने विकास का पथ स्वय बन्द कर दिया।

यह स्वार्थ-भावना कि 'जो कुछ हो मेरा हो' मनुष्य की पूर्णता को सीमित करती है और एक प्रकार का अज्ञान है।

जैसे छोटी-सी नौका से समुद्र को नहीं पार किया जा सकता, उसी प्रकार मन के समुद्र को तुच्छ स्वार्थ की नैया से नहीं तरा जा सकता अर्थात् जिस मन मे स्वार्थ समा गया उसका विकास बन्द हो जाता है।

वि०—समुद्र से अमृत और विष दोनों निकलते हैं। यदि उनमे से कोई सुधा को न लेकर हलाहल स्वीकार करता है तब उसे बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता। सुन्दरता बाह्य शरीर की भी होती है—यह विष है और आतरिक (हृदय के सात्विक भावो की) भी—वह पीयूष है। जो व्यक्ति नारी के हृदय की अवहेलना कर केवल उसके शरीर पर दृष्टि रखता है वह मानो विषपान करने जा रहा है।

हाँ अब तुम—कलुष—दोष। तत्र—विचार, मत। द्वन्द्व—विरोधी भाव। उद्गम—विकास। शाश्वत—सदा रहने वाला, चिरतन (Eternal)। एक मत्र—निश्चित बात। खिंचे—प्रेरित, आकर्षित। तम—धुँआ। प्रवर्त्तन—चक्कर। नियति—भाग्य। यत्र—पुर्जा, मशीन, दास। प्रजातत्र—राज्य।

अर्थ—यह दूसरी बात है कि तुम स्वतत्र होने के लिए, अपने दोष को दूसरों के सर मँढ़ना चाहते हो और एक भिन्न मत का प्रतिपादन कर रहे हो।

यह निश्चित-सी बात है कि मन मे विरोधी भावों का जन्म सदा होता रहा है, सदा होता रहेगा। डालियो पर काँटो के साथ ही मिले-जुले नवीन फूल खिलते हैं। यह तुम्हारी रुचि के आकर्षण पर निर्भर है कि चाहे तुम काँटे चुन लो या फूल बीन लो। यही दशा मनोभावों की है। मन की डाली में असत् वृत्तियों के साथ सत् भावनाओं के पुष्प खिलते हैं। इस सम्बन्ध में मनुष्य स्वतंत्र है कि वह भली-बुरी कैसी ही भावनाएँ पोषित कर ले।

आग से प्रकाश भी फैलता है और धुँआ भी। तुम्हारे प्राणों में जो आग जगी उससे प्रेम का प्रकाश फूटा। तुमने उसे स्वीकार न किया। पर भ्रम से, हृदय मे जलन छोड़ने वाली वासना के धुएँ को जीवन मे प्रमुखता दी।

भविष्य में अपनी एक प्रजा बना कर जिस राज्य की स्थापना करने तुम जा रहे हो वह राज्य एक शाप सिद्ध होगा। जैसे पहिये में लगे पुर्जे पहिये के साथ घूमते हैं वैसे ही वह प्रजा भाग्य से शासित होगी। अतः निरन्तर अशान्ति वहाँ चक्कर काटेगी।

पृष्ठ १६४

यह अभिनव मानव—अभिनव—नवीन। सृष्टि—समाज। द्वयता—

भेद-भाव । निरतर—नित्य, सदैव । वर्णों—जातियो, यह ब्राह्मण है, यह क्षत्री, यह वैश्य,-ऐसा वर्गीकरण । वृष्टि—वृद्धि । अनजान—व्यर्थ की । विनिष्टि—विनाश । कोलाहल—अशाति । कलह—झगड़ा । अनत—जिसका अन्त न हो । अभिलषित—इच्छित वस्तु । अनिच्छत—वह वस्तु जिसकी वाछा या कामना न हो । दुःखद—दुःख देने वाला । खेद—क्लेश । आवरण—पर्दा । जड़ता—अभावुकता, स्थूलता । गिरता पड़ता—डाँवाडोल । तुष्ट—सतुष्ट । यह—भेद भाव की । सकुचित दृष्टि—क्षुद्र भावना ।

अर्थ—हे मनु, तुम्हारी वह प्रजा जो मानव-समाज के नाम से पुकारी जायगी भेदभाव में डूबी रहने के कारण नित्य नवीन जातियों की वृद्धि करती रहे । व्यर्थ की समस्याएँ खड़ी करके अपना विनाश अपने हाथों करे । उसमें अशाति और झगड़ों का कभी अन्त न हो । एकता उस जाति के लोगों में न रहे । एक-दूसरे से वे दूर होते चले जायँ । जिस वस्तु को पाने की कामना हो, वह तो उन्हें प्राप्त न हो, उल्टे ऐसा दु.खदायी क्लेश मिले जिसकी वाछा न हो । अपने हृदयों की अभावुकता के कारण मनुष्य दूसरों के हृदयों के भावों में न तो झाँक पावेगा और न उन्हें ठीक से पहचान पावेगा । इसी से ससार की स्थिति सदा डाँवाडोल रहेगी ।

सब कुछ प्राप्त होने पर भी प्राणी असतुष्ट ही रहेंगे । भेदभाव की क्षुद्र भावना उन्हें दु.ख पहुँचायेगी ।

अनवरत उठे कितनी—अनवरत—लगातार । उमग—लालसा । चुम्बित हो—छुयें, बदल जायँ । जलधर—बादल । शृग—चोटी । सतप्त—दुःखी । सभीत—भयभीत । स्वजन—अपने । तम—अधकार । अमा—अमावस्या । दारिद्रय—दरिद्रता । दलित—कुचल जाना । बिलखना—दुःखी होना । शस्य श्यामला—धान्य से हरी-भरी । प्रकृति-रमा—प्रकृति लक्ष्मी, पृथ्वी । नीरद—बादल । रग बदलना—मक्कारी करना । तृष्णा—लोभ । ज्वाला—दीपक की लौ । पतग—पतगा ।

अर्थ—हृदय में अनेक प्रकार की लालसाएँ बराबर उठती रहें, पर जैसे पहाड़ की चोटियो से बादल टकराते हैं वैसे ही इच्छाओं से आँसुओं का सम्पर्क रहे अर्थात मन की कामनाएँ आँखो में आँसू लाने का कारण बनें । बादलों के

बरसने से नदी बनती है और पहाड़ी भूमि में हाहाकार मचाती तथा तरंगायित होती वह आगे बढ़ती है। ठीक इसी प्रकार आँसुओं के बरसने से जीवन हाहाकार से परिपूर्ण हो जाय और उसमें व्यथा देने वाली वृत्तियाँ जगती रहें।

यौवन के वे दिन जो इच्छाओं से भरे रहते हैं पतझड़ के समान सूख जायँ और यौवन यों ही ढल जाय।

नये-नये संदेहों से दुखी तथा भयभीत होने के कारण जो अपने हैं उन्हीं का विरोध ऐसे फैल जाय जैसे अंधकार से परिपूर्ण अमावस्या जिसमें कुछ सूझता नहीं।

अन्न से हरी-भरी यह प्रकृति लक्ष्मी दरिद्रता से कुचली जाकर दुखी रहे। जैसे बादलों में इन्द्रधनुष अनेक रंग झलकाता है उसी प्रकार दुःख पड़ने पर मनुष्य अपने आचरण को स्थिर न रख सकेगा, कभी कोई मक्कारी करेगा, कभी कोई। लोभ से वह वैसे ही भस्मीभूत रहेगा जैसे पतंग दीपक की लौ पर झुलस जाता है।

पृष्ठ १६५

वह प्रेम न—पुनीत—पवित्र। आवृत—ढकना, घिरा रहना। मङ्गल—शुभ। सकुचे—संकीर्णता का परिचायक। सभीत—कंपन की क्रिया, अस्थिरता का द्योतक। संसृति—संसार। करुण गीत—पीड़ा के गाने। आकांक्षा—कामना। रक्त—लालिमा से संयुक्त, रोते-रोते आँखों का लाल होना। राग विराग—प्रेम और द्वेष। शतशः—सैकड़ों टुकड़ों में। सद्भाव—मेल, सामञ्जस्य। विकल—आवेश में। पैंग—झूलना।

अर्थ—पवित्र भाव से कोई प्रेम न करेगा। स्नेह का रहस्य स्वार्थहीनता में है, इसी से जीवन में मंगल छाता है। पर भविष्य में प्रेम स्वार्थ से ढका रहेगा और इसीलिए संकीर्णता और अस्थिरता का द्योतक होगा। ऐसी दशा में विरह संसार-व्यापी होगा और मनुष्यों का जीवन पीड़ा के गीत गाते-गाते व्यतीत होगा।

कामनाओं के समुद्र का अन्त सदैव निराशा के रक्तवर्णी क्षितिज पर जाकर होगा अर्थात् हृदय की बड़ी से बड़ी अभिलाषाएँ ऐसी निराशा में जाकर

तुम स्वय ही अनेक प्रकार की आशङ्काएँ अपने मन में उत्पन्न करोगे। दुःखी होगे और वह करने को बाध्य होगे जिसे तुम्हारी आत्मा स्वीकार नहीं करेगी।

तुम्हारा जो वास्तविक स्वरूप है वह ढँका रहेगा और एक बनावटीपन के साथ सबके समाने आओगे। तुम उस पृथ्वी पर जिस पर समता का व्यवहार वाञ्छनीय है एक उद्धत अहङ्कार के सजीव टीले के समान होगे—अर्थात् जहाँ जाओगे वहीं केवल अपनी अहङ्कार-वृत्ति का परिचय दोगे।

श्रद्धा ही इस सृष्टि का रहस्य है अर्थात् जीवन के विकास और शाति के लिए करुणा, त्याग आदि के जो आदर्श उसने तुम्हारे सामने रखे उनका यथोचित पालन करने में ही ससार में सुख-शाति के सञ्चार और उसके विकास की सम्भावना है। उस श्रद्धा का हृदय अगाध पवित्र विश्वास से परिपूर्ण था अर्थात् वह छल-कपट रहित थी। पर जहाँ अपने हृदय की समस्त नवीन भावों की निधि को उसने तुम्हें अर्पित किया वहाँ तुमने उससे विश्वासघात किया।

इसका परिणाम यह होगा कि तुम वर्तमान के सुख से वञ्चित होकर भविष्य की चिंता में अटके रहोगे। यह एक व्यक्ति को खोने से तुम्हारे जीवन की बात हुई, पर यदि मानव जाति भी श्रद्धा विहीन रही अर्थात् दया, उत्सर्ग, परोपकार आदि के व्यापक गुणों को जीवन में न अपना सकी तो वह भी वर्तमान में अशात और भविष्य-सुख की कल्पना में अटकी रहेगी।

इस प्रकार सारी सृष्टि ही उलटे मार्ग पर चलेगी।

वि०—इस छन्द में एकमात्र श्रद्धा को जो जीवन का रहस्य बतलाया गया है उसे व्यापक दृष्टि से देखने पर यह अर्थ होगा कि प्राणी जब कभी श्रद्धा-विहीन होगा अर्थात् सद्गुणों में आस्था न रखेगा तभी वह जैसे जीवन और जगत् के रहस्य को जानने से वञ्चित रहेगा।

तुम जरा मरण—जरा—वृद्धावस्था। अनन्त—सीमाहीन। अमरत्व—किसी वस्तु का अटूट क्रम। चिंतन—चिन्ता। प्रतीक—मूर्ति। वञ्चक—छली, धोखा देने वाला, विश्वासघाती। अधीर—अशात। ग्रह रश्मि रज्जु—ज्योतिष के निर्णयों पर विश्वास रखना। लकीर पीटना—अधानुकरण करना। अति-

चारी—उच्छृङ्खल स्वभाव वाला। परलोक वचना—स्वर्ग में सुख मिलेगा ऐसा झूठा विश्वास। भ्रात—भटकना। श्रात—थकना।

अर्थ—तुम वृद्धावस्था और मृत्यु के भय से सदा दुखी रहोगे। अब तक जीवन मे जिसे सब परिवर्तन समझते आये हैं—और इन परिवर्तनों की कोई सीमा नहीं—यदि गहरी दृष्टि से देखा जाय तो वही अमरता है। इस रहस्य को एक दिन तुम भूल जाओगे और दुःखों से घबरा कर परिवर्तन को अमरत्व न मानते हुए उसका अर्थ तुम वस्तुओं का अन्त समझोगे। भाव यह कि यदि सृष्टि में परिवर्तन न हो तो उसका विकास बन्द हो जाय। फल टूटता है। उसके बीज से नवीन फल उत्पन्न होते हैं। अतः फल का टूटना, फल का अन्त नहीं, अनत फलों के अटूट क्रम को बनाये रखना है।

तुम सदैव दुख और चिन्ता की मूर्ति बने रहोगे। श्रद्धा को तुमने धोखा दिया है अर्थात् सद्गुणों का तिरस्कार किया है, अतः तुम शांति न पा सकोगे।

तुम्हारी मानव-प्रजा ग्रहों की किरण-डोर से अपने भाग्य को बाँधेगी अर्थात् ग्रहों के प्रभाव से ही भाग्य बनता है ऐसा विश्वास करती हुई भाग्यवादिनी होगी और लकीर की फकीर हो जायगी अर्थात् प्राचीन प्रथाओं का अन्धानुसरण करेगी।

जो श्रद्धा अर्थात् सद्गुणों मे आस्था रखता है वह यह जानता है कि यह पृथ्वी ही हमारे सच्चे कल्याण का स्थान है, पर तुम्हारी प्रजा तो श्रद्धाहीन होगी, अतः इस मर्म को न समझेगी।

उच्छृंखल स्वभाव वाला मनुष्य इस ससार को मिथ्या कहेगा और इस धोखे में रहेगा कि परलोक मे सुख मिलेगा।

जो आशा करेगा वह पूरी न होगी और केवल बुद्धि-बल से काम लेने के कारण सदा भटकता ही फिरेगा।

जीवन भर प्रयत्न करते-करते मनुष्य थक जायगा, पर विश्राम उसे कभी न मिलेगा।

पृष्ठ १६७

अभिशाप प्रतिध्वनि—अभिशाप—शाप । प्रतिध्वनि—वाणी । मीन—मछली, मत्स्य । मृदु—कोमल । फेनोपम—फेन के समान । टीन—भट । निस्तब्ध—शान्त । मौन—चुप । तन्द्रालस—खुमारी और आलस्य से परिपूर्ण। पुंजीभूत—घनीभूत । अदृश्य—भाग्य । काली छाया—अशुभ छाप । यातना—कष्ट । अवशिष्ट—शेष ।

अर्थ—काम की वह शाप भरी वाणी इस प्रकार आकाश में विलीन हो गई जैसे समुद्र के भीतर कोई महामत्स्य एकदम समा जाय । जैसे पानी में डुबकी लेने से बुदबुदे उठने लगते हैं उसी प्रकार आकाश रूपी समुद्र में कामदेव के प्रवेश करते ही मृदु पवन की लहरों जैसी तरगो के ऊपर फेन जैसे मन्द तारे झिलमिलाने लगे ।

उस समय सारा ससार शात और चुप सो रहा था तथा उस निर्जन प्रदेश पर खुमारी और उदासी का एक वातावरण घिर आया था । रात के घनीभूत अधकार के भीतर से रुक-रुक कर फूटने वाली वायु के समान मनु अधीर होकर उच्छ्वास भर रहे थे ।

वे सोच रहे थे आज फिर वही कामदेव हमारा भाग्य-विधाता बन कर आया जिसने पहले मेरे जीवन पर अपनी अशुभ छाप लगाई थी । उसने आज मेरा भविष्य निश्चित कर दिया । अब तो जीवन के अन्त तक कष्ट भोगना है । पीड़ा से मुक्ति का कोई उपाय अब शेष नहीं रहा ।

करती सरस्वती—नाद—ध्वनि । श्यामल—हरी-भरी । निर्लिप्त—शात । अप्रमाद—आवेशरहित । उपल—पत्थर । उपेक्षित—तिरस्कृत । कर्म निरतरता—विश्रामहीन कर्म । प्रतीक—आदर्श । छाया—काति । अद्भुत—विलक्षण । निर्विवाद—वे रोक-टोक, सदेहहीन होकर । सवाद—सदेश ।

अर्थ—हरी-भरी घाटी में सरस्वती नदी आवेशरहित होकर मधुर ध्वनि करती शात भाव से बह रही थी ।

मनुष्य के हृदय में जब निष्काम भावना दृढ हो जाती है तब विषाद उसके जीवन से निकल जाता है और प्रसन्नता छा जाती है । ठीक इसी प्रकार उसके किनारे पर पड़े पत्थर के टुकड़े पीड़ा देने वाले और जीवन को जड़

बनाने वाले शोक के समान थे जिनकी ओर दृष्टि न डालती हुई वह आगे बढ़ रही थी। उसकी धारा केवल प्रसन्नता की सूचक थी और उसके हृदय से केवल मधुर गान फूट रहा था। वह आगे बढ़ने के कर्म में निरन्तर लीन थी मानो वह विश्रामहीन कर्म का सजीव आदर्श हो। कर्म ही जीवन है यह ज्ञान सदा के लिए उसके भीतर भरा हुआ था।

जैसे विरक्त मनुष्य के हृदय में शात भावनाएँ टकराती हैं, उसी प्रकार बर्फ जैसी शीतल लहरें रुक-रुक कर किनारों से टकरा रही थीं और जैसे वीतराग प्राणी के अन्तर मे ज्ञान की उज्ज्वल किरणें फूटती हैं, उसी प्रकार उन लहरों पर सूर्य की अरुणवर्णा किरणें अपनी काति बिखेर रही थीं। शीतल लहरों पर अरुण किरणो का पड़ना एक विलक्षण दृश्य आँखों के आगे खींच रहा था।

सरस्वती नदी अपना रास्ता आप बनाती बे रोक-टोक चली जा रही थी। कल-कल ध्वनि मे वह अपना कोई विशेष सदेश दे रही थी। वह उस पथिक के समान पथ स्वय निश्चित करता है, जिसे उस पथ के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का संदेह नहीं रहता और जो उस पथ पर बढ़ता हुआ अपना सदेश उन व्यक्तियों को देता चलता है जिनसे मार्ग मे भेंट हो जाती है।

पृष्ठ १६८

प्राची मे फैला—प्राची—पूर्व। राग—लालिमा। मण्डल—घेरा। कमल—यहाॅ कमल के समान सूर्य से तात्पर्य है। पराग—पीला प्रकाश, अरुण आभा। परिमल—गध यहाँ किरणों से तात्पर्य है। व्याकुल—प्रभावित। श्यामल कलरव–श्यामवर्ण के चहचहाने वाले पक्षी। रश्मि—किरण। आदोलन—हलचल। अमन्द—भारी, बहुत, अत्यधिक। मरद—मकरद, पुष्प रस। रम्य—सुन्दर, मनोहर। फलक—चित्रपट, पटल। नवल—नवीन। महोत्सव–महान् उत्सव। प्रतीक—चिह्न। अम्लान—खिले। नलिन—कमल। सुषमा—सौंदर्य। सुस्मित-सा—मुस्कराता-सा। ससृति—ससार। सुराग—प्रकाश और अनुराग। खोया—मिट गया। तम बिराग—वैराग्य रूपी अन्धकार।

अर्थ—पूर्व दिशा में मधुर लालिमा छा गई जिसके मण्डल (घेरे) में

अरुण आभा से भरा सूर्य उसी प्रकार उदित हुआ जैसे सुनहले पराग से भर कर कहीं कमल विकसित होता है। इसकी किरणें कमल की गध की लहरों के समान ऐसी प्रभावशालिनी थीं कि उनके मादक स्पर्श से श्याम वर्ण के सब पत्नी चहचहा उठे।

आलोकित वातावरण में जिसे प्रकाश की किरणों से बुना हुआ उषा का अचल कहना चाहिए प्रभातकाल का मधुर पवन सभी कहीं पुष्परस छिड़कने के लिए भारी हलचल मचाने लगा।

उस मनोरम वातावरण में एक सुन्दर बालिका सहसा इस प्रकार प्रकट हुई जिस प्रकार किसी सुन्दर चित्रपट पर एक नवीन चित्र अकित हो उठे। जैसे किसी महान् उत्सव के दर्शन से आँखों में प्रसन्नता छा जाती है, वैसे ही उसे देखकर मन के नेत्र तृप्त हो गये। वह खिले हुए कमलों की एक नवीन माला सी प्रतीत होती थी। कारण यह था कि उसके नेत्र, उसका मुख, उसके चरण सभी तो कमल के समान थे।

उसका मुख-मडल सौंदर्य की निधि था जिसके मुस्कुराते ही अनुराग उसी प्रकार बरसने लगा जैसे सूर्य-मडल से ससार पर रम्य अरुणिमा बरसती है और जैसे प्रकाश के फूटते ही अधकार विलीन हो जाता है उसी भाँति उसकी मुसकान-छटा ने मनु के हृदय में ससार के प्रति जो विरक्ति छागई थी उसे मिटा दिया।

बिखरी अलकें ज्यों– अलकें—लटें, केश। शशिखड—अर्द्धचद्र। पद्मपलाश—कमल के पत्ते। चषक—कटोरी, मधुपात्र। मुकुल—खिलती हुई कली। आनन—मुख। वक्षस्थल—उरस्थल, सीना, छाती। ससृति—ससार। विज्ञान—भौतिक ज्ञान (Science)। ज्ञान—आध्यात्मिक ज्ञान। कलश—कलसा। वसुधा—पृथ्वी। अवलम्ब—सहारा। त्रिवली—पेट पर पड़ी तीन रेखाएँ। त्रिगुण—सत्, रज, तम। आलोक—उज्ज्वल। वसन—वस्त्र। अराल—तिरछा। ताल—सगीत में निश्चित्-समय में निश्चित-थाप का पड़ना, लय। गति—एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना—यह सगीत का भी एक पारिभाषिक शब्द है।

अर्थ—उसकी अलकें तर्कजाल के समान बिखरी थीं। भाव यह कि जैसे

कोई प्रवीण तर्क करने वाला एक के उपरांत दूसरा, दूसरे के उपरांत तीसरा तर्क देकर अपने विपक्षी को अपने मत मे फाँस लेता है, उसी प्रकार उस बालिका के छिटके बालों पर दृष्टि पड़ते ही मन बन्धन में पड़ जाता था।

ससार के शीश पर मुकुट के समान दिखलाई पड़ने वाले अर्द्धचंद्र के समान अत्यंत उज्ज्वल उसका स्वच्छ ललाट था। उसकी आँखें कमलपत्र की बनी दो कटोरियों के समान थीं और जैसे मधुपात्र से मदिरा ढाली जाती है उसी प्रकार उनसे प्रेम और विराग दोनों टपकते थे।

खिलती कली जैसा उसका मुख था। यदि वह बोलती तो उसकी वाणी उसी प्रकार गान बन कर फूटती जैसे कलिका पर भौंरा गूँजता है। उसके दोनों उरोजो में ससार भर का ज्ञान-विज्ञान भरा था अर्थात् उसके उरोज इतने सुरम्य और सुडौल थे कि भौतिक विज्ञान (Science) और आध्यात्मिक ज्ञान (Spiritual Knowledge) दोनों से जो बड़ी से बड़ी सिद्धि और आनन्द की उपलब्धि होती वह उनके सामने तुच्छ थी।

उसके एक हाथ मे पृथ्वी पर व्यतीत होने वाले जीवन के रस के सार से भरा हुआ कर्म का कलश था अर्थात् उसके एक कर को देख कर मनुष्य के हृदय में ऐसे कर्म करने की स्फूर्ति जगती थी जिससे वह पृथ्वी पर जीवन धारण करने से गहरा रस (आनद) प्राप्त कर ले। उसका दूसरा हाथ विचारों के आकाश को मधुर निर्भय सहारा दे रहा था। भाव यह कि उसके दूसरे हाथ का सहारा जिसने लिया वह ऊँचे से ऊँचे और असभव प्रतीत होने वाले विचारों को बड़ी मधुरता से कार्य रूप में परिणत कर सकता था।

उसके पेट पर नाभि के ऊपर तीन बल पड़ते थे। ऐसा आभासित होता था जैसे प्राणी के अतर में सत्व, रज और तम के जो तीन गुण निहित रहते हैं वे उन रेखाओं के रूप मे बाहर आये हों। उसने अपने शरीर पर उज्ज्वल वर्ण का वस्त्र कुछ तिरछा करके धारण किया था।

उस बालिका के चरणों की गति कुछ इस प्रकार की थी कि प्रत्येक चरण-चाप एक विशेष ताल में बँध कर पड़ती थी।

वि०—यहाँ 'इड़ा' का रूप वर्णन ही प्रस्तुत है, पर रूपक के अनुसार

वह बुद्धि की प्रतीक भी है, अतः कवि ने वर्णन इस प्रकार किया है कि उस पक्ष का भी निर्वाह हो गया है। बालों को इसी से मेघ-सा, भौंरे-सा या तम-सा न कह कर तर्कजाल बतलाया है। तर्क बुद्धि का विशेष अस्त्र है। विज्ञान और ज्ञान भी सब बुद्धि के आधार पर चलते हैं, उसमें समाहित रहते हैं। वह कर्म की विधात्री और विचारों को उत्तेजित करने वाली है। जीवन को वह गति देती और प्रकाश फैलाती है आदि।

पृष्ठ १६६

नीरव थी—नीरव—शात। मूर्छित—स्थिर, निष्क्रिय, जड। सर—तालाब। निस्तरग—लहरों का न उठना, भावों का न उठना। नीहार—कुहरा, निराशा। निस्तब्ध—जड़वत्। बयार—पवन, आकाक्षाएँ। मुकुलित—अर्द्ध विकसित। कज—कमल—मधु बूँदें—मकरद, मधुर इच्छाएँ। निस्वन दिगत—शब्दहीन वातावरण। रुद्ध—बद। हेमवती—सुनहली, स्वर्णमयी। छाया—काति। तद्रा के स्वप्न—निद्रावस्था के सपने, अस्पष्ट विचारधारा। उजली माया—उषा की छटा, जीवन का आशा-भरा उज्ज्वल पथ। वीच्चियाँ—लहरें, भाव।

अर्थ—मनु के प्राणों की पुकार शात थी। जैसे सरोवर में जब तरगें नहीं उठतीं तब वह स्थिर-सा प्रतीत होता है वैसे ही मनु का जीवन भावों की चचलता के अभाव में निष्क्रिय (जड़)-सा हो रहा था। तालाब पर जैसे कभी-कभी सीमाहीन कुहरा छा जाता है वैसे ही मनु के जीवन को निःसीम निराशा ने घेर रखा था। तड़ाग में लहरें जब नहीं उठतीं तब यही भान होता है कि चचल बयार आलस्य में आकर कहीं जड़वत् सो रही है, वैसे ही मनु के जीवन में निष्क्रियता आने से ऐसा लगता था मानों उनके मन की चचल आकाक्षाएँ अलसाकर (शक्तिहीन होकर) जड़ बनी कहीं सो रही हैं।

जैसे अर्द्ध विकसित कमल की पँखुड़ियों में बद मकरद की बूँदें अपनी मधुरता को लेकर भीतर ही रहती हैं और भौंरा उनका पान नहीं कर पाता, उसी प्रकार मनु के मन की मधुर इच्छाओं की सहभोगिनी इस समय कोई न थी, इसी से वे उनके अतर में ही बद थीं और उनकी मधुरता का अनुभव केवल उनका मन ही चुपचाप कर रहा था। अब तक वे एक शब्दहीन वातावरण में बंदी

थे अर्थात् इस प्रवासकाल में उनसे बातें करने वाला कोई न था। इस बालिका को देखते ही उनके मुख से अकस्मात् ये शब्द निकल पड़े : अरे, सुनहली जिसके शरीर की कांति है, उज्ज्वल जिसकी मुस्कान है, ऐसी प्राणधारिणी यह बालिका कौन है ?

प्रभातकाल में जैसे नींद के टूटने पर सपने विलीन हो जाते हैं और उषा की उजली छटा फैल जाती है, वैसे ही मनु अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए अस्पष्ट विचाधारा में लीन थे वह दूर हो गई और उन्हें लगा कि अब आशाभरा एक उज्ज्वल पथ उनके सामने है।

इस बालिका की सुन्दरता के मधुर स्पर्श (दर्शन) से मनु गद्गद् हो उठे और उन्हे अपने प्रेममय अतीत जीवन की सुधि सताने लगी।

जैसे किरणों के छूते ही लहरें सरोवर में नृत्य करने लगती हैं वैसे ही इस बालिका की कांति के प्रभाव से मनु के मन के भाव आन्दोलित हो उठे।

प्रतिभा प्रसन्न मुख—प्रतिभा—असाधारण बुद्धिमत्ता (Genius)। प्रसन्न—दीप्त, आलोकित। सहज—सहज भाव से। फरकना—हिलना। स्मिति—मुस्कान। भौतिक हलचल—भूचाल। दिन आना—अच्छे दिनों का लौटना। मोल—लक्ष्य। द्वार—रहस्य।

अर्थ—प्रतिभा से दीप्त अपने मुख को खोल कर वह बालिका सहज भाव से बोली : मेरा नाम इड़ा है। पर यहाँ घूमने वाले तुम कौन हो ? अपना परिचय दो। जिस समय उसने यह प्रश्न किया उस समय उसकी नुकीली नासिका के पतले पुट फरक रहे थे और उसके अधरों पर विलक्षण मुस्कान थी।

मनु ने उत्तर दिया : हे बाले ! मेरा नाम मनु है। संसार पथ का मैं एक पथिक हूँ और दुःखी हूँ। इड़ा बोली : अपने यहाँ मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ। पर तुमसे छिपा नहीं है कि मेरा यह सारस्वत प्रदेश आज उजड़ गया है। यह मेरा राज्य था, पर भूचाल से यह अस्त-व्यस्त (नष्ट) हो गया। फिर भी मैं यहाँ इस आशा से रुकी हुई हूँ कि संभव है मेरे दिन फिर बदलें।

मनु बोले : हे देवी, मैं तुम्हारे निकट यह जानने के लिए आया हूँ कि हमारे जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है ? संसार का भविष्य क्या है, इस रहस्य का उद्घाटन भी मैं तुमसे चाहता हूँ।

पृष्ठ १७०

इस विश्व कुहर—कुहर—छिद्र, गुफा। इद्रजाल—जादू। नखतमाल—नक्षत्र समूह। भीषणतम—घोर, भयकर। वह—ईश्वररूपी। महाकाल—महामृत्यु। सृष्टि—ऐसी वस्तु जिसका निर्माण और विकास हो। अधिपति—स्वामी। सुख नीड़—सुख के घोंसले, छोटे से छोटा सुख। अविरत—निरतर। विषाद—शोक। चक्रवाल—घेरा। यह पट—दु.ख का परदा।

अर्थ—जिसने ससार रूपी इस गुफा मे ग्रह, तारा, बिजली और नक्षत्रों के समूह का जादू रच कर फैलाया है, वही महामृत्यु बनकर समुद्र की घोर भयकर तरगों के समान (जो अपने कोलाहल से सभी को कँपाती और अपनी चपेट से सब कुछ नष्ट कर देती है) प्राणियो के प्राणों के साथ खेल खेल रहा है।

तब क्या उस निष्ठुर की यह कठोर रचना इसलिए है कि पृथ्वी के छोटे से छोटे प्राणी को भयभीत करे? तब क्या केवल विनाश ही की विजय होती है?

यदि ऐसा है तो ससार के मूर्ख मनुष्य जिस वस्तु का स्वभाव 'विनाश' है उसे आज तक 'सृष्टि' क्यों समझते रहे हैं—सृष्टि का तो अर्थ निर्माण होता है विनाश नहीं। रहा इस ससार के स्वामी (रचयिता) के सम्बन्ध में। वह कोई होगा! उसकी चिंता तुम क्यों करते हो? जिसके कानो तक हमारे दु.ख की पुकार नहीं पहुँच पाती, वह हमारे लिए व्यर्थ है।

हमारे छोटे से छोटे सुख को शोक चारों ओर से निरतर घेरे रहता है। दु.ख का यह परदा ससार पर न जाने किसने डाला है?

शनि का सुदूर—ओक—पुञ्ज। नियति—भाग्य। गतव्य मार्ग—निर्दिष्ट पथ (Destination)। कर पसारना—याचना करना, प्रार्थना करना। झोंक—धुन, उत्साह। रोकना—बाधा डालना।

अर्थ—शनि नाम का नील वर्ण का एक लोक है और वह वहाँ से बहुत-बहुत दूर है। चारों ओर छाया हुआ यह आकाश जो जड़ीभूत शोक-सा प्रतीत होता है, उस नील लोक की छायामात्र है। ऐसा सुनते हैं कि इस शनि

लोक के परे भी एक महाप्रकाश का पुञ्ज है! इसे लोग ईश्वर कहते हैं। अब तुम्हीं बताओ इतनी दूर से अपनी एक किरण देकर क्या वह भाग्य के जाल में फँसे हुए हम प्राणियों को मुक्ति दिलाने और हमारी स्वतन्त्रता प्राप्ति में हमारा सहायक हो सकता है?

ईश्वर का रूप कुछ भी हो, उसे क्या आवश्यकता पड़ी है कि पागल बनकर उसके सहारे बैठा रहे! उसे चाहिये तो यह कि अपनी दुर्बलता और शक्ति को लेकर जो उसका निर्दिष्ट मार्ग है उस पर बढ़ चले।

सहायता करने के लिए ईश्वर के सामने हाथ फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं। अपने भरोसे अपना काम करना चाहिये। जिसके मस्तिष्क में चलने की धुन सवार हो गई, उसकी उन्नति में कोई बाधा नहीं डाल सकता।

वि०—जैसे मङ्गल का लाल, बृहस्पति का पीला और शुक्र का श्वेत वर्ण माना जाता है, वैसे ही शनि का नीला।

पृष्ठ १७१

हाँ तुम ही हो—शरण—आश्रय। सत्कार—प्रवृत्तियाँ। उपाय—निर्णय। रमणीय—सुन्दर। अखिल—सभी प्रकार के। ऐश्वर्य—भोग। शोधक—ज्ञाता। पटल—परदा, रहस्य, भेद। परिकर—कमर को कसने का दुपट्टा। परिकर कस—कमर कस कर, उद्यत होकर। नियमन—नियन्त्रण। क्षमता—शक्ति। निर्णायक—निर्णयकर्त्ता। विषमता—भेदभाव। समता—समानता का भाव। जड़ता—जड़ वस्तुएँ। अखिल—समस्त।

अर्थ—तुम्हें छोड़ तुम्हारी सहायता करने वाला कोई नहीं है। मनुष्य को बुद्धि की बात माननी चाहिए। यदि उसका आदेश वह नहीं मानता तो फिर ऐसा कौन है जहाँ उसे आश्रय मिल सके? हमारे विचारों और प्रवृत्तियों के भले-बुरे, शुभ-अशुभ, ग्रहणीय-त्याज्य का निर्णय केवल बुद्धि के आधार पर ही हो सकता है।

यह प्रकृति परम सुन्दर है, सभी प्रकार के भोगों की दाता है, परन्तु आज इसकी सुन्दरता का मर्मी और इसके वैभव का संधान करने वाला कोई नहीं। अतः तुम कमर कस कर इसके भेदों का उद्घाटन करने के लिए कर्मशील बनो।

सब पर नियंत्रण और अधिकार का प्रयोग करते हुए तुम अपनी शक्ति की वृद्धि करो। कहाँ भेदभाव से व्यवहार करना है और कहाँ समभाव से इसका उत्तर-दायित्व केवल तुम्हारे ऊपर है। विज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों के सहारे तुम जड़ वस्तुओं में भी चेतना उत्पन्न कर सकते हो। यदि तुमने मेरी बात मानी तो एक दिन सारे संसार में तुम्हारा यश फैल जायगा।

हँस पड़ा गगन—क्रदन—रोना। कोक—चकवा। विषम—कठोर। प्राची—पूर्व। उन्निद्र—खिले हुए। नोंक-झोंक—छेड़-छाड़। विस्मृत—भूलना, विहीन होना।

अर्थ—प्रभात के आलोक के रूप में वह सूना आकाश हँसने लगा जिसके भीतर शोक और मृत्यु को प्राप्त कर न जाने कितने जीवन उजड़ गये, न जाने कितने प्रेमी-प्रेमिकाओं का मधुर मिलन हुआ और फिर उनके हृदय विरह में उसी प्रकार क्रन्दन करने लगे जिस प्रकार चकवा-चकवी बिछुड़ कर तड़पते हैं।

मनु ने आज अपने सिर पर कर्म का कठोर भार सँभाला। मनुष्य संसार के अपने साम्राज्य को स्वयं सँभालेगा यह जानकर उषा प्राची दिशा के आकाश में प्रसन्न होकर मुस्कराई। मलयपवन की चंचल बाला भी यही कौतुक देखने को मानो चल पड़ी। इधर तारों का दल विलीन हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो उषा के रूप में प्रकृति के कपोलों में लालिमा निरख कर मदिरा-सेवियों के समान तारागणों का दल आकर्षित होकर गिर पड़ा है।

वन में खिले हुए कमलों और भौंरों की छेड़छाड़ चल रही थी। आज पृथ्वी सभी प्रकार के शोक से रहित थी।

पृष्ठ १७२

जीवन निशीथ का—निशीथ—रात। अंधकार—अँधेरा और निराशा। आवृत—ढँकना, छिपाना॥ निहार—देखकर। कलरव—मधुर ध्वनि। मनोभाव—भावनाएँ। विहग—पक्षी। भावभरी—उत्साहभरी। बुद्धिवाद—बुद्धि के निर्णय पर काम करने की पद्धति। विकल्प—अनिश्चय। संकल्प—दृढ़ता। द्वार खुलना—प्रारम्भ होना।

अर्थ—मनु बोले : हे इड़ा अत्यन्त उदारतापूर्वक आज तुम मेरे जीवन में

उषा के समान आई हो। उषा के आगमन पर जैसे रात का अंधकार अपना मुँह ढँक कर क्षितिज के अंचल में छिपने के लिए भाग जाता है, उसी प्रकार मेरे जीवन की निराशा तुम्हारे दर्शनमात्र से आज अपना मुँह छिपाकर कहीं दूर भाग गई है।

उषा के आगमन पर जैसे सोये हुए पक्षी जगकर मधुर ध्वनि करने लगते हैं, वैसे ही तुम्हारे दर्शन से मेरी समस्त सुप्त भावनाएँ जग कर अपनी अभिव्यक्ति कर रही हैं। उषाकाल में जैसे आकाश से फूट कर किरणों की लहरें पृथ्वी पर आकर नृत्य करती हैं, उसी प्रकार मेरे मन में उत्साह से भरी प्रसन्नता खिलखिला कर घुमड़ रही है।

आज जब मैंने सभी का सहारा छोड़ कर बुद्धिवाद का आश्रय लिया तब मानो तुम्हारे रूप में मूर्तिमती बुद्धि को प्राप्त कर लिया और अपने विकास की ओर सरलता से बढ़ चला। अब तक जिन बातों को लेकर मैं संदेह की स्थिति में ही था, कि इन कर्मों को करूँ अथवा न करूँ, आज उन्हें दृढ़तापूर्वक सम्पन्न करने का निश्चय कर चुका हूँ। मेरा जीवन आज से केवल कर्मों की पूर्ति के लिए रहे और इससे मेरे लिए सुख का द्वार खुल जाय।

स्वप्न

कथा—मनु के चले जाने से श्रद्धा का जीवन सूना हो गया। उसका मधुर सौंदर्य फीका पड़ गया। आज वह मकरंदहीन सुमन, रंगहीन रेखाचित्र, प्रभा-विहीन चन्द्र और प्रकाश-विहीन संध्या के समान थी। मनु ने उसकी अकारण उपेक्षा की थी। अपने कलेजे के दर्द को केवल वही जान सकती थी। एक उदास संध्या में बैठी वह सोचने लगी . जीवन में सुख की मात्रा अधिक है अथवा दुःख की, मैं जान न पाई। संसार का कोई रंग स्थिर नहीं। इन्द्रधनु उगता है। पल भर मे विलीन हो जाता है। मेरा दीपक जल रहा है। आज कोई पतंगा भी इसके चारों ओर नहीं मँडरा रहा। न सही, इसका अकेले जलना ही अच्छा है। कोकिल कूक रही है। क्यों? मेरे आँसू बह रहे हैं। पर इनके बहने से अब लाभ? अतीत की बातें रह-रह कर क्यों याद आती हैं? जब कोई प्यार करने वाला ही नहीं, तब प्यार की बातों को सोचने से ही क्या सिद्ध होगा? पर प्रेम प्रतिदान क्यों चाहता है? सम्भवतः प्रेम की सब से बड़ी दुर्बलता यही है कि वह बदले में कुछ चाहता है। पक्षियों के घोंसले तक चह-चहाहट से परिपूर्ण हैं। पर मेरी कुटिया कितनी उदास है! ओह!!

इतने में किसी ने 'माँ' शब्द कहा। श्रद्धा की तल्लीनता भंग हो गई। अपने बच्चे की आवाज पहचान कर वह उठ खड़ी हुई। एक धूल-धूसरित शिशु उससे आकर लिपट गया। बोला : माँ, आज मुझे ऐसी नींद आवेगी कि टूटन की नहीं। श्रद्धा ने स्नेह से चूमा और फिर दोनों माँ-बेटे थोड़ी देर में सो गये।

श्रद्धा ने स्वप्न देखा . एक स्थान पर मनु बैठे हैं और इड़ा उनकी पथ-प्रदर्शिका बनी हुई है। वह न स्वयं विश्राम लेना जानती है और न दूसरे को लेने देती है। उसे मनु की प्रेरकशक्ति, उनकी उन्नति का कारण, उनकी सफलता

ी तारिका कहना चाहिए। उसकी बुद्धि और मनु के प्रयत्न से आज सारस्वत
ागर कुछ का कुछ हो गया है। दृढ़ प्राचीरों के भीतर भव्य-महल निर्मित हुए
!, जहाँ न वर्षा में कोई कष्ट मिलता है न ग्रीष्म और शीतकाल मे। बाहर
खो, तो कहीं खेतों मे कृषक हल चला रहे हैं, कहीं धातुएँ गल रही हैं, कहीं
ोहार घन का आघात कर रहे हैं। कहीं शिकारी वन से विचित्र उपहार ला
हे हैं। दूसरी ओर मालिन कलियाँ चुन रही है, कुसुम-रज एकत्र कर रही है।
हीं रमणियों के कोमल कंठ से मधुर तानें उठ रही हैं। प्रजा वर्गों में विभा-
जेत हो गई है और पुरवासी काम बाँट कर स्वकर्म मे लीन हैं। विज्ञान की
सहायता से व्यवसायों की विलक्षण उन्नति हुई है।

श्रद्धा ने सिंहद्वार मे प्रवेश किया। उसने वहाँ सुन्दर भवनों और सुरभित
गृहों को देखा। उनसे लगे बहुत से उद्यान भी दृष्टिगोचर हुए जिनमें इधर
प्रेमी-प्रेमिका गले में बाहें डाल घूम रहे थे, उधर पराग से सने रसीले मधुप गुन-
गुन शब्द कर रहे थे। एक दिशा में एक नवीन मंडप के नीचे सिंहासन था
जिस पर मनु आसीन थे। उनके हाथ मे एक प्याला था जिसमें इड़ा मादक
रस ढाल रही थी। मनु ने मदिरा पीते-पीते प्रश्न किया : अब और क्या करने
को शेष है? इड़ा बोली : अभी हुआ ही क्या है? मनु कह उठे : ठीक, नगर
तो बस गया, पर मेरा हृदय-प्रदेश तुम्हारे बिना सूना-सूना सा है। इस बात को
सुन कर इड़ा चौंक पड़ी। उसने समझाया कि मैं आपकी पुत्री के समान हूँ।
मेरे प्रति ऐसी भावना आप न रखें। पर मनु ने कुछ नहीं सोचा। आवेश में
आ उसका आलिंगन किया। उनके इस अनुचित कर्म पर देवता अप्रसन्न हो
गये और शिव ने क्रोध में भर कर अपना अग्नि-नेत्र खोल दिया तथा पिनाक
उठा लिया। प्रकृति काँपने लगी।

प्रजा में हलचल मच गई। आकुल होकर सब राजद्वार पर शरण पाने
आये। इस सुअवसर को देख इड़ा खिसक गई। कोलाहल से घबराकर मनु
एक कोने मे जा छिपे। उन्हें पता चला कि इड़ा भी विद्रोहियो के बीच खड़ी
है। इससे वे बड़े क्षुब्ध हुए। प्रहरियों को उन्होंने द्वार बंद करने की आज्ञा दी
और स्वयं शयनागार में सोने के लिए चले गये।

श्रद्धा यह देखकर स्वप्न में काँप उठी। रात भर उसे नींद नहीं आई।

सोचने लगी : ओह, यह व्यक्ति मुझसे दूर होते ही इतना विश्वासघाती कैसे हो गया !

पृष्ठ १७५

सध्या अरुण जलज—जलज—कमल । केसर—फूलो के बीच में पतली सीकें, पराग । तामरस—लाल कमल, यहाँ सूर्य से तात्पर्य है । कुकुम—केसर, रोली । काकली—मधुर ध्वनि ।

अर्थ—लाल कमल रूपी सूर्य मुरझाकर (मद होकर) कब गिर (छिप) गया, इसका पता तक सध्या को न था । अत. उस कमल के लाल पराग (अस्त हुए सूर्य की आकाश में फूटी लालिमा) से ही अपना जी वह इस समय हल्का कर रही थी ।

थोड़ी देर में उसके क्षितिज रूपी ललाट पर लालिमा का जो केसरबिंदु लगा हुआ था वह भी अधकार के हाथ से पोंछ दिया गया ।

कमल की कलियाँ क्योंकि सकुचित होने जा रही थीं, अत. कोकिल की मधुर कूक उन पर व्यर्थ छा रही थी । उसे सुनने वाला कोई न था ।

वि०—सध्या के वातावरण से उदासी, उसके भाल से कुकुमविंदु के मिटने से सौभाग्य-हीनता तथा कोकिल की काकली के व्यर्थ मँडराने से आनन्द-दायक वस्तुओं में भी श्रद्धा के पक्ष में उत्साह-हीनता प्रदर्शित करना कवि का लक्ष्य है, अत. विरह वर्णन की दृष्टि से यह पृष्ठभूमि अत्यन्त उपयुक्त हुई है ।

कामायनी कुसुम—कुसुम—पुष्प । मकरद—पुष्प रस । हीन कला शशि—कातिहीन चद्रमा ।

अर्थ—पृथ्वी पर कामायनी उस पुष्प के समान थी जिसका रस झड़ गया हो अर्थात् पति द्वारा परित्यक्ता होने पर उसके जीवन में कोई रस नहीं रहा था । वह उस चित्र के समान थी जिसके रग धुल गये हो और केवल रेखाएँ शेष रह गई हो । भाव यह कि शरीर का ढाँचा मात्र रह गया था, रक्त सूख गया था । वह उस प्रभातकालीन कातिहीन चद्रमा के समान थी जिसकी चाँदनी की कौन कहे एक किरण तक न दिखाई देती हो । तात्पर्य यह कि उसका

शरीर इतना फीका पड गया था कि रूप की सारी छटा विलीन हो गई थी। वह उस सध्या के समान थी जिसमें न दिन मे झलकने वाला सूर्य रहता है और न रात में चमकने वाले चद्रमा और तारागण। अर्थ यह कि एक व्यक्ति के जीवन मे से निकल जाने पर उसका सारा जीवन अधकारपूर्ण हो गया और केवल उदासी शेप रह गई।

जहाँ तामरस इन्दीवर—तामरस—लाल रग का कमल। इन्दीवर—नीले रग का कमल। सित शतदल—सफेद रग का कमल। नाल—कमल का डठल, मृणाल। सरसी—तालाब, सरोवर। मधुप—भौंरा और मनु। जलधर—बादल। शिशिर कला—पतझड, माघ फाल्गुन की जाड़े की ऋतु। स्रोत—सोता। हिमन्चल—बर्फ के नीचे।

अर्थ—श्रद्धा उस सरोवर के समान थी जिसमें अपने डठलो पर ही लाल, नीले और श्वेत रग के कमल मुरझा गये हो और यह देखकर भौंरे उधर चक्कर न काटते हों। वह उस बादल के समान थी जिसमें न बिजली चमकती हो और न श्यामलता शेप रही हो। उस पतले सोते के समान थी वह जो शीतकाल मे बर्फ के नीचे जम गया हो।

वि०—कमल शरीर के अगों के उपमान हैं। लाल कमल मुरझा गये का अर्थ है उसके अगों से लालिमा निकल गई। नीले कमल के मुरझाने का भाव है उसकी काली आँखों मे वह रस न रहा। इसी प्रकार श्वेत कमल के मुरझाने का तात्पर्य है उसका उजला वर्ण फीका पट गया। भौंरे से तात्पर्य मनु से है जो उसके शरीर का रस लेकर कहीं दूर चला गया। बिजली की प्रसिद्धि विद्युल्लता के लिए है और बादलों का काला होना उनमें जल भरे रहने की सूचना देता है। अत बादलो में बिजली न रही से यह समझना चाहिए कि श्रद्धा का मन उत्साहहीन रहता है और श्यामता मिट गई का इसी प्रकार अर्थ होगा रस नि शेप हो गया। हिम कठोरता का प्रतीक है। श्रद्धा का प्रेम निरतर प्रवाहित होने वाले जल के सोते के समान था, पर आज मनु के कठोर व्यवहार से उसकी गति रुक गई।

'अर्थ—स्रोत शब्द पुल्लिग है अतः 'शिशिर कला की क्षीण स्रोत'

लिखना अशुद्ध है। 'की' के स्थान पर 'का' होना चाहिए। यह अशुद्धि कवि की अपनी है।

एक मौन वेदना—मौन—चुपचाप, सन्नाहट। वेदना—करुणा। विजन—जनहीन प्रदेश। भिल्ली—भींगुर। भनकार—भन-भन शब्द। अस्पष्ट—जिसके कारण का ज्ञान न हो। उपेक्षा—तिरस्कार। वसुधा आलिंगन करना—पृथ्वी को छूना, पृथ्वी पर लेटना या पड़ा रहना।

अर्थ—जिस निर्जन स्थान मे भिल्ली का भी भन-भन शब्द न होता हो वहाँ करुणा और सन्नाहट का वातावरण जैसे छा जाता है वैसे ही श्रद्धा के जीवन में सुख की क्षीण ध्वनि तक न थी, इसी से उसके सूने जीवन में करुणा चुप-चुप बरसने लगी। वह ससार की उपेक्षिता थी, पर उसका क्या अपराध था यह बात वह स्पष्ट रूप से न जानती थी। उसके जीवन में इतना दुःख था कि उसे मूर्तिमती पीड़ा ही कहना चाहिए।

किसी हरे-भरे कुज की केवल छाया के समान वह पृथ्वी पर पड़ी थी अर्थात् एक दिन था कि वह शरीर से स्वस्थ थी और सुखी थी, पर आज उसका सुख-स्वास्थ्य मिट चुका था और उनकी छाया (स्मृति) मात्र शेष रह गई थी। जैसे छोटी-सी नदी में जब बाढ़ आ जाती है तब वह असीम हो उठती है वैसे ही मनु उसे एक छोटी-सी बात पर छोड़ कर चले गये थे और वह सोचती थी कि यह विरह क्षणस्थायी है, पर कुछ दिनों में जब उसे पता चला कि अब वे कभी लौट कर न आयँगे, तब उसका विरह असीम हो उठा।

नील गगन में—विहग बालिका—पक्षिणी। विश्राम—चैन। तम घन—काले बादल, रात का अँधेरा, दुःख। स्मृति—याद।

अर्थ—नीले आकाश में पक्षिणी के समान दिन भर उड़ती-उड़ती किरणें मानों थक गईं और इसी से सध्या होते ही छिप गईं तथा स्वप्न-लोक में नींद की सेज पर उसी प्रकार जा लेटीं जैसे पक्षी वन में वृक्षों पर बसेरा लेने लगते हैं। पर विरहिणी श्रद्धा के जीवन में तो एक घड़ी भर के लिए चैन न था। उसे न दिन में नींद आती थी न रात को।

जैसे काले बादलो में बिजली चमक उठती है उसी प्रकार जब रात का अधकार घिरा तब श्रद्धा के मन में मनु-सम्बन्धी स्मृति तीव्र हो उठी।

पृष्ठ १७६

सन्ध्या नील सरोरुह्—सरोरुह—कमल । श्याम पराग—श्याम वर्ण की पुष्प रज । शैल—पर्वत । गुल्म—पौधे । रोमाञ्चित—रोमों का खड़ा होना । नग—पर्वत ।

अर्थ—सन्ध्या रूपी नील कमल से अंधकार रूपी श्याम पराग ने बिखर कर पर्वत की घाटियों के अंचल को चुप से भर दिया अर्थात् पहाड़ की तलहटी में सन्ध्या होते ही घना अंधकार छा गया ।

श्रद्धा अपनी दुःख-गाथा गाने लगी, अतः पहाड़ पर उगे तृण और पौधे ऐसे प्रतीत होते थे मानो उस विरह-कथा को सुनकर पर्वत रोमाञ्चित हो उठा है । वहाँ श्रद्धा के बोलने से पहाड़ों ने प्रतिध्वनि उठी मानो श्रद्धा जो सूनी साँसें फेंक रही थी उनमें वे स्वर भर रहे हों ।

जीवन में सुख—मंदाकिनी—गंगा नदी । नखत—तारे । सिंधु—समुद्र । प्रतिबिंब—पहलू । रहस्य भेद ।

अर्थ—मंदाकिनी नदी की ओर देखकर श्रद्धा कहने लगी : हे गंगे ! क्या तुम बतला सकती हो कि जीवन में सुख की प्रधानता है अथवा दुःख की ? क्या तुम गणना करके बतला सकती हो कि आकाश में तारे जो अपने प्रकाश से सुख के प्रतीक हैं अधिक हैं अथवा समुद्र के बुदबुद, जो अपने गीलेपन से दुःख के परिचायक हैं ? तुम सुख और दुःख दोनों को जीवन में देखती हो क्योंकि इधर तो तुममें तारे प्रतिबिंबित हो रहे हैं और उधर तुम समुद्र से मिलने जा रही हो, जहाँ बुदबुदों का ज्ञान भी तुम्हें होगा । क्या तुम इस भेद का पता लगा सकती हो कि कहीं तारे और बुदबुदे दो भिन्न वस्तु न होकर किसी तीसरी वस्तु का प्रतिबिंब तो नहीं अर्थात् कहीं ऐसा तो नहीं है कि सुख और दुःख जिन्हें हम दो भिन्न वस्तु समझते हैं किसी अन्य वस्तु (जीवन) के दो पहलू हों ।

इस अवकाश पटी—अवकाश—अंतरिक्ष, पृथ्वी के ऊपर का खोखला । सुरधनु—इंद्रधनुष । आवरण—परदा । धूमिल—धुँधली ।

अर्थ—अंतरिक्ष के इस सूने पट पर रात-दिन कितने ही चित्र बनते हैं, फिर बिगड़ जाते हैं अर्थात् कभी पीला प्रभात आता है, कभी उज्ज्वल मध्याह्न, कभी

अरुण सध्या, कभी काली रात । इन चित्रों में अनेक रग भरे जाते हैं जो इद्र-धनुष-रूपी पट में छन कर आते हैं, या जो इद्रधनुष में दिखाई देते हैं । पर वे सारे रग स्थिर नहीं हैं इसी से रगों में डूवे अरुण पलभर में घुलकर एक व्यापक सूने नीलेपन में परिवर्तित हो जाते हैं और आकाश की उस धुँधली करुणा की चादर के रूप में प्रकट होते हैं जो इस ससार पर पर्दे के समान पडी प्रतीत होती है ।

वि०—जीवन के पक्ष में इस छन्द का भाव यह है कि हमारे सामने सुख रातदिन अनेक रग दिखलाता है, पर वह स्थिर नहीं है । इसी से क्षण भर ठहर कर वेदना में बदल जाता है ।

दग्ध श्वास से—दग्ध—तप्त । आह—पीड़ा को प्रकट करने वाला एक शब्द । सजल—भीगी, गीली, रोती । कुहू—अमावस्या । स्नेह—तेल, प्रेम ।

अर्थ—तारे जिसके आँसू प्रतीत होते हैं ऐसी अमावस्या की रोती रात में मेरी तप्त साँसों से आज उफ शब्द न फूटे अर्थात् दुःखावेग का प्रदर्शन मुझे भला नहीं लगता ।

इस छोटे से दीपक की समता कौन कर सकता है जो अपने अन्तर के अमित स्नेह (तेल) को जलाकर स्वय जल रहा है ? मेरी कुटिया में जलने वाली दीपक की लौ कहीं उसी प्रकार बुझ न जाय जैसे सध्या समय सूर्य रूपी दीपक की किरण रूपी लौ बुझ जाती है । आज पतगा इसके निकट नहीं है । यह अच्छा ही हुआ । यह शिखा अकेली ही जलेगी । इसका सुख इसी में है ।

वि०—दीप से तात्पर्य यहाँ श्रद्धा के मन से भी है । वह सोच रही है कि मैं स्नेह में अकेली जल रही हूँ और मेरे इस दुःख को बटाने के लिए मनु पास नहीं है । यह भी अच्छा है । मुझे अकेले में ही सुख है । पर कहीं ऐसा न हो कि मैं मर जाऊँ । यदि ऐसा हुआ तो फिर विरह का अनुभव कौन करेगा ।

पृष्ठ १७७

आज सुनूँ केवल—पराग—पुष्परज । चहल-पहल—भरमार ।

अर्थ—हे कोकिल, मैं तुझे रोकूँगी नहीं, तेरे मन में जो आवे सो तू गा ।

आज केवल चुप रहकर मै सब सुनूँगी, क्योंकि अपनी विषम स्थिति के कारण तेरे स्वर में स्वर मिलाने की सामर्थ्य मुझमे नहीं है। पर इतना तो तू भी जानती है कि पिछले दिनो पराग की जैसी भरमार थी इन दिनों नहीं है, अतः तेरा कूकना असामयिक है।

पतझड़ काल है, डालियाँ सूनी हैं, सन्ध्या वेला है और मैं किसी की प्रतीक्षा में बैठी हूँ। असहनीय है यह। पर कामायनी, तू अपने हृदय को कड़ा कर और जैसे बने धीरे-धीरे सब सह।

विरल डालियों के—विरल—छितरी। निश्वास—बाहर फेंकी जाने वाली साँस विशेषकर दुःखभरी। स्मृति—याद।

अर्थ—छितरी डालियों वाले कुजों में पवन साँय-साँय कर रहा है। मानों ये कुज दुःख के निश्वास डाल रहे हैं। पवन से मैं पूछना चाहती थी कि तू क्या उनके मिलन का सदेश ले कर आया है, पर वह तो उनकी याद (विरह) की सूचना देता फिरता है। मुझे लगता है जैसे यह अभिमानी ससार आज मुझ से रूठ गया है, यद्यपि मैने उसका कोई अपराध नहीं किया। मेरी पलकों से ढलकर जो आँसू बह रहे हैं उनसे आज मै किन चरणों को धोऊँ। जिन्हें धोती वे तो दूर हैं।

अरे मधुर हैं कष्टपूर्ण—निस्सबल—निस्सहाय, उपायविहीन, निराश्रय। वही—प्रेम का जीवन।

अर्थ—जब मनुष्य का कोई सहारा नहीं रहता और सुख की बिखरी घटनाओं को एक-एक करके वह क्रम से देखता है तब उसे उन दिनों की स्मृति में एक सुख मिलता है, यद्यपि यह जानकर कष्ट भी होता है कि सुख के वे बीते पल अब नहीं रहे।

अपने प्रेम के सुन्दर जीवन को मैने सत्य समझ लिया है—मै सोचती थी यह जीवन ऐसे ही चलता रहेगा। पर आज वह नहीं रहा। तब मै जानती नहीं कि दुःख में उलझे अपने सुख को मैं कैसे पृथक करूँ।

विस्मृत हो वे—विस्मृत हो—भूल जाऊँ। सार—तत्व। जलती—प्रेम की आग से भरी।

अर्थ—प्रेम की वे बीती बातें जिनमें अब कुछ सार नहीं मैं भूल जाऊँ तो

अच्छा है, क्योंकि आज मेरे लिए न तो मनु का जलता वक्ष रहा और न वह शीतल प्यार बचा। मेरी समस्त आशाएँ, मेरी सारी मधुर कामनाएँ अतीत में ही खो गईं। मुझे कठोरतापूर्वक ठुकरा कर चले जाने से मेरे प्रिय की विजय हो गई यह सत्य है, पर यह मेरी पराजय नहीं है। क्योंकि केवल उनके तोड़ने से ही तो प्रेम का बंधन नहीं टूट सकता। मैंने तो अभी तोड़ा नहीं।

वे आलिंगन एक पाश—आलिंगन—भुजाओं में भरना। पाश—बंधन। स्मिति—मधुर मुस्कान। चपला—बिजली। वंचित—धोखा खाया हुआ। अकिंचन—दरिद्र। अनुमान—कल्पना।

अर्थ—प्रेम के वे आलिंगन जो कोरे मनोरंजन करने वाले आलिंगन न थे, एक को दूसरे में बाँधे रखते थे। वह मधुर मुस्कान जो हमारे ओठों पर खिलती थी बिजली सी उजली थी, आज वह सब कहाँ है? और वह मधुर विश्वास कि जीवन के अंत तक हम एक दूसरे को इसी प्रकार प्रेम करेंगे? उफ, वह पागल मन का मोह मात्र था।

मनु के द्वारा मैं वंचित हुई हूँ। ठीक है, पर मैं इस घटना को दूसरी दृष्टि से देखती हूँ। मुझ दरिद्र के पास यह बात अभिमान करने को बच रही है कि मैंने अपने को समर्पित कर दिया। इससे अधिक और क्या देती? आज मुझे इतना ही याद पड़ता है कि एक दिन था जब मेरे पास जो कुछ था मैंने उसे किसी को दे डाला।

पृष्ठ १७८

विनिमय प्राणों का—विनिमय—लेन देन, आदान प्रदान। भयसंकुल—भयंकर। प्रतीक्षा—आशा।

अर्थ—और सभी वस्तुओं का परिवर्तन चल सकता है, पर अनुराग के परिवर्तन में अनुराग चाहना यह बहुत ही भयंकर व्यापार है। प्रेम में केवल देना ही देना है लेना नहीं, इसी से यदि प्रेम करना है तो अपने से जितना देते बने उतना दे दे, पर ले कुछ भी न। यह आशा कि बदले में कुछ मिले एक तुच्छ आशा है। यह कभी सार्थक न होगी। जहाँ लेन-देन का भाव है वहाँ बदले में उतना मिलता नहीं जितना दिया जाता है। प्रकृति को देखो। संध्या अपनी ओर से सूर्य

देती है और उसके बदले में उसे मिलते हैं यहाँ-वहाँ छितरे छोटे तारे जिनकी सूर्य से कोई समता नहीं।

वि०—प्रेम सम्बन्धी यह आदर्शात्मक भावना 'प्रसाद' जी की अपनी है। लहर में उन्होंने यही भाव दुहराया है—

पागल रे वह मिलता है कब ?
उसको तो देने ही है सब।

फिर क्यों तू उठता है पुकार
मुझको न कभी रे मिला प्यार ?

थे कुछ दिन जो—अन्तरिक्ष—आकाश, शून्य। अरुणाचल—पूर्व दिशा में उदयाचल नाम का पर्वत जहाँ से सूर्य निकलता है। भरमार—अधिक परिमाण में, ढेर। कुहुक—माया। प्रवास—परदेश को जाना।

अर्थ—जैसे पूर्व में स्थित उदयाचल से आकाश में उग कर सूर्य मुस्कराता है वैसे ही पूर्वकाल में प्रसन्नता के किसी उद्गम से हमारे जीवन के आकाश में भी कुछ हँसी-खुशी के दिन आये थे।

जैसे वसत अपनी माया शक्ति से वन में फूलों की भरमार कर देता है और मीठे स्वर वाले पक्षी कूकने लगते हैं उसी प्रकार हमारे जीवन-वसत के प्रारम्भ होते ही सुख की भरमार हुई और आनन्द के गीतों की लड़ी बँधी।

किरण जब कली के साथ क्रीड़ा करती है तब एक आलोक की सृष्टि होती है, इसी प्रकार जब मनु की और मेरी विलास-क्रीड़ा प्रारम्भ हुई तब हमारा जीवन भी मन्द हास्य (आनन्द) से भर गया।

जैसे वसन्त जाते समय यह आशा बँधा जाता है कि फिर लौटेगा, पर बहुत दिनों तक नहीं आता वैसे ही हमारे वे दिन हमें इस धोखे में रख कर कि फिर लौटेंगे परदेश को जाकर बहुत काल तक न लौटने वाले किसी व्यक्ति के समान कहीं चले गए और इतने दिन व्यतीत होने पर भी लौटे नहीं।

जब शिरीष की—शिरीष—सिरस नाम का पेड़ जिसके पुष्प अत्यन्त कोमल होते हैं। मधु ऋतु—वसंत ऋतु। रक्तिम—लाल। आलाप कथा—गीत।

अर्थ—वसन्त की वे रातें जिनमें शिरीष पुष्प की मधुर गन्ध बरती थी,

जगते ही बीतती थीं और तब वह समय आता था जब उषा की लालिमा छा जाती थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे रात ने इस बात पर मान किया है कि हमने अपने प्रेम की लीनता में उसके गंध भरे सुन्दर शरीर की ओर ध्यान नहीं दिया और क्योंकि हमारा जगना उसे अच्छा नहीं लगा इसी से रूठकर क्रोध से अपना मुख लाल करके वह चली गई है। आकाश में दिन फूटता—फैलता। पक्षी कूकते। ऐसा लगता जैसे उस रूप में कोई मधुर कथा सुना रहा हो। रात होते ही तारे मुस्कराते, ऐसा आभासित होता जैसे हम जो जगकर दिन भर मधुर कल्पनायें करते रहे हैं वे ही उस रूप में झलक उठी हैं।

बन बालाओं के निकुंज—वनबालाओं—चिड़ियों। वेणु—वंशी की ध्वनि जैसी चहचहाहट। पुकार—याद का आकर्षण। अपने घर—घोंसले। तुहिन बिंदु—ओस की बूँद।

अर्थ—पक्षियों के सब कुञ्ज वंशी के समान मधुर ध्वनि वाली चहचहाहट से भर गए। जो पक्षी प्रभातकाल में बाहर उड़ गए थे, अपने-अपने घोंसले की याद से खिंचकर वे लौट आये। परन्तु मेरा परदेशी नहीं लौटा, यद्यपि उसकी प्रतीक्षा करते-करते एक युग बीत गया।

रात की भीगी पलकों से एक-एक करके आँसू ओस के रूप में बरस रहे हैं।

वि०—(१) अन्तिम पंक्ति से श्रद्धा के आँसुओं का धीरे-धीरे गिरना भी ध्वनित होता है।

(२) प्रलय के कारण जहाँ श्रद्धा है वहाँ उसे छोड़ कर दूसरा व्यक्ति नहीं। यदि कोई जंगली जाति होती तो बन-बालाओं का अर्थ जंगली जाति की रमणियों का लगाते और अर्थ में एक मार्मिकता आती। पर वैसा न होने से पक्षियों के अर्थ की संगति बिठानी पड़ी।

मानस का स्मृति शतदल—मानस—सरोवर और मन। शतदल—कमल। मरन्द—मकरन्द, पुष्परस। पारदर्शी—जिसके आर-पार देखा जा सके (Transparent)। नयनालोक—आँखों का उजाला। सबल—पाथेय, राह खर्च।

अर्थ—जैसे मानस (सरोवर) में जब कमल खिलता है तब उससे रस की झीनी बूँदें झरती हैं, वैसे ही श्रद्धा के मानस (मन) में जब मनु की स्मृति प्रस्फु-

टेत हुई अर्थात् जब उसे मनु की याद आई तब उसकी आँखों से आँसुओं की घनी
दें टपकने लगीं। वह सोचने लगी मेरे ये आँसू देखने में मोतियों के समान
। अन्तर इतना ही है कि मोती स्पर्श करने में कठोर होते हैं, पर इनके आर-
ार देखा जा सकता है। इनमें सुख-दुःख के अनेक चित्र अंकित हैं अर्थात्
ुख दुःख की अनेक घटनाओं के स्मरण से ये उमड रहे हैं।

इन आँसुओं की समता तरल विद्युत्कण (Elcctrons) से भी की जा
कती है क्योंकि जैसे विद्युत्कण तम को आलोकित करते हैं, वैसे ही विरह के
ंधकार में ये भी आँखों में उजाला फैलाते हैं।

भाव यह कि विरह काल में प्रेमी को जब यह नहीं सूझता कि अब वह
्या करे तब आँसू उमड़ कर उसे धीर बँधा जाते हैं। जैसे कोई पथिक राह
र्च के सहारे यह कल्पना कर सकता है कि उसे लेकर वह इतना मार्ग काट
केगा, इतने दिन चल सकेगा, वैसे ही आँसुओं की निधि को लेकर प्रेमी
 प्राण भी अनेक प्रकार की कल्पनाओं के महल खड़े करते हैं। तात्पर्य यह
कि कभी प्रेमी रोकर अपने भारी मन को हल्का करता है, कभी प्रिय को पिघ-
ाने की सोचता है, कभी अपने विरह को सहज भाव से काटने की सभावना
ड़ी करता है।

पृष्ठ १७६

अरुण जलज के—अरुण जलज—लाल कमल। शोण—लाल।
ुषार—ओस की बूँद। मुकुर—दर्पण। चूर्ण—चूर-चूर। कुहू—अमावस्या।

अर्थ—जैसे रक्त कमल के लाल कोनों में ओस की नवीन बूँदें भर जाती
ैं वैसे ही (देर तक रोने के कारण) श्रद्धा की अरुणाई आँखों के लाल कोयों
में नवीन आँसू की बूँदें भर गईं।

वे आँसू नहीं थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे श्रद्धा के हृदय का दर्पण ही
टूट कर चूर-चूर हो गया हो और उसी के वे टुकड़े हों। जैसे चूर्ण दर्पण में
देखने वाले को जितने दर्पण के टुकड़े होते हैं, उतनी ही अपनी छवियाँ दिखाई
देती हैं, वैसे ही आँसू की एक-एक बूँद में मनु की छवि अंकित थी और इसी
से वे आँसू उसकी अनेक छवियों को लेकर बिखर रहे थे।

प्रेम, हास्य और दुलार का लम्बा जीवन अतीत के अंधकार में विलीन होने जा रहा था और जैसे वर्षाकाल की अमावस्या में जुगनू टिप-टिप करते अपनी झलक दिखा जाते है उसी प्रकार विरह में मनु की याद के जुगनू झलक कर अतीत के सुख के दिनों को डरते-डरते आँखों के सामने ला रहे थे।

सूने गिरि पथ मे—शृगनाद—सिंगी बाजा। आकाक्षा—कामना। पुलिन—किनारा। शलभ—पतगा।

अर्थ—जैसे नदी पर्वत के सूने पथ पर जब उतरती है तब सिंगी बाजे के समान ध्वनि करती चलती है, उसमे लहरें उठती हैं और अन्त में किसी किनारे की गोद में जाकर वे ढल जाती हैं, ठीक ऐसे ही श्रद्धा के शुष्क सूने जीवन-पथ पर होकर दु.ख की नदी।करुणा की ध्वनि मचाती और कामनाओं की लहरें उठाती आगे बढ़ती विफलता के किनारे मे जाकर ढल रही थी।

आकाश के दीपक जल उठे अर्थात् सध्या होते ही तारे चमकने लगे और जैसे पतगे दीपक की ओर उड़-उड़ कर जाते हैं वैसे ही श्रद्धा ने तारों की ओर ज्यों ही दृष्टि उठाई त्यों ही उसके मन से अनेक कल्पनाये उमड़ने लगी।

पानी आग को बुझा देता है, परन्तु ,कैसे आश्चर्य की बात थी कि उनकी आँखों में आँसू भरे के भरे रह गए, पर दुःख की आग जो उसके कलेजे में जल रही थी वह किसी प्रकार न बुझी।

मा फिर एक—किलक—हर्षध्वनि। दूरागत—दूर से आई हुई। उत्कठा—चाव। लुटरी—लटें। अलक—बाल। रजधूसर—धूल से सनी। धूनी—तपने के लिए साधु अपने आगे आग जलाकर बैठते हैं जिसे धूनी कहते हैं।

अर्थ—इतने म हर्ष से भरी मा शब्द की ध्वनि दूर से आती सुनाई पड़ी। इससे उसकी सूनी कुटिया आनन्द की गूँज से परिपूर्ण हो गई। मा भी सहसा हृदय मे भारी उत्कठा भर कर उसकी ओर दौड़ पड़ी। बच्चे के बालों की लटें खुली हुई थीं। वह धूल से सनी बाहों को लेकर ही मा से लिपट गया। जिस प्रकार गत मे तप करने वाली किसी तपस्विनी की बुझती हुई धूनी हवा आदि के चलने से फिर धधक उठती है उमी प्रकार विरहिणी श्रद्धा का मन जो

विरह की आग में जल रहा था और जो इस समय कुछ-कुछ शान्त हो चला था बच्चे की किलकारी सुनकर फिर एक बार तड़प उठा क्योंकि उस ध्वनि के कान मे पड़ते ही उसका ध्यान मनु की ओर फिर जा पड़ा।

कहाँ रहा नटखट—नटखट—शरारती, ऊधमी। प्रतिनिधि—प्रतिमूर्ति। घना—अधिक। वनचर—वन मे घूमने वाले। रूठना—अप्रसन्न होना।

अर्थ—श्रद्धा बोली! अरे नटखट अब तो केवल तू ही मेरा भाग्य है, पर इतनी देर से तू घूम कहाँ रहा था? अपने पिता की तू प्रतिमूर्ति है। जैसे उन्होंने मुझे सुख भी बहुत दिया साथ ही दु:ख भी, वैसे ही तू दूर रहकर मुझे चिंतित भी बहुत करता है और पास रहकर सुख भी बहुत देता है। तू इतना चचल है कि वन मे विचरण करने वाले हिरण के समान चौकड़ी भरता फिरता है। मै तुझे इसलिए मना नहीं करती कि कहीं तू भी मुझसे रूठ न जाय।

पृष्ठ १८०

मैं रूठूँ मा और—विषाद—खेद

अर्थ—वाह मा, तूने कितनी अच्छी बात कही! मै रूठ जाऊँ और तू मुझे मनावे! मै तो अब जाकर सो रहा हूँ, तुझसे नही बोलने का। गहरी नींद आवगी आज, क्योंकि पके-पके फल खाये है। उनसे पेट भर गया है। उसकी ऐसी भोली और प्यार भरी बातें सुन कर श्रद्धा ने प्रसन्न होकर उसे चूम लिया, पर इस बात का स्मरण कर कि यदि मनु आज यहाँ होते तो कितने सुखी होते वह फिर विषाद-मग्न हो गई।

जल उठते हैं—जल उठना—प्रत्यक्ष हो कर जलन छोड़ जाना। दिवा श्रात—दिन भर की थकी। आलोक रश्मियाँ—प्रकाश की किरणें। निलय—निवास स्थान, घर। सस्रति—लोक यहाँ सूने आकाश से तात्पर्य है।

अर्थ—प्रेम के जीवन के पिछले कुछ दिनो के मधुर क्षण धीरे-धीरे जल उठते है अर्थात् व्यतीत के वे सुखमय दिन श्रद्धा की आँखों के सामने अनन्त स्पष्टता से उदित हुए और उन्हें स्मरण कर उसे बड़ी पीड़ा या जलन हुई। उसने आकाश की ओर देखा। उसे लगा जैसे उदासी से परिपूर्ण उस

खुले आकाश में तारे नहीं झलक रहे हैं उसके अतीत जीवन के ज्वलित व्रण ही छाले बन कर उभर आए हैं।

उसने यह भी देखा कि दिन भर की थकी प्रकाश की किरणें उस नीले निवास-स्थान अर्थात् आकाश मे कहीं छिप गई हैं और उसका (श्रद्धा का) करुण स्वर उस लोक मे गल कर बह गया।

वि०—स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ एकात में बैठी श्रद्धा अपनी करुण गाथा सुना रही है—

> तृण गुल्मों से रोमाञ्चित नग सुनते उस दुख की गाथा।
> श्रद्धा की सूनी साँसों से मिलकर जो स्वर भरते थे।

प्रणय किरण का—मुक्ति—बधन का खुलना या टूटना। तद्रा—झपकी, हल्की नींद। मूर्छित—शात भाव से रहित। मानस—सरोवर, मन। अभिन्न—जो अपने से भिन्न न हो, जो अपना हो। प्रेमास्पद—प्रेमी।

अर्थ—प्रेम का किरण जैसा कोमल बधन खुलने पर और भी कस गया। भाव यह कि मनु श्रद्धा को अपने प्रेम से मुक्त करके चले गए हैं, उसका हृदय उनकी स्मृति में और भी जकड़ गया है। मनु उससे बहुत दूर चले गए, पर श्रद्धा उन्हें अपने हृदय के और भी निकट पा रही है। जैसे शात सरोवर पर मधुर चाँदनी छा जाती है वैसे ही श्रद्धा के हृदय में इस समय भावनाओं का उठना बद हो गया और उसे एक झपकी आई। ठीक उसी समय उसके अभिन्न प्रेमी ने अपना चित्र उस मन पर अकित कर दिया अर्थात् स्वप्न में उसने मनु को देखा।

कामायनी सकल अपना—स्वप्न बनना—सपना देखना, दूर होना। विकल—दुखी। प्रतारित—वचित, छली गई। लेख—चिह्न। दल—पखुड़ियाँ, सुख। पवन—हवा, जीवन। पपीहा—चातक, मन। पुकार—करुण कराह।

अर्थ—कामायनी देख रही है कि उसका सारा सुख सपना हो गया। भाव यह कि बाह्य जगत में जहाँ कामायनी के अब सुख के दिन शेष हो गए वहाँ निद्रावस्था मे उसने एक सपना देखा जिसमें अतीत के सारे सुख की कल्पनायें

एक विशिष्ट रूप में प्रकट हुई। उसे लगा कि वह युग-युग से इसी प्रकार दुखी और वञ्चित रही है और अब मिट कर एक चिह्नमात्र रह गई है।

एक समय था जब फूलों की कोमल पंखुड़ियों की रेखाएँ पवन के पट पर अंकित रहती थीं और आज वह समय है जब पपीहे की पुकार की रेखा आकाश में खिंच रही है। भाव यह कि एक दिन जीवन में सुख और विलास के चिह्न थे और आज मन का पपीहा प्रेम का प्यासा है, प्रियतम को पुकार रहा है और उसकी करुण ध्वनि सूने में उठ कर रह जाती है।

पृष्ठ १८१

इड़ा अग्नि ज्वाला सी—उल्लास—प्रसन्नता। विपद—संकट। आरोहण—सीढ़ी, सोपान। शैल शृंग—पर्वत की चोटी। श्रांति—थकावट। प्रेरणा—कार्य में प्रवृत्त कराने वाला मनोविकार (Inspiration)। वहीं—मनु के पास।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा: जैसे अग्नि शिखा अँधेरे पथ को प्रकाशित कर देती है वैसे ही इड़ा प्रसन्नतापूर्वक अग्रगामिनी बन कर अपनी उज्ज्वल प्रखर बुद्धि के प्रकाश से मनु को उनका कार्य-पथ सुझाती है। जैसे नौका द्वारा नदी को सहज में पार कर जाते हैं वैसे ही जब कभी संकट पड़ता है तब वही उन्हें उससे बचा ले जाती है।

वह उन्नति का सोपान थी अर्थात् उन्नति की ओर ले जाने वाली थी। वह गौरव के पर्वत की चोटी थी भाव यह कि उच्चतम गौरव प्राप्त करवाने वाली थी। थकावट जैसी वस्तु को वह जानती न थी। तात्पर्य यह कि निरंतर कर्म में लीन रहती और रखती थी। वह प्रेरणा की तीव्र धारा के समान थी जो उत्साह भर कर मनु के पास बह रही थी। आशय यह कि उसके पास रहने से मनु को कर्म में बड़ी स्फूर्ति और उत्साह मिलता था।

वह सुन्दर आलोक—आलोक—प्रकाश। हृदयभेदिनी—मन के रहस्यों से परिचित, सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक। तम—अंधकार और अज्ञान। सतत—निरंतर। आश्रय—शरण। श्रम—सेवा।

अर्थ—वह एक रम्य प्रकाश किरण के समान थी। जैसे किरण जिधर

खुले आकाश में तारे नहीं झलक रहे हैं उसके अतीत जीवन के ज्वलित व्रण ही छाले बन कर उभर आए हैं।

उसने यह भी देखा कि दिन भर की थकी प्रकाश की किरणें उस नीले निवास-स्थान अर्थात् आकाश मे कहीं छिप गई हैं और उसका (श्रद्धा का) करुण स्वर उस लोक मे गल कर बह गया।

वि०—स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ एकांत मे बैठी श्रद्धा अपनी करुण गाथा सुना रही है—

> तृण गुल्मों से रोमाञ्चित नग सुनते उस दुख की गाथा।
> श्रद्धा की सूनी साँसों से मिलकर जो स्वर भरते थे।

प्रणय किरण का—मुक्ति—बंधन का खुलना या टूटना। तंद्रा—झपकी, हल्की नींद। मूर्छित—शांत भाव से रहित। मानस—सरोवर, मन। अभिन्न—जो अपने से भिन्न न हो, जो अपना हो। प्रेमास्पद—प्रेमी।

अर्थ—प्रेम का किरण जैसा कोमल बंधन खुलने पर और भी कस गया। भाव यह कि मनु श्रद्धा को अपने प्रेम से मुक्त करके चले गए हैं, उसका हृदय उनकी स्मृति में और भी जकड़ गया है। मनु उससे बहुत दूर चले गए, पर श्रद्धा उन्हें अपने हृदय के और भी निकट पा रही है। जैसे शांत सरोवर पर मधुर चाँदनी छा जाती है वैसे ही श्रद्धा के हृदय में इस समय भावनाओं का उठना बंद हो गया और उसे एक झपकी आई। ठीक उसी समय उसके अभिन्न प्रेमी ने अपना चित्र उस मन पर अंकित कर दिया अर्थात् स्वप्न में उसने मनु को देखा।

कामायनी सकल अपना—स्वप्न बनना—सपना देखना, दूर होना। विकल—दुःखी। प्रतारित—वंचित, छली गई। लेख—चिह्न। दल—पंखुड़ियाँ, सुख। पवन—हवा, जीवन। पपीहा—चातक, मन। पुकार—करुण कराह।

अर्थ—कामायनी देख रही है कि उसका सारा सुख सपना हो गया। भाव यह कि बाह्य जगत मे जहाँ कामायनी के अब सुख के दिन शेष हो गए वहाँ निद्रावस्था में उसने एक सपना देखा जिसमें अतीत के सारे सुख की कल्पनायें

एक विशिष्ट रूप में प्रकट हुई। उसे लगा कि वह युग-युग से इसी प्रकार दुखी और वंचित रही है और अब मिट कर एक चिह्नमात्र रह गई है।

एक समय था जब फूलों की कोमल पंखुड़ियों की रेखाएँ पवन के पट पर अंकित रहती थीं और आज वह समय है जब पपीहे की पुकार की रेखा आकाश में खिंच रही है। भाव यह कि एक दिन जीवन में सुख और विलास के चिह्न थे और आज मन का पपीहा प्रेम का प्यासा है, प्रियतम को पुकार रहा है और उसकी करुण ध्वनि सूने में उठ कर रह जाती है।

पृष्ठ १८१

इड़ा अग्नि ज्वाला सी—उल्लास—प्रसन्नता। विपद—संकट। आरोहण—सीढ़ी, सोपान। शैल शृंग—पर्वत की चोटी। श्रांति—थकावट। प्रेरणा—कार्य में प्रवृत्त कराने वाला मनोविकार (Inspiration)। वहीं—मनु के पास।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा : जैसे अग्नि शिखा अँधेरे पथ को प्रकाशित कर देती है वैसे ही इड़ा प्रसन्नतापूर्वक अग्रगामिनी बन कर अपनी उज्ज्वल प्रखर बुद्धि के प्रकाश से मनु को उनका कार्य-पथ सुझाती है। जैसे नौका द्वारा नदी को सहज में पार कर जाते हैं वैसे ही जब कभी संकट पड़ता है तब वही उन्हें उससे बचा ले जाती है।

वह उन्नति का सोपान थी अर्थात् उन्नति की ओर ले जाने वाली थी। वह गौरव के पर्वत की चोटी थी भाव यह कि उच्चतम गौरव प्राप्त करवाने वाली थी। थकावट जैसी वस्तु को वह जानती न थी। तात्पर्य यह कि निरंतर कर्म में लीन रहती और खटती थी। वह प्रेरणा की तीव्र धारा के समान थी जो उत्साह भर कर मनु के पास बह रही थी। आशय यह कि उसके पास रहने से मनु को कर्म में बड़ी स्फूर्ति और उत्साह मिलता था।

वह सुन्दर आलोक—आलोक—प्रकाश। हृदयभेदिनी—मन के रहस्यों से परिचित, सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक। तम—अंधकार और अज्ञान। सतत—निरन्तर। आश्रय—शरण। श्रम—सेवा।

अर्थ—वह एक रम्य प्रकाश किरण के समान थी। जैसे किरण जिधर

खुले आकाश में तारे नहीं झलक रहे हैं उसके अतीत जीवन के ज्वलित व्रण ही छाले बन कर उभर आए हैं।

उसने यह भी देखा कि दिन भर की थकी प्रकाश की किरणें उस नीले निवास-स्थान अर्थात् आकाश में कहीं छिप गई हैं और उसका (श्रद्धा का) करुण स्वर उस लोक मे गल कर बह गया।

वि०—स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ एकांत में बैठी श्रद्धा अपनी करुण गाथा सुना रही है—

> तृण गुल्मों से रोमांचित नग सुनते उस दुख की गाथा।
> श्रद्धा की सूनी साँसों से मिलकर जो स्वर भरते थे।

प्रणय किरण का—मुक्ति—बंधन का खुलना या टूटना। तंद्रा—झपकी, हल्की नींद। मूर्छित—शांत भाव से रहित। मानस—सरोवर, मन। अभिन्न—जो अपने से भिन्न न हो, जो अपना हो। प्रेमास्पद—प्रेमी।

अर्थ—प्रेम का किरण जैसा कोमल बंधन खुलने पर और भी कस गया। भाव यह कि मनु श्रद्धा को अपने प्रेम से मुक्त करके चले गए हैं, उसका हृदय उनकी स्मृति में और भी जकड़ गया है। मनु उससे बहुत दूर चले गए, पर श्रद्धा उन्हें अपने हृदय के और भी निकट पा रही है। जैसे शांत सरोवर पर मधुर चाँदनी छा जाती है वैसे ही श्रद्धा के हृदय में इस समय भावनाओं का उठना बंद हो गया और उसे एक झपकी आई। ठीक उसी समय उसके अभिन्न प्रेमी ने अपना चित्र उस मन पर अंकित कर दिया अर्थात् स्वप्न में उसने मनु को देखा।

कामायनी सकल अपना—स्वप्न बनना—सपना देखना, दूर होना। विकल—दु खी। प्रतारित—वंचित, छली गई। लेख—चिह्न। दल—पंखुड़ियाँ, सुख। पवन—हवा, जीवन। पपीहा—चातक, मन। पुकार—करुण कराह।

अर्थ—कामायनी देख रही है कि उसका सारा सुख सपना हो गया। भाव यह कि बाह्य जगत में जहाँ कामायनी के अब सुख के दिन शेष हो गए वहाँ निद्रावस्था में उसने एक सपना देखा जिसमें अतीत के सारे सुख की कल्पनायें

एक विशिष्ट रूप में प्रकट हुई। उसे लगा कि वह युग-युग से इसी प्रकार दुखी और वञ्चित रही है और अब मिट कर एक चिह्नमात्र रह गई है।

एक समय था जब फूलों की कोमल पंखुड़ियों की रेखाएँ पवन के पट पर अंकित रहती थीं और आज वह समय है जब पपीहे की पुकार की रेखा आकाश में खिंच रही है। भाव यह कि एक दिन जीवन में सुख और विलास के चिह्न थे और आज मन का पपीहा प्रेम का प्यासा है, प्रियतम को पुकार रहा है और उसकी करुण ध्वनि सूने मे उठ कर रह जाती है।

पृष्ठ १८१

इडा अग्नि ज्वाला सी—उल्लास—प्रसन्नता। विपद—संकट। आरोहण—सीढ़ी, सोपान। शैल शृंग—पर्वत की चोटी। श्रांति—थकावट। प्रेरणा—कार्य में प्रवृत्त कराने वाला मनोविकार (Inspiration)। वहीं—मनु के पास।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा जैसे अग्नि शिखा अँधेरे पथ को प्रकाशित कर देती है वैसे ही इड़ा प्रसन्नतापूर्वक अग्रगामिनी बन कर अपनी उज्ज्वल प्रखर बुद्धि के प्रकाश से मनु को उनका कार्य-पथ सुझाती है। जैसे नौका द्वारा नदी को सहज में पार कर जाते हैं वैसे ही जब कभी संकट पड़ता है तब वही उन्हें उससे बचा ले जाती है।

वह उन्नति का सोपान थी अर्थात् उन्नति की ओर ले जाने वाली थी। वह गौरव के पर्वत की चोटी थी भाव यह कि उच्चतम गौरव प्राप्त करवाने वाली थी। थकावट जैसी वस्तु को वह जानती न थी। तात्पर्य यह कि निरंतर कर्म में लीन रहती और रखती थी। वह प्रेरणा की तीव्र धारा के समान थी जो उत्साह भर कर मनु के पास बह रही थी। आशय यह कि उसके पास रहने से मनु को कर्म में बड़ी स्फूर्ति और उत्साह मिलता था।

वह सुन्दर आलोक—आलोक—प्रकाश। हृदयभेदिनी—मन के रहस्यों से परिचित, सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक। तम—अंधकार और अज्ञान। सतत—निरंतर। आश्रय—शरण। श्रम—सेवा।

अर्थ—वह एक सुन्दर प्रकाश किरण के समान थी। जैसे किरण जिधर

खुले आकाश में तारे नहीं झलक रहे हैं उसके अतीत जीवन के ज्वलित व्रण ही छाले बन कर उभर आए हैं।

उसने यह भी देखा कि दिन भर की थकी प्रकाश की किरणें उस नीले निवास-स्थान अर्थात् आकाश मे कहीं छिप गई हैं और उसका (श्रद्धा का) करुण स्वर उस लोक मे गल कर बह गया ।

वि०—स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ एकात में बैठी श्रद्धा अपनी करुण गाथा सुना रही है—

> तृण गुल्मों से रोमाञ्चित नग सुनते उस दुख की गाथा।
> श्रद्धा की सूनी साँसों से मिलकर जो स्वर भरते थे।

प्रणय किरण का—मुक्ति—बंधन का खुलना या टूटना। तंद्रा—झपकी, हल्की नींद। मूर्छित—शात भाव से रहित। मानस—सरोवर, मन। अभिन्न—जो अपने से भिन्न न हो, जो अपना हो। प्रेमास्पद—प्रेमी।

अर्थ—प्रेम का किरण जैसा कोमल बंधन खुलने पर और भी कस गया। भाव यह कि मनु श्रद्धा को अपने प्रेम से मुक्त करके चले गए हैं, उसका हृदय उनकी स्मृति में और भी जकड़ गया है। मनु उससे बहुत दूर चले गए, पर श्रद्धा उन्हें अपने हृदय के और भी निकट पा रही है। जैसे शात सरोवर पर मधुर चाँदनी छा जाती है वैसे ही श्रद्धा के हृदय में इस समय भावनाओं का उठना बंद हो गया और उसे एक झपकी आई। ठीक उसी समय उसके अभिन्न प्रेमी ने अपना चित्र उस मन पर अंकित कर दिया अर्थात् स्वप्न में उसने मनु को देखा।

कामायनी सकल अपना—स्वप्न बनना—सपना देखना, दूर होना। विकल—दुखी। प्रतारित—वंचित, छली गई। लेख—चिह्न। दल—पखुड़ियाँ, सुख। पवन—हवा, जीवन। पपीहा—चातक, मन। पुकार—करुण कराह।

अर्थ—कामायनी देख रही है कि उसका सारा सुख सपना हो गया। भाव यह कि बाह्य जगत में जहाँ कामायनी के अब सुख के दिन शेष हो गए वहाँ निद्रावस्था में उसने एक सपना देखा जिसमें अतीत के सारे सुख की कल्पनायें

एक विशिष्ट रूप में प्रकट हुई। उसे लगा कि वह युग-युग से इसी प्रकार दुखी और वञ्चित रही है और अब मिट कर एक चिह्नमात्र रह गई है।

एक समय था जब फूलों की कोमल पंखुड़ियों की रेखाएँ पवन के पट पर अंकित रहती थीं और आज वह समय है जब पपीहे की पुकार की रेखा आकाश में खिंच रही है। भाव यह कि एक दिन जीवन में सुख और विलास के चिह्न थे और आज मन का पपीहा प्रेम का प्यासा है, प्रियतम को पुकार रहा है और उसकी करुण ध्वनि सूने में उठ कर रह जाती है।

पृष्ठ १८१

इड़ा अग्नि ज्वाला सी—उल्लास—प्रसन्नता। विपद—संकट। आरोहण—सीढ़ी, सोपान। शैल शृंग—पर्वत की चोटी। श्रांति—थकावट। प्रेरणा—कार्य में प्रवृत्त कराने वाला मनोविकार (Inspiration)। वहीं—मनु के पास।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा : जैसे अग्नि शिखा अँधेरे पथ को प्रकाशित कर देती है वैसे ही इड़ा प्रसन्नतापूर्वक अग्रगामिनी बन कर अपनी उज्ज्वल प्रखर बुद्धि के प्रकाश से मनु को उनका कार्य-पथ सुझाती है। जैसे नौका द्वारा नदी को सहज में पार कर जाते हैं वैसे ही जब कभी संकट पड़ता है तब वही उन्हें उससे बचा ले जाती है।

वह उन्नति का सोपान थी अर्थात् उन्नति की ओर ले जाने वाली थी। वह गौरव के पर्वत की चोटी थी भाव यह कि उच्चतम गौरव प्राप्त करवाने वाली थी। थकावट जैसी वस्तु को वह जानती न थी। तात्पर्य यह कि निरंतर कर्म में लीन रहती और खटती थी। वह प्रेरणा की तीव्र धारा के समान थी जो उत्साह भर कर मनु के पास बह रही थी। आशय यह कि उसके पास रहने से मनु को कर्म में बड़ी स्फूर्ति और उत्साह मिलता था।

वह सुन्दर आलोक—आलोक—प्रकाश। हृदयभेदिनी—मन के रहस्यों से परिचित, सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक। तम—अंधकार और अज्ञान। सतत—निरंतर। आश्रय—शरण। श्रम—सेवा।

अर्थ—वह एक रम्य प्रकाश किरण के समान थी। जैसे किरण जिस

खुले आकाश में तारे नहीं झलक रहे हैं उसके अतीत जीवन के ज्वलित व्रण ही छाले बन कर उभर आए हैं।

उसने यह भी देखा कि दिन भर की थकी प्रकाश की किरणें उस नीले निवास-स्थान अर्थात् आकाश मे कहीं छिप गई हैं और उसका (श्रद्धा का) करुण स्वर उस लोक मे गल कर बह गया ।

वि०—स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ एकात में बैठी श्रद्धा अपनी करुण गाथा सुना रही है—

> तृण गुल्मों से रोमाचित नग सुनते उस दुख की गाथा।
> श्रद्धा की सूनी साँसों से मिलकर जो स्वर भरते थे।

प्रणय किरण का—मुक्ति—बधन का खुलना या टूटना। तद्रा—झपकी, हल्की नींद। मूर्छित—शात भाव से रहित। मानस—सरोवर, मन। अभिन्न—जो अपने से भिन्न न हो, जो अपना हो। प्रेमास्पद—प्रेमी।

अर्थ—प्रेम का किरण जैसा कोमल बधन खुलने पर और भी कस गया। भाव यह कि मनु श्रद्धा को अपने प्रेम से मुक्त करके चले गए हैं, उसका हृदय उनकी स्मृति में और भी जकड़ गया है। मनु उससे बहुत दूर चले गए, पर श्रद्धा उन्हें अपने हृदय के और भी निकट पा रही है। जैसे शात सरोवर पर मधुर चाँदनी छा जाती है वैसे ही श्रद्धा के हृदय में इस समय भावनाओं का उठना बद हो गया और उसे एक झपकी आई। ठीक उसी समय उसके अभिन्न प्रेमी ने अपना चित्र उस मन पर अकित कर दिया अर्थात् स्वप्न में उसने मनु को देखा।

कामायनी सकल अपना—स्वप्न बनना—सपना देखना, दूर होना। विकल—दु खी। प्रतारित—वचित, छली गई। लेख—चिह्न। दल—पखुड़ियाँ, सुख। पवन—हवा, जीवन। पपीहा—चातक, मन। पुकार—करुण कराह।

अर्थ—कामायनी देख रही है कि उसका सारा सुख सपना हो गया। भाव यह कि बाह्य जगत में जहाँ कामायनी के अब सुख के दिन शेष हो गए वहाँ निद्रावस्था मे उसने एक सपना देखा जिसमें अतीत के सारे सुख की कल्पनायें

एक विशिष्ट रूप में प्रकट हुई। उसे लगा कि वह युग-युग से इसी प्रकार दुखी और वञ्चित रही है और अब मिट कर एक चिह्नमात्र रह गई है।

एक समय था जब फूलों की कोमल पखुड़ियों की रेखाएँ पवन के पट पर अंकित रहती थीं और आज वह समय है जब पपीहे की पुकार की रेखा आकाश में खिच रही है। भाव यह कि एक दिन जीवन में सुख और विलास के चिह्न थे और आज मन का पपीहा प्रेम का प्यासा है, प्रियतम को पुकार रहा है और उसकी करुण ध्वनि सूने में उठ कर रह जाती है।

पृष्ठ १८१

इड़ा अग्नि ज्वाला सी—उल्लास—प्रसन्नता। विपद—संकट। आरोहण—सीढ़ी, सोपान। शैल शृंग—पर्वत की चोटी। श्रांति—थकावट। प्रेरणा—कार्य में प्रवृत्त कराने वाला मनोविकार (Inspiration)। वहीं—मनु के पास।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा: जैसे अग्नि शिखा अँधेरे पथ को प्रकाशित कर देती है वैसे ही इड़ा प्रसन्नतापूर्वक अग्रगामिनी बन कर अपनी उज्ज्वल प्रखर बुद्धि के प्रकाश से मनु को उनका कार्य-पथ सुझाती है। जैसे नौका द्वारा नदी को सहज में पार कर जाते हैं वैसे ही जब कभी संकट पड़ता है तब वही उन्हें उससे बचा ले जाती है।

वह उन्नति का सोपान थी अर्थात् उन्नति की ओर ले जाने वाली थी। वह गौरव के पर्वत की चोटी थी भाव यह कि उच्चतम गौरव प्राप्त करवाने वाली थी। थकावट जैसी वस्तु को वह जानती न थी। तात्पर्य यह कि निरंतर कर्म में लीन रहती और स्फूर्त थी। वह प्रेरणा की तीव्र धारा के समान थी जो उत्साह भर कर मनु के पास बह रही थी। आशय यह कि उसके पास रहने से मनु को कर्म में बड़ी स्फूर्ति और उत्साह मिलता था।

वह सुन्दर आलोक—आलोक—प्रकाश। हृदयभेदिनी—मन के रहस्यों से परिचित, सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक। तम—अंधकार और अज्ञान। सतत—निरंतर। आधार—शरण। श्रम—सेवा।

अर्थ—वह एक रम्य प्रकाश किरण के समान थी। जैसे किरण जिधर

खुले आकाश मे तारे नहीं झलक रहें हैं उसके अतीत जीवन के ज्वलित व्रण ही छाले बन कर उभर आए हैं।

उसने यह भी देखा कि दिन भर की थकी प्रकाश की किरणे उस नीले निवास-स्थान अर्थात् आकाश मे कहीं छिप गई हैं और उसका (श्रद्धा का) करुण स्वर उस लोक मे गल कर बह गया।

वि०—स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ एकात में बैठी श्रद्धा अपनी करुण गाथा सुना रही है—

तृण गुल्मों से रोमाचित नग सुनते उस दुख की गाथा।
श्रद्धा की सूनी साँसों से मिलकर जो स्वर भरते थे।

प्रणय किरण का—मुक्ति—बधन का खुलना या टूटना। तद्रा—झपकी, हल्की नींद। मूर्छित—शात भाव से रहित। मानस—सरोवर, मन। अभिन्न—जो अपने से भिन्न न हो, जो अपना हो। प्रेमास्पद—प्रेमी।

अर्थ—प्रेम का किरण जैसा कोमल बधन खुलने पर और भी कस गया। भाव यह कि मनु श्रद्धा को अपने प्रेम से मुक्त करके चले गए हैं, उसका हृदय उनकी स्मृति में और भी जकड़ गया है। मनु उससे बहुत दूर चले गए, पर श्रद्धा उन्हें अपने हृदय के और भी निकट पा रही है। जैसे शात सरोवर पर मधुर चाँदनी छा जाती है वैसे ही श्रद्धा के हृदय में इस समय भावनाओ का उठना बद हो गया और उसे एक झपकी आई। ठीक उसी समय उसके अभिन्न प्रेमी ने अपना चित्र उस मन पर अकित कर दिया अर्थात् स्वप्न में उसने मनु को देखा।

कामायनी सकल अपना—स्वप्न बनना—सपना देखना, दूर होना। विकल—दुखी। प्रतारित—वचित, छली गई। लेख—चिह्न। दल—पखुडियाँ, सुख। पवन—हवा, जीवन। पपीहा—चातक, मन। पुकार—करुण कराह।

अर्थ—कामायनी देख रही है कि उसका सारा सुख सपना हो गया। भाव यह कि बाह्य जगत में जहाँ कामायनी के अब सुख के दिन शेष हो गए वहाँ निद्रावस्था मे उसने एक सपना देखा जिसमें अतीत के सारे सुख की कल्पनायें

कर्कश, तीव्र । रोष भरी—जोश भरी । मूर्च्छना—तान । प्रथा—प्रणाली । श्री—शोभा ।

अर्थ—एक ओर जोश में भर कर लोहारों के हथौड़ों की चोट से उठी कठोर ध्वनि सुनाई पड़ती है तो दूसरी ओर रमणियों के कंठ से निकली हृदय की तान ढल रही है । उस नगर में सभी अपने-अपने वर्ग बना कर काम को पूरा कर रहे हैं । इस प्रकार उनके मिलकर काम करने की प्रणाली के कारण उस नगर की शोभा निखर उठी है ।

पृष्ठ १८२

देश काल का लाघव—देश—स्थान । काल—समय । लाघव—छोटा । चंचल—तीव्र गति से काम करने में तत्पर । सबल—उपभोग की सामग्री । व्यवसाय—रोज़गार । विस्तृत—विराट । छाया—सहारा ।

अर्थ—उस नगर के प्राणी ऐसी तीव्र गति से काम करने में तत्पर हैं कि उन्होंने स्थान और समय दोनों को छोटा कर दिखाया है, अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान तक शीघ्र से शीघ्र पहुँचने के साधन उनके पास हैं जिससे कोई स्थान दूर नहीं रहा और जो काम सामान्यरूप से अति काल में समाप्त होता उसे वे मशीनों की शक्ति से शीघ्र समाप्त कर लेते हैं । वे सुख के उन सभी साधनों को जुटा रहे हैं जो उनके उपभोग की सामग्री बन सके । महान् परिश्रम और शक्ति के सहारे उनका ज्ञान और उनके व्यवसाय में उन्नति हो रही है । वे इस बात में रत हैं कि पृथ्वी के भीतर जो कुछ छिपा पड़ा है वह भी मनुष्य के प्रयत्न से उसके भोग के लिए ऊपर आ जाए ।

सृष्टि बीज अंकुरित—सृष्टि—निर्माण । स्वचेतन—अपनी चेतना शक्ति का जिसे ज्ञान हो । कुशल—सफल । स्वावलम्ब—अपने भरोसे रहना ।

अर्थ—प्रलयकाल में मनु के बच जाने से उनके रूप में निर्माण कार्य का बीज बच रहा था । उसे उन्होंने बड़े उत्साह से फैलाया । थोड़े दिनों में वह अंकुरित होकर फूला-फला । चारों ओर हरियाली छा गई । भाव यह कि प्रलय से पृथ्वी का समस्त वैभव नष्ट हो गया था, मनु के बुद्धि कौशल से फिर एक

प्रवेश करती है उधर ही अधकार से ढके पथ को आलोकित कर देती है, वैसे ही मन के भेदों को परखनेवाली उसकी ऐसी दृष्टि थी कि जिधर वह पड़ जाती उधर ही वह अज्ञान-जनित उलझनों को मिटा देती, मनु को जो बराबर सफलता मिल रही थी उसका एक मात्र कारण वही थी। विजय-तारा के समान वह उनके जीवन मे उदित हुई।

भूचाल आने के कारण सब कुछ नष्ट हो गया था। जनता आश्रय चाहती थी। मनु ने उनकी स्थिति से लाभ उठाया। अत: प्रजा ने उनके लिए बदले में अपनी सेवाएँ समर्पित कीं।

मनु का नगर—सहयोगी—साथी। प्राचीर—चहारदीवारी, परकोटा। मदिर—महल। धूप—गर्मी। शिशिर—जाड़ा। छाया—बचाव, सुख। सम्पन्न—एकत्र, इकट्ठे। श्रम स्वेदसने—परिश्रम के कारण पसीनों से लथपथ।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न मे देखा मनु का सुन्दर नगर बसा है। सब उनके साथी हैं। दृढ़ चहारदीवारी के भीतर महल बना है। उसके अनेक द्वार हैं। वर्षा, गर्मी, जाड़े से बचने के सब साधन वहाँ एकत्र है। बाहर खेतों में किसान प्रसन्न होकर हल चला रहे हैं। परिश्रम के कारण उनका शरीर पसीनों से लथ-पथ है।

उधर धातु गलते—धातु—सोना चाँदी, लोहा आदि। साहसी—साहस का काम करने वाले जैसे शिकारी डाकू आदि। मृगया—शिकार। पुष्पला-वियाँ—पुष्प चुनने वाली रमणी, मालिन। अर्ध विकच—अर्द्ध विकसित। गधचूर्ण—सुगन्धित रज (Face Powder) लोध्र—एक वृक्ष जिस पर लाल या श्वेत पुष्प आते हैं। प्रसाधन—सामग्री, वस्तु।

अर्थ—कहीं सोना, चाँदी और लोहा आदि धातुएँ गल रही हैं और उनसे आभूषण तथा अस्त्र तैयार किए जा रहे हैं। कहीं साहसी व्यक्ति शिकार खेल कर शेर का चमड़ा या मृग की नाभि से कस्तूरी आदि नवीन उपहार ला रहे हैं। वन कुसुमों की अर्द्ध-विकसित कलियों को कहीं मालिनें चुन रही हैं। लोध्र पुष्पों का पराग सुगन्धित चूर्ण (Face Powder) का काम दे रहा है। इस प्रकार भोग की नवीन-नवीन वस्तुओं का आयोजन हो रहा है।

घन के आघातो से—घन—हथौड़ा। आघात—चोट। प्रचड—कठोर,

कर्कश, तीव्र । रोष भरी—जोश भरी । मूर्च्छना—तान । प्रथा—प्रणाली । श्री—शोभा ।

अर्थ—एक ओर जोश में भर कर लोहारों के हथौड़ों की चोट से उठी कठोर ध्वनि सुनाई पड़ती है तो दूसरी ओर रमणियों के कंठ से निकली हृदय की तान ढल रही है । उस नगर में सभी अपने अपने वर्ग बना कर काम को पूरा कर रहे हैं । इस प्रकार उनके मिलकर काम करने की प्रणाली के कारण उस नगर की शोभा निखर उठी है ।

पृष्ठ १८३

देश काल का लाघव—देश—स्थान । काल—समय । लाघव—छोटा । चंचल—तीव्र गति से काम करने में तत्पर । सबल—उपभोग की सामग्री । व्यवसाय—रोजगार । विस्तृत—विराट । छाया—सहारा ।

अर्थ—उस नगर के प्राणी ऐसी तीव्र गति से काम करने में तत्पर हैं कि उन्होंने स्थान और समय दोनों को छोटा कर दिखाया है, अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान तक शीघ्र से शीघ्र पहुँचने के साधन उनके पास हैं जिससे कोई स्थान दूर नहीं रहा और जो काम सामान्यरूप से अति काल में समाप्त होता उसे वे मशीनों की शक्ति से शीघ्र समाप्त कर लेते हैं । वे सुख के उन सभी साधनों को जुटा रहे हैं जो उनके उपभोग की सामग्री बन सकें । महान् परिश्रम और शक्ति के सहारे उनका ज्ञान और उनके व्यवसाय में उन्नति हो रही है । वे इस बात में रत हैं कि पृथ्वी के भीतर जो कुछ छिपा पड़ा है वह भी मनुष्य के प्रयत्न से उसके भोग के लिए ऊपर आ जाय ।

सृष्टि बीज अंकुरित—सृष्टि—निर्माण । स्वचेतन—अपनी चेतना शक्ति का जिसे भान हो । कुशल—सफल । स्वावलम्ब—अपने भरोसे रहना ।

अर्थ—प्रलयकाल में मनु के बच जाने से उनके रूप में निर्माण कार्य का बीज बच रहा था । उसे उन्होंने बड़े उत्साह से फैलाया । थोड़े दिनों में वह अंकुरित होकर फूला-फला । चारों ओर हरियाली छा गई । मालूम हो कि प्रलय में पृथ्वी का समस्त वैभव नष्ट हो गया था, मनु के बुद्धि कौशल से फिर एक

व्यवस्थित राज्य की स्थापना हुई जिसकी प्रजा धन-धान्य से पूर्ण और हर्ष-मगल भरी थी।

आज का प्राणी अपनी शक्ति को पहचानता है और वह ऐसी कल्पनायें करके जो सफल होती हैं अपने दृढ़ भरोसे पर जीवित है। अब वह प्रकृति के प्रकोप से डरता नहीं।

श्रद्धा उस आश्चर्य लोक—मलयबालिका—पवन, हवा। सिंहद्वार—मुख्य फाटक। प्रहरी—पहरेदार। छलती—आँख बचाती। स्तभ—खभ। बलभी—छज्जा। प्रासाद—महल। धूप—एक सुगन्धित द्रव्य। आलोक शिखा—दीपक या मोमबत्ती का प्रकाश।

अर्थ—चकित करने वाली वस्तुओं से परिपूर्ण उस देश में श्रद्धा पवन के समान स्वतन्त्रता से घूम रही है। कुछ देर में वह प्रहरियों की दृष्टि बचाती नगर के मुख्य फाटक के भीतर घुस गई। उसने देखा ऊँचे खम्भों पर छज्जों से युक्त सुन्दर महल बने हुए थे। धूप के धुँए से मकान सुवासित हैं और उनमें प्रकाश-शिखा जल रही थी।

स्वर्ण कलश शोभित—स्वर्ण कलश—सोने के कलसे। उद्यान—बाग-बगीचे। ऋजु—सीधे। प्रशस्त—स्वच्छ। दम्पति—पति-पत्नी। पराग—पुष्प रज।

अर्थ—सोने के कलशों से युक्त होने के कारण भवन सुन्दर लगते हैं। उन्हीं से सटे हुए बगीचे हैं जिनके बीच से होकर सीधे स्वच्छ मार्ग गए हैं। कहीं-कहीं लताओं के घने कुंज हैं। इन कुञ्जों में पति-पत्नी प्यार में डूबे एक दूसरे के गले में भुजायें डाल आनन्द-पूर्वक घूम रहे हैं। वहीं पराग से सने रसिक भौंरे पुष्पों के रस का पान कर आनन्दमग्न हो गूँज रहे हैं।

देवदारु के वे—देवदारु—एक बहुत ऊँचा और सीधा वृक्ष। प्रलम्ब—लम्बे। भुज—बाहु यहाँ शाखाओं से तात्पर्य है। मुखरित—ध्वनित। कलरव—मधुर ध्वनि। आश्रय देना—सहारा या शरण देना। नागकेसर—एक प्रकार का फलदार वृक्ष।

अर्थ—देवदारु की लम्बी-लम्बी शाखाएँ लम्बी-लम्बी भुजाओं सी प्रतीत

होती थी जिनसे वायु की लहरियाँ आकर लिपट गई थीं। वहीं पक्षियों के रम्य बच्चे आभूषणों की झंकार के समान मधुर ध्वनि कर रहे थे। वनों से आती हुई स्वर की हिलोरें बाँसों के झुरमुट में आकर रुक जाती थीं। वहीं नागकेसरों की क्यारियों में अनेक रंगों के और भी बहुत से फूल खिल रहे थे।

वि०—देवदारु पुल्लिङ्ग में है और वायु-तरंग स्त्रीलिङ्ग में। ऊपर के छन्द में स्त्री-पुरुषों का गले मिलना दिखाया है और इसमें प्रकृति के तत्त्वों का। भावों की यह समानता उपयुक्त ही हुई है।

पृष्ठ १८३

नव मण्डप में सिंहासन—मंडप—चँदोवा। सिंहासन—राजासन। मञ्च—मूढ़ा, पीढ़ा, लकड़ी या पत्थर का बैठने का एक ऊँचा आधार। शैलेय अगरु—पहाड़ी अगर। आमोद—मीठी खुशबू (Fragrance)।

अर्थ—एक नवीन मंडप की रचना हुई है। उसमें सिंहासन लगा है। उसके सामने चमड़े से मढ़े, देखने में सुन्दर तथा शरीर को सुख देने वाले एक और अनेक मञ्च बिछे हैं। पहाड़ी अगरु जल रहा है जिसके धुँए की मीठी खुशबू आ रही है। श्रद्धा यह सब देखकर सपने में सोचती है : आश्चर्य! मैं कहाँ आ गई?

और सामने देखा—चषक—प्याला। मखमय—यज्ञों का प्रेमी। मादक भार—मस्ती।

अर्थ—और अपने सामने ही श्रद्धा ने देखा यज्ञ के प्रेमी मनु अपने सबल हाथ में एक प्याला थामे हुए हैं। ऊषा की लालिमा जैसी आभा से पूर्ण वह रूप मनु का ही था। उसने यह भी देखा कि उनके आगे एक बालिका बैठी है। वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो उनके मन की मस्ती ही साकार हो गई हो। वह सोचने लगी : एक सुन्दर चित्र के समान इतनी आकर्षक यह कौन है जिसे केवल देखने के लिए कोई भी जीवधारी सैकड़ों बार मर मर कर फिर-फिर जीना चाहेगा?

इड़ा ढालती थी—आसव—मादक रस। तृषित—प्यासा। वैश्वानर—

अग्नि। ज्वाला—लपट। वेदिका—यज्ञ के लिए तैयार की हुई ऊँची भूमि। सौमनस्य—प्रसन्नता। जड़ता—आलस्य, स्फूर्तिहीनता। भास—चिह्न।

अर्थ—इड़ा मनु के प्याले में ऐसा मादक रस ढाल रही थी जिससे प्यास शात न होती थी वरन् जिसे बार-बार पीकर भी प्यासा कठ ऐसा विश्वास नहीं करता था कि उसने यथेष्ट पी ली।

यज्ञ की वेदी पर जो एक मच के रूप में बनी हुई थी अग्नि की एक लपट के समान इड़ा बैठी थी। उसके मुख से शीतल प्रसन्नता बरस रही थी। आलस्य अथवा अकर्मण्यता का कोई चिह्न उसकी आकृति से लक्षित नहीं होता था।

मनु ने पूछा—सविशेष—विशेष रूप से। साधन—सुख की सामग्री। स्ववश—अधिकार में। रिक्त—आभाओं से भरा। मानस—मन।

अर्थ—मनु ने प्रश्न किया : क्या अब भी और कोई ऐसा काम है जो करने को बच रहा हो? इड़ा ने उत्तर दिया : जो थोड़ा बहुत तुमने किया है कर्म की विशेष सफलता उतने में कहाँ है? क्या सृष्टि के समस्त सुख-साधन तुम्हारे अधिकार में हैं।

मनु ने बात को उलटते हुए कहा : नहीं, अभी मैं अभाव से भरा हूँ। यह ठीक है कि मैने सारस्वत नगर बसा दिया है, पर मेरे मन का सूना देश अभी उजड़ा पड़ा है।

पृष्ठ १८४

सुन्दर मुख आँखों—आँखों की आशा—आँखों में किसी की प्रतीक्षा। बाँकपन—तिरछापन। प्रतिपदा—प्रतिपदा, पड़वा। अनुरोध—आग्रह। मान मोचन—नायिका के रूठने पर नायक का उसे मनाना।

अर्थ—तुम्हारा सुन्दर मुख और किसी की निरतर प्रतीक्षा करती तुम्हारी आखें! पर उफ, उन्हें अपना कहने का अधिकार किसी को नहीं। तुम्हारी चितवन में पड़वा के चन्द्रमा जैसे तिरछापन है जिससे कुछ रिस के भाव झलक रहे हैं। साथ ही इन्हीं आँखों से कुछ ऐसा भी सकेत मिलता है कि वे किसी से ऐसा आग्रह करती हैं जैसे तुम्हारे मन का मान कोई दूर करता। हे मेरी

चेतनाशक्ति ! इस बात का उत्तर दो कि तुम किसकी हो और तुम्हारा यह मुख और तुम्हारी ये भावभरी आँख किसकी है ?

वि०—प्रसिद्ध है कि प्रतिपदा को चन्द्रमा नहीं निकलता, पर कवि ने उसकी कल्पना की है।

प्रजा तुम्हारी तुम्हें—प्रजापति—राजा। गुनना—समझना। मराली—हंसिनी। प्रणय—प्रेम।

अर्थ—इड़ा बोली : मैं यही समझती हूँ कि तुम हमारे प्रजापति हो। उस दृष्टि से मैं तुम्हारी प्रजामात्र हूँ। जब मेरा तुम्हारा इतना स्पष्ट संबंध है तब तुम्हारी ओर से यह संदेहभरा नवीन प्रश्न कैसे उठा ?

मनु ने उत्तर दिया : तुम प्रजा नहीं रानी हो, मुझे अधिक भ्रम में न रखो। तुम एक सुन्दर हंसिनी हो। अपने मुख से कहो कि तुम मेरे प्रेम के मोती चुनने (मुझे प्रेम करने) को तत्पर हो।

मेरा भाग्य गगन—प्राचीपट—पूर्व दिशा। अतृप्त—अभाव से परिपूर्ण। प्रकाश बालिका—उषा।

अर्थ—मेरा भाग्य धुँधले आकाश जैसा और तुम उसमें उस पूर्व दिशा के सदृश हो जो सहसा खिलकर अपनी रंगभरी सुन्दरता से आलोकित हो उठती है। मैं अभाव से पूर्ण हूँ, प्रेम के प्रकाश का भिखारी हूँ और तुम उषा के समान हो। बताओ, वह कौन सा दिन होगा जब तुम्हारे इन मधुर अधरों के रस का पान कर हमारे प्रेम की प्यास शान्त हो सकेगी।

ये सुख साधन—सुख साधन—भोग की सामग्री। रुपहली—चाँदी के रंग की। छाया—चाँदनी। सचरित—युक्त। उन्मद—मस्त। नर पशु—नर पुरुष जिसमें पशु भाव (यहाँ वासना) की प्रधानता हो। मदिर—मस्त।

अर्थ—भोग की यह सामग्री और उस पर चाँदी जैसी उजली रातों की शीतल चाँदनी, स्वर से युक्त दिशाएँ मस्त मन और शिथिल शरीर ! भाव यह कि सब कुछ आज मिलन के उत्सुक हैं। तब रानी, तुम मेरी प्रजामात्र मत रहो, ऐसी बात उस नर पशु ने बड़े आवेग से आकर कही। उसी समय घने अंधकार के समान एक सघन घटा सी छा गई।

पृष्ठ १८५

आलिंगन फिर भय—क्रन्दन—चिल्लाना, विलाप करना। वसुधा—पृथ्वी। अतिचारी—अत्याचारी, उच्छृं खलता से व्यवहार करने वाला। परित्राण—रक्षा, छुटकारा, बचाव। अतरिक्ष—आकाश, शून्य। रुद्र—शिव। हुँकार—गर्जन। आत्मजा—पुत्री। शाप—अशुभ फल।

अर्थ—मनु ने इड़ा का बलपूर्वक आलिंगन किया जिससे भयभीत होकर वह चिल्ला उठी। जैसे पृथ्वी हिल उठती है वैसे ही वह काँपने लगी। इधर वह अत्याचार करने को उद्यत और उधर वह एक दुर्बल रमणी। कैसे छुटकारा होगा यह चिंता करने लगी।

इसी समय आकाश में शिव का गर्जन सुनाई दिया जिससे भयानक हलचल मच गई। उफ, प्रजा होने से इड़ा तो पुत्री के समान हुई। अतः मनु का यह कर्म पाप के अन्तर्गत आने से उसके लिए अशुभ फल देने वाला सिद्ध हुआ।

उधर गगन में—क्षुब्ध होना—क्रोध से तमतमाना। रुद्र—शकर का भयकर और विनाशकारी रूप। शिव—शकर का शात और कल्याणकारी रूप। शिंजिनि—धनुष की डोर। अजगव—रुद्र का पिनाक नामक धनुष। प्रतिशोध—बदला।

अर्थ—उधर आकाश में और सब देवता भी क्रोध से तमतमा उठे। सहसा रुद्र का तीसरा अग्नि-नेत्र खुल गया। सारस्वत नगरी घबराकर काँपने लगी।

प्रजा का रक्षक ही जब अत्याचार करने पर उतारू हुआ, उस समय भी देवता क्या शात बने रह सकते थे? नहीं। इसी से मनु के अपराध पर बदला लेने के लिए अपने पिनाक नामक धनुष पर शिव ने डोरी चढ़ाई।

प्रकृति त्रस्त थी—त्रस्त—भयभीत। भूतनाथ—भूतों के स्वामी शिव। नृत्य विकपित—प्रलय नृत्य के लिये चचल। भूत सृष्टि—भौतिक जगत। सपना होना—नष्ट होना। कलुप—पाप। सदिग्ध—संदेह की अवस्था में। वसुधा—पृथ्वी।

अर्थ—पृथ्वी भयभीत हो उठी। शिव ने प्रलय नृत्य के लिए चंचल अपना पैर उठाया तो ऐसा लगा कि समस्त भौतिक जगत थोड़ी देर में नष्ट हो जायगा। सब शरण पाने को व्याकुल हो उठे। स्वयं मनु के हृदय में संदेह उठा कि सम्भवतः उनसे पाप बन पड़ा है। जब पृथ्वी थर-थर काँपने लगी तब उन्हें निश्चय हो गया कि आज फिर कुछ होने वाला है।

काँप रहे थे प्रलयमयी—प्रलयमयी क्रीड़ा—ताडव नृत्य। आशंकित—भयभीत। छिन्न—टूटता। तंतु—तागा, सम्बन्ध। शासन—शासन करने वाला राजा।

अर्थ—रुद्र के प्रलय नृत्य से सब जंतु भयभीत होकर काँपने लगे। इस समय सभी को अपने-अपने प्राण बचाने की चिंता थी, अतः किसी ने भी स्नेह के कोमल सम्बन्ध का ध्यान करके दूसरे की रक्षा न की।

सब सोचने लगे : आज वह राजा कहाँ है जिसने सब की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया था। इसी हलचल में मनु के कुव्यवहार पर क्रोध और लज्जा से भरी इड़ा को बाहर निकलने का अवसर मिल गया।

देखा उसने जनता—व्याकुल—क्षुब्ध। रुद्ध—घेरना। नियमन—कड़ा शासन। अविरुद्ध—अनुकूल।

अर्थ—इड़ा ने बाहर आकर देखा जनता क्षुब्ध हो उठी है और उसने राजद्वार को घेर रखा है। पहरेदारों का समूह भी चढ़ा आ रहा है। राजा की ओर से उनका हृदय भी शुद्ध नहीं प्रतीत होता।

कड़े शासन में जो झुकाव रहता है वह दबाव (आतंक) के कारण। जैसे बोझ से दबी चीज या तो टूट ही जाती है या फिर (उस बोझ को यदि परे फेंक सकती है तो) ऊपर उठ आती है। इसी प्रकार क्रूर अनुशासन में या तो राजा की शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है या फिर वह विद्रोह कर बैठती है। मनु की प्रजा भी जो अब तक उनके अनुकूल रहती आई थी, आज विरोध भावना से भर उठी।

पृष्ठ १८६

कोलाहल में घिर—कोलाहल—शोर। त्रस्त—भयभीत। आंदोलन—विद्रोह। त्वरा—तीव्र गति धारण करना।

अर्थ—मनु के चारो ओर जब कोलाहल मचा तो वे चिंता-निमग्न होकर एक स्थान पर छिप कर बैठ गए। प्रजा ने जब यह देखा कि द्वार बन्द है, तब वह भयभीत हो उठी। लोगों का मन धैर्य भी कैसे धारण करता। प्रत्येक व्यक्ति में जितनी शक्ति थी वह उसे लेकर विद्रोह करने को उद्यत हुआ।

शिव का क्रोध भयङ्कर से भयङ्कर रूप धारण कर रहा था और इन सबके ऊपर तीसरे नेत्र से फूटने वाली नील और लाल वर्ण की प्रखर ज्वाला तीव्र गति से बढ़ी चली आ रही थी।

एक विज्ञानमयी—विज्ञानमयी—विज्ञान के आधार पर। माया—आकर्षण। वर्ग—जाति। खाई—भेद।

अर्थ—विज्ञान की शक्ति के आधार पर पख लगाकर उड़ने (आश्चर्यजनक कार्य कर दिखलाने) की आकांक्षा का परिणाम आज दिखाई दिया। जीवन की उन अनन्त कामनाओं का परिणाम जो झुकना जानती ही नहीं आज दृष्टि-गोचर हुआ। राजा ने अपनी प्रजा का वर्गों में विभाजन किया। उसके एक वर्ग और दूसरे वर्ग के बीच ऐसी खाई खुदी कि वे कभी भरी नहीं जा सकतीं अर्थात् वर्गों की स्थापना से व्यक्तियों में एकता की भावना सदा को तिरोहित हो गई।

असफल मनु कुछ—क्षुब्ध—क्रुद्ध। आकस्मिक—सहसा। बाधा—अड़चन। परित्राण—रक्षा।

अपने शासन की असफलता देखकर मनु कुछ क्रुद्ध हो उठे। सोचने लगे सहसा यह अड़चन कहाँ से आ खड़ी हुई? वे यह समझ ही न पाये कि ऐसी क्या बात हुई जिससे प्रजा ने उन्हें इस प्रकार आकर घेर लिया।

प्रजा ने पहले रक्षा के लिए बहुत गिड़गिड़ा कर प्रार्थना की, पर जब वह विफल हुई तब देवताओं के क्रोध की प्रेरणा से वह भावना विद्रोह में बदल गई। मनु ने सोचा: इडा भी इनमें सम्मिलित है। उन्हें विश्वास हो गया कि उनके विरुद्ध कोई कुचक्र रचा गया है जिसका परिणाम यह घटना है और जिसमें इडा का हाथ है।

द्वार बन्द कर दो—उत्पात—ऊधम। कक्ष—कमरा। लेना देना—लाभ हानि।

अर्थ—मनु ने सेवकों को आज्ञा दी : द्वार बन्द करो। ये लोग भीतर न आने पावें। प्रकृति आज ऊधम मचा रही है। ऐसी दशा में मैं सोना चाहता हूँ। तुम लोग मुझे जगाना मत। ऐसा कह कर वे ऊपर से क्रोध प्रदर्शित करते हुये किन्तु मन में डरते हुये शयनागार में घुसे। जीवन के हानि-लाभ पर वे विचार करने लगे।

श्रद्धा काँप उठी—छली—विश्वासघाती। स्वजन—प्रियजन, आत्मीय जन। आशंकायें—संभावनाएँ।

अर्थ—स्वप्न में यहाँ सब कुछ देखकर श्रद्धा काँप उठी। उसकी नींद एकदम टूट गई। जगने पर वह सोचने लगी : मैंने यह क्या देखा! वह इतना विश्वासघाती कैसे हो गया? प्रियजनों का स्नेह ऐसा है कि जब वे दूर होते हैं तब मन में अनेक प्रकार के भय की संभावनायें उन्हें लेकर उठती रहती हैं। श्रद्धा की सारी चिंता तो यह थी कि इस विद्रोह में मनु पर न जाने क्या संकट आयेगा। इसी सोच में छटपटाते-छटपटाते उसने किसी प्रकार रात काटी।

संघर्ष

कथा—श्रद्धा का स्वप्न सत्य निकला। एक ओर मनु ने इड़ा से प्रेम क प्रस्ताव किया था जिस पर वह झिझकी, दूसरी ओर भौतिक हलचल से आकुल होकर प्रजा राजा की शरण में आई थी और उससे तिरस्कृत होने पर रोष से भर उठी। मनु ने महल के फाटक बन्द करा दिए। शय्या पर लेटकर वे सोचने लगे : सारस्वत प्रदेश के बिखरे व्यक्तियों को मैंने इसलिए प्रजा का रूप दिया था कि वे मेरे अनुशासन में रहें। पर वे तो आज विद्रोही बन गए। राज-व्यवस्था बनी रहे इसी से तो मैंने अपनी बुद्धि से नियमों का निर्माण किया था। मैं शासक हूँ, नियामक हूँ। क्या मुझे इतना भी अधिकार नही है कि मै स्वनिर्मित नियमों के बधन में न रहूँ? श्रद्धा जो मेरी पत्नी थी जब उसके सामने ही मैंने आत्म-समर्पण न किया तो इड़ा मुझे कैसे बाँध सकती है? इस जगत में कोई भी वस्तु बँधकर रहती है क्या? सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों में से किसी की स्थिति स्थिर नहीं। पृथ्वी जल में डूब जाती है, समुद्र शुष्क होकर मरुभूमि में परिवर्तित हो जाता है। स्वय मनुष्य कुछ काल के लिए आता है, फिर चला जाता है। तारे चक्कर काट रहे हैं, पवन बह रहा है। सारा विश्व ही गतिशील है। स्थिर कुछ भी नहीं। ससार में कोई नियम काम नहीं कर रहा। कभी-कभी घटनायें उसी रूप में घट जाती हैं। उसे हम नियम मान लेते हैं। सारी सृष्टि मृत्यु की गोद में खेल रही है। अतः मेरी समझ में तो यही आता है कि जितने पल सुख और स्वतन्त्रता में कट सकें वे ही अपने हैं। शेष सब निस्सार हैं।

मनु ने करवट ली। देखा इड़ा खड़ी है। उसने समझाना प्रारभ किया . जब नियमों का मानने वाला ही नियमों को न मानेगा तो अपने आप अव्यवस्था फैलेगी। एक ओर तो तुम यह चाहते हो कि सब तुम्हारी आज्ञा का पालन करें दूसरी ओर तुम उच्छृङ्खलता से व्यवहार करने पर उतारू हो। यह नहीं हो सकता।

चेतना एक अखंड वस्तु है। पर प्रत्येक प्राणी के शरीर में बद्ध होकर वह खंड-खंड प्रतीत होती है। यही कारण है कि चेतन प्राणियों का आपस में निरंतर संघर्ष चल रहा है। इस संघर्ष में जो शक्तिशाली है वह विजयी होता है। ऐसे मनुष्यों को शासन करने का अधिकार है यह सत्य है। पर शासक का धर्म यह भी है कि वह लोक कल्याण करे, अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को भुला दे, प्रजा के सुख दुःख में अपने सुख दुःख को खो दे। सृष्टि विकास-पूर्ण है, अतः जो इसके विकास में सहायक होता है, उसी का जीवन सार्थक है। जैसे वह महाचेतन सृष्टि की सब वस्तुओं में समाया है वैसे ही राजा को अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को लोक में समाहित करना है। तुम भी लोक के अनुकूल होकर चलो। उसका विरोध न करो।

मनु बोले : यह तो मैं जानता हूँ कि तर्क करने की तुम में प्रबल शक्ति है। पर मेरे राजा होने का क्या इतना भी लाभ नहीं कि मेरी कोई इच्छा पूरी हो सके? मुझे शासन नहीं चाहिए, अधिकार नहीं चाहिए। केवल तुम्हें अपने पास रखना चाहता हूँ। भूचाल से यह पृथ्वी काँप रही है, पर मेरे हृदय की धड़कन इस से किसी प्रकार कम नहीं। मैंने प्रलय का सामना किया है, पर अपने हृदय की पुकार के सामने मैं विवश हूँ। चाहे कुछ हो जाय, मैं तुम्हें न जाने दूँगा।

इड़ा ने उत्तर दिया : मैं जो कुछ कह रही हूँ तुम्हारी भलाई के लिए, पर मुझे लगता है उत्तेजना के वशीभूत होकर तुम अपना अनिष्ट करोगे। प्रजा शरण माँगने आई है, तुम उसकी चिन्ता करो। ये व्यर्थ की बातें हैं।

मनु ने कहा : तो क्या तुम यह समझती हो कि इतने सहज रूप से छुटकारा हो जायगा? मायाविनी, यह तुम्हीं तो हो जिसने मुझे संघर्ष का पाठ पढ़ाया, बाधाओं का तिरस्कार करना सिखाया। पर आज वैभव में मेरी स्पृहा नहीं है। केवल तुम्हें चाहता हूँ। यदि तुमने मेरी बात न सुनी तो समझ लो कि तुम्हारा यह साम्राज्य आज नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।

इड़ा बोली : मैं समझती हूँ इस निराले वैभव का तुम्हें स्वामी बना कर मैंने कुछ बुरा नहीं किया। मेरा इतना अपराध अवश्य है कि तुम्हारी प्रत्येक बात में 'हाँ' में 'हाँ' मिलाना मैं नहीं जानती। रात बीत चली, प्रभात होने वाला

है । तुम यदि अब भी धैर्य और विचार से काम लो तो बिगड़ी बात बन सकती है ।

ऐसा कह कर इड़ा द्वार की ओर बढ़ी, पर मनु ने आवेश मे आकर उसे हाथों से थाम लिया और अपनी ओर खींच कर वक्ष से लगा लिया । इसी बीच सहसा सिंह-द्वार टूट गया । जनता भीतर घुस आई । इड़ा को देखकर लोगों ने चिल्लाना प्रारम्भ किया . 'हमारी रानी', 'हमारी रानी' । जनता को उत्तेजित देख मनु क्रोध से भर कर बोले : तुम मेरे उपकारों को एक दम भूल गए । मैंने तुम्हें व्यवस्थित किया, सभ्य बनाया, भाषा दी, प्रकृति से युद्ध करना सिखाया । जनता बोली : पापी, तूने हमें लोभी बनाकर काल्पनिक दु.खों से दुखी रहना सिखाया और इसके ऊपर जो हमारी महारानी पर अत्याचार किया है उस अक्षम्य अपराध के बदले तुझे अभी दड मिलेगा ।

बात दोनों ओर से बढ़ चली । युद्ध आरभ हुआ । जनता का सचालन असुर, पुरोहित, आकुलि और किलात कर रहे थे । मनु ने उन्हें धराशायी किया । इड़ा ने बहुत चाहा कि युद्ध रुक जाय, पर मनु जनसहार करते रहे । अत में बहुत से व्यक्तियों ने मिल कर मनु पर आक्रमण किया । दैवी प्रकोप भी कुछ कम नही था । परिणाम यह हुआ कि मनु मरणासन्न होकर गिर पड़े और पृथ्वी पर जनता के रक्त की नदी बह चली ।

पृष्ठ १८६

श्रद्धा का था स्वप्न—श्रद्धा ने यद्यपि मनु द्वारा इड़ा के शरीर का बल-पूर्वक आलिंगन और शरण न मिलने पर प्रजा का विद्रोह-भावना से भर जाना आदि सब स्वप्न में ही देखा था, परन्तु था यह सब कुछ सत्य । इधर मनु के व्यवहार पर इडा सकुचित थी और उधर प्रजा अत्यन्त क्रुद्ध ।

भौतिक विप्लव देख—भौतिक विप्लव-भौतिक हलचल, भूचाल ।

अर्थ—भूचाल देख कर वे व्याकुल हो उठे, घबरा उठे । वे राजा की शरण मे इसलिए आए थे कि उनकी रक्षा हो सके ।

किंतु मिला अपमान—मनस्ताप—मानसिक क्लेश ।

अर्थ—पर वहाँ उनका अपमान किया गया, उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया। इस पर सबको मानसिक क्लेश हुआ और वे क्रुद्ध हो उठे।

क्षुब्ध निरखते वदन—क्षुब्ध—क्रुद्ध। वदन—मुख। ताडव लीला—भयकर हलचल।

अर्थ—इड़ा के मुख की ओर दृष्टि डाली तो वह एकदम पीला पड़ गया था, इससे वे और भी कुपित हो उठे। इधर प्रकृति की भयकर हलचल अभी बंद नहीं हुई थी।

प्रांगण में थी भीड़—प्रागण—आँगन।

अर्थ—प्रजा के लोग महल के आँगन में इकट्ठे हो गए। भीड़ बढ़ने लगी। पहरेदारों ने दरवाजा बंद किया और चुप हो कर बैठ गए।

रात्रि घनी कालिमा—रात घने अधकार के परदे को ओढ़ कर छिपती फिरती थी। बीच-बीच में बादलों में बिजली चमक उठती और पृथ्वी से लग-लग जाती थी।

मनु चिंतित से—शयन—शय्या, बिस्तर। श्वापद—हिंसक जतु।

अर्थ—मनु शय्या पर पड़े सोच-विचार में लीन थे। जैसे किसी को हिंसक जतु नोचते हैं उसी प्रकार उन्हें कभी क्रोध नोचता था कभी चिंता। अर्थात् कभी तो क्रोध से तिलमिला कर वे सोचते थे कि इन्हें अभी चल कर दंड दूँ और कभी इस शका के उठते ही कि न जाने आज ये मेरी क्या दशा करेंगे, पीड़ित हो उठते थे।

मैं यह प्रजा—वे सोचने लगे, इन बिखरे व्यक्तियों को व्यवस्थित प्रजा का रूप देकर मुझे कितना संतोष हुआ था। कोई नहीं कह सकता कि आज तक मैंने कभी इन पर क्रोध किया हो।

कितने जव से—जव—वेग, तीव्र गति। चक्र—शासन चक्र। छाया—दासित्व।

अर्थ—जिस तीव्र गति के साथ मैं इनके शासन-चक्र को चला रहा था अर्थात् क्रमात्मक गति से मैंने इस राज्य की उन्नति की। एक दिन ये सब एक दूसरे से अलग-अलग थे, पर इनके व्यक्तित्व को मैंने एक आत्मा में

में गूँथ दिया। तात्पर्य यह कि इनमे यह भावना भर कर कि हम एक ही राज्य की प्रजा हैं इन्हें एक कर दिया।

मैं नियमन के—नियमन—शासन। एकत्र करना—एकता उत्पन्न करना, व्यवस्था देना। चलाना—नियमों का पालन करना, आज्ञा का पालन करना।

अर्थ—नियम बनाकर उनका पालन इनसे मैंने कराया और अपनी बुद्धि-शक्ति से प्रयत्न करके मैंने इनमें एकता की भावना इसलिए भरी कि शासन-व्यवस्था भंग न हो।

पृष्ठ १६०

किन्तु स्वय भी—पर क्या स्वय मुझे भी यह सब कुछ मानना पड़ेगा? क्या मैं थोड़ा भी स्वतत्र नहीं हूँ? सोने को गला कर जैसे कभी भी किसी भी रूप में ढाला जा सकता है, उसी प्रकार क्या मुझे भी सदा प्रजा की इच्छा पर चलना होगा? भाव यह कि मेरी अपनी दृढ़ता, मेरा अपना व्यक्तित्व क्या कुछ नहीं है?

जो मेरी है सृष्टि—भीत—डरना। अविनीत—उच्छृङ्खल होना, नियमों को न मानना।

अर्थ—जो मेरे बनाये हुए हैं उनसे ही मुझे डर कर रहना होगा? क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं है कि कभी मैं उच्छृङ्खल हो जाऊँ—नियमों को न मानूँ?

श्रद्धा का अधिकार—श्रद्धा का यह अधिकार था कि उसके सामने मैं आत्म-समर्पण करता। वही मैंने स्वीकार नहीं किया। मैंने अपनी स्वतन्त्रता का बराबर विकास किया और अपनी पत्नी तक के बधन में नहीं रहा।

इड़ा नियम परतत्र—निर्बाधित—बाधाहीन, बे रोक-टोक।

अर्थ—और इड़ा नियमों में कसकर मुझे पराधीन बनाना चाहती है। वह मेरे ऐसे अधिकार को स्वीकार नहीं करती कि मेरे ऊपर किसी का अधिकार नहीं है।

विश्व एक बंधन-विहीन—स्वयं यह परिवर्तनशील जगत् भी किसी बंधन में नहीं बँधा। इसके भीतर जो सूर्य, चंद्र और तारे हैं—

नोट—भाव आगे के छंद में पूरा होगा।

रूप बदलते रहते—वे अपना स्वरूप बदलते रहते हैं। पृथ्वी जल में डूब कर समुद्र बन जाती है। समुद्र सूख कर रेगिस्तान में बदल जाता है। सागर में बड़वाग्नि के रूप में आग धधकती है।

तरल अग्नि की—तरल—द्रव रूप में, धारा। हिम नग—बर्फ से ढके पर्वत। लीला—क्रीड़ा।

अर्थ—ध्यान से देखो तो आग की धारा सब वस्तुओं में प्रवाहित हो रही है। बर्फ से ढके पर्वत इसी आग के प्रभाव से गल कर सरिता के रूप में क्रीड़ा करते हुए बह रहे हैं।

यह स्फुलिंग—यह—मनुष्य। स्फुलिंग—चिनगारी। नृत्य—झलक।

अर्थ—मनुष्य भी आग की एक चिनगारी के समान पल भर के लिए अपनी झलक दिखा कर चला जाता है। ऐसा कौन है जिसे इस विश्व में रुकने की सुविधा मिल जाय?

कोटि कोटि नक्षत्र—शून्य—अन्तरिक्ष, आकाश। महा विवर—विशाल गुहा। लास—कोमल नृत्य। रास—नृत्य। अधर—निराधार स्थान।

अर्थ—करोड़ों नक्षत्र आकाश की विशाल गुहा में निराधार स्थान में लटके हुए कोमल नृत्य कर रहे हैं।

उठती है पवनों—लहर—तह, परत। चीत्कार—ध्वनि, चीख। परवशता—पराधीनता।

अर्थ—हवा के पर्तों में कितनी ही लहरियाँ उठती हैं। नीचे मनुष्यों के शोर में दुःख की इतनी चीखें उठ रही हैं जिनकी कोई संख्या नहीं, इतनी विवशता है जिसकी सीमा नहीं।

पृष्ठ १६१

यह नर्तन उन्मुक्त—विश्व के इस मुक्त नृत्य का स्पंदन [illegible] होता हुआ एक गति धारण करता जा रहा है। यह नृत्य उस लक्ष्य की सिद्धि के लिए हो रहा है।

वि०—'प्रसाद' को सगीत के पारिभाषिक शब्दों में सोचना प्रिय लगत है। नृत्य करते समय शरीर का एक-एक अग एक विशेष ढग से हिलता है इसके लिए स्पदन आया है। नृत्य करने वाला पहले धीरे-धीरे नाचता है फि तेजी से। जहाँ नृत्य में पदसचालन या करसचालन तीव्र हुआ वहाँ विशे गति आ जाती है। यह गति लय (तान) के अनुसार होती है। लय विलम्बि मध्य और द्रुत—तीन प्रकार की होती है। धीमी लय होगी तो नाचने वाल धीमे नाचेगा, द्रुत या तीव्र गति होगी तो नृत्य करने वाला द्रुत गति (Rapi Motion) से नाचेगा। लय का वास्तविक आनन्द उसी समय है जब नृत्य गीत और वाद्य की समता (Harmony) हो जाय।

विश्व के उन्मुक्त नृत्य से तात्पर्य यह है कि वह एक मुक्त आकाश में चक्क काट रहा है, उसका प्रत्येक तत्व गतिशील है। एक दिन अन्त में प्रलय होगी जगत् के जीवन पर विचार करें तो वह धीरे-धीरे विकास की ओर अग्रसर और यह विकास एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए हो रहा है।

कभी-कभी हम—पुनरावर्तन—घटना का दुहराया जाना।

अर्थ—कभी-कभी हम देखते हैं जो घटना एक बार घट चुकी है उसी रू में वह दुबारा घटती है। उसे हम नियम मान लेते हैं। फिर ऐसे नियमों के अनुसार हम अपने जीवन को चलाते हैं।

रुदन हास बन—परन्तु हमारी हँसी पलकों में आँसू बन कर ढलती है सैकड़ों प्राण जो पराधीन हैं मुक्ति पाने को लालायित हैं।

जीवन में अभिशाप—जीवन सकटमय है। सकट से पीड़ा मिलती है सत्य बात तो यह है कि ससार-रूपी कुँज की हरियाली नाश की गोद में पन रही है अर्थात् सृष्टि की एक-एक वस्तु जो विकसित हो रही है उसका वास्तवि स्वरूप यह है कि वह नाशवान है।

विश्व बँधा है—चारों ओर से बार-बार जब यह पुकार आई कि ससा एक नियम से बँधा है तब मनुष्यों के हृदय में यही भावना दृढ़ हो गयी।

नियम इन्होंने परखा—पहले मनुष्य इस निश्चय पर पहुँचे कि ससार बहुत से काम नियम से होते हैं। फिर उन्हीं नियमों के आधार पर उन्होंने सुख के साधन जुटाये। उदाहरण के लिये राजा की सृष्टि इस लिए हुई कि वह

अन्याय और अत्याचार से दुर्बलों की रक्षा करे। इसके लिए स्वभावतः राजा ने कुछ नियम बनाये जिनका पालन करना आवश्यक हुआ, पर साथ ही जिससे प्रजा को सुख मिला।

परन्तु मैं यह नहीं मान सकता कि जो नियम बनाने वाला है अर्थात् शासक है उसे भी नियमों से बाध्य होना पड़ेगा।

मैं चिर बंधन-हीन—बंधन मैंने कभी स्वीकार नहीं किया और मेरी यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि मैं मृत्यु तक की सदा उपेक्षा करूँगा।

महानाश की सृष्टि—हमारे प्राणों में चेतना है। इसका संतोष इसी में है कि यह जो नाशवान् सृष्टि है उसमें जितने पल हम आनन्द से काट लें, वे ही हमारे हैं। नहीं तो सब कुछ असार है।

प्रगतिशील मन—प्रगतिशील—चिंतन करता हुआ, विचारलीन।

अर्थ—विचारलीन मन की चिंता-धारा एक क्षण भर के लिए रुक गई। मनु ने करवट ली तो देखा कि इड़ा अपना सब कुछ दे चुकने पर फिर लौट आई और शांत भाव से खड़ी है।

वि०—मनु ने इड़ा का बरबस आलिंगन किया था और वह भय से काँप उठी थी। यह सब उसकी इच्छा के विरुद्ध था। उसका अपमान था। पर वह मनु के कल्याण के लिए उन्हें समझाने को लौट आई। इसी पर मनु को आश्चर्य हुआ।

पृष्ठ १६२

और कह रही—इड़ा ने कहा : नियमों का बनाने वाला यदि स्वयं ही उन नियमों को न मानेगा तो यह निश्चय है कि उसका सारा कार्य-क्रम नष्ट हो जायगा।

हे तुम फिर—मनु ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा : तुम आज यहाँ फिर लौट कर किसलिए आई हो? प्रजा को तुमने विद्रोह के लिए भड़काया। अब क्या कोई और नया ऊधम मचाने की मन में है?

नोट :—इस छंद की दूसरी पंक्ति का भाव आगे के छंद के 'मन में' शब्द पर समाप्त होता है। अर्थ है : क्या मन में कुछ और उपद्रव की बात समाई है?

मन में, यह सब—आज जो उपद्रव हुआ है, क्या उससे तुम्हारा मन नही भरा ? करने को अब रह क्या गया है ?

मनु सब शासन—स्वत्व—अधिकार। सतत—सदा। तुष्टि—सतोष। चेतना—स्वातन्त्र्य भावना।

अर्थ—इडा बोली : हे मनु तुम्हारा सतोष इस बात में है कि तुम्हारे शासन के अधिकार को एक ओर सभी सब काल मानते रहें और दूसरी ओर उनके अदर जो आत्म-चेतना (Consciousness) या स्वातन्त्र्य भावना है उसे वे दबा दें।

आह प्रजापति—राजन्, मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि ऐसा न तो कभी हुआ और न कभी होगा। स्वय एकदम स्वतत्र होकर अधिकार का भोग आज तक कोई नहीं कर पाया।

यह मनुष्य आकार—मनुष्य चेतना की विकसित मूर्ति है। उसकी इस चेतना के परदे में मनोविकारों का एक ससार बसा हुआ है।

वि०—आगे के छदों में मनु को माध्यम बनाकर पश्चिम के विकासवाद (Theory of Evolution) की चर्चा, जिसमें 'स्पर्धा में जो उत्तम ठहरें वे रह जावें' (Survival of the fittest) का सिद्धात चलता है, कवि कुछ हेर-फेर के साथ करना चाहता है।

चिति केन्द्रो में—इस दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य चेतना का एक केन्द्र हुआ। होता यह है कि चेतना के एक केन्द्र (मनुष्य) का चेतना के दूसरे केन्द्र (मनुष्य) से सघर्ष चलता रहता है। इससे द्वैत-भाव अर्थात् यह भावना दृढ़ हो जाती है कि हम आपस में एक न होकर दो हैं, विरोधी हैं, भिन्न-भिन्न हैं।

वे विस्मृत पहचान—पर देखने में भिन्न-भिन्न लगने वाले प्राणी धीरे-धीरे इस भूले हुए सत्य को पहचानते हैं कि प्राणियों में चाहे खड चेतनाएँ हो, पर हैं वे एक ही चेतना के अश। इस भावना के उठते ही एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के समीप आता है और अनेकता में एकता या भेद में अभेद-भावना की स्थापना होती है।

अर्थ—फिर शारीरिक और मानसिक शक्तियों की होड़ (Competition) होती है। उसमें जो श्रेष्ठ ठहरते हैं वे अधिकारी होते हैं। परन्तु ऐसे व्यक्तियों का यह भी धर्म होता है कि जो दुर्बल हों उनके जीवन के लिए वे शुभ मार्ग का संकेत करें और इस प्रकार संसार का कल्याण करें।

पृष्ठ १६३

व्यक्ति चेतना—इस प्रकार मनुष्य को यदि सामाजिक दृष्टि या संघर्ष की दृष्टि से देखा जाय तो उसकी चेतना स्वाधीन नहीं रह जाती अर्थात् समाजबद्ध होकर प्राणी जो मन में आये नहीं कर सकता। दूसरे की सुख-सुविधा के अनुकूल उसे रहना होगा।

फिर भी वह रागद्वेष ही से सदैव पूर्ण रहता है। एक ओर जब कल्याण करने या शुभ मार्ग बताने की योजना है तब प्रेममय प्रतीत होता है, और जब संघर्ष में रत रहता है तब उसकी चेतना वैर-भाव की कीचड़ में सनी रहती है।

नियत मार्ग में—नियत—निश्चित। ठोकर—भूल। लक्ष्य—उद्देश्य, ध्येय, गन्तव्य स्थान (Destination)। श्रांत—हतोत्साह।

अर्थ—मनुष्य की चेतना संसार के विकास के मार्ग में पद पद पर भूल करती है और हतोत्साह भी होती है, पर दिन दिन वह अपने लक्ष्य के निकट ही पहुँच रही है।

वि०—'प्रसाद' का विश्वास है कि अनंत अपूर्णताओं और भूलों के होते हुए भी संसार और प्राणी दोनों निरन्तर विकासशील हैं।

यह जीवन उपयोग—उपयोग—सार्थकता। साधना—प्रयत्न। श्रेय—कल्याण। आराधना—रत रहना, प्राप्ति।

अर्थ—जीवन की सार्थकता इसी में है हम पूर्ण विकसित हों। बुद्धि का सारा प्रयत्न भी इसी के लिए है। तुम सुख चाहते हो। मेरी दृष्टि से सुख की प्राप्ति इसमें है कि हमारी आत्मा का कल्याण हो।

वि०—'प्रसाद' की दृष्टि से आत्म-कल्याण का अर्थ है दूसरों का कल्याण करना। दूसरों को सुख पहुँचा कर ही मनुष्य सुखी रह सकता है।

लोक सुखी हो—तुम्हारी राजसत्ता की छाया में शरण लेने से यदि लोक को सुख मिले तो तुम्हारा प्रजापति होना सार्थक है। जैसे प्राणवायु समस्त शरीर में इसलिए प्रविष्ट रहती है कि उसमें चेतना भरे, वैसे ही इस सारे राष्ट्र के स्वामी तुम इसलिए हो कि इसके विकास में सहायक हो।

देश कल्पना काल—देश—विस्तार, प्रसार। काल—समय। परिधि—घेरा। लय—समाप्त। महाचेतना—व्यापक चेतना, ईश्वर। लय—नाश, किसी में समाना।

अर्थ—विचार करके देखा जाय तो सृष्टि का जितना प्रसार है उसका उद्-गम और लय-स्थान समय है। एक समय विशेष में ही प्रकृति की किसी वस्तु की रचना होती है और एक समय विशेष में ही वह नष्ट हो जाती है। इससे कहा जा सकता है कि स्थान की कल्पना काल की सीमा में समाप्त हो जाती है। अर्थात् अत में स्थान काल में रूपान्तरित हो जाता है।

समय गतिवान् है, अतः चेतन है। यह चेतन काल एक दिन (महाप्रलय में) महाचेतन (ईश्वर) में लीन हो जाता है।

वि०—'प्रसाद' ने दर्शन के अत्यन्त गभीर विवेचन को दो पक्तियों में समेट कर रख दिया है। उसकी विशेष मीमासा का यह स्थान नहीं है। उनके कहने का आशय यह है कि यों दिखाई सब-कुछ देता है, पर एक अद्वैत तत्त्व के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। देश (Space) काल (Time) में परिवर्तित हो जाता है और काल एक महाचेतना (Universal Consciousness) में अतः मनु जो 'मैं' 'मैं' कर रहा है वह उसका शुद्ध भ्रम है।

वह अनन्त चेतन—अनत चेतन—भगवान। उन्मद गति—मस्ती से। नाचो—कर्म करो। द्वयता—भेदभाव। विस्मृति—भुलाना।

अर्थ—स्वय भगवान मस्त होकर सृष्टि-कर्म में लीन हैं। तुम्हारे लिए भी यही उचित है कि तुम अपना काम भेद-भाव को भुला कर करो।

क्षितिज पटी को—क्षितिज—वह स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी मिले हुए दिखलाई पड़ते हैं यहाँ माया के परदे या सीमित दृष्टि से तात्पर्य है। ब्रह्माड—सम्पूर्ण विश्व, कपाल। विवर—गुफा, छिद्र। कुहर—गुफा।

अर्थ—जैसे किसी गुफा के मुख पर परदा पड़ा हो तो उसे हटा कर ही उसमें प्रवेश किया जा सकता है और उसके भीतर यदि बादल गूँजते हों तो वह गूँज भी सुनने को मिल सकती है, वैसे ही इस संसार-रूपी गुफा में यदि बढ़ना है तो अपनी सीमित दृष्टि को हटा दो। ऐसा करने पर इसमें जो आनन्द के बादलों की गूँज उठ रही है वह तुम्हें सुनाई देगी। अर्थात् वास्तविक आनन्द 'मैं', 'तू' की संकीर्णता को परे फेंकने पर ही मिल सकता है।

वि०—इस छंद से योगपक्ष का अर्थ भी ध्वनित है। प्रसिद्ध है कि योगी लोग कपाल में अवस्थित ब्रह्मरंध्र में अनहद-नाद सुनते हैं। उस दृष्टि से साधक से कहा जा रहा है कि वह माया को परे फेंक कर कुण्डलिनी को जागरित करता हुआ ब्रह्मरंध्र में ले जाय। वहाँ उसे अनहद नाद सुनाई देगा।

ताल ताल पर—तालतर—संगीत में किसी राग के टुकड़े को निश्चित समय में निश्चित मात्राओं का बनाकर गाना। जैसे 'हरे राम' में ६ मात्राएँ हैं। इसे बार-बार एक ढंग से गाना लय से गाना है। तालों की गति का नाम लय है। विवादी स्वर—राग को बिगाड़ने वाला स्वर।

अर्थ—जिस गाने वाले को ताल का ज्ञान होता है, वह लय में गाता है। ऐसे ही यदि तुम चाहते हो कि आनन्द मिले (लय न छूटे) तो तुम सब के अनुकूल होकर (ताल पर) चलो।

जैसे गाने में प्रतिकूल स्वर छेड़ने से गाना बिगड़ जाता है वैसे ही यदि तुम चाहते हो कि जीवन का संगीत बिगड़े न तो तुम विरोध की बातें न करो।

अच्छा यह तो—मनु ने कहा, ठीक है। पर यह सब प्रश्न तुम्हें नये सिरे से समझाने की आवश्यकता नहीं। मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि किसी को किसी दिशा में उलझाने की तुम में कितनी भारी शक्ति है।

पृष्ठ १६४

किन्तु आज ही—मुझे आश्चर्य इस बात पर होता है कि अभी तुम अपने को अमर्यादित समझ मेरे पास से क्रोध करके चली गई थी और थोड़ी देर में

नहीं हुई कि फिर लौट आई। तुम्हारे मन में ऐसे साहस की बात उठी कैसे ?

आह प्रजापति—उफ, क्या मेरे राजा होने का यह अधिकार है कि जो मेरी कामना है वह कभी पूरी ही न हो ?

मैं सब को वितरित—वितरित—बाँटना। सतत—सदैव। प्रयास—प्रयत्न।

अर्थ—क्या सबको सुख-सुविधाएँ जुटाने का ही मेरा काम है ! और जब मैं अपने लिए कुछ पाने का प्रयत्न करूँ तो वह पाप है ? क्या इसे मैं सहन कर सकता हूँ।

तुमने भी प्रतिदान—तुम्हारे लिए मैंने इतना किया। तुम बतला सकती हो उसके बदले में व्यक्तिगत रूप से तुमने मुझे कुछ दिया है ? क्या मुझे केवल ज्ञान देना ही तुम्हारे जीवित रहने के लिए यथेष्ठ है ? भाव यह कि जैसे मेरे हृदय में वैसे ही तुम्हारे हृदय में प्रेम की भावना नहीं उठती क्या ? क्या बिना प्रेम किये तुम अपना सारा जीवन काट दोगी।

जो मैं हूँ चाहता—जो वस्तु मै चाहता हूँ, यदि वह मुझे नहीं मिलती, तब तुमने जो त्याग की अभी व्यर्थ चर्चा की है, उसे अपने पास ही रखो।

× × × ×

इडे मुझे वह—हे इड़ा, जिस वस्तु को मैं चाहता हूँ, वह मुझे मिलनी चाहिये और वह वस्तु तुम हो। यदि तुम पर मेरा अधिकार नहीं है तो मेरा राजा होना व्यर्थ है।

तुम्हें देख कर—तुम्हें देख लेने पर मन मर्यादा के इस बंधन को स्वीकार नहीं करना चाहता कि तुम मेरी प्रजा हो, अतः तुमसे प्रेम करना मेरे लिए पाप है। सुनो अधिकार अथवा शासन की अब मुझे तनिक भी इच्छा नही है।

देखो यह दुर्धर्ष—दुर्धर्ष—दुर्दमनीय। कंपन—हिलना, हलचल। समक्ष—सामने, समता में। क्षुद्र—कुछ नहीं के बराबर। स्पंदन—काँपना।

अर्थ—दुर्दमनीय प्रकृति की इस भारी हलचल को देखो। परन्तु इसका यह कम्पन भी मेरे हृदय की धड़कन के सामने कुछ नहीं के बराबर है।

इस कठोर ने—मैं वह सबल हृदय व्यक्ति हूँ जो प्रलय के भी आघात को खेल समझ कर हँस कर झेल गया। परन्तु आज हृदय में यह भावना जग चुकी है कि वह अकेला है, उसे एक साथी की आवश्यकता है। यही कारण है कि वह तुम्हारे सामने आज इतना झुक गया है।

पृष्ठ १६५

तुम कहती हो—तुम कहती हो संसार एक लय है उसमें मैं लीन हो जाऊँ अर्थात संसार के आनन्द की सृष्टि के लिये यह आवश्यक है कि मैं सब की इच्छाओं के अनुकूल चलता हुआ अपने व्यक्तित्व को लोक के व्यक्तित्व से एक कर दूँ। पर इससे मुझे क्या सुख मिलेगा?

क्रंदन का निज—आकाश—चारों ओर।

अर्थ—मेरे जीवन में चाहे चारों ओर रोना हो, मुझे चिंता नहीं। परन्तु उसके बीच यदि मैं तुम्हें पा सका तो खिलखिला के हँस पड़ूँगा।

फिर से जलनिधि—चाहे समुद्र अपनी मर्यादा का परित्याग कर के तट पर फिर उछल कर बहने लगे, चाहे आँधी फिर वक्र (तिर्यक) गति से आवे-जावे—

नोट—भाव तीसरे छन्द पर पूरा होगा।

फिर डगमग हो—चाहे एक बार फिर मेरी नाव उस जलराशि में डगमगा जाय और लहरें उसके ऊपर उगने लगें। चाहे सूर्य, चन्द्रमा और तारे एक बार फिर प्रलय देख कर चकित हो जायँ, हिल उठें और अपनी रक्षा के लिए चिंतित हों—

किन्तु पास ही—परन्तु रे बाले, तुम्हें मैं कहीं न जाने दूँगा। तुम मेरी हो। मैं कोई खेल नहीं हूँ जिससे तुम खेल रही हो। भाव यह कि मैं इतना साधारण व्यक्ति नहीं हूँ जिसे तुम जैसे चाहो वैसे नचा सको।

आह न समझोगे—इड़ा बोली: उफ्, क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि मैं जो कुछ कह रही हूँ वह तुम्हारे हित के लिए है। तुम आवेश में अपने अधिकार को खोने पर तुले हो।

प्रजा क्षुब्ध हो—एक ओर प्रजा तुम्हारा आश्रय पाने आई है और उसके न मिलने पर उत्तेजित हो उठी है। दूसरी ओर प्रकृति पल-पल पर देवताओं के कोप-भय से निरतर काँप रही है।

सावधान मैं—मैं तुम्हें सावधान किये जाती हूँ। इससे अधिक मेरे पास कहने को कुछ नहीं है कि मैं तुम्हारा भला चाहती हूँ। मुझे जो कहना था वह मैं कह चुकी। मैं चलती हूँ। मेरे रुकने की यहाँ अब कोई आवश्यकता नहीं रही।

पृष्ठ १९६

मायाविनि बस—मायाविनि—जादूगरनी, आकर्षणमयी। खुट्टी—कुट्टी, बच्चे खेल खेलते समय जब बिगड़ उठते हैं तब बद ओठों पर अगूठे के पास की उँगली लाकर कहते हैं · 'हमारी तुम्हारी खुट्टी' और फिर एक दूसरे से नहीं बोलते।

अर्थ—मनु बोले · हे मायाविनि, तुम तो मुझसे इतने सहज भाव से छुटकारा पाना चाहती हो जैसे खेल-खेल में बच्चे एक दूसरे से कहते हैं—'हमारी तुम्हारी खुट्टी' और फिर आपस में सम्बन्ध नहीं रखते।

मूर्तिमती अभिशाप—मूर्तिमती—साकार प्रतिमा। अभिशाप—अहितकारिणी। सघर्ष—विरोध। भूमिका—प्रारभ।

अर्थ—तुम वह हो जो मेरे सामने अमगल की साकार मूर्ति बन कर आई। तुम वह हो जिसने सर्व प्रथम विरोध करना' सिखाया।

रुधिरभरी वेदियाँ—विनयन–शासन, नियन्त्रण, दबाव। उपचार–उपाय।

अर्थ—तुम्हारी तुष्टि के लिए यज्ञ की वेदियाँ बलि-पशुओं के रक्त से भर दी गईं। तुम्हारी प्रसन्नता के लिए यज्ञ-भूमि में भयकर लपटें उठीं। तुम वह हो जिससे मैंने प्रजा को दबाने के उपाय सीखे।

चार वर्ण बन गए— जन-समुदाय चार श्रेणियों में विभाजित हो गया। प्रत्येक वर्ग ने अपना-अपना काम बाँट लिया। ऐसे शस्त्रों और यंत्रों का निर्माण हुआ जिनकी कल्पना स्वप्न में भी नहीं हुई थी।

आज शक्ति का—उसमें कितनी शक्ति है यही दिखलाने के लिए आज

नुष्य उतावला हो रहा है। प्रकृति से अब वह भयभीत नहीं होता। रात-दिन ससे युद्ध करने में लगा हुआ है।

बाधा नियमों की—ऐसी दशा में मुझे नियमों से न जकड़ो। मेरी सारी आशाएँ नष्ट हो चुकी हैं। एक क्षण-भर के लिए तो मुझे सुख मिल जाने दो।

राष्ट्र-स्वामिनी यह—हे सारस्वत राज्य की रानी, तुम अपने समस्त वैभव को मुझसे वापस ले लो। मुझे केवल इतना अधिकार दे दो कि तुम्हें मैं सब प्रकार से अपनी कर सकूँ।

यह सारस्वत देश—यदि ऐसा न हुआ तो समझ लो कि यह सारस्वत देश नष्ट हो जायगा। तुम इस राज्य में आग लगाने वाली सिद्ध होगी और यह राज्य धुँए के समान उड़ जायगा।

मैंने जो मनु—इड़ा ने उत्तर दिया : मनु, तुम्हारी उन्नति के लिए मैंने जो कुछ किया है उसे ऐसे झूठे तर्कों से भुलाने का प्रयत्न न करो। तुम्हें जो अधिकार और वैभव मिला है उसके अभिमान में न आओ।

पृष्ठ १९७

प्रकृति संग संघर्ष—प्रकृति का सामना करना तुम्हें मैंने ही सिखाया है। तुम्हें शासक बना कर प्रजा और तुम्हारी उन्नति की ही मैं साधक हूँ। मैंने कोई बुरा काम नहीं किया।

वि०—यहाँ देखने की बात यह है कि इड़ा की बुद्धि से जो सिद्ध हुआ उसका श्रेय मनु लेना चाहते थे, वैसे ही जैसे [illegible] बालक की बुद्धि से, श्रेय लेना चाहे मशीन।

मैंने इस बिखरी—मैं वह हूँ जिसने तुम्हें [illegible] से इस सृष्टि के बिखरे ऐश्वर्य का अधिपति बना दिया। मेरे ही कारण आज तुम इन रत्नों से परिचित हो पाए हो।

किन्तु आज अपराध—[illegible] होना तो [illegible] आज इड़ा तुम्हें [illegible] होगा। [illegible] स्थिति यही [illegible] है कि [illegible] से न [illegible], तो यह [illegible] है।

प्रजा क्षुब्ध हो—एक ओर प्रजा तुम्हारा आश्रय पाने आई है और उसके न मिलने पर उत्तेजित हो उठी है। दूसरी ओर प्रकृति पल-पल पर देवताओं के कोप-भय से निरतर काँप रही है।

सावधान मैं—मैं तुम्हें सावधान किये जाती हूँ। इससे अधिक मेरे पास कहने को कुछ नहीं है कि मैं तुम्हारा भला चाहती हूँ। मुझे जो कहना था वह मैं कह चुकी। मैं चलती हूँ। मेरे रुकने की यहाँ अब कोई आवश्यकता नहीं रही।

पृष्ठ १९६

मायाविनि बस—मायाविनि—जादूगरनी, आकर्षणमयी। खुट्टी—कुट्टी, बच्चे खेल खेलते समय जब बिगड़ उठते हैं तब बंद ओठों पर अंगूठे के पास की उँगली लाकर कहते हैं: 'हमारी तुम्हारी खुट्टी' और फिर एक दूसरे से नहीं बोलते।

अर्थ—मनु बोले . हे मायाविनि, तुम तो मुझसे इतने सहज भाव से छुटकारा पाना चाहती हो जैसे खेल-खेल में बच्चे एक दूसरे से कहते हैं—'हमारी तुम्हारी खुट्टी' और फिर आपस में सम्बन्ध नहीं रखते।

मूर्तिमती अभिशाप—मूर्तिमती—साकार प्रतिमा। अभिशाप—अहितकारिणी। सघर्ष—विरोध। भूमिका—प्रारभ।

अर्थ—तुम वह हो जो मेरे सामने अमगल की साकार मूर्ति बन कर आई। तुम वह हो जिसने सर्व प्रथम विरोध करना सिखाया।

रुधिरभरी वेदियाँ—विनयन–शासन, नियत्रण, दबाव। उपचार–उपाय।

अर्थ—तुम्हारी तुष्टि के लिए यज्ञ की वेदियाँ बलि-पशुओं के रक्त से भर दी गई। तुम्हारी प्रसन्नता के लिए यज्ञ-भूमि में भयकर लपटें उठीं। तुम वह हो जिससे मैंने प्रजा को दबाने के उपाय सीखे।

चार वर्ण बन गए— जन-समुदाय चार श्रेणियों में विभाजित हो गया। प्रत्येक वर्ग ने अपना-अपना काम बाँट लिया। ऐसे शस्त्रों और यंत्रों का निर्माण हुआ जिनकी कल्पना स्वप्न में भी नहीं हुई थी।

आज शक्ति का—उसमें कितनी शक्ति है यही दिखलाने के लिए आज

मनुष्य उतावला हो रहा है। प्रकृति से अब वह भयभीत नहीं होता। रात-दिन उससे युद्ध करने में लगा हुआ है।

बाधा नियमों की—ऐसी दशा में मुझे नियमों से न जकड़ो। मेरी सारी आशाएँ नष्ट हो चुकी हैं। एक क्षण-भर के लिए तो मुझे सुख मिल जाने दो।

राष्ट्र-स्वामिनी यह—हे सारस्वत राज्य की रानी, तुम अपने समस्त वैभव को मुझसे वापस ले लो। मुझे केवल इतना अधिकार दे दो कि तुम्हें मैं सब प्रकार से अपनी कर सकूँ।

यह सारस्वत देश—यदि ऐसा न हुआ तो समझ लो कि यह सारस्वत देश नष्ट हो जायगा। तुम इस राज्य में आग लगाने वाली सिद्ध होगी और यह राज्य धुँए के समान उड़ जायगा।

मैंने जो मनु—इड़ा ने उत्तर दिया : मनु, तुम्हारी उन्नति के लिए मैंने जो कुछ किया है उसे ऐसे झूठे तर्कों से भुलाने का प्रयत्न न करो। तुम्हें जो अधिकार और वैभव मिला है उससे अभिमान में न आओ।

पृष्ठ १९७

प्रकृति संग संघर्ष—प्रकृति का सामना करना तुम्हें मैंने ही सिखाया है। तुम्हें शासक बना कर प्रजा और तुम्हारी उन्नति की ही मैं साधक हूँ। मैंने कोई बुरा काम नहीं किया।

मनु देखो यह—हे मनु, देखो रात बीत चली। पर क्या यह सत्य थी? नहीं। यह दृष्टि का भ्रम है। सूर्य की अनुपस्थिति में यह प्रतीत होती है। प्रमाण यह है कि पूर्व दिशा में नव उषा ने अंधकार को मिटा दिया।

ठीक इसी प्रकार तुम अभी तक अज्ञान के अंधकार में आबद्ध हो। ज्ञान की उषा का उदय हो जाय तो तमस (तुम्हारे अन्तर का तमोगुण) मिट जाय।

तात्पर्य यह कि तुम भूल में हो, समझ से काम लो।

अभी समय है—अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। यदि मेरे ऊपर विश्वास हो और तुम थोड़े धैर्य्य से काम ले सको तो सब ठीक हो जायगा।

और एक क्षण—ठीक उसी समय मनु के मन में उच्छृङ्खलता की एक लहर फिर उठी। उधर इड़ा दरवाजे की ओर बढ़ी।

किन्तु रोक ली—किन्तु वह जा नहीं सकी। अपनी भुजाएँ बढा कर मनु ने उसे रोक लिया। उसकी सहायता करने वाला वहाँ कोई न था। दीन दृष्टि से वह केवल ताकती रह गई।

यह सारस्वत देश—मनु बोली : अच्छा, यह सारस्वत देश तुम्हारा है और तुम इसकी रानी हो। मुझे अब पता चला कि तुम मुझे अपना अस्त्र (कार्य-सिद्धि का साधन) बनाकर जो तुम्हारे मन में आता था वह करा रही थीं।

वि०—इड़ा ने कहा था तुमको केन्द्र बना कर अनहित किया न मैंने। मनु इसी पर भड़क उठे हैं।

पृष्ठ १६८

यह छल चलने—पर तुम भी समझ लो की आज से तुम्हारा छल शक्तिहीन है। स्पष्ट किए देता हूँ कि अब मैं तुम्हारे फंदे से बाहर हूँ।

शासन की यह—तुम्हारे राज्य की उन्नति अब स्वतः ही बन्द हो जायगी, क्योंकि अब मुझसे तुम्हारी गुलामी नहीं हो सकती।

मै शासक मैं—मैंने शासन करना ही सीखा है। मैं कभी पराधीन नहीं रहा। अत मे अपने जीवन की सफलता इस बात में समझता हूँ कि तुम पर भी मेरा असीम अधिकार रहे।

छिन्न-भिन्न अन्यथा—यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हारी यह राज्य व्यवस्था

अभी नष्ट-भ्रष्ट हुई जाती है। यह व्यवस्था पाताल में चली जाय मुझे चिन्ता नहीं।

देख रहा हूँ—मैं देख रहा हूँ एक ओर पृथ्वी भूचाल के कारण अत्यन्त भय से काँप रही है और दूसरी ओर रुद्र के वज्र धनु की टंकार से आकाश में निर्मम करुण-ध्वनि भर गई है।

किन्तु आज तुम—इतना होने पर भी आज तुम मेरी भुजाओं में बन्दी हुई हो। मेरी छाती से आज तुम्हें कोई नहीं छुड़ा सकता। इसके उपरान्त इड़ा की कोई अनुनय-विनय न चली। वह केवल आहें भरती रह गई।

सिंह द्वार अरराया—उसी समय सिंह द्वार अर्रर शब्द करता हुआ टूट गया। जनता भीतर घुस पड़ी। इड़ा को देखते ही लोगों ने चिल्लाना प्रारम्भ किया 'हमारी रानी, हमारी रानी।'

अपनी दुर्बलता में—स्खलन—पतन। काँपना—लड़खड़ाना।

अर्थ—उस समय यह देखकर कि लोगों को उनकी दुर्बलता का पता चल गया, मनु हाँफने लगे। इड़ा पर बल प्रयोग करते समय मनु जानते थे कि यह उनका पतन है। यह सोचकर उनके पैर काँपने लगे थे। थोड़ी देर में जब जनता भीतर आई, तब भी उनके पैरों का लड़खड़ाना बन्द नहीं हुआ।

सजग हुए मनु—राजदण्ड—एक दण्ड जिसे राजा लोग दरबार में बैठते समय अपने हाथ में रखते थे। यह किसी धातु का बना और प्रायः गदा के आकार का होता था।

अर्थ—प्रजा को देखकर वज्रनिर्मित राजदण्ड को हाथ में ले मनु सावधान हो गए और चिल्लाकर बोले: इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे तुम ध्यान से सुनो।

पृष्ठ १९९

तुम्हें तृप्तिकर—मैंने सुख के ये सारे साधन तुम्हें बताये। जिनसे हृदय तृप्त होता है। मैंने ही कर्म का विभाजन करके तुम्हें जातियों में बाँटा।

नोट :—व्याकरण की दृष्टि से यहाँ 'बताया' अशुद्ध है। 'बताये' होना चाहिए। पर तब तुक न मिलता।

अत्याचार प्रकृति—प्रकृति के उन अत्याचारों का जिन्हें हम सबको सहना पड़ता है, विरोध करना हम ने सीख लिया है और पहले के समान अब हम एकदम चुप नहीं बैठे रहते।

आज न पशु—आज हम न तो पशु जैसे असभ्य हैं और न वन में घूमने वाले भाषाहीन प्राणी। भाव यह कि आज हम घर बना कर बसते हैं, भाषा का प्रयोग करते हैं और सभ्य कहलाते हैं।

मेरे द्वारा किए गये इस उपकार को क्या तुम आज भूल गए ?

वे बोले सक्रोध—तब मानसिक पीड़ा से दुःखी होकर क्रोध प्रदर्शित करते हुए लोगों ने उत्तर दिया . देखो, आज पापी अपने मुँह से ही अपने दोषों की चर्चा कर रहा है।

तुमने योगक्षेम—योगक्षेम—आवश्यक वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की रक्षा को योगक्षेम कहते हैं, जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक वस्तुओं का जुटाना। संचय—इकट्ठा करना। विचार सकट—चिंता।

अर्थ—आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यदि हम वस्तुओं या धन को इकट्ठा करते, यहाँ तक तो ठीक था, पर तुमने हमें व्यर्थ ही धन जोड़ना सिखाया। इस प्रकार हमें लोभी बना कर तुमने रात-दिन चिंता में डाल दिया।

हम संवेदनशील—सवेदनशील—अधिक अनुभूतिशील। कृत्रिम—काल्पनिक।

अर्थ—तुमने जो कुछ किया उससे हमें यह सुख मिला कि हम अधिक अनुभूतिशील हो गए। पहले वास्तविक दुःखों पर ही दुखी होते थे, अब काल्पनिक दुःखों पर भी दुखी होने लगे।

वि०—जिस दु.ख का अस्तित्व तक नहीं है उसे लेकर इस प्रकार दुखी होना कि 'यदि ऐसा हुआ तो हाय क्या होगा और वैसा हुआ तो हाय क्या होगा' काल्पनिक दु.ख की श्रेणी में आता है। जो जितना अधिक कल्पनाशील या भावुक होता है वह उतना अधिक दुखी रहता है।

प्रकृत शक्ति तुमने—प्रकृत—स्वाभाविक। शोषण—चूसना। जर्जर—जीर्ण। झीनी—दुर्बल, निःशक्त।

अर्थ—यन्त्रों का आविष्कार करके तुमने हमारी स्वाभाविक शक्ति को व्यर्थ कर दिया। हमारे जीवन को चूस कर तुमने उसे जीर्ण और निःशक्त बना दिया।

और इड़ा पर—और इड़ा पर तुमने जो यह अत्याचार किया है उसका तुम्हारे पास कोई उत्तर है? हमारे सहारे जीवित रहने वाले क्या हमें यही दिन दिखाने के लिए तू अब तक बचा हुआ था?

आज बंदिनी—यायावर—जिसके रहने का स्थान निश्चित न हो, एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमने वाला।

आज हमारी इड़ा महारानी को तुमने बंदी बना रखा है। तुम्हारी, जिसके रहने का कोई ठौर-ठिकाना नहीं, अब कोई रक्षा नहीं कर सकता।

पृष्ठ २००

तो फिर मैं हूँ—मनु बोले: यदि ऐसी बात है तो आज जीवन-संग्राम में प्रकृति और उसके पुतले मनुष्यों के भयंकर दल में फँसा मैं अकेला ही सामना करूँगा।

आज साहसिक का—जब तुम्हारे शरीर पर आघात होंगे तब पता चलेगा कि मुझ साहसी में कितना बल है। यह वज्र का राजदण्ड आज तक हाथ की शोभा था, पर मेरी कठोरता देख कर तुम्हें पता चलेगा कि राजदण्ड वास्तव में वज्र का (भीषण) होता है।

यों कह मनु—देव—देवताओं। आग—अपराध पर उत्पन्न क्रोध। ज्वाला उगली—दंड देने को उतारू हुए।

अर्थ—इतना कहकर मनु ने अपने भयङ्कर अस्त्र को सँभाल कर हाथ में ले लिया। उसी समय मनु के अपराध पर देवताओं ने क्रोध किया और वे उन्हें दण्ड देने पर उतारू हुए।

छूट चले नाराच—नाराच—तीर। धूमकेतु—पुच्छल तारे।

अर्थ—जनता के धनुषों से तीखे नोकदार तीर छूटने लगे। उधर आकाश में नीले पीले रंग के पुच्छल तारे टूटे।

अंधड़ था बढ़ रहा—आँधी का वेग ठीक प्रजा की झुँझलाहट के

समान बढ़ रहा था और उस आँधी में बिजली ठीक उसी प्रकार चमक रही थी जिस प्रकार उस घमासान युद्ध में शस्त्र चमक रहे थे।

किंतु क्रूर मनु—परन्तु निर्दयी मनु बाणों के प्रहार बचाते तलवार से जनता के प्राण नष्ट करते आगे बढ़े।

तांडव में थी—ताडव—रुद्र का प्रलय नृत्य। प्रगति—विशेष गति। विकर्षणमयी—अस्तव्यस्त, विपरीत।

अर्थ—रुद्र का प्रलय नृत्य तीव्र गति से चल रहा था। अणु चचल हो उठे। यह देखकर कि भाग्य विपरीत है, सब भयभीत हो गए।

मनु फिर रहे—अलातचक्र—चक्कर काटती मशाल। रक्तिम—रक्त बहाने वाला, ख़ूनी। उन्माद—आवेश। निर्मम—निर्दय।

अर्थ—उस घन अधकार में चक्कर काटती मशाल के समान मनु चारों ओर घूम-घूमकर लड रहे थे। आवेश में आकर, निर्दयी होकर उनका हाथ रक्त बहाने को चचल हुआ।

उठा तुमुल रणनाद—तुमुल—कोलाहल। अवस्था—स्थिति। पद दलित—पैरों से कुचला जाना, छिन्न-भिन्न। व्यवस्था—राज्य व्यवस्था।

अर्थ—युद्ध में कोलाहल ध्वनि छा गई। उस समय की स्थिति भयानक थी। मनु के विरोधियों का समूह चुपचाप उनकी ओर बढ़ा। आज राज्य-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई।

आहत पीछे हटे—दुर्लक्ष्यी—कठिन निशाने को बींधने वाला। टकार—कसे धनुष की डोरी को खींच कर छोडने से उत्पन्न ध्वनि।

अर्थ—घायल होकर मनु पीछे हटे। एक खभे का सहारा लेकर उन्होंने साँस ली और फिर उस धनुष पर जो कठिन से कठिन निशाने को बींध सकता था टकार की।

पृष्ठ २०१

बहते विकट अधीर—उस समय उनचास प्रकार की भयकर वायु तीव्र वेग से चचल होकर बहने लगीं। प्रजा के लोगों के लिए वह मरण-काल था। इस समय आकुलि और किलात उनका सचालन कर रहे थे।

वि०—किसी भारी दैवी प्रकोप के समय उनचास पवन छूटते हैं। लंका-दहन के प्रसंग में तुलसी ने लिखा है—

हरि-प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास

ललकारा बस अब—आकुलि और किलात ने ललकार कर कहा: आज यह बच कर भाग न जाय। किंतु मनु पहले से ही होशियार थे। उनके पास पहुँच कर बोले: पकड़ो इन्हें।

कायर तुम दोनों—अरे कायरो, तुम्हें अपना समझ कर ही मैंने अपनाया था, पर अब पता चला कि यह सारा ऊधम तुम दोनों का खड़ा किया हुआ है।

तो फिर आओ—यदि ऐसी बात है तो आगे बढ़ो। हे किलात, हे आकुलि, तुम तो यज्ञ-पुरोहित हो। तुमने बहुत से पशुओं की बलि करायी है। पर यह यज्ञभूमि नहीं, रणक्षेत्र है। आज तुम भी देख लो कि बलि कैसे दी जाती है!

और धराशायी थे—और उसी क्षण दोनों असुर-पुरोहित मनु के बाण खाकर पृथ्वी पर लोट गए। इड़ा बराबर कह रही: बस, युद्ध को अब बन्द करो।

भीषण जन संहार—दैवी प्रकोप से भीषण जन-संहार स्वयं ही हो रहा है। अरे, पागल मनुष्य, फिर तू जीवन नष्ट करने पर क्यों उतारू है?

क्यों इतना आतंक—ओ अभिमानी, इतना भय तू क्यों फैला रहा है! सब को जीने दे और उनके साथ-साथ तू भी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर।

किंतु सुन रहा—किंतु इड़ा की बात पर मनु ने ध्यान नहीं दिया। पास में ही वेदी की ज्वाला धधक रही थी। ऐसा लगता था जैसे पशुओं के स्थान पर प्राणियों को बलि किया जा रहा है। समूह रूप में जनबलि का यह नवीन ढंग मनु ने ही उत्पन्न किया।

वि०—यहाँ 'वेदी ज्वाला' सामान्य अर्थ में ही प्रयुक्त है 'युद्ध की आग' के अर्थ में नहीं। 'निर्वेद' में आया है—(१) अग्निशिखा थी धधक रही तथा (२) सहसा धधकी वेदी ज्वाला।

रक्तोन्मद मनु का—रक्त बहाने का पागलपन मनु पर सवार था।

उनका हाथ अब भी नहीं रुका था। साथ ही प्रजा का साहस भी कम न हुआ।

वहीं घर्षिता खड़ी—घर्षिता—अपमानिता।

अर्थ—वहीं मनु से अपमानिता सारस्वत प्रदेश की रानी इडा खड़ी थी। प्रजा के लोग बदला चुकाने को अधीर थे और उसके लिए अपना ख़ून पसीने की तरह बहा रहे थे।

पृष्ठ २०२

धूमकेतु सा चला—उसी समय रुद्र का एक भयंकर तीर पुच्छल तारे के रूप में उनके पिनाक नामक धनुष से छूटा। वह अपने सिरे पर प्रलय की आग लपेटे हुआ था।

अंतरिक्ष में महाशक्ति—सहसा आकाश में किसी महाशक्ति की 'हूँ' ध्वनि सुनाई दी। प्रजा के लोग पैने शस्त्रों को हाथ में लेकर वेग से बढ़े।

और गिरी मनु पर—और वे धारें मनु पर टूट पड़ीं। मरणासन्न होकर वे जहाँ खड़े थे वहीं गिर पड़े और जिस स्थान पर युद्ध हुआ था वहाँ रक्त की एक वेगवती नदी बहने लगी।

निर्वेद

कथा—युद्ध की समाप्ति पर सारस्वत नगर में मलिनता छा गई, उदासी घिर आई, विषाद बरसने लगा। सन्ध्या हुई, पर पहली सी चहल-पहल अब कहाँ ? पक्षी करुण रव कर उठे, दीपों से धूमिल प्रकाश फूटा, अन्धकार भयभीत-सा चुप खड़ा रह गया। यज्ञ-मण्डप में इड़ा एकाकिनी बैठी सोच रही थी: मनु ने मेरी प्रजा की अकारण हत्या की है। इसे दण्ड मिलना चाहिए। नहीं। यह ठीक नहीं। इस समय यह घायल पड़ा है, इसकी सेवा करनी चाहिए। यह व्यक्ति मुझसे प्रेम करता था ? निश्चय ही। पर संयम के मूल्य को यह नहीं पहचानता था। यह इसका दोष था। इसी से एक छोटी सी हठ के लिए इसने इतना भीषण-काण्ड रच डाला। पछतावा इस बात का है कि जिस सहृदयता का व्यवहार मैंने इसके साथ किया उसकी ओर इसने ध्यान नहीं दिया। एक दिन वह भी था जब यह इधर-उधर भटकता फिरता था और एक दिन वह भी आया जब मैंने इसे सम्राट् बनाया। मेरे इस उपकार को इसने इतनी जल्दी भुला दिया !

सहसा दूर से आती हुई एक ध्वनि सुनकर इड़ा चौंक पड़ी। उस सुनसान रात में कोई स्त्री यह कहती हुई उसकी ओर बढ़ी चली आ रही थी कि अरे कोई यह बतला दो कि मेरा रूठा प्रवासी कहाँ है ? इड़ा ने उठ कर देखा राजपथ पर कोई दुखिया स्त्री अपने किशोर बालक को साथ लेकर किसी की खोज में घूम रही है। उसने उन दोनों को टोका और वहीं ठहरने का आग्रह किया। ये श्रद्धा और उसका पुत्र मानव थे। उसी समय वेदी की धधकती ज्वाला के आलोक में श्रद्धा ने मनु को पहचाना और उन्हें उस दशा में देखकर वह बहुत दुखी हुई। उसने मनु को सहलाना प्रारम्भ किया। उस कोमल परस के पाते ही मनु की व्यथा दूर हो गई और अपनी ठुकराई हुई श्रद्धा को फिर अपने निकट पाकर उनकी आँखें भर आईं। श्रद्धा ने अपने पुत्र को पास बुलाकर बतलाया कि वे

उसके पिता हैं। कुमार इस पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसी समय भाव-मग्न होकर श्रद्धा ने एक गीत गुनगुनाया जिससे मनु को बड़ी शाति मिली।

प्रभात होते ही मनु ने आँखें खोलीं। श्रद्धा से कहा : तुम मेरे निकट आओ। इडा भी वहीं खडी थी। उसे देखकर वे विरक्त हो उठे और अपनी आँखों के आगे से हटने की उसे आज्ञा दी। फिर उन्होंने श्रद्धा से उन्हें कहीं दूर ले जाने की इच्छा प्रकट की। पर श्रद्धा ने यह कह कर कि अभी वे चलने-फिरने में अधिक समर्थ नहीं हैं, वहीं रुकना उचित समझा।

मनु ने भावावेश में आकर कहना प्रारम्भ किया . श्रद्धा, अपने जीवन के वे दिन मुझे याद आते हैं जब मैं युवक था, मेरे हृदय में प्रेम की तरगें उठ रही थीं और मेरा भी कोई अपना था। वे सुख के दिन थे। सहसा प्रलय उपस्थित हुई और सब नष्ट हो गया। मै एकाकी, उदास और आकुल रहने लगा। ठीक ऐसे समय में तुम आईं और मेरे मन में बस गईं। तुम्हारे प्रेम को प्राप्त करके मैं धन्य हुआ। पर तुमने मुझ तुच्छ-हृदय को इतना स्नेह दिया कि मैं उसे सँभाल न सका। देवी, तुमने मेरे जीवन में सुख, मगल और विश्वास भरा, तुमने मेरे हृदय के भीतर से उत्तम गुणों को उभारा, तुमने हँस-हँस कर ससार के कष्टों का सामना करना मुझे सिखाया, तुमने सबसे मैत्री-भाव रखने का आदेश मुझे दिया। देवी, तुम्हारे सम्पर्क में आकर मेरा हृदय कोमल हुआ। पर मैंने, जहाँ तक दूसरों का सम्बन्ध था उन पर क्रोध किया और जहाँ तक अपना सम्बन्ध था वहाँ तक स्वार्थ से काम लिया। यह कुमार, मेरा पुत्र, मेरे कितने भारी स्नेह का केन्द्र और कितने बड़े आकर्षण का कारण है, यह मैं कैसे बतलाऊँ? पर सचमुच मैं तुच्छ हूँ, अधम हूँ। मुझमें अब भी सम दृष्टि से देखने की न तो क्षमता है और न त्याग करने की शक्ति। देवी, मैं अपराधी हूँ, मुझे क्षमा करो। मेरी आतरिक कामना है कि तुम सब मिल कर सुखी रहो।

श्रद्धा ने मनु के अन्तर की इस हलचल को पहचाना, पर वह शात ही रही। दिन व्यतीत हुआ। रात आई। पर नींद किसी को न आई। इडा को आज बडा पछतावा हो रहा था। और मनु तो सबसे अधिक दुःखी थे। वे पड़े-पड़े सोचने लगे : जीवन सुख है? नहीं। निश्चित रूप से नहीं। मैं पापी हूँ। अपने इस मुख को श्रद्धा को कैसे दिखलाऊँ। एक प्रश्न यह भी है कि यदि

श्रद्धा मेरे साथ रही तो मैं इन शत्रुओं से बदला नहीं ले सकूँगा और साम्राज्य में शत्रु खड़े करके यहाँ रहना भी उचित नहीं है।

प्रभात हुआ, पर मनु इसके पूर्व ही सबको एक विचित्र उलझन में छोड़कर कहीं चले गए थे।

पृष्ठ २०५

वह सारस्वत नगर—क्षुब्ध—व्याकुल। मौन—सुनसान। विगत—बीती हुई। कर्म—घटना, यहाँ दुर्घटना। विष—विषैला, दु:खपूर्ण। विषाद—शोक। आवरण—वातावरण। उल्काधारी—मशालधारी। ग्रह—मंगल, शुक्र आदि नक्षत्र। वसुधा—पृथ्वी।

अर्थ—वह सारस्वत नगर जिसमें प्रजा और मनु के बीच संघर्ष हुआ था इस समय व्याकुल था, मलिन था, कुछ सुनसान सा था। उसके ऊपर अभी हुई दुर्घटना के विषैले शोक का वातावरण छाया हुआ था।

आकाश में ग्रह और तारे मशालधारी प्रहरियों के समान घूम रहे थे। वे देख रहे थे कि पृथ्वी पर यह हो क्या रहा है और इस बात पर विचार कर रहे थे कि प्रत्येक अणु चंचल क्यों है।

जीवन में जागरण—जागरण—जाग्रतावस्था, प्रवृत्ति मार्ग। सुषुप्ति—आत्मा की परमात्मा में लीनता, निवृत्ति मार्ग, ज्ञान। भव-रजनी—संसार रूपी रात्रि। भीमा—भयंकर। निशिचारी—रात में घूमने वाले, राक्षस। सर्राटे भरना—पक्षी का सर-सर शब्द करते वेग से उड़ना, तीव्र गति। सन्नाटा खींचना—चुप होना, निःशब्द होकर।

अर्थ—जीवन में जाग्रत अवस्था में हम जो कुछ अनुभव करते हैं वह सत्य है अथवा उसका चरम लक्ष्य यह है कि जीव ब्रह्म में लीन हो? भाव यह कि प्रवृत्ति मार्ग सत्य है अथवा ज्ञान-मार्ग, निश्चय-पूर्वक कहना कठिन है। हाँ, अन्तर से यह ध्वनि बार-बार उठती है कि यह संसार एक भयानक रात्रि (भारी भ्रम) है।

इस प्रकार निशाचर (राक्षस) जैसे भयंकर विचार सर-सर उड़ते हुए

पक्षियों के समान मस्तिष्क में पूरे वेग से चक्कर काट रहे थे। नगर के निकट ही सरस्वती नदी चुप बही जा रही थी।

वि०—(अ) जैसे स्वप्न में हम सब कुछ करते हैं, पर वह सत्य नहीं, ठीक वैसे ही हमारे सासारिक कर्म भी जग कर देखे हुए सपने हैं, सत्य नहीं। स्वप्न की बातें प्रभात के प्रकाश में जैसे असत्य सिद्ध होती हैं वैसे ही जाग्रत-काल के कर्म ज्ञान का प्रकाश पाने पर असत्य सिद्ध होते हैं। 'क्या जागरण सत्य है' इस पर तुलसी के विचार देखिये—

सपने होहिं भिखारि नृप, रक नाकपति होइ।
जागे हानि न लाभ कछु, तिमि प्रपञ्च जिय जोइ।

(अ) ज्ञान-क्षेत्र में ससार का रूपक रात्रि से बाँधा जाता है। तुलसी ने लिखा है—

एहि निशि जामिनि जागहिं जोगी, परमारथी प्रपञ्च वियोगी।
जानिय जबहिं जीव जग जागा, जब सब विषय विलास विरागा।

(इ) विचार करने वाले का सकेत यहाँ स्पष्ट रूप से नहीं किया गया। पर वह इड़ा हो सकती है। यदि वह न होती तो यह विचार कवि की ओर से माना जाता।

पृष्ठ २०६

अभी घायलों की—मर्म—गहरी। पुर लक्ष्मी—नगर की देवी, हिन्दुओं का ऐसा विश्वास है कि प्रत्येक नगर की एक अधिष्ठात्री देवी होती है जो उसकी रक्षा करती है। मिस—बहाने। धूमिल—धुँधला। खिन्न—उदासीन। अवसाद—शिथिलता से पूर्ण।

अर्थ—युद्ध भूमि में पड़े घायल व्यक्ति अब तब सिसकियाँ ले रहे थे। उन्हें मार्मिक पीड़ा हो रही थी। पक्षी बीच-बीच में करुण-ध्वनि कर उठते थे। ऐसा लगता था जैसे नगर की देवी उनके बहाने आज की करुण-कहानी का कोई अश सुना रही है।

नगर में कहीं-कहीं दीपक जल रहे थे जिनसे धुँधला प्रकाश आ रहा था। वायु रुक-रुक कर चल रही थी। उसकी गति में उदासीनता और शिथिलता थी।

भयमय मौन—भयमय—भयभीत। निरीक्षक—दर्शक। सजग—चौकन्ना। सतत—सदा से। दृश्य—दिखाई देने वाला, ठोस, मूर्त्त। मंडप—यज्ञस्थल। सोपान—सीढ़ी।

अर्थ—रात होने के कारण अंधकार का एक काला परदा जो माप में ठोस जगत से भी बड़ा था युद्ध-भूमि पर छा गया। ऐसा लगता था जैसे वह उस दुर्घटना का कोई दर्शक हो जो भयभीत होकर शात चौकन्ना और चुपचाप सदा से वहाँ खड़ा है।

मडप की सीढ़ियाँ सूनी थीं। वहाँ और कोई नहीं था। केवल इडा यज्ञ भूमि में बैठी थी। पास में अग्नि की लौ वेग से उठ रही थी।

पृष्ठ २०७

शून्य राज चिन्हों—राज चिन्ह—राजा की सत्ता को घोषित करने वाली बातें जैसे स्वयं राजा, प्रहरी, सेना, भाट चारण आदि। मन्दिर—महल।

अर्थ—वह महल राजकीय-चिन्हों से आज सूना था और समाधि जैसा लगता था। समाधि किसी मृत शरीर को ही तो अपने में छिपाए रहती है। इस समाधि में भी मनु का घायल शरीर पड़ा हुआ था।

इस हत्या-काड को देख कर इड़ा को बड़ी ग्लानि हुई। वह बीती बातें सोच रही थी। मनु ने जो कुछ किया उस पर कभी उसे बड़ी घृणा उत्पन्न होती थी और कभी उनके प्रेम पर विचार करके और उनके घायल शरीर को देख कर ममता भी। इस प्रकार उसने कई रातें बिताईं।

नारी का वह—सुधासिंधु—करुणा का अमृत सिंधु। बाड़व ज्वलन—समुद्र के अन्तर में निवास करने वाली अग्नि के समान क्षोभ की ज्वाला। कचन—सोना। मधु—प्रेम का रस। पिंगल—पीत रग, फीकापन या क्षीणता। शीतलता—जल और क्षमा का आग और हृदय को ठंडा करने का गुण। ससृति—ससार। प्रतिशोध—बदला। माया—प्रभाव।

अर्थ—इड़ा का हृदय भी आखिर नारी का हृदय था जो सदा उलझन-मय होती है। एक ओर उसमें करुणा का अमृत-सिंधु हिलोरें ले रहा था, दूसरी ओर मनु के अपराध पर उसका हृदय जल रहा था जो बाड़वाग्नि का

काम कर रहा था। जैसे समुद्र की अग्नि की लपटे जब समुद्र के जल के भीतर से फूटेंगी तब जल का रग सोने का दिखाई देगा, वैसे ही हृदय में भरे करुणा के उज्ज्वल अमृत में जब जलन का रग फूटा तब वह पीला (फीका) पड़ गया। भाव यह कि मनु के अपराध पर क्षोभ उत्पन्न होते ही उसके प्रति करुणा-भावना क्षीण हो जाती थी।

परन्तु समुद्र की पीतवर्णी अग्निधारा को जल शीतल भी तो करता रहता है। इसी प्रकार थोड़ी ही देर में प्रेम के रस से पूर्ण उस हृदय मे जिसमें क्षोभ की पीत है (क्षीण) अग्निधारा उठ रही थी फिर क्षमा अपना ससार बसाती अर्थात् क्षमा-भावना उदित होती। इस प्रकार क्षमा और बदला लेने की भावनायें दोनों अपना प्रभाव दिखा रही थीं।

पृष्ठ २०८

उसने स्नेह किया—अनन्य—एक लक्ष्य पर स्थायी रहने वाला, एक-निष्ठ। सहज लब्ध—सरलता से प्राप्त। बाधाओं का—लोक-नियमों को विघ्न मान कर। अतिक्रमण—उल्लघन। अबाध—उच्छृङ्खल। सीमा—मर्यादा।

अर्थ—मनु मुझे प्रेम करते थे यह ठीक है, पर वह प्रेम एकनिष्ठ न रह सका। यदि उनका प्रेम एकनिष्ठ होता तो वे मेरी भावनाओं का आदर करते, मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे ऊपर बल का प्रयोग न करते। फिर भी मनु का हृदय ऐसा था अवश्य कि उसे यदि कहीं टिकने के लिए अवसर मिलता तो वह अत्यन्त सहज भाव से अपनी अनन्यता का परिचय देता।

जो प्रेम लोक-नियमों को विघ्न समझ कर उच्छृङ्खल भाव से उनका उल्लघन करता है, जो प्रेम सारी मर्यादा को छिन्न-भिन्न कर डालता है, वह अपराध गिना जाता है।

हाँ अपराध—यह—मनु का प्यार। भीम—भयकर। जीवन के कोने—एकात की सामान्य बातें। असीम—व्यापक सघर्ष। शून्य—सारहीन।

अर्थ—हाँ, उच्छृङ्खल प्यार अपराध तो है, परन्तु यह एक हल्की सी घटना कितनी भयकर सिद्ध हुई। मेरे प्रति मनु का अनुरोध एक व्यक्ति के

एकांत जीवन की सामान्य-सी बात थी। उसने राजा और प्रजा के व्यापक संघर्ष का रूप धारण कर लिया।

और वे मेरे अनेक उपकार और साथ ही मनु के प्रति मेरा सहृदयतापूर्ण आचरण ! क्या वह सब कुछ सारहीन था ? क्या उसके पीछे केवल कपट काम कर रहा था।

पृष्ठ २०६

कितना दुखी—धरा—पृथ्वी, यहाँ ठहरने का स्थान। शून्य—सूनापन। चतुर्दिक—जीवन में चारों ओर। सूत्रधार—संचालक। नियमन—नियम। आधार—उद्गम, निर्माता। निर्मित—बनाये हुए, खड़े किये हुए। विधान—व्यवस्था।

अर्थ—वह व्यक्ति जो एक दिन एक परदेशी के रूप में मेरे पास आया था, कितना दुखी था ! ठहरने को उसके पास स्थान नहीं था और जीवन उसका चारों ओर से सूना था।

एक दिन वही प्राणी शासन का संचालक और नियमों का निर्माता बना। और अपनी खड़ी की हुई व्यवस्था के अनुकूल—वह राजा था, अतः दंड देने का अधिकारी था—उसने स्वयं अपने को दंड की प्रतिमूर्ति सिद्ध किया अर्थात् अपने हाथों प्रजा की हत्या की।

सागर की लहरों—सागर—समुद्र, दुःख। शैलशृंग—पर्वत की चोटी, उन्नति की सीमा। अप्रतिहत—जिसे कोई रोक न सके। संस्थान—डेरा, ठहरने का स्थान, मंजिल। सपना—निस्सार।

अर्थ—समुद्र की लहरों में घिरा व्यक्ति अत्यन्त सरलता से एक दिन पर्वत की चोटी पर चढ़ गया अर्थात् दु:खों के समुद्र की लहरों के चपेटे खाने वाला प्राणी (मनु तो वैसे भी जल-प्रलय से बचे थे) वैभव और उन्नति के शिखर पर पहुँचा। उसकी गति रोकने वाला कोई न था। उसकी उन्नति की अनेक मंजिलें थीं, पर वह कहीं रुका नहीं। जिस मंजिल पर पहुँचता था उससे आगे ही बढ़ जाता।

आज वह मृतप्राय पड़ा है। उसका वह समस्त अतीत जिसमें वह वैभव

का स्वामी रहा आज निस्सार सिद्ध हुआ। जिसे एक दिन सब अपना समझते थे, उसके लिए आज वे सब पराये बन गये।

पृष्ठ २१०

किन्तु वही मेरा—जिसका—इड़ा का। सर्ग—सृष्टि। पल्लव—किसलय, नवीन पत्ते। भले-बुरे—भलाई-बुराई। सीमा—मिलन-स्थल। युगल—दोनों, भलाई-बुराई से तात्पर्य है।

अर्थ—जिस मनु ने मेरे राज्य को सँभाल कर मेरा उपकार किया, उसी ने मेरी प्रजा की हत्या करके मेरा अपराध किया। जो व्यक्ति अपने गुणों से सब को लाभ पहुँचाता था, उसी से प्रत्यक्ष रूप में उनके रक्त-पात का दोष बन पड़ा।

पता यह चलता है कि भलाई और बुराई सृष्टि रूपी अङ्कुर के दो पत्ते हैं। दोनों एक दूसरे से मिले हुए हैं। अर्थात् प्रकृति में न कोई शुद्ध भली वस्तु है और न कोई शुद्ध बुरी। सभी में कुछ भलाई कुछ बुराई मिली रहती है। यदि ऐसा ही है तो हम दोनों ही को क्यों न प्रेम की दृष्टि से देखें?

अपना हो या—बिन्दु—सीमा। दौड़ना—अथक प्रयत्न करना। पथ में रोड़े बिखराना—रास्ता रोकना, यहाँ सुख का मार्ग रुद्ध करना।

अर्थ—सुख चाहे अपना हो चाहे दूसरों का जहाँ वह बढ़ता है वहीं दुःख का कारण बन जाता है। किंतु सुख-भोग में कहाँ तक बढ़ जाना चाहिए और किस सीमा पर रुक जाना चाहिए, यह भी निश्चयपूर्वक नहीं बताया जा सकता।

मनुष्य अपने भविष्य के सुखों की चिंता में अपने वर्तमान के सुख को छोड़ बैठा है। इस प्रकार अपने मार्ग में रोड़े बिखराता (अपने सुख को मिटाता) मनुष्य अथक प्रयत्न में लीन है। भाव यह कि उसे न भविष्य का सुख मिलता है और न वर्तमान का।

पृष्ठ २११

इसे दण्ड देने—विकट—जटिल। पहेली—समस्या। वास्तविकता—यथार्थ स्थिति, प्रजा के लोगों और मनु का घायल होना।

अर्थ—मैं मनु को दंड देने के लिए यहाँ बैठी हूँ अथवा इसके घायल शरीर की रक्षा कर रही हूँ? यह एक जटिल समस्या है। मेरा हृदय भी कैसा उलझनमय है!

मेरे मन में यह मधुर कल्पना जगी है कि मेरे यहाँ बैठने का परिणाम सुन्दर निकलेगा और मेरी इस कल्पना को सत्य का वरदान मिलेगा अर्थात् वह सत्य सिद्ध होगी। मेरा यह भी विश्वास है कि उसका रूप इस वास्तविक (भयंकर) स्थिति से अच्छा होगा।

वि०—मनु के शरीर की रक्षा का परिणाम यह निकला कि श्रद्धा की सेवा द्वारा उन्हें फिर जीवनदान मिला और उनके कुमार मानव की सहायता से इड़ा ने फिर एक बार अपने नष्ट राज्य को सँभाला।

चौंक उठी अपने—चौंकना—चकित होना। दूरागत—दूर से आई हुई। निस्तब्ध—सुनसान। प्रवासी—परदेशी। फेरा डालना—घूमना।

अर्थ—इड़ा अपने विचारों में डूबी हुई थी। सहसा उसने दूर से आती हुई एक ध्वनि सुनी जिस पर वह चौंक उठी। उस सुनसान रात में कोई स्त्री यह कहती बढ़ी चली आ रही थी—

अरे कोई दया करके इतना बतला दो कि मेरा परदेशी कहाँ है? मैं उसी बावले को पाने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम रही हूँ।

पृष्ठ २१२

रूठ गया था—अपनेपन—अहंभाव की प्रधानता। शूल—काँटा। सदृश—समान। सालना—कसकना, खटकना, चुभना। उर—हृदय।

अर्थ—अहंभाव की प्रधानता के कारण वह मुझसे रूठ गया था। मैं उसे अपनाने में असमर्थ रही। जो अपने नहीं होते उन्हें मनाया जाता है और क्योंकि वह तो मेरा अपना ही था इसीलिए उसे मनाने की चिंता मैंने नहीं की।

पर यह मेरी भूल थी जो हृदय में अब काँटे के समान खटक रही है। मेरे पास आकर कोई इतना बतावे कि मैं उसे कैसे पा सकूँगी?

इड़ा उठी दिख पड़ा—राजपथ—राजमार्ग। वेदना—व्यथा। जलना—

दु:ख की जलन में भरा रहना। शिथिल—थका हुआ। वसन—वस्त्र, कपड़े। विशृंखल—अस्तव्यस्त। कबरी—चोटी। अधीर—हिलती। छिन्न—टूटे हुए। मकरंद—पुष्प रस।

अर्थ—इड़ा उठी। उसने देखा राजमार्ग पर एक धुँधली-सी छाया चली आ रही है। उसकी वाणी से करुण व्यथा टपकाती थी मानो उसके स्वर में किसी दु:ख की आग भरी हो।

शरीर उसका थक गया था, कपड़े अस्तव्यस्त थे, चोटी वेग से हिल रही थी और खुली थी। उस स्त्री को देखकर लगता था जैसे कोई मुरझाई हुई कली हो जिसके पत्ते टूट गये हैं, जिसका रस लुट चुका है।

पृष्ठ २१३

नव कोमल अवलम्ब—नव—नवीन। अवलम्ब—सहारा। वय—अवस्था। किशोर—ग्यारह से पन्द्रह वर्ष की अवस्था का बालक। बटोही—पथिक, रास्तागीर।

अर्थ—सहारे के लिए उसके साथ नवीन कोमल शरीर वाला किशोरावस्था का एक बालक उँगली पकड़े हुए था। वह अपनी माँ के हाथ को कसकर थामे इस प्रकार चुपचाप धैर्य धारण किये चला आ रहा था मानो साक्षात् धैर्य शांत भाव से बढ़ा आ रहा हो।

वे दोनों ही दुखी पथिक माँ बेटे चलते-चलते थक गये थे। जो मनु घायल होकर यहाँ पड़े थे, वे उन्हीं भूले मनु की खोज में थे।

इडा आज कुछ—द्रवित—पिघलना, हृदय का कोमल होना। बिसराना—भूलना। रजनी—रात। चचल—अधीर। व्यथा—दु:ख, पीड़ा। गाँठ—बंद या छिपी। खोलना—भेद खोलना, चर्चा करना।

अर्थ—इड़ा का मन आज पहले से ही कुछ पिघला हुआ था। उसने दुखियों को देखा। उनके पास जाकर पूछा, तुम्हें किसने भुला दिया है? इस रात में भटकती हुई तुम भला कहाँ जाओगी? तुम मेरे पास आकर बैठो। मैं स्वयं आज बहुत अधीर हूँ। तुम भी अपने छिपे दुःख को मेरे सामने खोल कर रखो।

पृष्ठ २१४

जीवन की लंबी—रातें—समय । श्रान्त—थका हुआ । विश्राम—आराम, ठहरने का स्थान । वह्नि—अग्नि ।

अर्थ—जीवन इतनी लंबी यात्रा है जिसमें अपने खोये हुए साथी भी मिल जाते हैं । यदि मनुष्य जीता रहे तो जिनसे उनका विछोह हुआ है उनसे उसका कभी न कभी मिलन भी हो जाता है । यों दुःख का काल किसी प्रकार बीत ही जाता है ।

यह जान कर कि कुमार थक चला है और यहाँ विश्राम मिलेगा, श्रद्धा रुक गई । वह इड़ा के साथ उस स्थान पर पहुँची जहाँ अग्निशिखा जल रही थी ।

सहसा धधकी—धधकी—वेग से जली । आलोकित—प्रकाशित । कुछ—मनु को । डग भरना—लंबे पैर बढ़ाना । नीर—आँसू ।

अर्थ—अकस्मात् वेदी की ज्वाला धधक उठी जिससे यज्ञ-मंडप प्रकाशित हो गया । इसी बीच कामायनी ने कुछ ऐसा देखा जिससे उसे मनु की आकृति का संदेह हुआ । वह उस तरफ जल्दी चरण बढ़ा कर पहुँची ।

अरे ये तो उसके अपने मनु हैं । ये तो सचमुच घायल हैं । तब क्या उसका वह स्वप्न सत्य था ? उसके मुँह से इतना ही निकला : आह प्राणप्रिय ! यह क्या हुआ ? तुम्हारी ऐसी दशा ! और तब उसका हृदय घुल कर आँसू के रूप में बहने लगा ।

पृष्ठ २१५

इड़ा चकित—चकित—आश्चर्य में । सहलाना—कोमलता से शरीर पर हाथ फेरना । अनुलेपन —लेप । नीरवता—चुपचाप पड़ा रहना । स्पन्दन—धड़कन । बिन्दु—आँसू की बूँदें ।

अर्थ—इड़ा यह देखकर चकित हो उठी । श्रद्धा मनु के निकट आकर बैठ गई और उनके शरीर को सहलाने लगी । उसका मधुर स्पर्श लेप का काम कर रहा था । ऐसी दशा में मनु के शरीर में पीड़ा भला कैसे टिक सकती थी ?

मनु अभी तक मूर्च्छावस्था में चुप पड़े थे । श्रद्धा का परस पाते ही उनके

हृदय में हलकी धड़कन प्रारभ हुई। उनकी आँखें खुलीं और चारों कोनों से आँसू की चार बूँदें भर आईं।

उधर कुमार—मन्दिर—महल। मनोहर—सुन्दर। रोयें—शरीर के रोम।

अर्थ—उधर कुमार ऊँचे महल, यज्ञ मडप और वेदी को देखने में लीन था। वह चकित होकर सोच रहा था यह सब क्या है? ये तो एकदम नवीन वस्तुएँ हैं। कैसी सुन्दर हैं? और हृदय को ये कितनी प्यारी लगती हैं?

माँ ने उसे पुकार कर कहा : अरे कुमार तू इधर तो आ। देख, तेरे पिता यहाँ पड़े हुए हैं। कुमार ने उत्तर दिया : पिता जी, देखो मैं आ गया। इतना कहते ही उसका शरीर रोमाञ्चित हो उठा।

पृष्ठ २१६

माँ जल दे—मुखर—ध्वनित, गूँजना। आत्मीयता-अपनत्व। परिवार—कुटुम्ब।

अर्थ—कुमार बोला · माँ इन्हें जल दे। प्यासे होगे। तू यहाँ बैठी कर क्या रही है? उसकी इस बात से वह सूना मडप गूँज उठा। इससे पहले ऐसी सजीवता वहाँ कहाँ थी?

उस घर में एक प्रकार के अपनेपन ने प्रवेश किया। अब उन चारों का एक छोटा-सा कुटुम्ब बन गया। श्रद्धा ने एक गीत गाया जिसका मधुर स्वर उस स्थान पर मँडराने लगा।

तुमुल कोलाहल—तुमुल—घोर। हृदय की बात—शाति।

अर्थ—हे मेरे मन, जब कलह का घोर कोलाहल छाता है तब मैं शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करती हूँ।

वि०—जब तक मनु श्रद्धा के साथ रहे तब तक कलह से बचे रहे। इड़ा के सम्पर्क में आते ही सघर्ष का सामना करना पड़ा। कलह का अर्थ यहाँ बाहरी कलह और आन्तरिक अशान्ति दोनों का लेना चाहिए। यदि श्रद्धा को स्त्री मानें तब वह बाह्य कलह से मनु को बचाती रही और यदि वृत्ति मानें तो वह हृदय को क्षोभ से दूर रखती है। यही भाव इस पूरे गीत में है।

विकल होकर—विकल—आकुल, दुखी। चञ्चल—अधीर। नींद के पल—विश्राम। चेतना—बुद्धि। थकना—संघर्ष से ऊबना। मलय की वात—मलय पवन, मलय नामक पर्वत की ओर से, जो दक्षिण में है और जिस पर चन्दन के वृक्ष उगते हैं, आने वाली सुगन्धित वायु।

अर्थ—मनुष्य की बुद्धि जब दु:ख से आकुल होकर सदा अधीर रहने लगती है और संघर्ष से ऊब विश्राम चाहती है तब मैं मलय पवन के समान उसे शांति पहुँचाती हूँ।

पृष्ठ २१७

चिर विषाद विलीन—चिर—बहुत दिन से। विषाद—शोक। विलीन—डूबा हुआ। व्यथा—पीड़ा, शोक। तिमिर—अंधकार। ज्योतिरेखा—किरण।

अर्थ—जो मन चिर काल से शोक में डूबा है उसमें मैं आनन्द की किरण वैसे ही उगा देती हूँ जैसे रात के अंधकार में डूबी सृष्टि को उषा की किरणें खिला देती हैं।

अंधकार में डूबा वन जैसे प्रभात काल में फिर खिले पुष्पों से शोभाशाली प्रतीत होता है वैसे ही पीड़ा के अंधकार से युक्त मन रूपी वन भी सुख के प्रभात में आनन्द रूपी पुष्पों से युक्त होता है और मन को शोक से मुक्त कर सुख और आनन्द से युक्त करना मेरा ही काम है।

जहाँ मरु ज्वाला—मरु—रेगिस्तान. जीवन की शुष्कता। चातकी—एक पक्षी, आत्मा। कन—जलकण. आनन्द। सरस—जल भरी, रसपूर्ण, आनन्दमयी।

अर्थ—प्रकृति में हम देखते हैं कि मरुभूमि में ग्रीष्म का प्रचंड ताप जब फैलता है और चातकी जब स्वाति नक्षत्र की एक बूँद के लिए तरस जाती है तब पर्वत की घाटियों से उठकर जलभरे बादल बरसते हैं और उसे तृप्त करते हैं। ठीक ऐसे ही जब जीवन शुष्क मरुभूमि-सा बन जाता है और उसमें दु:ख की आग धधकने लगती है, तब आत्मा रूपी चातकी सुख की एक बूँद के लिए तरस जाती है। उस समय हे मन, मैं जीवन के पलों में रस (आनन्द) की वर्षा करती हूँ।

पवन की प्राचीर—पवन की प्राचीर—स्थिर पवन, परिस्थितियों का घेरा। जीवन—जल और प्राणियों का जीवन। झुकना—एक ओर बहना, कहीं कोने में पड़ा रहना। कुसुम ऋतु—वसन्त ऋतु।

अर्थ—गर्मियों के दिनों में जब वायु भी चलना बन्द कर देती है और दीवाल के समान स्थिर प्रतीत होती है तब ऐसे वातावरण में बन्द वह जल जो ग्रीष्म के ताप से सूख गया है प्रवाहहीन हो जाता है और किसी एक ओर को झुक (बह) कर जैसे-तैसे बना रहता है। इसी प्रकार परिस्थितियों के घेरे में बन्द दु:ख से दग्ध व्यक्ति भी किसी कोने में पड़े रहते हैं, किसी प्रकार जीते हैं।

पर जैसे ताप से झुलसते दिन के उपरात वसन्त की रात के आने पर सब ताप नष्ट हो जाता है, वैसे ही दुःख से झुलसते ससार में मैं वसन्त की रात के समान सुख और ऐश्वर्य की शीतलता और समृद्धि लाती हूँ।

चिर निराशा—चिर—बहुत दिनों की, घनी। नीरधर—मेघ, बादल। प्रतिच्छायित—प्रतिबिंबित। सर—तालाब, सरोवर। मधुप—भौंरा। मुखर—गूँज से युक्त। मकरद—पुष्प रस। मुकुलित—खिला हुआ। सजल—सरस। जलजात—कमल या कमलिनी।

अर्थ—घनी निराशाओं के मेघ जब आँसुओं के सरोवर में प्रतिबिम्बित होते हैं तब भी हे मन, मैं उसमें उस सरस कमलिनी के समान खिलती हूँ जिस पर भौंरे गूँजते हों, जो रस से भरी हो, जो विकासोन्मुख हो। भाव यह है कि किसी प्रकार के दु.ख के कारण जब आँखों में आँसू आते हैं तब घनी निराशा छा जाती है, जो हृदय श्रद्धावान् अर्थात् इस सम्बन्ध में अडिग है कि दुःख क्षणिक है और सुख लौटकर आयेगा ही वह अपनी निराशा में भी आशा की गूँल और उसके बने रहने से जीवन में रस-विकास और प्रसन्नता का अनुभव करता है।

पृष्ठ २१८

उस स्वर लहरी—स्वर लहरी—गीत। सजीवन रस—जीवन देने वाला रस। नवीन उत्साह—नवीन बल देने वाली कोई बात। प्राची—पूर्व दिशा। मुदित—बन्द। अवलंबन—सहारा। कृतज्ञता—एहसान, आभार।

अर्थ—श्रद्धा के मुख से निकले गीत के समस्त अक्षर सजीवन रस बन कर मनु के अंतर में घुल गये अर्थात् उसके गान ने उन्हें नवीन जीवन दान दिया। उधर पूर्व दिशा में प्रातःकाल होते ही उन्होंने अपनी बन्द आँखें खोलीं। उन्हें श्रद्धा का एक बार फिर सहारा मिला। उसके प्रति कृतज्ञता से अपने हृदय को भर कर प्रसन्न होकर वे उठ बैठे और प्रेममयी वाणी में कहने लगे—

वि०—यहाँ 'फिर' शब्द की यह सार्थकता है कि एक बार इसके पूर्व भी घोर निराशा की ऐसी ही स्थिति में जब मनु का कोई अपना नहीं था तब श्रद्धा ने ही उसके मन को सहारा दिया था। इसके लिए 'श्रद्धा' सर्ग देखिए।

श्रद्धा तू आ गई—भला तो—अच्छा हुआ। स्तम्भ—खम्भे। वेदिका—यज्ञ की वेदी। क्षोभ—आकुलता, जी घबराना।

अर्थ—श्रद्धा तुम आ गई! बहुत अच्छा हुआ। पर क्या मैं अभी तक यहीं पड़ा था? हाँ यह वही भवन है, ये वे ही खम्भे हैं। यह वही यज्ञ की वेदी है जहाँ युद्ध हुआ था। यहाँ चारों ओर बिखरे कुत्सित दृश्यों को देखकर घृणा उत्पन्न होती है।

घबरा कर मनु ने आँखे बन्द कर लीं। बोले. श्रद्धा, मुझे यहाँ से कहीं बहुत दूर ले चलो। कहीं ऐसा न हो कि दुर्भाग्य के इस भयंकर अंधकार में मैं तुम्हें फिर खो बैठूँ?

नोट:—'आँख बन्द कर लिया' प्रयोग अशुद्ध है। आँख स्त्रीलिङ्ग है और उसके साथ पुलिङ्ग क्रिया का प्रयोग है।

पृष्ठ २१६

हाथ पकड़ ले—हाथ पकड़ना—सहारे का आश्वासन देना। चल सकना—जीवन बिताना। अवलम्बन—सहारा। कुसुम—पुष्प। नीरव—चुप, शांत, मौन।

अर्थ—यदि तुम मेरा हाथ थाम लो तो मैं अब भी जीवन के शेष दिन भली प्रकार व्यतीत कर सकता हूँ, पर शर्त यह है कि मुझे तुम्हारा सहारा बराबर मिलता रहे। उधर वह कौन है? इड़ा है न? तुम मेरी आँखों के सामने से

हट जाओ। श्रद्धा, तुम मेरे पास आओ जिससे मेरे हृदय का पुष्प विकसित (अर्थात् मेरा मन प्रसन्न हो)।

श्रद्धा चुप बैठी मनु के सर पर हाथ फेर रही थी। अपनी आँखों में विश्वास भर कर मानों वह कह रही थी : तुम मेरे हो। ऐसी दशा में तु (इड़ा से) व्यर्थ डरने की क्या आवश्यकता है ?

जल पीकर कुछ—इस छाया—साम्राज्य की सीमा। मुक्त—खुला हुआ गुहा—कदरा, गुफा। झेलना—सहना।

अर्थ—मनु ने जल पिया जिससे वे थोड़े स्वस्थ हुए। इसके उप उन्होंने धीरे-धीरे बोलना प्रारम किया . इस साम्राज्य की सीमा से मुझे दूर चलो। मुझे यहाँ न रहने दो।

खुले नीले आकाश के नीचे या किसी कदरा के भीतर हम अपने दिन व लेंगे। अब तक मैंने कष्ट ही कष्ट झेले हैं और भविष्य में भी जो सकट आवं उन्हें हम मिल कर सहन कर लेंगे।

पृष्ठ २२०

ठहरो कुछ तो—तुरत—तुरत, शीघ्र। क्षण—समय। सकुचित-लज्जित। यह—रहने का। अविचल—स्थिर।

अर्थ—श्रद्धा बोली : अभी यहीं रहो। तुम्हारे शरीर में जब थोड़ा ब आ जायगा तब शीघ्र ही तुम्हें कहीं ले चलूँगी। क्या ये हमें इतने समय त यहाँ न रहने देंगी ?

इड़ा वहीं लज्जित-सी खड़ी थी। उन दोनों के कुछ दिन वहाँ ठहरने अधिकार पर 'ना' न कह सकी। श्रद्धा स्थिर भाव से बैठी रही, पर मनु वाणी न रुकी। वे बोले—

उव जीवन में—साध—कोई विशेष कामना। अनुरोध—प्रेम का आग्रह बोध—ज्ञान। कुसुम—फूल, फूल-सा शरीर। सघन—घनी, अत्यधिक। सु हली—सोने के रग की, स्वर्णवर्णी रमणी। छाया—समीपता की शीतलता मलयानिल—मलय पवन, प्रेम के उच्छ्वास। उल्लास—आनन्द। माया-प्रसार, फैलाव।

अर्थ—जीवन के वे दिन स्मरण आते हैं जब मेरी भी एक विशेष कामना थी, जब अपनी प्रेमिका से मैं प्रेम का आग्रह इस सीमा तक कर जाता था कि उच्छृङ्खल हो उठता था, जब मेरे हृदय में इच्छाएँ भरी थीं और जब इस बात का ज्ञान था कि कोई हमारा भी है।

मैं था और सुन्दर पुष्पों के समान कोमल अवयव वाली मेरी प्रेमिका थी जिसकी सुनहली घनी छाया—स्वर्ण गात की अत्यधिक शीतल समीपता—मिली।

जैसे सुमनों की गंध लेकर मलय पवन चलता है वैसे ही उसके हृदय से प्रेम के उच्छ्वास फूटते थे। आनन्द का उस समय प्रसार था।

वि०—यह प्रलय से पूर्व मनु के दैवी जीवन की चर्चा है। इस बात का संकेत कामायनी में कई स्थानों पर है कि श्रद्धा को स्वीकार करने से पहले भी मनु किसी देव-बालिका से परिचित थे।

पृष्ठ २२१

उषा अरुण प्याला—उषा—प्रभात सुन्दरी, उषा-सी सुन्दरी। अरुण प्याला—लालिमा से युक्त सूर्य रूपी प्याला, प्रेम का प्याला। सुरभित—उच्छ्वसित। छाया—शीतल आश्रय। मकरंद—रस, प्रेम। शरद प्रात—शरद ऋतु का प्रभात, जीवन का उज्ज्वल प्रारम्भ। शेफाली—हरसिंगार, मन। घुँघराली अलकें—घुँघरवाले बाल। घिरता—अंधकार।

अर्थ—जैसे उषा सूर्य रूपी प्याले में लालिमा भर लाती है वैसे ही उषा-सी सुन्दरी मेरी प्रेमिका हृदय के प्याले में अनुराग का अरुणवर्णी रस भर कर लाती थी और उसके सुरभित उच्छ्वासों के आश्रय में जो मुझे शीतलता प्रदान करते थे मेरा यौवन (युवक रूप में मैं) आँख मींच कर मस्ती से सुख का अनुभव करते हुए उस रस को पीता था।

शरद ऋतु के प्रभातकाल के समान जीवन के उस उज्ज्वल प्रभात में मन रूपी हरसिंगार के वृन्त से प्रेम का नवीन रस चूता था। संध्या के समय जब सुन्दर अन्धकार घिर आता था तब यह जानकर कि अब हम दोनों का मिलन होगा एक प्रकार के सुख की वर्षा होने लगती थी।

वि०—काव्य में अनुराग का रग लाल माना जाता है।

सहसा अंधकार—अधकार—अँधेरी, यहाँ विनाश। हलचल—प्रलय। विक्षुब्ध—घबराना। उद्वेलित—उछलना, आकुल या दुखी रहना। मानस लहरी—सरोवर की लहरें, मन के भाव। नीले नभ—नील गगन, विराट निराशा। छायापथ—आकाश गगा। स्मिति—मन्द हास्य।

अर्थ—अकस्मात् विनाश की वेगभरी आँधी क्षितिज से उठी अर्थात् प्रलय के रूप में दैवी प्रकोप हुआ। प्रलय की हलचल से ससार घबरा उठा और जैसे आँधी के चलने से सरोवर की लहरें उछलने लगती हैं, वैसे ही प्रलय में मेरे मन के भावों ने भी आकुलता का अनुभव किया। भाव यह कि यद्यपि मैं बच गया था, पर मेरा मन दु.खी रहने लगा।

हे देवी! ठीक ऐसे समय में तुम आईं और तुमने आकर अपने कल्याण-कारी मधुर मन्द हास्य की छटा छिटकायी। इससे विराट् निराशा के वातावरण में पला मेरा दुखी हृदय वैसे ही आलोकित हो गया, जैसे नील गगन में आकाश-गगा झलकती है।

वि०—जैसे छायापथ में अनन्त तारे हैं वैसे ही हृदय में अगणित भाव।

नोट.—'जमी' जैसे शब्दों का प्रयोग खड़ी बोली में बचाना चाहिए, असाहित्यिक है।

पृष्ठ २२२

दिव्य तुम्हारी—दिव्य—अलौकिक। अमिट—स्थायी रूप से। हेम लेखा—स्वर्ण रेखा। निकष—कसौटी। अरुणाचल—उदयाचल।

अर्थ—तुम्हारी अलौकिक अमर छवि मेरे अन्तर में स्थायी रूप से रँग-रेलियाँ करने लगी और हृदय रूपी कसौटी पर स्वर्ण की एक नवीन रेखा के समान वह अकित हो गई।

मन को मुग्ध करने वाली तुम्हारी नवीन मधुर आकृति मेरे मन मंदिर में वैसे ही बस गई जैसे उदयाचल पर उषा निवास करती है। तुमने स्नेहपूर्वक मुझे सुन्दरता की सूक्ष्म महत्ता का ज्ञान कराया।

वि०—श्रद्धा के आगमन से पूर्व मनु का हृदय निराशा के अधकार से आवृत

था। कसौटी भी काली होती है। अतः यहाँ हृदय की तुलना जो कसौटी से की गई वह अत्यन्त उपयुक्त हुई है। और श्रद्धा की सुन्दरता के कारण उसे स्वर्ण रेखा की सज्ञा देना उचित ही हुआ।

उस दिन तो—सुन्दर—सुन्दरता। पहचानना—बोध होना। किसके हित—सुन्दरता के लिए। जीवन—हृदय। साँस लिये चल—प्रेम के उच्छ्वास भर। सबल—पाथेय, मार्ग व्यय, सहारा।

अर्थ—हमें उसी दिन पता चला कि सुदरता क्या वस्तु है और उसी दिन इस बात का बोध हुआ कि वह क्या चीज है जिसके लिए ससार के मनुष्य सुख-दु:ख सहन करने को उद्यत रहते हैं।

उन दिनों जीवन यौवन से प्रश्न करता . अरे मतवाले ससार मे आकर तूने कुछ देखा भी ! यौवन उत्तर देता : इसी सौंदर्य की छाया में प्रेम के उच्छ्वास भरता रह और कुछ न सोच। जीवन-पथ को काटने का यही उपयुक्त सबल (सहारा) है। इसे जितना प्राप्त कर सके कर।

1899/302

पृष्ठ २२२

हृदय बन रहा था—शतदल—कमल। मकरन्द—पुष्प रस। इस—जीवन के। हरियाली—हराभरापन, प्रसन्नता। मादकता—नशा। तृप्ति—सतुष्टि, इच्छापूर्ति।

अर्थ—मेरा हृदय सीपी के समान प्रेमरस का प्यासा था। तुमने स्वाती की बूँद बन कर उसे भर दिया। सरोवर में खिलने वाला कमल जैसे मकरद को प्राप्त करके मस्ती से झूमने लगता है वैसे ही मेरे मन का कमल तुम्हारे प्रणय-रस को प्राप्त करके मस्ती का अनुभव करने लगा।

मेरा जीवन सूखे पतझड़ के समान था। तुमने वसत के समान आकर उसे हरा-भरा कर दिया। तुमने मुझे इतना स्नेह दिया कि मैं तृप्त हो गया और अधिक मदिरा पीने से मनुष्य जैसे नशे की दशा में आ जाता है वैसे ही वह अगाध प्रेम मुझे नशा-सा प्रतीत हुआ—मैं उसे सहन न कर सका और इसी से वह एक दिन भग हो गया।

विश्व कि जिसमें—मरण—मृत्यु जैसा। बुद्बुद् की माया—बुलबुले का-

सा प्रभाव, अस्थिरता, आशा का निर्माण और विनाश। कदम्ब—एक वृक्ष।

अर्थ—मेरे जीवन की दुनिया में दुःख की आँधियाँ और व्यथा की लहरें उठती थीं और एक दिन मैं जीवित रहकर भी मरा जैसा था। जैसे बुलबुला अभी बना और अभी फूट जाता है, वैसे ही मेरी आशाएँ बनतीं और मिट जाती थीं।

ऐसा दुःखमय अस्थिर जीवन तुम्हारे सम्पर्क से शात, उज्ज्वल, कल्याण-कारी और विश्वास से पूर्ण हो गया। वर्षा के दिनों में जैसे कदम का वन हरा-भरा हो जाता है वैसे ही तुम्हारे प्रेम की वर्षा से ससार मेरे लिए फिर एक बार ऐश्वर्य से भरपूर हो गया।

पृष्ठ २२४

भगवति वह—भगवति—देवी, आदर-सूचक एक सम्बोधन। शैल—पर्वत। धुल जाना—निखरना, मैल कटना। अकथ—रहस्यमय।

अर्थ—हे देवी, तुम्हारे प्रेम की वह पवित्र मधुधार जिसके सामने अमृत भी तुच्छ था तुम्हारे रम्य सौंदर्य के पर्वत से फूटी। उससे मेरे जीवन का सारा दु.ख रूपी मैल धुल गया।

ऐसी दशा में सध्या ताराओं के द्वारा जिस रहस्य-गाथा को गुनगुनाती थी वह मेरी दी हुई थी अर्थात् अपने दुःख में प्रेम के भावों को खिला कर जैसे मैंने हँसना सीखा ठीक वैसे ही अपने अधकारमय जीवन में सध्या भी ताराओं को लेकर खिलखिलाती थी। समस्त दिन काम करते-करते मैं थक जाता था जिससे मन अकुलाता और शरीर दुख उठता था, पर उन दिनों ज्यों ही नींद आई कि सहज ही सारी पीड़ा दूर हो जाती थी।

नोट—'वही' के स्थान पर 'वही' कीजिये। इस क्रिया का सम्बन्ध मधुधारा से है।

सकल कुतूहल—कुतूहल—आश्चर्य। उन 'चरणों—श्रद्धा के चरणों या श्रद्धा से। कुसुम—भाव। स्मिति—मन्द हास्य। मधु राका—वसत की पूर्णिमा। पारिजात—स्वर्ग का एक वृक्ष, हरसिंगार। मन्थर—मन्द। मलयज—मलय पवन। वेणु—वशी।

अर्थ—तुम्हीं मेरे समस्त कौतूहल और कल्पनाओं का केन्द्र थीं। जैसे पुष्प जब खिलते हैं तो मुस्कुराते-से प्रतीत होते हैं वैसे ही मेरे हृदय के समस्त भावों में प्रसन्नता भर गई, वे खिल उठे। जीवन का वह मुहूर्त्त धन्य था।

तुम्हारी मुस्कान वसंत की पूर्णिमा की चाँदनी जैसी थी, तुम्हारे श्वासों में खिले हरसिंगार के फूलों की गन्ध थी। तुम्हारी गति उस मलय पवन के समान थी जो पुष्पों के रस के भार से मन्द-मन्द चलता है और तुम्हारे स्वर की समता तो वंशी भी न कर सकती थी।

पृष्ठ २२५

श्वास पवन पर—दूरागत—दूर से आई हुई। रव—ध्वनि। कुहर—गुफा, सूनापन। दिव्य—अलौकिक। अभिनव—नवीन। जलनिधि—जीवन रूपी समुद्र। मुक्ता—मोती, गुण।

अर्थ—जैसे दूर से आती हुई वंशी की ध्वनि पवन पर आरूढ़ होती हुई संसार रूपी गुफा में एक नवीन अलौकिक रागिनी के रूप में गूँजने लगती है वैसे ही तुमने मेरी साँस-साँस में समा कर मेरे सूने संसार को आनन्द की रागिनी से गुँजा दिया।

मेरे जीवन रूपी समुद्र के गर्भ में अर्थात् मेरे हृदय में जो मोतियों के समान उज्ज्वल गुण छिपे हुए थे वे प्रकट होने लगे। उस समय संसार का कल्याण करने वाला तुम्हारा गीत (गुण-गाथा) जब मैं गाता था तो मेरे रोम-रोम खड़े हो जाते थे।

आशा की आलोक किरन—मानस—मानसरोवर, मन। जलधर—बादल, भाव। सृजन—सृष्टि, निर्माण। शशिलेखा—चाँदनी, प्रेम का प्रकाश। प्रभा—आलोक, प्रकाश। जलद—बादल, यहाँ प्रेम का बादल।

अर्थ—सूर्य का ताप जब मानसरोवर पर पड़ता है, तब उससे बादलों का सृजन होता है। ठीक ऐसे ही मेरे मन के रस और आशा की उज्ज्वल किरण के संयोग से एक छोटे से भाव रूपी बादल की सृष्टि हुई। अर्थात मन में एक दिन आशा उगी, कि मेरा कोई साथी हो। इस भाव रूपी बादल को प्रेम की

चाँदनी ने घेर लिया। भाव यह है कि वह साथी मुझसे प्रेम भी करे यह भी मैंने चाहा।

जैसे काले बादल में प्रकाशमयी बिजलियाँ झूमती हैं वैसे ही मेरे भाव में तुम्हारे व्यक्तित्व की प्रभापूर्ण बिजली मचली अर्थात् जब मेरा हृदय प्रेम से भरा था तब तुम भी प्रेम की मस्ती लेकर आई। बिजली से सयुक्त होने पर बादल जैसे छोटी-छोटी बूँदों में लगातार बरसता है जिससे वनभूमि हरियाली धारण करती है वैसे ही तुम्हारे सयोग से प्रेम का बादल धीरे-धीरे निरन्तर बरसा जिससे मेरा मन आनन्द से पूर्ण हो गया।

पृष्ठ २२६

तुमने हँस हँस—खेल है—हँसकर सामना करने की वस्तु। विभ्रम—हाव-भाव। सकेत—इशारा।

अर्थ—हँस-हँस कर तुमने मुझे यही सिखाया कि ससार भी एक खेल है, जब तक जीवित रहो तब तक उसे खेलो अर्थात् ससार से न डरने की आवश्यकता है, न विरक्त होने की, बल्कि सङ्कटों का सामना प्रसन्नता से करते हुए हँसी-खुशी से जीवन काटो। मेरे साथ एक होकर तुमने मुझे यही शिक्षा दी कि सबसे मित्र-भाव रखो।

अपने बिजली जैसे स्पष्ट हाव-भावों से यह सकेत भी मुझे तुम्हीं से मिला कि जहाँ तक मन का सम्बन्ध है वहाँ तक उस पर हमारा अपना अधिकार है। इसे जब और जिसे देने की इच्छा हो उसी क्षण और उसी को हम दे सकते हैं।

तुम अजस्र वर्षा—अजस्र—निरन्तर। सुहाग—सौभाग्य। मधु रजनी—वसत की रात, कोई सुहावनी ऋतु। अतृप्ति—असन्तोष। आश्रित—सहारा पाने वाला। आभारी—कृतज्ञ। सवेदनमय—कोमल।

अर्थ—तुम जिस दिन से आई, उसी दिन से न रुकने वाली वर्षा के समान मेरे जीवन में सौभाग्य की वर्षा हुई और वसत की रातें जैसी सुहावनी लगती हैं वैसा ही तुम्हारा मधुर स्नेह मुझे मिला। मेरे जीवन में घना असतोष था, तुमने मुझे सभी प्रकार से सतुष्ट किया।

मेरे ऊपर तुमने इतना उपकार किया जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता।

यह तुम्हीं तो थीं जिसने मेरे प्रेम को सहारा दिया। तुम्हें पाकर मेरा हृदय कोमल भावनाओं से पूर्ण हुआ। इसके लिए मैं तुम्हारा बहुत आभारी हूँ।

पृष्ठ २२७

किन्तु अधम मैं—अधम—तुच्छ-हृदय। मंगल की माया—मंगलकारी स्वरूप। छाया—अवास्तविक। मेरा—मेरे व्यक्तित्व का। क्रोध—दूसरों पर क्रोध। मोह—अपने स्वार्थ का ध्यान। उपादान—तत्व। गठित—निर्मित। किरन—ज्ञान।

अर्थ—परन्तु मैं तुच्छ हृदय निकला। तुम्हारे उस कल्याणकारी स्वरूप को समझ ही न सका—और आज भी मैं झूठे हर्ष-शोक के पीछे ही दौड़ रहा हूँ।

क्रोध और मोह के तत्वों से ही जैसे मेरे समस्त व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। लगता है कि ज्ञान की किरणों ने—इस बोध ने कि संसार में सुखी रहने के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को भुलाना पड़ता है—मुझे अब भी नहीं चेताया।

शापित सा मैं—शापित—शापग्रस्त प्राणी। कंकाल—अस्थिपंजर मात्र, कोई सारहीन वस्तु। खोखलेपन—शून्यता, सारहीनता। अंधतमस—घोर अंधकार। प्रकृति—स्वभाव। खीझना—क्रोध करना।

अर्थ—शापग्रस्त प्राणी का जीवन जैसे जीवन नहीं रह जाता वैसे ही मेरा जीवन सारहीन है। फिर भी मैं सुख की खोज में यहाँ-वहाँ घूम रहा हूँ। जैसे कोई अंधा सूने में कुछ खोजता है और नहीं पाता, फिर भी भ्रम से यहाँ-वहाँ रुक जाता है, वैसे ही अपने इस सूने जीवन के भीतर मैं सुख की व्यर्थ खोज कर रहा हूँ। कभी-कभी भ्रम होता है कि संभवतः जिस वस्तु की खोज में मैं हूँ वह मिल जाय। इसी से थोड़ी देर रुक जाता हूँ, पर परिणाम में हाथ कुछ भी नहीं पड़ता।

मेरे चारों ओर निराशा का घोर अन्धकार है फिर भी स्वभाव से मनुष्य निष्क्रिय नहीं हो सकता; इसी से कभी इधर कभी उधर आकर्षित होकर खिंच जाता हूँ। निराशा होने पर मैं सभी पर झुँझलाता हूँ, अप्रसन्न हो जाता हूँ। उन सब में मैं भी सम्मिलित हूँ। हाँ, मुझे अपने ऊपर भी झुँझलाहट आती है।

पृष्ठ २२८

नहीं पा सका—जो—प्रेम। क्षुद्र पात्र—संकीर्ण हृदय। स्वगत—अधिकार में। छिद्र—छेद, असपूर्णताएँ।

अर्थ—प्रेम का जो दान तुमने देना चाहा वह मैं पा न सका। मेरे हृदय का पात्र छोटा है और तुम उसमें रस की मधुर धार उड़ेल रही हो।

पर हृदय का सारा रस बाहर हो गया। उस पर मैं कोई अधिकार न रख सका। कारण यह था कि हृदय-रूपी पात्र में बुद्धि और तर्क के दो छिद्र हो गये थे जिससे वह कभी भरा न रह सका।

वि०—प्रेम शुद्ध अनुभूति से सबंध रखता है। जो मनुष्य प्रेम में तर्क से काम लेता है अथवा भावना-प्रधान न होकर बुद्धि-प्रधान होता है उसके हृदय से प्रेम उड़ जाता है और उसे कभी शांति नहीं मिलती।

यह कुमार मेरे—कुमार—मनु का पुत्र मानव। उच्च अंश—उत्तम निधि। कल्याण कला—मगल रूप। प्रलोभन—मोह। आँधी—भावों का वेग।

अर्थ—यह कुमार मेरे जीवन की उत्तम निधि है, मगल रूप है। मेरे कितने भारी मोह का यह केन्द्र है। स्नेह का रूप धारण करके मेरा हृदय इसकी ओर खिंच गया है।

यह बच्चा सुखी रहे। मेरी कामना है तुम सब सुखी रहो। मैं अपराधी हूँ। तुम मुझे अकेला छोड़ दो। इस समय मनु के हृदय में भावों का जो वेग उठ रहा था श्रद्धा चुपचाप उसका निरीक्षण कर रही थी।

पृष्ठ २२९

दिन बीता रजनी—तंद्रा—झपकी, ऊँघना, हल्की नींद। खिन्न—चिंतित। उपधान—तकिया। अभिशाप—दुःख।

अर्थ—दिन समाप्त हुआ। इसके उपरांत रात आई जिसमें सभी ऊँघ का अनुभव और नींद का सुख पाते हैं। इड़ा कुमार के पास लेट गई। इन तीनों

के मिलने पर उसके मन में भी कुछ कहने की उमग उठी थी, पर उसने अपने मन की बात मन में ही रहने दी।

श्रद्धा कुछ चिंतित थी, कुछ थक-सी चली थी; अतः हाथों का तकिया बना कर पड़ी-पड़ी मन ही मन कुछ सोचने लगी। मनु भी इस समय चुप थे। अपने हृदय के दुःख को उन्होंने हृदय में ही दबा लिया।

वि०—कुमार की अवस्था प्रेम के लिए उपयुक्त नहीं है; अतः मन की दबी उमग मे इडा में मनु-पुत्र के प्रति प्रेम-भावना का आरोप असगत होगा।

सोच रहे थे—विकट—भयकर। इंद्रजाल—माया, सासारिक मोह। चचल—जो स्थिर न हो, गतिशीला। छाया—व्यक्तित्व। कलुषित गाथा—पापी शरीर।

अर्थ—वे सोचने लगे : जीवन सुख है ? नहीं। जीवन एक भयकर उलझन है। अरे, मनु, तू यहाँ से भाग जा। इस सासारिक मोह से छुटकारा पा। ऐसा कौन सा कष्ट है जो तूने इन लोगों के कारण नहीं सहा।

श्रद्धा का व्यक्तित्व प्रभातकाल की सुनहली झलमलाती गतिशीला किरणों के समान है। जैसे रात अपने अँधेरे मुख को उषा को नहीं दिखला सकती, वैसे ही मैं भी अपने इस मुख और इस पापी शरीर को (जिसने इड़ा को स्पर्श किया है) इसे कैसे दिखलाऊँ ?

पृष्ठ २३०

और शत्रु सब—कृतघ्न—उपकार को न मानने वाला। प्रतिहिंसा—वैर का बदला। प्रतिशोध—बदला।

अर्थ—श्रद्धा को छोड़ कर और सब मेरे शत्रु हैं। शत्रु ही नहीं, स्वभाव से ये सब कृतघ्न हैं। अत. इनका कोई विश्वास नहीं कि किस समय. क्या कर बैठें और मेरे मन में इनसे अपने वैर के बदले को चुकाने की जो भावना उठ रही है उसे मन में दबा कर चुप रहने से तो मैं मुर्दे के समान हो जाऊँगा।

यदि श्रद्धा मेरे साथ रही तब तो यह सभव ही नहीं है कि मैं इनसे बदला ले सकूँ। तो फिर मेरा निश्चय है कि मेरी धारणाओं के अनुकूल मेरे मन को जहाँ शाति मिलेगी वहीं मैं उसकी खोज में जाऊँगा।

जगें सभी जब—शात—चुप। अपराधी—दोषी। अपने में—हृदय में। उलझना—ठीक से कुछ निश्चय न कर सकना।

अर्थ—नवीन प्रभात होने पर जब सब जगे तो उन्होंने देखा कि मनु वहाँ हैं ही नहीं। कुमार तो धैर्य खो बैठा। पिता तुम कहाँ हो? इस प्रकार पुकार मचाता हुआ वह उन्हें खोजने लगा।

इस घटना को देखकर इड़ा सोचने लगी कि इसके लिए सबसे अविक दोषी वही है। जहाँ तक श्रद्धा का सम्बन्ध था, वह बाहर से मौन थी, पर भीतर यह निश्चय नहीं कर पा रही थी कि ऐसा क्यों हुआ और अब क्या करना होगा?

दर्शन

कथा—एक दिन निस्तब्ध अँधेरी रात में श्रद्धा सरस्वती नदी के किनारे जल में पैर लटकाये बैठी थी। पास में खड़े कुमार ने उससे पूछा : मा, इस निर्जन में अब ऐसा क्या आकर्षण है जो तू यहाँ से उठती नहीं, और इन दिनों तू इतनी उदास क्यों रहती है? उठ, घर को चल। देख तो, उसमें से गंध-धूम निकल रहा है। श्रद्धा ने ऐसी प्यार भरी भोली बातों को सुन कर उसे चूम लिया और समझाया : बेटा, मेरा घर इससे कहीं बड़ा है। वह दीवालों में बँधा हुआ नहीं है। यह विस्तृत उन्मुक्त विश्व जिसके ऊपर आकाश की छत और पृथ्वी का आँगन है मेरा वास्तविक घर है। विश्व के इस आँगन में सुख-दुःख आते-जाते हैं, पवन शिशु-सा क्रीड़ा करता है और उन्नति-अवनति, सृष्टि विनाश के द्वन्द्वों से युक्त होने पर भी यह सदा सुन्दर बना रहता है। यह शांति, शीतलता और आनन्द का निकेतन है। इसमें भासित होने वाला ताप एक भ्रान्ति-मात्र है।

इसी समय पीछे से किसी ने पूछा : माता, यदि तुम्हारा दृष्टिकोण इतना उदार है तब तुम मुझसे क्यों विरक्त हो? श्रद्धा ने मुड़कर देखा इड़ा खड़ी है। उसने उत्तर दिया : तुमसे तो विरक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता? जिस व्यक्ति को मैं अपनाकर न रख सकी, उसे तुमने आश्रय दिया। इसके बदले में मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है। नारी के पास माया और ममता का ही बल है। वह स्वयं सभी के अपराधों को क्षमा करती है। ऐसी दशा में उसे कौन क्षमा कर सकता है? मैं जानती हूँ मेरे पति ने अपराध किया है। उसके लिए मैं तुमसे क्षमा चाहती हूँ।

इड़ा बोली : बात ऐसी नहीं है। स्त्री हो चाहे पुरुष अपराध तो सभी से होते हैं पर अधिकार पाकर मनुष्य मर्यादा का ध्यान नहीं रखता। जो उसे सम-

झाने का प्रयत्न करता है, उसे वह अपना शत्रु समझता है। मेरे राज्य की व्यवस्था तो एकदम छिन्न-भिन्न हो गई है। श्रम के आधार पर मैंने वर्ग विभाजन किया था, पर आज एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का विरोधी हो गया है। जो लोग शान्ति-स्थापना के लिए नियम बनाते हैं वे ही बड़े-बड़े विप्लवों के मूल कारण बनते हैं। मनुष्य की बुद्धि को विकसित कर मैंने उसे शक्ति देनी चाही, पर देखती हूँ प्राणी उसका दुरुपयोग कर रहा है। तब क्या संघर्ष शक्तिहीन है? कर्म व्यर्थ है? मनुष्य को विनाश के मुख में चुपचाप चला जाने दूँ?

श्रद्धा ने टोका. तुम्हारी भूल यह है कि तुम्हारे सारे कर्मों में बुद्धि और तर्क की प्रधानता है, हृदय और भाव से वे अछूते हैं। इससे जीवन की सामजस्य-भावना बिखर जाती है। जीवन की धारा सत्, चित् और आनन्दमयी है। उसे अपने सरल रूप में ही ग्रहण करना चाहिए। सुख-दु:ख दोनों में से एक को भी नहीं छोड़ा जा सकता। तर्क की प्रधानता के कारण तुम एक-एक बात पर संदेह करती हो। आस्था जैसे तुम्हारे जीवन में है ही नहीं। त्याग संघर्ष से बहुत बड़ी वस्तु है। उसे तुमने नहीं पहचाना। कुमार की ओर देखकर श्रद्धा बोली. तुम्हारे लिए मेरा आदेश है कि तुम इनके साथ रहकर राष्ट्रनीति देखो। ये तर्कमयी हैं और तुम श्रद्धामय। तुम दोनों मिलकर सुशासन के द्वारा शान्ति और आनन्द की स्थापना कर सकोगे।

यह सुनकर कुमार को बड़ा धक्का-सा लगा, पर मा की आज्ञा का पालन करना ही उसने अपना धर्म समझा।

श्रद्धा उठी और आगे बढ़कर एक गुहा-द्वार पर उसने मनु को पाया। यह देखकर कि श्रद्धा अकेली है, मनु बड़े दु:खी हुए। बोले. वह इड़ा चलते-चलते तुम्हारे साथ छल कर गई।

श्रद्धा ने उत्तर दिया. तुम इतने संदेही क्यों हो? कुछ देकर आज तक कोई दरिद्र नहीं हुआ। अब तुम स्वतन्त्र हो और हम तुम दोनों मिलकर सुख से रह सकेंगे।

इसी बीच अँधेरा गहरा हो उठा। थोड़ी देर में ज्योत्स्ना की एक रेखा उसमें प्रस्फुटित हुई जिससे अंधकार केश-कलाप सा प्रतीत हुआ और शिव का

आलोक-शरीर स्पष्ट दिखाई दिया। उनका ताडव-नृत्य प्रारम्भ हुआ और
करते-करते जब वे थक चले तो उनके शरीर से पसीने की बूँदे झरने लगीं
ही सूर्य, चन्द्र और तारा बन गई। चरण-चाप से जो धूलिकण उड़े वे
और अनन्त ब्रह्माडों के रूप में चारों ओर बिखर गये। रजतगौर भगवान श
के ओठों पर मुसकान खिल उठी तो वह ऐसी प्रतीत हुई जैसे हीरे के पर्वत
विद्युत् झलक उठी हो।

मनु इस रम्य दृश्य को देखकर तन्मय हो गये। श्रद्धा से उन्होंने क
प्रिये सहारा देकर उन चरणों तक मुझे ले चलो। वहाँ पहुँच कर सब पाप
गल जाते हैं। सब दुःख-शोक दूर हो जाते हैं, पीड़ा देने वाली स्वय बोध
तक शेष नहीं रहती। यह मूर्ति कैसी एकरस, अखड और आनन्दमयी है।
मुझे वहीं ले चलो।

पृष्ठ २३३

वह चन्द्रहीन थी—चन्द्रहीन—जब चद्रमा न निकला हो। स्वच्छ
उजला। झलमलाना—टिमटिमाना, चमचमाना। प्रतिबिंबित—किसी की
पड़ना। वक्षस्थल—हृदय। पवन पटल—वायु की तह, हवा के झोके।
बात—गुप्त बात, रहस्य।

अर्थ—वह एक ऐसी रात थी जिसमें चद्रमा नहीं निकला था अ
अमावस्या थी। उसी में उजला प्रभात सो रहा था भाव यह कि उस रा
व्यतीत होने पर उज्ज्वल प्रभात होगा।

झलमलाते हुए श्वेत तारे नदी के अन्तर (जल) में प्रतिबिम्बित हो
थे। जल की धारा के आगे बढ़ जाने पर भी उनका बिम्ब वहाँ का वहीं
था। वायु के झोंके धीरे-धीरे आ रहे थे।

पक्तिबद्ध वृक्ष मौन खड़े थे मानो वे पवन से कोई गुप्त बात सुन रहे

धूमिल छायाएँ—धूमिल—धुँधली। लहरी—लहरें। निर्जन—ज
प्रदेश, सूना स्थान। गध-धूम—धूप आदि का सुगधित धुँआ।

अर्थ—आकाश में धुँधले बादल और वृक्षों के हिलने से पत्तों की धुँ
छाया जब घूम रही थी तब श्रद्धा सरिता के तट पर जल में पैर लटकाए
थी। लहरें आकर उसके चरणों को चूम लेती थीं।

कुमार ने कहा . मा, इधर तू बहुत दूर निकल आई है। सध्या तो बहुत देर हुई व्यतीत हो गई। इस सूने स्थान में भला इस समय ऐसी कौन-सी सुन्दर वस्तु है जिसे तू देख रही है। चल, अब तू घर चल।

देख मा, हमारे घर से सुगन्धित धुँआ उठ रहा है। उसकी इस भोली बात पर श्रद्धा ने उसका मुँह चूम लिया।

पृष्ठ २३४

मा क्यों तू—दुसह—असहनीय, जिसका सहना कठिन हो। दह—जलन। भरी साँस—भारी निश्वास। हताश—आशा का टूटना या मिटना।

अर्थ—अच्छा मा, तू इतनी उदास किसलिए है? मैं तो तेरे पास ही हूँ। फिर तू चिन्ता क्यों करती है?

पिछले कई दिनों से तू इसी प्रकार चुप रह कर क्या सोचती रहती है? मुझे भी तो कुछ बतला। तुझे यह कैसा असहनीय दु.ख मिला है जो तेरे हृदय में जलन उत्पन्न कर रहा है और बाहर से तुझे झुलसाये डालता (दुर्बल बना रहा) है?

तू भारी-भारी साँसें लेकर उन्हें शिथिलता से बाहर फेंकती रहती है ऐसा लगता है जैसे तेरी कोई आशा टूट रही है।

वह बोली—अपार—असीम। अवनत—झुके हुए। दिशि—देश, भूमि, स्थान। पल—समय। अनिल—पवन। अविरल—असख्य, अगणित। उन्मुक्त—खुला हुआ।

अर्थ—श्रद्धा ने उत्तर दिया : इस असीम नीले आकाश को देखो। इसमें जल भार से झुके बादल घूमते हैं।

इस आकाश के नीचे मनुष्य के जीवन में सुख-दुःख आते हैं। एक भूमि खड का निर्माण होता, फिर विनाश होता है। समय बीतता है। इसी के भीतर पवन बालक के समान खेल करता हुआ चलता है। इसी मे तारा्ओं की सुन्दर पक्ति झलमलाती ऐसी प्रतीत होती है मानों आकाश-रूपी रात के ये जुगनू हों।

यह ससार जिसका द्वार सभी के लिए खुला है कितना उदार है। बेटा, मेरा वास्तविक घर यही है।

पृष्ठ २३५

यह लोचन गोचर—लोचन—आँख। गोचर—वह विषय जिसका ज्ञान इंद्रियों (यहाँ आँखों) को हो। लोचन-गोचर—आँखों को दिखाई देने वाला। कल्पित—जो प्रतीत होते हुए भी न हो। हर्ष—प्रसन्नता। शोक—पीड़ा। भावोदधि—भाव का समुद्र। किरन—सूर्य की किरण, बोध या अनुभव। झरने—भावों के झरने। आलिंगित—चिपटे हुए। नग—पर्वत, मन। उलझन—आकर्षण। उसकी—ईश्वर की। नोंक-झोंक—छेड़छाड़, माया, लीला, प्रेरणा।

अर्थ—ये सब लोक जो आँखों के आगे दिखाई देते हैं और संसार के ये हर्ष (सुख) और शोक (दुःख) जो प्रतीत होते हुए भी वास्तव में हैं नहीं, भाव के समुद्र से बोध वृत्ति (या अनुभूति) द्वारा वैसे ही उत्पन्न होते हैं जैसे सूर्य की प्रखर किरणों के द्वारा सागर से मेघ उठते हैं और जिस प्रकार स्वाति नक्षत्र में गिरने वाले जलकण सीपी में मोती और सर्प के मुख में विष उत्पन्न करते (भरते) हैं, उसी प्रकार ये (सुख-दुःख) भी सारे संसार को प्रसन्नता-पीड़ा से भर देते हैं।

कभी ऊँची और कभी नीची भूमि में होकर निरंतर बहने वाले झरने पहाड़ों के गले से लगे हुए झरते हैं। आशय यह कि ठीक इसी प्रकार मन के पर्वत से सद् (उत्थान की ओर ले जाने वाली) और असद् (पतन की ओर ले जाने वाली) वृत्तियों के झरने भी बराबर बहते हैं। साथ ही जीवन में आकर्षण के मधुर बन्धन भी हैं।

इस प्रकार यह सब (सृष्टि, उसके हर्ष-शोक, उत्थान-पतन की ओर ले जाने वाले भाव और प्रेम) उस भगवान की माया (प्रेरणा) है।

वि०—जैसे स्वप्न में प्राणी रोता-हँसता है, वैसे ही जीवन के हर्ष-शोक की भी स्थिति है। जगने पर, न रोना, न हँसना। इसी प्रकार ज्ञान होने पर, न हर्ष, न शोक। अतः ज्ञान की दृष्टि से हर्ष-शोक जो सुख-दुःख का परिणाम हैं, काल्पनिक हैं। हैं ही नहीं।

जग जगता आँखें—आँखें किये लाल—उषा के रूप में लालिमा फैलना। मृति—मृत्यु। संसृति—जीवन। नति—अवनति। सुषमा—सौंदर्य। अवकाश—शून्य, अंतरिक्ष। मराल—हंस। विशाल—विस्तृत, व्यापक।

तुम वह हो जिसने मनु के मस्तिष्क को सदा अशांत रखा । तुममें वह शक्ति है जो प्राणी को सदैव कर्म की दिशा में प्रेरित करके चंचल बनाए रखती है ।

वि०—इड़ा बुद्धि का भी प्रतीक है । उस दृष्टि से इस छंद का यह आशय होगा कि बुद्धि के प्रति उदासीनता कोई नहीं प्रकट कर सकता । प्राणी उसके प्रति अंधे होकर आकर्षण का अनुभव करते हैं । जिसका मन भाव से ऊब जाता है, वह बुद्धि को पकड़े रहता है । बुद्धि अनेक आशाओं को जागृत करती है और इसी से अपनी ओर आकर्षित करती है । जो बुद्धि-व्यापार में फँस जाता है वह उस लीनता में एक प्रकार की मस्ती का अनुभव करता है । यह मन को कभी स्थिर नहीं रहने देती और सदैव कर्म की उत्तेजना उत्पन्न करके उसे चंचल बनाये रखती है ।

मैं क्या दे सकती—मोल—तुम्हारे उपकार के बदले में । बोल—बात-चीत । इससे—किसी-किसी से । उसको—बहुतों को । सुख करना—सुख से सहन करना । मधुर बोल—मधुरता जिसमें घुली हुई है, मधुरता मिश्रित । विस्मृति—भूली बात ।

अर्थ—मनु की उन्नति के लिए जो कुछ तुमने किया, उसका मूल्य मैं तुम्हें क्या दे सकती हूँ ? मेरे पास देने के नाम केवल हृदय है या फिर दो मीठी बातें हैं ।

मैं सुख के समय हँसती हूँ और दुःख के समय रो लेती हूँ । अभी जिस वस्तु को प्राप्त करती हूँ, दूसरे क्षण ही उसे खो भी देती हूँ । कोई ऐसा है जिसका प्रेम मैं स्वीकार करती हूँ, और दूसरी ओर ऐसे भी प्राणी हैं जिनको मैं अपना अनुराग देती हूँ । मेरे जीवन में यदि दुःख भी आता है तो मैं उसे सुख-पूर्वक सहन करती हूँ । भाव यह कि मैं जीवन को उसके स्वाभाविक रूप में व्यतीत करना ही उचित समझती हूँ ।

जिसमें मधुरता घुली हुई है ऐसे अनुराग से मैं परिपूर्ण हूँ । बहुत दिनों की भूली हुई कोई बात जैसे मनुष्य के मस्तिष्क से दूर-दूर रहती है वैसे ही मेरे मनु ने मुझे न जाने कितने दिनों से भुला रखा है और इसी से मैं इधर-उधर भटकती फिर रही हूँ ।

पृष्ठ २३८

यह प्रभापूर्ण—प्रभा, आभा, कांति, शोभा। अचेतन—विवेकहीन। माया—मोह। छाया—विश्राम या सुख देने वाली। शीतल—शाँति। निश्छल—छलहीन सरला।

अर्थ—तुम्हारे इस आभा-भरे मुख को देखकर एक बार हमारे पति मनु तक अपना विवेक खो बैठे थे।

नारी को मोह और ममता का बल भगवान ने दिया है। अपनी इस शक्ति से वह सभी को शीतल छाया के समान शान्ति और विश्राम देती है। जिस नारी के अस्तित्व से यह धरणी धन्य हुई है उस सरला को क्षमा करने की बात कौन सोच सकता है? भाव यह कि नारी तो दूसरों के अपराधों को क्षमा करती है और स्वय कोई अपराध करती नहीं। अतः नारी को कोई क्षमा कर सकेगा, यह सोचना भी अपराध है।

मेरे पति ने (जो पुरुष हे) तुम्हारे प्रति अपराध किया है। अत. इसके लिए तुम मुझे क्षमा करोगी, ऐसा मैं सोचती हूँ। और तुमसे क्षमा मिलेगी इतना मेरा अधिकार भी है।

अब मैं रह सकती—मौन—चुप। अधिकार—अधिकार प्राप्त व्यक्ति। सीमा—मर्यादा। पावस-निर्झर—बरसाती झरने। रोके—समझावे।

अर्थ—इड़ा बोली: आप की बात पर मुझे भी कुछ कहना पड़ेगा। आप ने जो यह कहा कि नारी को क्षमा करने का प्रश्न उठता ही नहीं, यह बात नहीं है। इस ससार में ऐसा कोई भी नहीं है जो अपराध न करता हो।

स्त्री हो चाहे पुरुष सुख और दु.ख जीवन में सभी उठाते हैं। सुख किसी सत्कर्म के कारण मिलता है और दुःख अपराध या भूल के कारण। दु.ख की चर्चा करने पर उस अपराध की चर्चा भी करनी पड़ती, अत इसे बचाकर सब अपने सुख की ही चर्चा करते हैं। यह सुख चाहे अपने को मिला हो और चाहे अपने द्वारा दिया गया हो, दोनों के मूल में सत्कर्म होने से प्रशसा मिलती है।

अधिकार पाकर तो मनुष्य बरसाती झरने के समान उमड़ पड़ता है—मर्यादा का उल्लघन कर बैठता है।

ऐसे मनुष्यो की रोकथाम कौन कर सकता है ? ऐसे सभी प्राणियों को, जो उन्हें समझाने का प्रयत्न करते हैं वे अपना शत्रु बतलाते हैं।

पृष्ठ २३९

अग्रसर हो रही—अग्रसर होना—बढना। सीमाएँ—विभाजक रेखाएँ, मनुष्य-मनुष्य के बीच अतर। कृत्रिम—अस्वाभाविक। वर्ग—जाति। विप्लव—विद्रोह। मत्त—मतवाले।

अर्थ—मेरे राज्य में फूट बढ़ रही है। प्रकृति से सब प्राणी एक हैं, परन्तु मनुष्य ने वर्ण या पद के आधार पर ऊँच-नीच, छोटे-बड़े की जो विभाजक रेखाएँ बनाई थीं, वे अस्वाभाविक थीं और इसी से नष्ट हो गईं।

यहाँ हुआ यह कि श्रम का विभाजन ही जाति-भेद का कारण बन गया। अतः प्रत्येक वर्ग आज अपने को दूसरे से पृथक् समझ कर अपनी-अपनी शक्ति पर अहकार करता है।

जो लोग शाति स्थापना के लिए नियम बनाते हैं वे ही बड़े-बड़े विद्रोह मचवाते हैं।

लालसा की मदिरा के घूँट पीकर, महत्वाकाक्षी होकर सब मतवाले! हो रहे हैं और यह सब देखकर मैं अधीर हो उठी हूँ।

वि०—ये सारी बातें आज भी उसी प्रकार सत्य हैं जैसी मनु के काल में। नियामक ही सहारक बन जाता है, इसमें व्यग्य मनु की ओर है। इससे पहले छद में जो यह कहा गया था कि उच्छृङ्खल व्यक्ति समझाने वाले को अपना शत्रु समझता है, वह भी मनु को दृष्टि में रख कर।

मैं जनपद कल्याणी—जनपद—राष्ट्र। निषिद्ध—बुरी, वर्जित। सुविभाजन—मनुष्यों का जातियों में बाँटा जाना। विषम—दोषपूर्ण। केन्द्र—स्थान। जलधर—बादल। उपलोपम—ओले के समान। समिद्ध—प्रज्वलित, धधकती हुई। समृद्ध—बड़ी।

अर्थ—एक दिन मैं राष्ट्र का कल्याण करने वाली के नाम से प्रसिद्ध थी, और आज वही मैं अवनति का कारण मानी जाकर बुरी समझी जाती हूँ।

मैंने कर्म या जातियों में मनुष्यों को बाँट कर जो व्यवस्थित रूप से काम होने का एक सुन्दर ढंग निकाला था वह दोषपूर्ण सिद्ध हुआ। यह वर्ग-भेद धीरे-धीरे मिट रहा है और अब नित्य ही नये-नये नियम बन रहे हैं।

जैसे ओलों से भरे बादल घिर कर, फिर इधर-उधर बिखर कर, अनेक स्थानों में बरस पड़ते हैं और कृषि आदि की हानि करते हैं, वैसे ही इस वर्ग-भेद ने अनेक स्थानों में अनिष्ट फैलाया है।

अशांति की यह ज्वाला इतनी धधक उठी है कि किसी बड़ी आहुति को लेकर रहेगी।

पृष्ठ २४०

तो क्या मैं—भ्रम—भूल। नितान्त—एकदम। संहार—ध्वंस, मिटना। वध्य—मार डालने योग्य, मरना। दान्त—दबाया हुआ। अविरल—निरन्तर। संघर्ष—प्रतियोगिता (Struggle)। प्रणति—झुकना। अनुशासन—शासन।

अर्थ—तब क्या अपनी बुद्धि से प्राणियों को जिस मार्ग पर जाकर उनके विकास की मैंने कल्पना की थी, वह मेरी भूल थी?

तब क्या प्राणी विवशतापूर्वक दबकर निर्बलों के समान मिटने और मरने के लिए विनाश के मुख में बिना कुछ कहे-सुने निरन्तर चले जायँ?

तब क्या हम जो प्रकृति के साथ संघर्ष कर रहे हैं और कर्म में लीन हैं वह शक्ति व्यर्थ हो जायगी? प्रकृति के अत्याचार को नष्ट करने के लिए हमने जो इतनी वैज्ञानिक उन्नति की है और यन्त्र आदि के रूप में जो मनुष्य की शक्ति का परिचय हमने दिया है, वह सब बेकार है? यज्ञ द्वारा देवताओं को प्रसन्न करके हम जो बल प्राप्त करते हैं, क्या वह हमारी कोई सहायता न करेगा?

तब क्या मनुष्य किसी अदृश्य शक्ति से भयभीत होकर उसकी उपासना ही करता रहेगा? क्या वह भ्रम में पड़कर सदैव सिर ही झुकाता रहेगा? क्या नियति के शासन की अशांत छाया ही प्राणियों पर सदा पड़ती रहेगी?

वि०—पिछली दो पक्तियों का भाव 'इड़ा' सर्ग में कई स्थानों पर ज्यों का त्यों पाया जाता है—

(१) भयभीत, सभी को भय देता
भय की उपासना में विलीन।

(२) मत कर पसार, निज पैरों चल।

(३) इस नियति नटी के अति भीषण
अभिनय की छाया नाच रही।

तिस पर मैंने—दिव्य—अलौकिक। राग—अनुराग। अकिंचन—दरिद्र, हीन। स्वर—सुहावनी बातें। विराग—उदासीनता। चेतनता—मन की स्फूर्ति।

अर्थ—इस सब के ऊपर हे देवि, मैंने तुम्हारा सुहाग छीना और जिस दिव्य प्रेम की अधिकारिणी तुम थीं, मनु का वह आकर्षण मेरी ओर हुआ।

मैं आज सब से हीन हूँ। यहाँ तक कि मैं स्वय अपने को अच्छी नहीं लगती। मैं जितनी भी सुहावनी बातें करती हूँ वे मेरे ही कानों में प्रवेश नहीं करतीं। अतः दूसरों को क्या भायेंगी?

आप मुझे क्षमादान दें, मुझसे उदासीन न हों। मेरा जो मन निरुत्साह हो गया है, आप की कृपा से वह फिर स्फूर्ति लाभ करेगा।

पृष्ठ २४१

है रुद्र रोष—रुद्र—शिव। विषम—भयकर। ध्वान्त—अधकार। सिर चढ़ना—बुद्धि की प्रधानता होना। हृदय पाना—भाव की प्रधानता होना। चेतन—आत्मा। आलोक—ज्ञान। श्रान्त—थकना, उकताना। भ्रान्त—भूल।

अर्थ—श्रद्धा ने कहा. देखो इड़ा, चारों ओर घोर अँधेरा छाया है। यह इस बात का प्रमाण है कि भगवान् शिव का क्रोध अब भी 'शात नहीं हुआ।

तुम सिर पर चढ़ी रहीं, परन्तु हृदय प्राप्त न कर सकीं। आशय यह कि तुम्हारे कर्म में बुद्धि की प्रधानता रही, माव की नहीं। इसी से तुमने बुद्धिबल

सब को नियन्त्रण में तो रखा, पर उनके हृदय में स्थान न पा सकीं। परिणाम ह हुआ कि जीवन की वास्तविकता से दूर रहकर तुमने जीवन का अभिनय- ा किया जिससे अशांति मिली।

एक आत्मा दूसरी आत्मा से अपनत्व का अनुभव करती हुई जिस सुख ो उपलब्ध करती है, वह न कर पायी और इस प्रकार वास्तविक ज्ञान का उदय म्हारी आँखों के सामने हुआ ही नहीं।

सब जीवन में उकताहट का अनुभव करने लगे और इसी से श्रम के ाधार पर तुम्हारा वर्ग-विभाजन भूल सिद्ध हुआ।

जीवन धारा सुन्दर—सत्—(To exist) किसी वस्तु का सदा रहना। त्–(Consciousness) चेतनामय। सुखद—आनंदमय। लहर गिनना— ीवन को खंड-खंड करके देखना। प्रतिबिंबित तारा—झूठा सुख। रुक-रुक खना—अविश्वास करना। मधुमय—मधुर। राह—मार्ग, पथ, डग।

अर्थ—जीवन की धारा के प्रवाह में एक प्रकार की सुन्दरता है। यह सत्, त्, प्रकाश और अगाध आनन्दमयी है।

सरिता का स्वरूप लहरें गिनने से नहीं समझा जा सकता, उसे एक अवि- च्छिन्न (अटूट) धारा के रूप में देखने से ही जाना जा सकता है। पर तुममें र्क की प्रधानता है, इसी से जीवन को उसकी समग्रता में न देख टुकड़े-टुकड़े रके देखती हो मानो तुम बँधी हुई सरिता को न देखकर केवल लहरें गिनने में ीन हो।

धारा में प्रतिबिम्बित होने वाले तारों को पकड़ कर ही तुम रुक जाती हो र्थात् जो वास्तविक सुख है उसके पास तो तुम पहुँच नहीं पाती, सुख की ायामात्र से संतुष्ट हो।

तुममें विश्वासपूर्वक किसी ओर बढ़ने का साहस नहीं है। तर्कमयी होने से ाठों पहर एक काम करने से पूर्व अनेक बार सोचती हो। भूलो मत, वह तो ड़ता की स्थिति है। ऐसी स्थिति में प्राणी का विकास नहीं हो सकता।

जैसे धूप और छाँह दोनों का होना मधुरता का परिचायक है—केवल ताप ा भी प्राणी झुलसा जाता है और कोरी छाया भी नहीं सुहाती—वैसे ही

जीवन में मधुरता बनी रहे, इसके लिए सुख दुःख दोनों की आवश्यकता है। जीवन को पार करने का यही सबसे सरल पथ है और वही तुमने छोड़ दिया।

पृष्ठ २४२

चेतनता का भौतिक—चेतनता—चेतना, चिदात्मा। भौतिक—सासारिक, ठोस वस्तुओं के आधार पर। विराग—अनुरागहीनता। चिति—परमात्मा। नृत्य निरत—चञ्चल। सतत—सदैव। तल्लीनता—लय। राग—गान। जाग—ज्ञान प्राप्त कर, ससार को आनन्दमय समझ।

अर्थ—प्रत्येक शरीर में आत्मा के बद्ध हो जाने से वह अलग-अलग प्रतीत होती है, पर वह सभी कहीं व्याप्त है, अतः चेतना एक अखड तत्व है। तुमने वर्ग बना कर मनुष्यो को मनुष्यो से दूर किया और इस प्रकार उस महा-चेतन के भौतिक (स्थूल) दृष्टि से विभाजन कर दिये। परिणाम उसका यह हुआ कि ससार में अप्रेम का प्रचार हुआ।

यह ससार जो अनादि है उस महाचेतन का ही एक रूप (शरीर) है। ससार मे जो परिवर्तन होते हैं वे उसका अपने को अनेक रूपों मे प्रकट करना है। प्रकृति का एक एक कण उससे बिछुड़ कर उसक ही मिलन के लिए चक्कर काट रहा है। ससार नित्य आनन्द और उल्लासमय है।

सृष्टि मे केवल एक रागिनी ही पूर्ण लय के साथ गूँज रही है। उसमे से यही झङ्कार उठ रही है कि 'जागो, जागो' अर्थात् इस ससार को आनन्दमय समझो।

मैं लोक अग्नि—अग्नि—दुःख। नितान्त—पूर्णरूप से। दाह—जलन, ताप। निधि—कुमार। राह—मन की खोज। सौम्य—सुशील व्यक्ति, शात स्वभाव का व्यक्ति। विनिमय—प्रतिदान, परिवर्तन, बदला। कान्त—सुन्दर।

अर्थ—मैं ससार के दुःख की आग में पूर्णरूप से तप कर अपूर्व शाति तथा प्रसन्न मन से मेरे पास जो कुछ है उसकी आहुति देती हूँ। भाव यह कि ससार का दुःख मुझसे देखा नहीं जाता। उसे दूर करने के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार मैं अवश्य कुछ न कुछ करती हूँ।

तुम तो हमें क्षमा भी न दे सकीं, उल्टा कुछ लेने की ही आशा लगाये

हुई हो। इसी से तुम्हारे हृदय का ताप शान्त नहीं हुआ। यदि ऐसी बात है तो मेरे पास जो निधि है उसे तुम ले लो। मैं अपने रास्ते (मनु को ढूँढ़ने) चली जाऊँ।

इसके उपरान्त श्रद्धा ने अपने पुत्र से कहा : हे सौम्य तुम इनके साथ यहीं रहो। मेरी इच्छा है कि यह सारस्वत प्रदेश सुख से सम्पन्न हो। इड़ा तुम्हें यहाँ का शासक बनायेगी। और तुम इन्हें अपने सुन्दर कर्म समर्पित करके इसका बदला चुकाओ।

पृष्ठ २५३

तुम दोनों देखो—राष्ट्रनीति—राज्य का प्रबन्ध, राज्य का काम। भीति—आतङ्क, भय। नग—पर्वत। रीति—शासन। सुयश गीति—यश गान।

अर्थ—तुम दोनों राज्य का प्रबन्ध करो। लेकिन शासक बनकर प्रजा को भयभीत मत करना।

मैं अपने मनु की खोज में जा रही हूँ। नदी, मरुस्थल, पर्वत, कुञ्जगली [illegible] स्थानों पर मैं उन्हें खोजूँगी। स्वभाव से वे भोले ही हैं। इतने छली नहीं कि अब मुझे फिर धोखा दें। मैं तो उन्हीं के प्रेम में लीन हूँ। कहीं न कहीं वे [illegible] मिल ही जायेंगे।

इसके उपरान्त मैं देखूँगी कि तुम किस ढंग से राज्य करते हो। बेटा मानव, [illegible] तुझे आशीर्वाद देती हूँ कि तेरे सुयश के गीत गाये जायें।

बोला बालक—यह स्नेह—श्रद्धा का प्रेम। लालन—पालन। वरदान—मङ्गलकारी। नीड़—गोद।

अर्थ—कुमार ने कहा : माँ, ममता को इस तरह न तोड़ो। मेरा, मुझसे इस तरह मुँह मोड़ कर न जाओ।

तुम्हारी आज्ञा का पालन करता हुआ और तुम्हारे स्नेह-आशीर्वाद के सहारे रहता हुआ, मैं चाहे जीवित रहूँ और चाहे मर जाऊँ, पर अपने प्रण को न छोड़ूँ अर्थात् कर्त्तव्य का ठीक से निर्वाह करूँ। मेरा जीवन मंगलकारी हो।

माँ, आज तुम मुझे छोड़े जा रही हो, पर मेरी इच्छा है कि एक दिन

वि०—मानव की यह इच्छा एक दिन पूरी हुई। 'आनन्द' सर्ग के इस प्रसंग पर ध्यान दीजिए —

भर रहा अक श्रद्धा का
मानव उसको अपना कर।

पृष्ठ २४४

हे सौम्य इड़ा—शुचि—पवित्र। श्रद्धा—विश्वास। मननशील—चिंतनशील। सताप—क्लेश। निचय—समूह। समरसता—समानता। पुकार—विशेष इच्छा, आंतरिक कामना।

अर्थ—हे सौम्य, मेरे दूर होने से जो तुझे व्यथा होगी, वह इड़ा के पवित्र स्नेह को प्राप्त करके दूर हो जायगी।

इसमें तर्क की प्रधानता है और तुझमें विश्वास की। साथ ही अपने पिता मनु के चिंतन के संस्कार को भी तूने ग्रहण किया है। अतः तू निर्भय होकर राजकाज में लग। इड़ा का जो राज्य अव्यवस्थित हो गया है, उससे इसे जो क्लेश मिला है, उस सारे खेद-समूह को तू नष्ट कर। मैं चाहती हूँ कि तेरे द्वारा मानव-जाति के भाग्य का उदय हो।

हे पुत्र, तेरी माँ की जो आंतरिक इच्छा है उसे तू ध्यान से सुन। तू प्रजा में समानता का प्रचार करना।

अति मधुर वचन—दिव्य—अलौकिक। श्रेय—कल्याण। उद्गम—जन्म स्थान। अविरल—निरतर। सताप—ताप और क्लेश। सकल—समस्त। प्रणत—झुक कर। मृदुल—कोमल। फूल—फूल-सा सुकुमार हाथ।

अर्थ—तुम्हारे अत्यंत मधुर और विश्वासमय ये वचन मैं कभी न भूलूँ। हे देवि, तुम्हारा यह प्रबल प्रेम अलौकिक कल्याण को निरंतर जन्म दे। जैसे बादल जब पानी की वर्षा करते हैं तब पृथ्वी का सारा ताप दूर हो जाता है, वैसे ही हम दोनों के प्रति तुम्हारे आकर्षण से जो आशीर्वाद का जल हमें मिला है उसे सार्थक करने के लिये हम जो कर्म करें, उनसे पृथ्वी के समस्त दुःख दूर हों।

ऐसा कहकर इड़ा झुकी और उसने श्रद्धा के चरणों की धूलि ली, और अपने साथ ले जाने के लिए कुमार का फूल के समान कोमल हाथ पकड़ा।

पृष्ठ २४५

वे तीनों ही—विस्मृत—भूलना । विच्छेद—वियोग । बाह्य—बाहरी । आहत—चोट खाकर । परिणत—परिवर्तित ।

अर्थ—एक क्षण के लिए इड़ा 'श्रद्धा और कुमार तीनों ही मौन रहे । बाह्य जगत् को वे इतना भूल गये कि उन्हें पता ही न रहा कि इस समय वे कहाँ हैं और कौन हैं !

आज मानव और इड़ा श्रद्धा से पृथक् हो रहे थे, पर यह विछोह बाहरी था अर्थात् शरीर से ही वे एक दूसरे से दूर हो रहे थे, लेकिन हृदय आज तीनों के मिलकर एक हो गये । यह मिलन कितना मधुर था ।

जल को आघात पहुँचाने से जलकण बिखर जाते हैं, पर थोड़ी देर में ही वे लहर के रूप में परिवर्तित होकर एक रूप हो जाते हैं । वही दशा इन तीनों के विछोह-मिलन की थी ।

इनमें से दो अर्थात् इड़ा और मानव चुपचाप नगर की ओर लौट चले । जब दूर हुए तब दोनों ने इस अनुभूति से प्रेरित होकर कि अब हम दोनों को सदा एक-दूसरे के साथ ही रहना है एक प्रकार के आनरिक अपनत्व का अनुभव किया और यह सोचा कि हम दो नहीं हैं एक ही हैं ।

निस्तब्ध गगन—निस्तब्ध—सन्नाटे से पूर्ण । असीम—सीमाहीन अवकाश । चित्र—दृश्य । कान्त—मनोहर । व्यथिता—थकी । श्रमसीकर—पसीने की बूँदें । दीन—विषाद । ध्वान्त—अंधकार ।

अर्थ—आकाश में सन्नाटा छाया हुआ था और दिशाएँ शांत थीं मानो वह स्थान असीम अवकाश का एक मनोहर दृश्य हो ! आकाश के होने पर संख्या में बहुत थोड़ी शान्त बूँदें तारों के रूप में थीं, मानो वे थकी हुई रात्रि के शरीर पर पसीने की बूँदें हों जो बहुत देर से झलकने पर भी झड़ कर नीचे नहीं गिर पाती थीं । पृथ्वी पर गहरी म्लान छाया छाई थी ।

सरिता के किनारे जहाँ वृक्ष खड़े थे उनके ऊपर के आकाश-प्रांत में केवल विषाद-भरा अंधकार बिखर रहा था।

पृष्ठ २४६

शत-शत तारा—मंडित—सुशोभित। स्तवक—गुच्छा, विशेष रूप से फूलों का। माया सरिता—आकाश गंगा। स्तर—तह, भाग। दुरन्त—जिसका अन्त न हो।

अर्थ—आकाश सौ सौ ताराओं से सुशोभित हो गया मानो वसन्त के वन में फूलों के गुच्छे चारों ओर खिल उठे हों।

ऊपर के लोक में मधुर हास्य इन तारिकाओं के रूप में छा गया और आकाश का हृदय मंद आभा से भर गया। वहीं ऊपर आकाश-गङ्गा बह रही थी जिसमें किरनों की चञ्चल लहरियाँ उठ रही थीं।

पर निम्न भाग में छाया बार-बार सहसा छाती और फिर विलीन हो जाती थी।

सरिता का वह—एकान्त—निर्जन, जहाँ कोई आता जाता न हो। हिंडोला—झूला। दल—समूह। विरल—बीच-बीच में, रुक-रुक कर, कभी-कभी। दीप्ति—आलोक। तरल—आभापूर्ण, टिमटिमाती। संसृति—संसार। गंधविधुर—गंधहीन।

अर्थ—नदी का निर्जन तट था। वहाँ हवा के झोंके एक दिशा से दूसरी दिशा में ऐसे आ-जा रहे थे जैसे स्वयं पवन झूले पर झूल रहा हो।

लहरें धीरे-धीरे किनारे से टकरा कर मिट रही थीं। बीच-बीच में पानी से छप्-छप् की ध्वनि उठती थी। जल में टिमटिमाता ताराओं का आलोक थर-थर काँप उठता था।

सारा संसार इस समय निद्रामग्न था। कर्महीन सुन्दर सृष्टि ऐसी प्रतीत होती थी मानो गन्धरहित कोई खिला हुआ फूल हो।

तब सरस्वती सा—लग्न—लगे हुए, जड़े हुए। अनगढ़े—बिना कटे-छटे, बिना तराशे। निस्वन—ध्वनि। लतावृत—लताओं से ढँकी। जीवित—प्राणी।

पृष्ठ २४७

अर्थ—तब सरस्वती नदी जैसे साँय-साँय करती बही जा रही थी, वैसे ही एक गहरी साँस लेकर श्रद्धा ने अपनी दृष्टि इधर-उधर डाली। उसने देखा—दो खुली हुई आँखें चमक रही हैं, मानो किसी शिला में बिना कटे-छटे दो रत्न जड़े हों।

उसी समय उसके कानों में एक मन्द ध्वनि पड़ी। उसने सोचा अन्धकार में यह सनसन ध्वनि कहाँ से आ रही है? क्या यह नदी का ही साँय-साँय शब्द तो नहीं है?

थोड़ी देर में उसका भ्रम दूर हो गया। उसने कहा—नहीं। पास में ही जो लताओं से ढँकी गुफा है उसमें बैठा कोई जीवित प्राणी साँस ले रहा है।

वि०—कहने की आवश्यकता नहीं कि वह 'कोई' मनु थे।

वह निर्जन तट—निर्जन—सूना, प्राणियों से रहित। उन्नत—ऊँचे। शैल शिखर—पर्वत की चोटियाँ। अग्नि—ताप, दुःख। तपना—भाग लेना।

अर्थ—नदी का वह निर्जन किनारा एक चित्र जैसा प्रतीत होता था अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त पवित्र।

वहाँ पर खड़ी पर्वत की चोटियाँ कुछ ऊँची थीं। लेकिन बहुत ऊँची नहीं थीं। उनसे ऊँचा तो श्रद्धा का सिर ही था।

आग में तप और गलकर जैसे सोना निखर आता है वैसे ही संसार के जीवों के दुःख में भाग लेकर और उनके दुःख से दुखी होकर उसके मुख पर करुणा, दया और सहानुभूति की झलक आ गई थी। इससे वह किसी देवी की स्वर्ण मूर्ति के समान प्रतीत होती थी।

मनु सोचने लगे : यह कोई असाधारण नारी है। इसमें मातृभाव का आधिक्य है। यह संसार का हित करने वाली है।

वि०—नारी रमणी, बहिन, पुत्री और माँ आदि अनेक रूपों में हमारे सामने आती है, पर सब से बड़ी बात यह है कि उसका सब से उज्ज्वल, सब से उदार रूप माँ का है।

पृष्ठ २४८

बोले रमणी तुम—रमणी—भोग की प्यासी स्त्री। चाह—लालसा। वञ्चिता—ठगी हुई। उसको—इड़ा को। उन सबको—प्रजा को। प्रवाह—गति।

अर्थ—मनु बोले : ओह ! तुम भोग को प्रेम करने वाली स्त्री नहीं हो। तुम उन स्त्रियों में से नहीं हो जिनका हृदय लालसाओं से परिपूर्ण रहता है।

हे श्रद्धा, तुमने अपना सब कुछ त्यागकर मुझे रो रो कर खोज निकाला और मैं जिन व्यक्तियों से प्राण बचाकर भाग खड़ा हुआ उन सब को और उस इड़ा को भी अपने प्रिय पुत्र को तुम दे आई। उस समय क्या तुम्हारे कठोर मन मे पीड़ा नहीं उठी ? तुम्हारे मन की गति विचित्र है।

ये श्वापद से—श्वापद—सिंह आदि फाड़ खाने वाले जानवर। हिंसक—हत्यारे। अधीर—उग्र। शावक—किसी भी पशु पक्षी का बच्चा। निर्मल—निष्कपट। हृत्तल—हृदय। हाथ से तीर छुट गया—जो होना था वह हो गया।

अर्थ—सारस्वत प्रांत के निवासी फाड़ खाने वाले जंगली जानवरों के समान उग्र हत्यारे हैं और मेरा वीर बालक किसी पशु-पक्षी के बच्चे जैसा कोमल है।

हृदय को शीतल करने वाली उसकी वाणी मैं सुनता था। वह कितनी प्यार भरी और निष्कपट थी।

लेकिन तुम्हारा हृदय कितना कठोर है कि तुम उसे छोड़ आई। यह इड़ा तुम्हारे साथ भी छल कर गई।

तुम ऐसी दशा में भी धैर्य धारण किये हुए हो। लेकिन अब तो जो होना था वह हो चुका।

पृष्ठ २४९

प्रिय अब तक हो—सशंक—डरे हुए। रंक—दरिद्र। विनिमय—(Exchange) एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु देना। परिवर्तन—अदल

बदल, विनिमय। स्वजन—आत्मीय जन, अपने लोग। निर्वासित—दूर। डंक—पीड़ा। स्फुट श्रक—स्पष्ट बात, खरी बात।

अर्थ—श्रद्धा ने उत्तर दिया : हे मित्र, तुम्हारा हृदय अब भी शक्ति है। कुछ देने से कोई दरिद्र नहीं हो जाता। कुमार को मैं इड़ा को दे आई। यह एक वस्तु को लेकर दूसरी वस्तु को देना हुआ अर्थात् तुम्हें मैंने उससे ले लिया और तम्हारे बदले में मानव को दे दिया। जैसे देने वाला ब्याज सहित उसे चुका लेता है वैसे ही तुमने सारस्वत प्रदेश की प्रजा को अपने पुत्र को ऋण के रूप में दिया है। वह अपनी उन्नति के साथ तुम्हें मिलेगा। उसके यश से तुम्हारे यश की वृद्धि होगी। तुम इड़ा के अपराधी थे और राज्य के बंधन में थे। अपने योग्य पुत्र को उस राज्य का कार्य-भार सौंप कर तुम मुक्त हो गये। जिन्हें तुम अपना आत्मीय समझते थे उनसे तुम दूर हो। अब तुम्हें कोई पीड़ा क्यों सतावे।

खरी बात तो यह है कि जो तुम्हारे पास है उसे प्रसन्नता से दो और जो दूसरे दें उसे हँसकर ग्रहण करो।

तुम देवि आह्—मातृमूर्त्ति—मातृभाव से भरी श्रद्धा। निर्विकार—कामना हीन, सात्विक। सर्वमंगले—सबका मंगल करने वाली। महती—महान्। निलय—घर, स्थान। लघु—तुच्छ, संकीर्ण, ओछा।

अर्थ—मनु ने कहा : देवि, स्वभाव से तुम कितनी उदार हो। दूसरों के प्रति ममता और क्षमा प्रकट करने वाला यह तुम्हारा माता का रूप कितना कामनाहीन है।

हे सबका कल्याण करने वाली, तुम महान् हो। तुम सब प्राणियों के दुःख को अपने ऊपर अंगीकार करती हो। तुम ऐसी बात करती हो जिससे दूसरों का कल्याण हो। तुम क्षमा के घर में निवास करती हो अर्थात् तुम क्षमामयी हो।

मैं तुम्हें देखकर आज चकित हो उठा हूँ; पर एक दिन मैंने तुम्हें साधारण नारी समझा था। इससे मेरे विचार का ही ओछापन सिद्ध होता है।

पृष्ठ २५०

मैं इस निर्जन तट—मना—चिन्तित। लघुता—क्षुद्रता, तुच्छता, ओछापन। अनुताप—पश्चाताप।

अर्थ—सरिता के इस सूने तट पर अधीरता से घूमता हुआ, धूल, पीड़ा और तीखी वायु को सहन करता हुआ, भावों के आन्दोलन की चक्की में पिसता हुआ, मैं बराबर आगे को बढ़ता चला आया हूँ। जैसे मनोविकार मन में उठ कर शून्य में विलीन हो जाते हैं, वैसे ही आज मैं अपने व्यक्तित्व को खोकर कुछ भी नहीं रहा हूँ।

तुम मेरी क्षुद्रता की ओर ध्यान मत दो। मेरे कलेजे को चीर कर देखो। उसमें पश्चात्ताप तीर की तरह समाया है।

प्रियतम यह नत—नत—कोमल। निस्तब्ध—शांत। विगत—बीती हुई। सबल—सहारा, सब कुछ। निश्छल—निष्कपट भाव से। दुर्बल—अस्थिर मन। प्रात—प्रारम्भ।

अर्थ—हे प्रियतम, यह कोमल और शांत रात बीती बातों की याद जगा रही है।

जिन दिनों प्रलय का कोलाहल शांत हो चुका था, मैं अपने जीवन का सब कुछ समर्पित कर निष्कपट मन से तुम्हारी हुई थी। क्या मैं इतने अस्थिर स्वभाव वाली हूँ जो उसे भूल जाऊँ?

तब तुम मेरे साथ ऐसे स्थान में चलकर रहो जहाँ शांति का प्रारम्भ नवीन रूप से हो। सत्य बात यह है कि चाहे तुम कैसा भी व्यवहार करो, पर मैं सदा तुम्हारी ही हूँ।

पृष्ठ २५१

इस देव द्वन्द्व—द्वन्द्व—दो, यहाँ माता-पिता। प्रतीक—चिन्ह, प्रतिनिधि। यह विष—वासना। विषम—भयंकर। कर्मोन्नति—उच्च कर्म। सम—ठीक। मुक्त—स्वतंत्र। शुभ—कल्याणकारी। अलीक—असत्य, झूठा। लीक—खेत आदि में पड़ा कच्चा रास्ता।

अर्थ—देव जाति के माता-पिता से उत्पन्न और उस जाति का चिन्ह स्वरूप मानव अब तक देवताओं में जो भूलें हुई हैं, उन्हें सुधार लेगा।

जीवधारियों में वासना का जो भयंकर विष फैल गया है उसे उसकी प्रजा के लोग कुमार के अनुशासन में रहकर अपने उच्च कर्मों द्वारा ठीक कर लेंगे

और स्वतन्त्रतापूर्वक रहेंगे। जीवन भोग के लिए है उनका यह भ्रम एक दिन दूर हो जायगा और कल्याणकारी संयम के रहस्य को वे एक दिन समझेंगे।

जो झूठ है वह स्वयं मिट जाता है अर्थात् वासनामय जीवन वास्तविक जीवन नहीं है, इसे लेकर प्राणी नहीं चल सकता। पर यदि पथ में कोई लीक पड़ जाती है तब उससे हट कर चलने से ही वह मिटती है; इसी प्रकार मनुष्य का जो संस्कार बन जाता है उसके विपरीत आचरण करने से ही वह मिटता है। भाव यह है कि इस वासनामय जीवन की समाप्ति के उपरान्त संयम का जीवन धीरे-धीरे ही आवेगा।

वि०—मनु देव जाति के हैं और श्रद्धा गंधर्व जाति की। गंधर्व भी देवता होते हैं, अतः कुमार देव जाति के माता-पिता से उत्पन्न है।

वह शून्य असत—अगम—अभावमय। अवकाश पटल—शून्य प्रदेश, अंतरिक्ष, खोखला। उन्मुक्त—खुला। सघन—घना। भूमिका—पृष्ठभूमि, रंगमंच। स्निग्ध—चिकना। मलिन—धुँधला। निर्निमेष—टकटकी लगाए। शून्य सार—शून्य में समायी वस्तु अर्थात् अंधकार।

अर्थ—ऊपर के उस शून्य को चाहे अभावमात्र कहो चाहे अंधकार, पर वह उस खोखले (अंतरिक्ष) के एक छोर से दूसरे छोर तक फैला हुआ था।

वह अंधकार बाहर (पास में) कुछ खुला (कम गहरा) और भीतर घना होता हुआ अंजन का एक नीला पर्वत-सा प्रतीत होता था।

वह धुँधला चिकना वातावरण एक दृष्टि की पृष्ठभूमि (Back gro und) बन गया। मनु उसे टकटकी लगाकर देखने लगे। वह शून्य (अंधकार) ऐसा सीमाहीन था कि उसे भेद कर उसके पार की वस्तु दिखाई न देती थी।

पृष्ठ २५२

सत्ता का स्पंदन—सत्ता—आकारधारिणी वस्तु। स्पंदन डोल उठा—हिल उठी, जग उठी, प्रकट हुई। आवरण-पटल—अंधकार के पर्दे को। मंथन—समुद्र मंथन।

अर्थ—उसी समय अंधकार के पर्दे को चीरती हुई एक सत्ता सी प्रकट हुई।

जैसे सरिता समुद्र का आलिंगन करती है वैसे ही अंधकार के उस सागर से चाँदनी की रेखाएँ आकर मिलीं। जैसे समुद्र मन्थन के समय उसके तल से अमृत आदि का आविर्भाव हुआ था वैसे ही उन रेखाओं के स्पष्ट होने से चाँदी के समान गौर वर्ण वाले उज्ज्वल परमात्मा, प्रकाश शरीरी, मंगलकारी चिन्मय शिव के दर्शन हुए, मानो अंधकार के समुद्र के मधुर मन्थन का ही यह परिणाम हो।

उस अंधकार में केवल प्रकाश ही क्रीड़ा कर रहा था और जैसे सरिता में चञ्चल लहरियाँ उठती हैं वैसे ही उस ज्योत्स्ना-धारा में मधुर किरणें उठ रही थीं।

बन गया तमस—तमस—अंधकार। अलक-जाल—केशसमूह। सर्वाङ्ग—समस्त शरीर। ज्योतिर्मय—आलोक से निर्मित। विशाल—विराट। अंतर्निनाद-ध्वनि—अनहद राग, अनाहत। चित्—शुद्ध चेतना। नटराज—शिव। निरत—तन्मय, लीन। अंतरिक्ष—शून्य। प्रहसित—आलोक से युक्त। मुखरित—ध्वनित। दिशा काल—दिशाएँ और समय।

अर्थ—अंधकार केश कलाप-सा प्रतीत हुआ और विराट् मूर्ति का समस्त शरीर केवल आलोक से निर्मित दिखाई दिया।

शून्य को चीर कर प्रकट होने वाली चेतना-शक्ति के अंतर से अनहद नाद फूटा।

स्वयं भगवान् शिव आज नृत्य में तन्मय थे। इसी से समस्त शून्य आकाश आलोक और ध्वनि से भर गया।

(अनाहत के) स्वर एक लय में बँधकर उस नृत्य के साथ ताल देने लगे। उस समय न इस बात का पता चल सकता था कि कौन दिशा किस ओर है और न यह जाना जा सकता था कि समय क्या है तथा किस गति से चल रहा है।

वि०—(१) योगी दोनों हाथों के अँगूठे से दोनों कानों को बन्द करके अपने अन्तर में एक प्रकार का व्यवस्थित संगीत सुनते हैं, इसे अनहद नाद कहते हैं। जो ध्यानावस्थित हो जाते हैं, वे बिना कानों को मूँदे भी अनाहत सुन सकते हैं।

(२) भगवान् शिव योगिराज हैं, अत: उनका अंतर अनहद से परिपूर्ण है।

(३) 'लय' और 'ताल' की व्याख्या पीछे कर आये हैं।

पृष्ठ २५३

लीला का स्पन्दित—लीला—नृत्य-भंगियाँ। स्पन्दित—कंपित, उत्पन्न। प्रसाद—प्रसन्नता। तांडव—शिव का नृत्य। श्रमसीकर—पसीने की बूँदें। हिमकर—चन्द्रमा। दिनकर-सूर्य। भूधर—पर्वत। संहार—विनाश, वस्तुओं का अस्त-व्यस्त होना; विश्लेषण। युगल—दोनों। पाद—चरण। अनाहत नाद—योगियों को ब्रह्मरंध्र में सुनाई पड़ने वाला संगीत।

अर्थ—आलोकमय चेतन शिव अपनी प्रसन्नता में अपनी नृत्य भंगियों से हर्ष उत्पन्न करने लगे।

उनका तांडव नृत्य सुन्दर और आनन्ददायक था। नृत्य करते-करते जब वे थक गए तब उनके शरीर से पसीने की बूँदें झरने लगीं। उनसे ही सूर्य, चन्द्रमा और तारों का निर्माण हो गया। उनके चरणों की चाप से जो धूलिकण उड़े वे उड़ते हुए पर्वत बन गए।

उनके दोनों चरण निरन्तर गति लेते हुए नाश और सृष्टि दोनों कर रहे थे। उनके चरण की चाप से सृष्टि टूट कर एक ओर धूलिकण बन रही थी, पर वे ही धूलिकण दूसरी ओर पर्वत बन जाते थे। इसके साथ ही अनहद नाद भी सुनाई पड़ रहा था।

बिखरे असंख्य—असंख्य—अगणित। ब्रह्मांड—विश्व। युग—समय का एक दीर्घ परिमाण। तोल—निश्चित अवधि। विद्युत्—बिजली। कटाक्ष—दृष्टि, तिरछी चितवन। दोल—झूला।

अर्थ—अगणित गोलाकार ब्रह्मांड बिखरे दिखाई दिए। युग एक निश्चित समय की अवधि लेकर समाप्त होने लगे।

शिव की बिजली के समान तीव्र दृष्टि जिधर पड़ जाती थी उधर ही सृष्टि काँप उठती थी।

अनन्त चेतन अणु बिखर कर एक विशेष आकार धारण करते थे। फिर क्षण भर में ही वे विलीन हो जाते थे।

सारा ससार जैसे एक विशाल झूले मे झूल रहा था और उसमे परिवर्तन पर परिवर्तन हो रहे थे।

वि—०(१) युग चार हैं—सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलि। सतयुग १७,२८०००, त्रेता १२,९६००० द्वापर ८,६४००० और कलि ४,३२००० वर्ष का होता हे।

(२) प्रश्न हो सकता है कि मनु और श्रद्धा ने थोड़े से काल मे युगों को बीतते कैसे देखा। देवताओं मे यह शक्ति होती है कि बहुत काल की घटनाओं को कुछ पल मे ही दिखा दें जैसे रामायण के उत्तरकाड में काकभुशुडि वाले प्रसग मे—

मोहि विलोकि राम मुसिकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं।
उदर माझ सुनु अडज-राया। देखेउँ बहु ब्रह्माड निकाया।
कोटिन चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन, रवि, रजनीसा।
अगणित लोकपाल, जम, काला। अगणित भूधर, भूमि विसाला।
भ्रमत मोहि ब्रह्माड अनका। बीते मनहु कल्प सत एका।
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह विसेषा।

पृष्ठ २५४

उस शक्ति शरीर—शक्ति-शरीरी—शक्ति से निर्मित जिसका शरीर है। कान्ति—शोभा। कमनीय—मनोहर। उल्लिखित—सुशोभित। हिमधवल—बर्फ के समान श्वेत या उज्ज्वल। हास—मुस्कान।

अर्थ—शक्ति का कलेवर धारण करने वाले शिव के शरीर से फूटने वाला आलोक सब पाप-शाप का नाश कर नृत्य में लीन था। शोभा के उस समुद्र में प्रकृति गल कर घुलमिल गई और फिर उसने एक दूसरा ही सुन्दर रूप धारण किया।

प्रलय का भीषण नृत्य करने वाले रुद्र देखने में अत्यन्त मनोहर थे। उनकी हिम के समान उज्ज्वल मुस्कान ऐसी शोभा पा रही थी मानो हीरे के पर्वत पर बिजली छिटक रही हो।

देखा मनु ने—नर्त्तित—नाचते हुए, नृत्य करते हुए। नटेश—महादेव। हतचेत—तन्मय होना। विशेष—एकदम, पूर्ण रूप से। सम्बल—सहारा। पावन—पवित्र। लेश—चिह्न। समरस—एकरस।

अर्थ—मनु ने जब भगवान् शिव को नृत्य करते देखा तो वे एकदम तन्मय होकर बोल उठे, श्रद्धे, यह कितना अद्भुत दृश्य है। अब तुम मुझे अपना सहारा देकर उन चरणों तक ले चलो जहाँ पहुँचने पर समस्त लौकिक पाप-पुण्य जल कर एक निर्मल पवित्रता में बदल जाते हैं और जहाँ सांसारिक ज्ञान का चिह्नमात्र तक असत्य वस्तु के समान मिट जाता है। वह स्थिति कैसी एकरस पूर्ण और आनन्दमयी है।

रहस्य

कथा—श्रद्धा ने मनु को लेकर हिमालय पर चढ़ने का निश्चय किया। जैसे-जैसे वे ऊपर चढ़ते गये वैसे ही वैसे पर्वत के अगणित रम्य भीषण दृश्यों के दर्शन हुए। कहीं श्वेत हिम बिछा था, कहीं पगडण्डियाँ थीं, कहीं भयकर खड्ड और खाइयाँ थीं, कहीं सूर्य की रश्मियाँ हिमखडों में प्रतिबिंबित होकर अनन्त चन्द्रमाओं का भ्रम उत्पन्न कर रही थीं, कहीं हाथी के समान काले बादल मस्ती से झूम रहे थे, कहीं झरने झर रहे थे, कहीं हरियाली छायी थी। इन सबके ऊपर आकाश का चुम्बन करती पहाड़ की चोटियाँ बड़ी अद्भुत और मनोरम प्रतीत होती थीं।

मनु चढ़ते-चढ़ते थक चले। श्रद्धा से उन्होंने कहा : न तो इस शीत पवन से सामना करने की सामर्थ्य मुझमें है और न मैं अभी इतना कठोर हृदय हूँ कि जिन्हें पीछे छोड़ आया हूँ उन्हें एकदम भुला सकूँ। अत. पीछे लौट चलो। श्रद्धा बोली : पीछे लौटने का समय तो अब नहीं रहा। रही थकावट की बात। थोड़े साहस से काम लो। हम थोड़ी देर में ही कहीं विश्राम योग्य स्थान पा लेंगे। यों बातों ही बातों में दोनों एक समतल भूमि पर जा पहुँचे। इसी समय सध्या घिर आई। शून्य की ओर आँख उठाते ही मनु ने तीन और तीन रग के तीन लोक देखे। उन्होंने श्रद्धा से पूछा : श्रद्धा, ये नवीन ग्रह कौन-से हैं? श्रद्धा ने कहा। इन्हें मैं जानती हूँ। तुम स्थिर चित्त होकर सुनो।

उषा की लालिमा लिए यह जो गोलक दिखाई देता है वह इच्छा लोक है। इसमें भावों की प्रतिमाएँ निवास करती हैं। यहाँ शब्द, स्पर्श, रस, रूप की अप्सराएँ नृत्य करती हैं। माया यहाँ शासिका है। वही समस्त भावचक्र को चलाती है। अधिक स्पष्ट शब्दों में माया के फन्दे में फँसने का तात्पर्य यह है कि प्राणी मधुर सगीत सुनना चाहता है, कोमल शरीर का स्पर्श करने की

कामना रखता है, जिह्वा से भिन्न-भिन्न रसों का स्वाद लेने को लालायित रहता है, रूप के दर्शन का पिपासु है और नासिका से सुगंध ग्रहण कर मन को तृप्त करना चाहता है। भाव सत् भी हो सकते हैं और असत् भी। अत: मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार पुण्य की ओर भी झुक सकता है और पाप की ओर भी। सुख भी पा सकता है और दुःख भी। उन्नति भी कर सकता है और अवनति भी?

मनु बोले : यह देश वास्तव में बहुत सुन्दर है। परन्तु यह श्याम देश कैसा है?

कामायनी ने कहा : इसे कर्म लोक कहते हैं। यह लोक धुँधला है अर्थात् कर्त्तव्य क्या है और अकर्त्तव्य क्या यह निश्चयपूर्वक कभी नहीं कहा जा सकता। नियति यहाँ की शासिका है और वही कर्म-चक्र को घुमाती रहती है। कर्म करने वालों को विश्राम नहीं मिलता। वे सदैव संघर्ष में लीन रहते हैं। उनके नाम का जय-घोष होता रहता है। पर जो पराजित और दलित हैं वे नित्य दुःखी रहते हैं। महत्वाकांक्षा की झोंक में यहाँ के प्राणी बड़े से बड़े पाप करने पर उतारू हो जाते हैं। वैसे यहाँ का बड़े से बड़ा वैभव और ऐश्वर्य अस्थिर और नाशवान है। इन कर्म करने वालों को मुक्ति नहीं मिलती, बार-बार जन्म-मरण के चक्र में पड़ना पड़ता है, क्योंकि कर्मों से संस्कार बनते हैं और संस्कारों को लेकर जीव नवीन शरीर धारण करने के लिए विवश है।

मनु ने कहा : यह जगत् तो बड़ा भीषण है। इसकी चर्चा यहीं रहने दो और यह जो तीसरा उज्ज्वल लोक है उसके सम्बन्ध में कुछ बताओ।

श्रद्धा ने उत्तर दिया : प्रियतम, यह ज्ञान-लोक है। यहाँ पर बुद्धि-चक्र चलता रहता है। यहाँ के प्राणी सुख-दुःख दोनों से उदासीन रहते हैं। वे कुछ न चाह कर भी मुक्ति चाहते हैं। संसार का कोई लोभ इन्हें डिगा नहीं सकता। यहाँ जो जितना धार्मिक है, वह उतना बड़ा समझा जाता है। जीवन का उपभोग ये लोग नहीं करते। शास्त्र की एक-एक आज्ञा का पालन ये बड़ी सतर्कता से करते हैं। ऊपर से देखने में ये बड़े शान्त दिखाई देते हैं, पर भीतर-भीतर बराबर भयभीत रहते हैं कि कोई पाप ये न कर उठें। इनकी सबसे

बड़ी भूल यह है कि इच्छाओं का ये तिरस्कार करते हैं और प्राणी का ल
उसके जीवन को नहीं मानते, वरन् किसी अलक्ष्य सत्ता में विश्वास रखते है
इस प्रकार-दुःख और अशाति का मूल्य कारण यह है कि प्राणियो के जी
में इच्छा, कर्म और ज्ञान में कोई सामजस्य नहीं। मनुष्य ऐसी इच्छाएँ क
है जो पूरी नहीं हो सकतीं, ऐसे कर्म करता है जो विवेक सम्मत नहीं और श
में फँसता है तो जीवन का ही तिरस्कार कर बैठता है।

उसी समय श्रद्धा मुस्कुरा दी। मुसिकान ज्वाला बनकर उन लोको में पै
गई जिससे वे मिलकर एक हो गए। थोड़ी देर में एक दिव्य सगीत की ध्व
उन्हें सुनाई पड़ी जिसमें डूब कर दोनों ने गहरी तन्मयता का अनुभव किया

पृष्ठ २५७

ऊर्ध्व देश उस—ऊर्ध्व—उच्च। देश—स्थान। नील—काला। तमस
अंधकार। स्तब्ध—शात। हिमानी—बर्फ। चतुर्दिक—चारों ओर। गिरि
पर्वत।

अर्थ—नीले अधकार से घिरे उस उच्च स्थल पर अचल बर्फ शात भ
से पड़ा है। नीचे से ऊपर को जाने वाली पगडडी थोड़ी दूर जाकर मिट
है मानो वह थक कर बढ़ नहीं पाती। उस तक कोई नहीं पहुँच पाता,
बात को वह अभिमानी पर्वत चारों ओर दृष्टि डाल कर देख रहा है।

वि०—इस छद से यह आध्यात्मिक अर्थ स्पष्टतया भासित होता है
ब्रह्मतत्व हिम के समान उज्ज्वल है, वह अज्ञान के अधकार से आवृत है,
उच्च कोटि का है, वह प्रशात है। विभिन्न धार्मिक पथो से प्राणियों ने
उपलब्ध करना चाहा, पर उस तक ठीक से कोई नहीं पहुँच पाया।

दोनों पथिक—दोनों—श्रद्धा और मनु। साहस—दृढ़ता। उत्साह
उमग।

अर्थ—दोनों पथिक बहुत देर के चल पड़े थे और बराबर ऊँचे च
चले जा रहे थे। साहस की प्रतिमा के समान श्रद्धा आगे-आगे थी और उत्स
की मूर्ति से मनु उसके पीछे बढे जा रहे थे।

वि०—श्रद्धा को साहस और मनु (मन) को उत्साह कहना यहाँ कित

है आगे परवत की बाटा । विषम पहार अगम सुठि घाटा ।
बिच-बिच नदी, खोह औ नारा । ठावहि ठाँव बैठ बटपारा ।

रविकर हिमखंडों—रवि—सूर्य । कर—किरणों । हिमखण्ड—बर्फ
टुकड़े । हिमकर—चन्द्रमा । द्रुततर—तीव्रता से ।

अर्थ—सूर्य की किरणें बर्फ के टुकड़ों में प्रतिबिम्बित होकर न जाने कित
चद्रमाओं की सृष्टि कर रही थीं । पवन बड़ी तीव्रता से गोलाकार घूमकर ज
से चलना प्रारम करता था, फिर वहीं लौट कर आ जाता था ।

वि०—इस दृश्य के सौंदर्य की अनुभूति केवल वे ही प्राणी कर सक
हैं जिन्होंने पहाड़ों पर जाकर वर्फ पर झलमलाती सूर्य की किरणों के प्रतिबि
के दर्शन किये हैं । चद्रमा का 'हिमकर' नाम यहाँ कैसा उचित लगता है ।

पृष्ठ २५८

नीचे जलधर—जलधर—बादल । सुरधनु—इद्रधनुष । कुजर—हाथ
कलभ—हाथी का बच्चा । सदृश—समान । चपला—बिजली ।

अर्थ—नीचे इद्रधनुष की रम्य माला धारण किए बादल इधर से उ
दौड़ लगा रहे थे । वे हाथियों के बच्चों के समान इठला-इठला कर घूम
थे और जैसे हाथियों के बच्चों की गर्दन में पड़े सोने के गहने चमकते हैं,
ही उनके भीतर बिजली चमक उठती थी ।

वि०—'जलधर' शब्द का प्रयोग यहाँ सार्थक हुआ है क्योंकि जल से
हुए बादल ही काले होते हैं और बादलों की समता ही हाथी से ठीक
सकती थी ।

प्रवहमान थे—प्रवाहमान—प्रवहित, बह रहे थे । निर्झर—झरने । श
—सफेद रंग का । गजराज—इंद्र का ऐरावत नामक हाथी । गण्ड—मस्त
मधु—हाथी के मस्तक से चूने वाला रस ।

अर्थ—इससे भी नीचे की ओर सैकड़ों शीतल झरने पर्वत से फूट
इस प्रकार बह रहे थे जिस प्रकार इद्र के महान् श्वेत ऐरावत नामक हाथी
मस्तक से मधु धाराएँ बिखर कर बह रही हों ।

वि०—हाथी के मस्तक के छिद्र से एक प्रकार का रस झरता है ।

मधु कहते हैं। इस पर प्रायः भौरे आ बैठते हैं। हिमालय की समता इद्र के ऐरावत हाथी से देनी इसलिए उपयुक्त हुई है कि ऐरावत का वर्ण श्वेत माना जाता है।

हरियाली जिनकी—समतल—समभूमि,हमवार स्थान। चित्रपट—वह कागज, कपड़ा या लकड़ी का टुकड़ा जिसपर चित्र अंकित होता है। प्रतिकृति—आकृति, मूर्ति। वाह्यरेखा—रूप रेखाएँ (Outlines)।

अर्थ—वे समतल स्थान, जिन पर हरियाली उग रही थी, किसी चित्र के पट जैसे प्रतीत होते थे। उन पर होकर जाने वाली नदियाँ जो निरन्तर वेग से बह रही थीं ऐसी लगती थीं जैसे पट पर अकित होने वाली आकृतियों की स्थिर रूप-रेखाएँ हों।

वि०—(१) हिमालय के इस वर्णन में उपमाओं, रूपकों, उदाहरणों और उत्प्रेक्षाओ के आधार पर जो भी दृश्य उपस्थित किये गये हैं वे अत्यन्त समीचीन हैं।

(२) वर्णन यहाँ ऊपर से नीचे की ओर है—पहले हिमाच्छादित चोटियों पर पड़ने वाली सूर्य किरणों का, फिर वादलों का, फिर निर्झरों का और फिर हरियाली का।

(३) इस छद में भगने वाली नदियों को स्थिर रेखाओं की समता दी। वह इसलिए कि दूर से देखने वाले व्यक्ति को प्रवहमान सरिताएँ स्थिर प्रतीत होती हैं।

लघुतम वे सब—लघुतम—छोटे से छोटे आकार में। वसुधा—पृथ्वी। हाशून्य—आकाश। रजनी का सवेरा होना—किसी काम का समाप्ति पर ाना।

अर्थ—श्रद्धा और मनु ने देखा कि पृथ्वी की सब वस्तुएँ इस समय ऊपर देखने पर अत्यन्त छोटे आकार में दिखाई दे रही है और उनके ऊपर सूना हाकाश गोलाकार छाया हुआ है। जिस स्थान पर इस समय ये दोनों प्राणी वह ऐसा स्थान था जहाँ से और ऊपर चढ़ने की सभावना नहीं थी।

वि०—ज्ञान में बहुत ऊँचे उठने पर पृथ्वी के समस्त आकर्षण तुच्छ प्रतीत

होते हैं। साथ ही जब तक साधक को परमात्मा के आलोक के दर्शन नहीं होते तब तक उसे शून्य के अतिरिक्त और कुछ भासित नहीं होता।

पृष्ठ २५६

कहाँ ले चली—निस्सबल—निस्सहाय। भग्नाश—जिसकी आशाएँ टूट गई हों। पथिक—यात्रा, मार्ग चलने वाला।

अर्थ—मनु ने पूछा . श्रद्धे, इस बार तुम मुझे कहाँ लिये जा रही हो? मैं तो चलते-चलते बहुत थक गया हूँ। मेरा साहस काम नहीं दे रहा। मै अपने को उस पथिक के समान पा रहा हूँ जो निस्सहाय हो और जिसकी सब आशाएँ टूट चुकी हों।

वि०—ज्ञान के पथ पर आगे बढ़ने में मन अनेक बार सकुचाता और दुर्बलता का अनुभव करता है।

लौट चलो इस—वातचक्र—बवडर, आँधी। रुद्ध करने वाले—रूँधने वाली, रोकने वाली। अड़ना—सामना करना।

अर्थ—पीछे लौट चलो। इस बवडर को सहने की और सामर्थ्य मुझमें नहीं है। इस ठडी हवा का, जो मेरी साँसों को रूँधे देती है, सामना करने की शक्ति मैं अपने में नहीं पा रहा।

वि०—योग के आधार पर जो ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें ऐसी स्थिति को पार करना पड़ता है। योग-साधन में सफल होने पर सिद्धियाँ मोक्ष आदि सबकी प्राप्ति सभव है, पर भ्रष्ट होने पर शारीरिक रोग और मृत्यु की सभावना रहती है।

मेरे हाँ वे—नीचे—इस पर्वत के नीचे पृथ्वी पर। सुदूर—बहुत दूर पर।

अर्थ—जिन से रूठकर मैं चला आया हूँ, वे सब मेरे अपने थे। निस्सदेह वे मेरे थे। वे नीचे बहुत दूर मुझसे बिछुड़ गए हैं, पर सच बात यह है कि मैं उन्हे भुला नहीं पाया।

वि०—ज्ञान के पथ पर अग्रसर होने पर भी मन बार-बार सासारिक आकर्षण की ओर लालसा भरी दृष्टि डालता है। दुर्बल है न?

वह विश्वास भरी—स्मिति—मद मुस्कान। मुख—अधर से तात्पर्य है। कर-पल्लव—नवीन पत्ते जैसी हथेलियाँ। ललकना—चाव से भरना, उद्यत होना।

अर्थ—इतना सुनते ही श्रद्धा के मुख पर एक विश्वासभरी छलहीन मुस्कान खिल उठी और उसके पल्लव जैसे हाथ सेवा करने को उद्यत हुए।

वि०—श्रद्धा ने दो गुणों का सदैव परिचय दिया है—विश्वास और निस्वार्थ भावना का। इसी से मुस्कान को मधुर या आकर्षक न कहकर विश्वासभरी और निश्छल कहना कितना प्रिय लगता है।

पृष्ठ २६०

दे अवलब—अवलम्ब—सहारा। ठिठोली—मजाक, दिल्लगी, हँसी।

अर्थ—अपने व्याकुल साथी को सहारा देकर कामायनी ने मीठे स्वर में कहा. देखो, हम बहुत दूर चले आए हैं। मजाक करने का समय अब नहीं अर्थात् सासरिक सुख की ओर लौटने की बात अब तुम्हारे मुँह से शोभा नहीं देती।

वि०—ससार का परित्याग करने से पहले ही साधक को सोच लेना चाहिए कि उसे पछताना तो नहीं पड़ेगा। वैराग्य के पथ पर चरण रख कर ससार की ओर लौटना अपनी हँसी कराना है।

दिशा विकंपित—विकपित—काँपना, स्थिर न रहना या होना। पल—क्षण, समय। अनत—सीमाहीन, आकाश से तात्पर्य है। भूधर—पर्वत।

अर्थ—कौन दिशा किधर है यह स्थिर नहीं किया जा सकता। पल भी यहाँ किसी सीमा (परिमाण) में बँधे हुए नहीं हैं। भाव यह कि ऐसे स्थान में देश-काल का बोध होना कठिन है। ऊपर सीमाहीन सा कुछ—आकाश—दिखाई देता है। तुम इस बात का उत्तर दो कि क्या अपने चरणों के नीचे पहाड़ जैसी वस्तु का तुम वास्तव में अनुभव कर रहे हो ?

वि०—मनु के नीचे पर्वत नहीं, ऐसी बात नहीं है। पर जब व्यक्ति चलते-चलते बहुत थक जाता है और फिर भी उसे चलना पड़ता है तब उसके पैर उखड़ जाते हैं और उसे ऐसा लगता है जैसे उसके नीचे भूमि नहीं। भयभीत

होकर यदि देर तक दौड़ना पड़े तब तो यह बात और भी अच्छी तरह समझी जा सकती है।

निराधार हैं किन्तु—निराधार—उचित विश्रामगृह का न होना।

अर्थ—यहाँ कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ हम सुविधापूर्वक विश्राम कर सकें। किन्तु आज हमें यहीं ठहरना है। संसार की ओर लौट कर भाग्य के हाथ का खिलौना मैं नहीं बनना चाहती। तुम यह बात ध्यान से सुनलो कि हम जिस मार्ग पर चल पड़े हैं उस पर बढ़ने के अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय शेष नहीं रहा।

झाँई लगती जो—झाँई—आँखों के आगे अँधेरा छा जाना। दूसरी झोंक—उत्साह।

अर्थ—तुम्हारी आँखों के आगे जो अँधेरा छा गया है उसे दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि तुम थोड़े और ऊपर उठो। समभूमि आने पर दृष्टि धुँधली न रहेगी।

ऊपर से जो पवन के प्रतिकूल धक्के लग रहे हैं, इन्हें हम अपने अंतर के उत्साह से सहन करेंगे।

वि०—पहाड़ की ऊँचाई पर लगातार ऊँचे उठने मे बड़ा श्रम पड़ता है। जिन्हे अभ्यास नहीं है वे हाँफ जाते हैं, उनके पैर उखड़ जाते हैं, और उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है जिससे उनका माथा चकराने लगता है और उन्हें ऐसा लगता है कि अब गिरे, अब गिरे।

श्रांत पक्ष कर—श्रांत—थके हुए। पक्ष—पंख। विहग—पक्षी। युगल—दो, नर मादा के जोड़े से तात्पर्य है। जम रहना—गति का बन्द होना, रुकना।

अर्थ—आओ, आज हम दोनों उन दो पक्षियों के समान यहाँ रुक जायँ जिनके पंख उड़ते-उड़ते थक जाते हैं और जो आँख बन्द करके शून्य में पवन के आधार पर थोड़ी देर विश्राम कर लेते हैं। वह शून्य स्थान और यह पवन ही आज हमारा सहारा है। इन्हीं के भरोसे हमें यहाँ रहना है अर्थात् न तो मन बहलाने को यहाँ कोई साथी है और न खाने-पीने को कुछ। केवल पवन साँस लेने के लिए है।

वि०—योगाभ्यास में एक ऐसी स्थिति भी आती है जब देशकाल का भान छूट जाता है और आत्मा अपने चारों ओर केवल शून्य की अनुभूति करती है। ऊपर के चार छन्दों में इसी साधनात्मक क्रिया का आभास बीजरूप से निहित है।

पृष्ठ २६१

घबराओ मत—समतल—समभूमि। श्रान्ति—शांति।

अर्थ—थोड़ी देर में श्रद्धा ने फिर कहा : घबराओ मत। सामने ही समतल-भूमि है। तुम देखो तो सही, हम कैसे स्थान में आ पहुँचे हैं। मनु ने आँख खोल कर अपने चारों ओर देखा। उन्हें वास्तव में थोड़ी शांति मिली।

ऊष्मा का अभिनव—ऊष्मा—गर्मी, स्फूर्ति, उत्साह, नवीन शक्ति, नवीन बल। अभिनव—नवीन। दिवा—दिन। संधिकाल—मिलन वेला। व्यस्त—आकुल, गतिशील, चंचल।

अर्थ—वहाँ पहुँच कर उन्होंने नवीन स्फूर्ति का अनुभव किया। जिस समय ये दोनों वहाँ पहुँचे उस समय दिन और रात्रि की मिलन-वेला अर्थात् संध्या थी; इसी से ग्रह, तारागण और नक्षत्र अभी छिपे हुए थे और इनमें से कोई भी गतिशील नहीं था।

ऋतुओं के स्तर—स्तर—शृङ्खला। तिरोहित—दूर होना, नष्ट होना, टूटना। भू-मंडल—गोलाकार पृथ्वी। निराधार—शून्य में स्थित। महादेश—विशाल पर्वत के ऊपर। उदित—जाग्रत। सचेतनता—चेतना।

अर्थ—ऋतुओं की शृङ्खला वहाँ टूट गई अर्थात् जैसे भारतभूमि में दो-दो मास के लिए एक-एक ऋतु क्रम से आती है ऐसा कोई नियम वहाँ लागू नहीं होता था। गोलाकार पृथ्वी की एक रेख तक वहाँ से दिखाई न देती थी।

शून्य में स्थित उस विराट देश में पहुँच कर मनु के हृदय में एक नवीन चेतना जाग्रत हुई।

वि०—जीव का आकर्षण जब लोक से टूट जाता है अर्थात् जब उसका बाह्य ज्ञान मिट जाता है तब वह ऐसी शून्य स्थिति का अनुभव करता है जहाँ न ऋतुएँ

हैं, न सूर्य, न चन्द्र, न तारे। वहाँ वह इद्रियो के माध्यम से उत्पन्न होने वाले ब्रोध से भिन्न एक प्रकार की नवीन चेतना का अनुभव करता है। ऐसी ही स्थिति की इन दोनों छदों में कल्पना की गई है। जायसी ने इन स्थितियों की ओर पद्मावत में सकेत किया है—

जहाँ न राति न दिवस है, जहाँ न पौन न पानि।
तेहि ब्रन सुअटा चलि बसा, कौन मिलावै आनि।

त्रिदिक् विश्व—त्रिदिक्—तीन दिशाओं में। आलोक विंदु—प्रकाशमय गोलक। त्रिभुवन—तीन लोक। प्रतिनिधि—स्थानापन्न। अनमिल—एक दूसरे से भिन्न। सजग—क्रियाशील।

अर्थ—मनु ने तीन दिशाओं में तीन लोक देखे। उन्हें तीनों प्रकाश भरे गोलक एक दूसरे से पृथक् दिखाई दिए। ये तीनों मानो तीन भुवनों का प्रतिनिधित्व करते थे। वे एक दूसरे से दूर होने पर भी अपने-अपने स्थान पर क्रियाशील थे।

वि०—तीन भुवनों मे स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल आत हैं, पर यहाँ त्रिभुवन का वह अर्थ नहीं है। जो है वह आगे स्पष्ट किया जायगा।

मनु ने पूछा—ग्रह—नक्षत्र लोक। इद्रजाल—मायाजाल।

अर्थ—मनु ने पूछा : श्रद्धे, ये जो तीन नवीन ग्रह दिखाई दे रहे हैं, उनके क्या नाम हैं, यह तुम मुझे बतलाओ। मे इस समय किस लोक में आ खड़ा हुआ हूँ? इस मायाजाल से मुझे मुक्त करो।

पृष्ठ २६२

इस त्रिकोण के—त्रिकोण—तीन कोने पर स्थित तीन लोक। विपुल—बहुत, अत्यधिक, महान्।

अर्थ—श्रद्धा ने उत्तर दिया . तुम इन तीनो लोकों के मध्य में स्थित हो। ये तीनों महान् शक्ति और सामर्थ्यशील हैं। तुम एकाग्र होकर उनमें से एक-एक को देखो। इन्हें इच्छालोक, कर्मलोक और ज्ञानलोक कहते हैं।

वि०—मनु के समान ही प्रत्येक व्यक्ति का मन इच्छा, कर्म और ज्ञान के बीच गतिशील रहता है। उचित मात्रा में इन तीनों का सामञ्जस्य ही वास्तविक

आनन्द का स्रोत है, यही इस सर्ग में समझाया गया है। आगे इच्छा, कर्म और ज्ञान के स्वरूप तथा उनकी शक्ति पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

वह देखो रागारुण—राग—अनुराग (प्रेम) जिसका रंग काव्य में लाल माना जाता है। कंदुक—गेंद। छाया—कांति, सूक्ष्मता। कमनीय—रम्य मनोहर। कलेवर—शरीर, देह, बाहरी आवरण। प्रतिमा—मूर्ति।

अर्थ—पहले इस लोक को देखो जो अनुराग के समान अरुण वर्ण का और उषा की गेंद के समान सुन्दर है। इसका बाह्य आवरण केवल कांति से निर्मित और मनोहर है अर्थात यह सूक्ष्म देहधारी है। हमारी पृथ्वी के समान इसमें ठोसपन नहीं। इस लोक में भाव वैसे ही बसते हैं जैसे किसी मंदिर में मूर्ति विराजमान रहती है। तात्पर्य यह कि यह इच्छा लोक है।

शब्द, स्पर्श, रस—शब्द—ध्वनि। स्पर्श—छूने की क्रिया। रस—चखने या जिह्वा से स्वाद लेने की क्रिया। रूप—नेत्र से वस्तुओं के आकार और उनकी सुन्दरता को ग्रहण करना। गंध—नासिका से सुवास लेना। पारदर्शिनी—स्वच्छ (Transparent)। रूपवती—सुन्दरी।

अर्थ—इसमें शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध की पारदर्शिनी (सूक्ष्म) सुन्दर आकृतियाँ चारों ओर सुन्दर रंगीन तितलियों के समान मस्ती से विचरण करती हैं।

वि०—पाँच इंद्रियों द्वारा हमें वस्तुओं का ज्ञान होता है। इन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। ये हैं त्वचा, रसना, चक्षु, कर्ण और घ्राण। इनकी पाँच क्रियाएँ हैं त्वचा का काम स्पर्श करना या छूना है, रसना या जिह्वा का काम रस लेना या चखना है, चक्षु या आँख का संबंध रूप या देखने से है। कर्ण या कान का प्रयोग शब्द या ध्वनि के लिए होता है अर्थात् कानों से हम सुनते हैं। घ्राणेन्द्रिय अर्थात् नाक का काम गंध लेना है। प्रत्येक प्राणी का भाव-जगत् इसी 'शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध' से बँधा है। हम मधुर संगीत या वाणी सुनना चाहते हैं, कोमल रमणियों या वस्तुओं को स्पर्श करना चाहते हैं, मधुर रसों का स्वाद लेना हमें प्रिय है, रूप देखते ही आँखें उधर लग जाती हैं और नासिका से पुष्पों की भीनी गन्ध लेना रुचिकर प्रतीत होता है।

इस कुसुमाकर—कुसुमाकर—वसत, यौवन। कानन—वन, मन। अरुण—पीत या लाल रग का। पराग—पुष्परज, आकर्षण। इठलाती—मस्ती से विचरण करती। माया—रम्यता।

अर्थ—जैसे वसत ऋतु के आगमन पर जब वन खिल जाता है, तब तितलियाँ पुष्पों के पीत पराग की उड़ती धूलि के नीचे मस्ती से घूमती सोती और जागती हैं वैसे ही यौवन-वसत के आगमन पर मन के वन के खिलते ही आकर्षण के अरुण पराग के सहारे शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गध की चेतनाएँ रम्य भावों के रूप में जगतीं (जाग्रत होतीं) इठलातीं (बढ़तीं) और सोतीं (कुछ काल के उपरात विलीन हो जाती) हैं।

वि०—इसके उपरात आगे के पाँच छदों में कवि ने शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गध का क्रमशः वर्णन किया है।

पृष्ठ २६३

वह संगीतात्मक—सगीतात्मक—लय और ताल में बँधी ध्वनि। ध्वनि—स्वर। अँगड़ाई लेना—स्वरों का लहराते उठना। मादकता—मस्ती। लहर—तरगें। अम्बर—आकाश, शून्य स्थान। तर करना—भिगोना।

अर्थ—इन पुतलियों के सगीत के कोमल स्वर जब लहराते उठते हैं तब आसपास के वातावरण में मस्ती की तरगें उत्पन्न करते हैं और जिस शून्य स्थान में वे गूँजते हैं उसे रस-सिक्त कर (भिगो) देते हैं।

भावपक्ष में इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब मीठी-मीठी कोमल भावनाएँ मन में जगती हैं तब हृदय एक प्रकार की मस्ती का अनुभव करता है और अंतःकरण रसमग्न हो जाता है।

वि०—(१) सगीत का अभ्यास करने वाले कलाकारों और सगीत सुनने वाले पारखियों दोनों के सामान्य अनुभव की बात है कि गले से स्वर संधान करते ही या वाद्ययंत्र पर उँगलियाँ चलाते ही ध्वनि उत्पन्न होती है। यह ध्वनि शून्य में लहरें लेती उठती है। उन लहरियों की गूँज से मन ही आनन्दमग्न नहीं होता, सारा वातावरण रससिक्त हो जाता है।

(२) अँगड़ाई लेना, सीधा उठना नहीं, कलात्मक ढग से, विशेष शारी-

रिक भगिमाओं के साथ उठना है। ध्वनि अँगड़ाई लेती है का तात्पर्य जहाँ स्वरों का लहराते हुए फैलना है वहाँ यह भी है कि सगीत में जैसे कठिन राग-रागिनियों के स्वर सरल न होकर कठिन होते हैं वैसे ही खाने-पीने के सरल भावों को छोड़ जितने सूक्ष्म भाव मन में जन्म लेते हैं उनका रस उतना ही अधिक आनन्ददायी है।

आलिंगन-सी मधुर—आलिंगन—शरीर का शरीर से छूना। प्रेरणा—इच्छा। सिहरन—कपन। अलम्बुषा—छुईमुई का पौधा (Touch-me-not) ीड़ा—लज्जा, सकोच।

अर्थ—आलिंगन करने की मधुर इच्छा से प्रेरित होकर ये पुतलियाँ एक दूसरे को छूती हैं, और उस स्पर्श-सुख से एक मधुर कपन का अनुभव करती हैं। पर तुरत ही लज्जा आ दबाती है। जैसे नवीन छुई-मुई खुलती है, पर उँगली का स्पर्श होते ही सिकुड़ जाती है, ठीक ऐसे ही इनके हृदय में पहले तो स्पर्श की भावना जगती है, स्पर्श होता भी है, पर अधिक नहीं बढ़ पाता, लज्जा के कारण थम जाता है।

वि०—(१) जैसे कान अपनी तृप्ति के लिए मधुर स्वर के प्यासे रहते हैं वैसे ही हाथ भी स्पर्श करने को आकुल रहते हैं, पर लज्जा उन्हें सयम में बाँधे रखती है।

(२) एक हृदय दूसरे हृदय को स्पर्श करना चाहता है अर्थात् एक प्राणी के भाव दूसरे प्राणी के भावों से टकराना चाहते हैं और इससे सुख की भी अनुभूति होती है, पर सकोच के कारण मन की बहुत सी बातें प्राय. मन में ही रह जाती हैं।

(३) जिसे हम प्यार करते हैं उसे स्पर्श करते ही एक मधुर कपन का अनुभव स्वभावतः होता है।

यह जीवन की—यह—इच्छा लोक। सिञ्चित होना—सींचा जाना। लालसा—कामना। प्रवाहिका—नदी, सरिता। स्पदित होना—नदी का चचल होना, लहरों का उठना।

अर्थ—इच्छा-लोक जीवन का मध्य लोक है—इससे पहले का कर्मलोक

इससे कम सूक्ष्म है और इसके आगे का ज्ञान लोक उससे कहीं अधिक सूक्ष्म। यह लोक रस की धारा से सींचा जाता है।

इस नदी मे मधुर कामनाओं की लहरें उठती रहती हैं।

वि०—सामान्य रूप से जीवन की मध्यभूमि यौवन है जिससे मधुर लालसाओं के उद्रेक से रस की धारा बहती रहती हैं।

जिसके तट पर—मनोहारिणी—आकर्षक। छायामय—सूक्ष्म शरीर धारी। सुषमा—लावण्य। विह्वल—अधिकता।

अर्थ—रस की इस सरिता के किनारे विद्युत्कणों के समान आकर्षक आकृति वाले, सूक्ष्म शरीरधारी, अत्यधिक लावण्यमय सुन्दर जीव मस्ती से घूमते हैं।

वि०—लालसा की लहरों से युक्त रस की नदी के किनारे कवि ने रूप को विचरते देखा है। इसका तात्पर्य यह है कि रूप और रस का निकट का सम्बन्ध है।

सुमन संकुलित—सकुलित—युक्त, पूर्ण, भरी हुई। रध्र—छिद्र। रसभीनी—रस से भीगी, सरस। वाष्प—भाप। अदृश्य—जो दिखाई न दे।

अर्थ—इच्छालोक की फूलों से भरी भूमि के छिद्रों से सरस मधुर गध उठती है।

उस गधयुक्त मकरद के, झीनी-झीनी बूदों से युक्त वाष्प के ऐसे फुहारे छूट रहे हैं जो दिखाई नहीं पड़ते।

वि०—मन की भूमि सुमन जैसी कोमल भावनाओं से भरी रहती है जिससे रसमयी भाव-तरगों के फुहारे छूटते हैं। इस अर्थ में पुष्प का सुमन नाम कैसा सार्थक है।

पृष्ठ २६४

घूम रही है—चतुर्दिक—चारों ओर। चलचित्र—रजतपट (Cinema) के चित्रों के समान। ससृति—इच्छालोक के निवासी। छाया—छायामय शरीर, सूक्ष्म या स्थूलता-विरहित देह।

अर्थ—इस लोक के निवासियों के छायामय (सूक्ष्म) शरीर रजतपट के घूमते चित्रों के समान चारों ओर घूमते रहते हैं ।

इच्छा के इस प्रकाश-लोक को चारों ओर से घेर कर माया बैठी-बैठी मुस्कुराती रहती है । अर्थात् इच्छा-लोक की स्वामिनी माया है ।

वि०—प्रथम दो पंक्तियों का हृदयपक्ष में अर्थ यह हुआ कि मन में चंचल भाव प्रतिक्षण उठते रहते हैं ।

भाव चक्र यह—चक्र—पहिया । रथ नाभि—धुरी जिस पर पहिया घूमता है । अराएँ—लकड़ी की वे तीलियाँ जो पहिए के मध्यभाग से आरम्भ होकर उसके गोलाकार अंश से जुड़ी रहती हैं । अविरल—निरन्तर । चक्रवाल—गोलाकार अंश । चूमतीं—छूतीं, सम्बधित रहतीं ।

अर्थ—यह माया भावचक्र को चलाती रहती है । यह चक्र इच्छा का आधार पाकर वैसे ही गतिशील रहता है जैसे पहिये की धुरी पर पहिया घूमता है । पहिये के मध्य भाग से जैसे लकड़ी की तीलियाँ उसके गोल अंश से जुड़ी रहती हैं वैसे ही नौ रसों की धाराएँ भाव-चक्र के वृत को आश्चर्य-चकित होकर स्पर्श करती हैं ।

वि०—(१) जो भावों का शिकार हुआ, समझ लो वह मायाजाल में फँसा हुआ है । माया का अर्थ ही है इच्छा के इशारों पर नाचना । इच्छा से कर्म होते हैं, कर्म से संस्कार बनते हैं, संस्कारों के कारण प्राणी अनेक योनियों में भ्रमण करता है अर्थात् आवागमन, जन्म-मरण या माया के चक्र से उसे छुटकारा नहीं मिलता । इसी से प्राणी का पुरुषार्थ है कामनाहीन होना ।

(२) भाव इच्छा का आधार लेकर घूमते हैं इसका तात्पर्य यह हुआ कि इच्छा होने से ही भाव जगते हैं । इच्छा न होगी तो भाव न जगेंगे । प्रेम करने की इच्छा होगी तो शृङ्गारी भाव जगेंगे ।

(३) प्रत्येक प्राणी के हृदय में ६ भाव स्थायी रूप से रहते हैं—रति, हास, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, शोक और शम । इन्हें स्थायी भाव कहते हैं । इन्हीं के आधार पर साहित्य-शास्त्रियों ने ६ रस माने हैं । भाव-चक्र का सांग-रूपक पहिए के साथ अत्यंत स्पष्ट और उपयुक्त हुआ है । भाव-चक्र में भाव शब्द मन में उठने वाली भाव समष्टि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

ससे कम सूक्ष्म है और इसके आगे का ज्ञान लोक इससे कहीं अधिक सूक्ष्म ।
ह लोक रस की धारा से सींचा जाता है ।

इस नदी में मधुर कामनाओं की लहरें उठती रहती हैं ।

वि०—सामान्य रूप से जीवन की मध्यभूमि यौवन है जिससे मधुर लाल-ओं के उद्रेक से रस की धारा बहती रहती हैं ।

जिसके तट पर—मनोहारिणी—आकर्षक । छायामय—सूक्ष्म शरीर री । सुषमा—लावण्य । विह्वल—अधिकता ।

अर्थ—रस की इस सरिता के किनारे विद्युत्कणों के समान आकर्षक कृति वाले, सूक्ष्म शरीरधारी, अत्यधिक लावण्यमय सुन्दर जीव मस्ती से रते हैं ।

वि०—लालसा की लहरों से युक्त रस की नदी के किनारे कवि ने रूप विचरते देखा है । इसका तात्पर्य यह है कि रूप और रस का निकट का बन्ध है ।

सुमन सकुलित—सकुलित—युक्त, पूर्ण, भरी हुई । रध्र—छिद्र । रसभीनी -रस से भीगी, सरस । वाष्प—भाप । अदृश्य—जो दिखाई न दे ।

अर्थ—इच्छालोक की फूलों से भरी भूमि के छिद्रों से सरस मधुर गध उठती है ।

उस गधयुक्त मकरद के, झीनी-झीनी बूंदों से युक्त वाष्प के ऐसे फुहारे ट रहे हैं जो दिखाई नहीं पड़ते ।

वि०—मन की भूमि सुमन जैसी कोमल भावनाओं से भरी रहती है जिससे मयी भाव-तरगों के फुहारे छूटते हैं । इस अर्थ में पुष्प का सुमन नाम षा सार्थक है ।

पृष्ठ २६४

घूम रही है—चतुर्दिक—चारों ओर । चलचित्र—रजतपट (Cinema) चित्रों के समान । ससृति—इच्छालोक के निवासी । छाया—छायामय शरीर, क्ष्म या स्थूलता-विरहित देह ।

अर्थ—इस लोक के निवासियों के छायामय (सूक्ष्म) शरीर रजतपट के घूमते चित्रों के समान चारों ओर घूमते रहते हैं।

इच्छा के इस प्रकाश-लोक को चारों ओर से घेर कर माया चैटी-चैटी मुस्कुराती रहती है। अर्थात् इच्छा-लोक की स्वामिनी माया है।

वि०—प्रथम दो पंक्तियों का हृदयपक्ष में अर्थ यह हुआ कि मन में चंचल भाव प्रतिक्षण उठते रहते हैं।

भाव चक्र यह—चक्र—पहिया। रथ नाभि—धुरी जिस पर पहिया घूमता है। अराएँ—लकड़ी की वे तीलियाँ जो पहिए के मध्यभाग से आरम्भ होकर उसके गोलाकार अंश से जुड़ी रहती हैं। अविरल—निरन्तर। चक्रवाल—गोलाकार अंश। चूमतीं—छूतीं, सम्बंधित रहतीं।

अर्थ—यह माया भावचक्र को चलाती रहती है। यह चक्र इच्छा का आधार पाकर वैसे ही गतिशील रहता है जैसे पहिये की धुरी पर पहिया घूमता है। पहिये के मध्य भाग से जैसे लकड़ी की तीलियाँ उसके गोल अंश से जुड़ी रहती हैं वैसे ही नौ रसों की धाराएँ भाव-चक्र के वृत को आश्चर्य-चकित होकर स्पर्श करती हैं।

वि०—(१) जो भावों का शिकार हुआ, समझ लो वह मायाजाल में फँसा हुआ है। माया का अर्थ ही है इच्छा के इशारों पर नाचना। इच्छा से कर्म होते हैं, कर्म से संस्कार बनते हैं, संस्कारों के कारण प्राणी अनेक योनियों में भ्रमण करता है अर्थात् आवागमन, जन्म-मरण या माया के चक्र से उसे छुटकारा नहीं मिलता। इसी से प्राणी का पुरुषार्थ है कामनाहीन होना।

(२) भाव इच्छा का आधार लेकर घूमते हैं इसका तात्पर्य यह हुआ कि इच्छा होने से ही भाव जगते हैं। इच्छा न होगी तो भाव न जगेंगे। प्रेम करने की इच्छा होगी तो शृङ्गारी भाव जगेंगे।

(३) प्रत्येक प्राणी के हृदय में ६ भाव स्थायी रूप से रहते हैं—रति, हास, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, शोक और शम। इन्हें स्थायी भाव कहते हैं। इन्हीं के आधार पर साहित्य-शास्त्रियों ने ६ रस माने हैं। भाव-चक्र का सांग-रूपक पहिए के साथ अत्यंत स्पष्ट और उपयुक्त हुआ है। भाव-चक्र में भाव शब्द मन में उठने वाली भाव समष्टि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(४) चकित शब्द का प्रयोग करके कवि रस की उस आनददायिनी शक्ति की ओर सकेत करना चाहता है जिसे व्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाकर रस के सबध में सभी ने यह कहा है—वह अलौकिक है, वह ब्रह्मानद-सहोदर है, वह अनिर्वचनीय है।

यहाँ **मनोमय**—मनोमय विश्व—शरीर सगठित करने वाले पाँच कोषों में से तीसरा, इसमें मन अहकार और कर्मेन्द्रियाँ आती हैं। रागारुण चेतन—तीव्र या गहरा आसक्ति भाव। उपासना—आराधना। परिपाटी—प्रणाली। पाश—जाल।

अर्थ—इस लोक के प्राणियों का मन गहरी आसक्ति-भाव की आराधना में लीन रहता है।

यहाँ की शासिका माया है और उसकी शासन-प्रणाली यह है कि वह मोह का जाल बिछाकर जीवों को फाँसे रखती है।

वि०—आसक्ति ही ससार में फाँसे रहने का कारण है, अतः भाव पक्ष में इस छद का अर्थ यह होगा कि मन के भाव सासारिक आसक्ति की ओर मुड़ते हैं और मायाजाल में फँसे रहते हैं।

वेदान्त के अनुसार शरीर का सगठन पाँच कोषों (स्तरों) से युक्त माना जाता है—अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनदमय कोष। अन्न से बनी त्वचा से लेकर वीर्य्य तक का समुदाय अन्नमय कोष कहलाता है। प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान इन पाँच प्राणों को प्राणमय कोष कहते हैं। मन, अहकार और कर्मेन्द्रियाँ मनोमय कोष के अतर्गत आती हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ और बुद्धि का समूह विज्ञानमय कोष कहलाता है। शरीर का सब से भीतरी आनदमय कोष है। इसमें आनदमयी आत्मा निवास करती है।

इच्छाएँ मनोमय कोष में होती हैं।

ये **अशरीरी**—अशरीरी—सूक्ष्म। रूप—आकार। वर्ण—रग। गध-सुवास। अप्सरियों—सुदर रमणियों, मनोवृत्तियों। झूले—झूला के समान सगीत की तानों का लहराना।

अर्थ—शरीर से ये स्थूल नहीं हैं, सूक्ष्म हैं। जैसे फूल मे वर्ण और गध रहते हैं—जिनका कोई शरीर नहीं— वैसे ही ये भी सुन्दर वर्ण वाली रमणियाँ हैं, और इनके शरीर से गध फूटती है। इच्छा लोक की इन अप्सराओ की सगीत की तानें मनोहर झूलों के समान लहराती ही रहती हैं।

वि०—(१) इच्छा लोक के निवासियों का शरीर मनुष्यों के समान हड्डी माँस से बना ठोस नहीं है, वह सूक्ष्म है। अशरीरी से तात्पर्य स्थूलता के विपरीत का है। इसी भाव को व्यजित करने के लिए कवि इसके पूर्व 'छायामय कलेवर' 'छायामय सुषमा' 'चल चित्रों सी ससृति' आदि लाया है।

(२) भावों का कोई स्थूल शरीर नहीं होता। हाँ, वे रगीन होते हैं और जैसे गंध नहीं छिपती, चारों ओर फूट पड़ती है, वैसे ही इन्हें भी छिपाना कठिन है। सगीत की तान के समान मन मे ये भी मचलते ही रहते हैं।

(३) इस सर्ग में अतर्जगत से सम्बन्ध रखने वाला अर्थ चाहे कितना ही प्रधान क्यों न हो, पर बाहरी अर्थ को बराबर स्मरण रखना है। कवि के अनुसार श्रद्धा इन लोकों को बाहर दिखा रही है।

भाव भूमिका—भाव भूमिका—भावनाएँ। जननी—उत्पन करने वाली। ढलते-बनते। प्रतिकृति—प्रतिमूर्ति, प्रतिमा। मधुर ताप—प्रभाव।

अर्थ—इच्छा लोक की भावभूमि में सब पुण्य और सब पाप उत्पन्न होते हैं अर्थात् यहाँ के प्राणी अपनी अपनी भावनाओं के अनुसार सभी प्रकार के पाप-पुण्य के भागी होते है।

इन्हीं भावों की आग के मधुर ताप (प्रभाव) से प्राणी भिन्न-भिन्न स्वभाव (Habits) की प्रतिमूर्ति से बन जाते हैं। भाव यह कि जिसके जैसे भाव, उसका वैसा स्वभाव।

वि० (१) इस छद का सामान्य अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में सत् और असत् दो प्रकार की वृत्तियाँ रहती हैं जब वह सत् वृत्तियों का पक्ष लेता है तो पुण्य और असत् वृत्तियों में फँस जाता है तो पाप कमाता है। इन्हीं वृत्तियों के अनुसार प्रत्येक प्राणी का स्वभाव बनता है।

(२) वस्तुओं की उत्पत्ति के लिए भूमि या आधार की आवश्यकता होती

है। अत . छंद की प्रथम पक्ति मे भाव के साथ 'भूमिका' शब्द का प्रयोग है। धातु पहले गलती है, फिर साँचे में ढलती है और तब कहीं मूर्तियाँ बनती हैं। भावों के साँचे में इसी प्रकार स्वभाव ढलता है। कवि ने सचेष्ट होकर ज्वाला, ताप और ढलने का प्रयोग किया है।

पृष्ठ २६५

नियममयी उलझन—नियम—सामाजिक धार्मिक विधान। उलझन—झझट। विटपि—वृक्ष। नभ कुसुमों का खिलना—व्यर्थ होना, असम्भव कल्पना।

अर्थ—जैसे वृक्ष से लता चिपटी रहती है, वैसे ही भावरूपी वृक्ष को नियमों के झझट की लता जकड़े रहती है।

यह बात कि मन के भावों को नियमों से कैसे स्वतन्त्र करें, जीवन के लिए उसी प्रकार की एक समस्या खड़ी करती है जैसे बन की यह एक समस्या है कि वृक्षों को लताएँ आकर घेर लेती हैं और चारों ओर से इन्हें जकड़ कर उनका रस चूसती हैं।

ऐसी दशा में किसी आशा को फलीभूत देखना उसी प्रकार असभव है जैसे यह सोचना कि आकाश में फूल खिल सकते हैं।

वि०—जब नियम आकर सामने खड़े होते हैं तो मन के सारे कोमल भाव कुचल दिए जाते हैं। मान लीजिए कोई हिंदू लड़का किसी मुसलमान लड़की को प्रेम करता है। अब यदि वह यह चाहता है कि उसके साथ विवाह करके सुखी हो तो इस बात को सुनते ही धर्म कहेगा 'राम राम !' समाज कहेगा 'छि . छि !'

चिर वसंत का—चिर—बहुत दिनों तक रहने वाला। वसत—सब से सुन्दर और समृद्धिशाली ऋतु, विकास। पतझर—माघ-फागुन में पड़ने वाली वह शीत ऋतु जिसमें वृक्षों के पत्ते झर जाते हैं, ह्रास। अमृत—सत् वृत्तियों के अनुशीलन से प्राप्त आनन्द। हलाहल—वासना या असत् वृत्तियों का विषैला प्रभाव।

अर्थ—इच्छा लोक चिर वसत को भी जन्म देता है, दूसरी ओर पतझड़ को भी।

यहाँ अमृत के पास ही विष रखा है। यहाँ एक ही गाँठ में सुख और दु.ख बँधे हुए हैं।

वि०—अपने जीवन को बनाना-बिगाड़ना मनुष्य के हाथ में है। वह शुभ इच्छाओं का प्रेमी बनकर अपनी उन्नति कर सकता है और अशुभ इच्छाओं को पोषित कर अपनी अवनति भी। वह भक्ति, त्याग और पुण्य का पथ ग्रहण कर आनन्द का अमृत पान कर सकता है और वासना, स्वार्थ तथा पाप-पक में फँसकर अपने जीवन को विषमय बना सकता है। वह चाहे तो सत् भावनाओं को अपनाकर सुखी बन सकता है और यह भी उसके हाथ में है कि भावनाओं का दास बन कर दुःखी हो।

सुन्दर यह तुमने—यह—इच्छा लोक। श्याम—श्याम रग का। कामायनी—श्रद्धा का दूसरा नाम। विशेष—औरों से भिन्न, औरों से न मिलता-जुलता।

अर्थ—मनु ने कहा : तुमने जिस इच्छा लोक के दर्शन मुझे कराये, वह वास्तव में सुन्दर है। किन्तु यह दूसरा श्याम वर्ण का कौन-सा देश है? कामायनी, इसका विशेष रहस्य क्या है, यह भी मुझे समझाओ।

पृष्ठ २६६

मनु यह श्यामल—श्यामल—श्याम वर्ण का। सघन—ठोस। अविज्ञात—अज्ञात, जिसके सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ न कहा जा सके। मलिन—नेकृष्ट कोटि का।

अर्थ—श्रद्धा ने उत्तर दिया. यह श्याम वर्ण वाला गोलक कर्मलोक हलाता है। यह अधकार के सदृश कुछ-कुछ धुँधला है। यह सूक्ष्म न होकर ास है इसी से इसके सब रहस्यों को जाना नहीं जा सकता। यह देश धुँए की ारा के समान मलिन है।

वि०—(१) बड़े-बड़े मनीषी इस बात पर चकराते हैं कि क्या करना ाहिये और क्या न करना चाहिए। पूछा जा सकता है कि यदि अपना कर्म भी को करना चाहिए और हिंसा पाप है, तो कसाई के लिए क्या व्यवस्था होनी ाहिये?

क्योंकि कर्म अकर्म के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता, इसी से उसे धुँधला कहा है।

वि०—(२) कर्म इच्छाओं तथा ज्ञान की भाँति सूक्ष्म नहीं अर्थात् केवल मन के भावों को लेकर चलने वाला या बुद्धि-व्यापार मात्र नहीं। उसका सम्बन्ध ठोस वस्तुओं—हाथ, पैर, नेत्र आदि से है, इसी से उसे सघन या ठोस कहा है।

(३) कर्म हमें ससार में ही फँसाये रहता है, इसी से उसे मलिन या सामान्य कोटि का कहा। ज्ञान के समान वह उज्ज्वल या उत्कृष्ट कोटि का नहीं है।

कर्म-चक्र सा—गोल आकार वाला देश। नियति—भाग्य। प्रेरणा—इशारा, इगित, उत्तेजना। व्याकुल—अस्थिर रखने वाली। एषणा—इच्छा।

अर्थ—यह गोल आकार वाला देश भाग्य के इशारे से कर्म-चक्र का रूप धारण करके चक्कर काट रहा है। इस लोक के प्रत्येक प्राणी के कर्म के मूल में कोई न कोई अस्थिर रखने वाली नवीन इच्छा काम कर रही है।

वि०—इच्छा से कर्म होता है। कर्म से सस्कार बनते हैं। सस्कारों के अनुसार दूसरा जन्म पाकर हमें फिर कर्म करना पडता है। इस प्रकार यह कर्म-चक्र निरतर चलता रहता है।

श्रममय कोलाहल—श्रम—परिश्रम। कोलाहल—शोर। पीड़न—दबाना। विकल—अस्थिर, चचल। प्रवर्त्तन—चक्कर, किसी चीज को चलाना, गति देना। क्रियातन्त्र—कर्म विधान।

अर्थ—जैसे जब किसी कारखाने में कोई भारी मशीन वस्तुओं को दबाती कुचलती तीव्रगति से चक्कर काटती है तब उसके साथ काम करने वाले मजदूरों को श्रम भी करना पडता है और उनके इधर-उधर घूमने से शोर भी मचता रहता है, वैसे ही कर्म-चक्र प्राणियों से परिश्रम करवाता और कोलाहल मचवाता हुआ तीव्र गति से घूम रहा है।

इसके कारण प्राणियों को कभी विश्राम नहीं मिलता। उनके प्राण इस कर्म विधान के गुलाम बन गये हैं।

भाव राज्य के—मानसिक—काल्पनिक। हिंसा—किसी को मानसिक

या शारीरिक कष्ट पहुँचाना, किसी की हत्या करना। गर्वोन्नत—भारी अभिमान। हार—माला। अकड़ना—गर्व से छाती फुलाना। अणु—तुच्छ जीव।

अर्थ—भावनाओं के राज्य में विचरण करने वाले प्राणी मानसिक (काल्पनिक) सुख प्राप्त कर सकते हैं, पर जब उनके ये भाव इस कर्मलोक से टकराते हैं तब सारा सुख दुःख में परिवर्तित हो जाता है।

हम दूसरों को मानसिक या शारीरिक कष्ट पहुँचा सकते हैं ऐसे भारी अभिमान की मालाएँ धारण कर अर्थात् दूसरों को दुःख देने में अपनी शोभा समझ ये तुच्छ जीव गर्व से छाती फुलाये इधर-उधर निश्चिंत मन से घूमते दिखाई पड़ते हैं।

ये भौतिक सदेह—भौतिक—स्थूल, पचभूतों से निर्मित शरीर। सदेह—देहधारी। भावराष्ट्र—इच्छा लोक। नियम—बातें। दण्ड—दुखदायिनी, पीड़ा देने वाली। कराहना—पीड़ा से चिल्लाना, आह भरना।

अर्थ—ये स्थूल शरीरधारी किसी न किसी प्रकार के कर्म मे रत रहकर इस लोक में जीवित रहना चाहते हैं।

यहाँ इच्छा लोक की बातें दण्डस्वरूप सिद्ध होती हैं अर्थात् कोरी भावुकता से यहाँ काम नहीं चलता। यही कारण है कि किसी न किसी रूप में सब व्यथा से चिल्ला रहे हैं।

पृष्ठ २६७

करते हैं सन्तोप—सतोष—तृप्ति, शाति। कशाघात—कोड़े की मार। भीति—भयभीत। विवश—अनिच्छा से। कम्पित—काँपते हुए।

अर्थ—कर्म करते हैं, पर असतुष्ट रहते है। उन्हें ऐसा लगता है जैसे वे अपने मन से काम नहीं कर रहे हैं, कोई कोड़े मार-मार कर प्रतिपल उनसे काम करा रहा है और वे भयभीत होकर अनिच्छा से काँपते हुए प्रतिक्षण काम करते ही जाते है।

नियति चलाती—नियति—भाग्य। तृष्णा—कोई आकुल इच्छा। ममत्व वासना—मोह भावना, ममता। पाणिपादमय—हाथ-पैर वाले, स्थूल। पच-भूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश। उपासना—अत्यधिक आसक्ति।

अर्थ—इस कर्म चक्र को भाग्य गतिशील रखता है। क्योंकि किसी न किसी आकुल इच्छा को लेकर उन्हें प्राप्त करने के लिए लोगों के हृदय में उनके प्रति मोह भावना जग जाती है, इसी से यह कर्म-चक्र चल रहा है।

कर्म-लोक के पञ्चभूतों की स्थूल उपासना हो रही है अर्थात् भोग के लिए पञ्चभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश—काम में लाये जा रहे हैं।

यहाँ सतत संघर्ष—संघर्ष—एक दूसरे का सामना करना, प्रतियोगिता, अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए प्रयत्न। कोलाहल—अशांति। राज—अधिकता, आधिपत्य। अंधकार में—विवेकहीन। दौड़ लगना—जल्दी-जल्दी काम करना। मतवाला—पागल।

अर्थ—यहाँ रात-दिन एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का सामना करना पड़ता है। इसका परिणाम अधिकतर असफलता और अशांति होती है।

सब अंधे बनकर जल्दी-जल्दी काम किये जा रहे हैं। यह नहीं सोचते कि इसका परिणाम क्या होगा। ऐसा लगता है मानो समाज का समाज ही पागल हो गया है।

स्थूल हो रहे—स्थूल—सूक्ष्मता रहित (Gross)। रूप—इच्छाओं की मूर्ति, ठोस इच्छाएँ। भीषण—भयंकर। परिणति—परिणाम। पिपासा—ललक, चाट, प्यास। ममता—मोह। निर्मम—कठोर। गति—अंत।

अर्थ—अपनी-अपनी इच्छाओं की मूर्तियाँ बनाकर अर्थात् भावों को ठोस रूप में प्राप्त करने के प्रयत्न में ये लोग सब प्रकार की सूक्ष्मता खो चुके हैं और स्थूलता-प्रिय हो गये हैं। यही कारण है कि इनके कर्मों का परिणाम भयंकर होता है। आकांक्षाओं की ऐसी घोर ललक और मोह का अन्त ऐसा ही कठोर (दुःखदायी) होता है।

वि०—प्रेम एक सूक्ष्म भाव है उसका शरीर से अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। अतः यह कामना कि यदि किसी से प्रेम है तो वह पति या पत्नी रूप में ही प्राप्त हो, भाव को ठोस या स्थूल रूप में उपलब्ध करना है।

यहाँ शासनादेश—शासनादेश—शासक की आज्ञाएँ। घोषणा—राजाज्ञा का प्रचार, मुनादी। हुंकार—ध्वनि। दलित—शोषित, कुचला हुआ व्यक्ति। पदतल—पैर, चरण।

अर्थ—यह वह लोक है जहाँ कभी किसी शासक की आज्ञाओं की घोषणा होती है और कभी किसी की। ये घोषणाएँ क्या हैं, उनकी जय-ध्वनियाँ हैं।

पर शासन-व्यवस्था इस लोक की सदा से कुछ ऐसी रही है कि गरीबों को सुख-सुविधाएँ नहीं प्राप्त होतीं। जो भूख से व्याकुल और राज-व्यवस्था से कुचले हुए व्यक्ति हैं वे इन घोषणाओं से ऐसी स्थिति में बने रहते हैं कि बार-बार शासकों और धनिकों के पैरों में गिरते रहें। भाव यह कि राज्य के नियम शोषकों को और अधिक सुविधाएँ तथा शोषितों को सब प्रकार की असुविधाएँ जुटाते हैं।

पृष्ठ २६८

यहाँ लिए दायित्व—दायित्व—जिम्मेदारी।

अर्थ—यहाँ उन व्यक्तियों ने जो समाज, देश, संसार और धर्म की उन्नति के लिए पागल हो रहे हैं, सभी प्रकार के कर्मों का बोझ अपने ऊपर ले लिया है। अर्थात् लोग कुछ भी करने से नहीं चूकते और अपनी समस्त दौड़-धूप का कारण यह बतलाते हैं कि वे सृष्टि की उन्नति के लिए प्रयत्न कर रहे हैं।

मनुष्य एक-एक बात के लिए दुःख उसी प्रकार उठा रहे हैं जिस प्रकार जलने से छाले पड़ जायँ तो वे दुखते हैं, पर उस दशा में भी मनुष्य यदि स्थिर नहीं रहता तो आघात पाकर वे छाले फूट जाते हैं और उनके भीतर से पानी ढलक कर बह जाता है और उस समय और भी व्यथा होती है।

यहाँ राशिकृत—राशिकृत—सञ्चित। विपुल—अधिक परिमाण में। विभव—ऐश्वर्य। मरीचिका—मृगतृष्णा, मिथ्या, निस्सार। वे—पहले लोग। ये—उनके पीछे आने वाले व्यक्ति।

अर्थ—इस लोक में अधिक से अधिक परिमाण में सञ्चित किया हुआ सब प्रकार का ऐश्वर्य यदि ध्यान से देखा जाय तो मृगतृष्णा के समान (मिथ्या) है।

लोग ऐश्वर्यों का फल भोग कर के ही अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। एक दिन वे मिट जाते हैं। पर दूसरे लोग इससे कोई शिक्षा नहीं ग्रहण करते। फिर वैभव को एकत्र करने में जुट जाते हैं।

बड़ी लालसा यहाँ—लालसा—कामना। यश—ख्याति। अपराध—कुकर्म। स्वीकृति—स्वीकार करना, ग्रहण करना, उतारू होना। अघप्रेरणा—सस्कारों की झोंक। परिचालित—प्रेरित।

अर्थ—कर्मशील व्यक्तियो के हृदयों में ख्याति की कामना बहुत तीव्र होती है। इसके लिए वे कुकर्म करने पर भी उतारू हो जाते है।

प्राणियों के सस्कार उन्हें जो करने के लिए बाध्य करते हैं, वही करने को वे विवश हैं, पर इतने पर भी वे अपने को कर्त्ता समझते हैं यह उनकी भूल है।

वि०—'प्रसाद' जी का विश्वास था कि व्यक्ति कर्म करने में स्वतत्र नहीं है, उससे जैसे कोई बरबश काम कराता है। अभी लिख चुके हैं—'जैसे कशाघात प्रेरित से।' आशा सर्ग मे यही बात दूसरे ढग से कही गई है—

हाँ कि गर्व-रथ में तरग सा,
जितना जो चाहे जुत ले।

प्राण तत्त्व की—प्राण—तत्त्व—जीवन, प्राण वायु। सघन—जड़ता की दशा को पहुँचाने वाली। साधना—सिद्धि, उपलब्धि, प्राप्ति, उपासना। हिम उपल—ओला। प्यासे—जिनका जीवन अभावपूर्ण है। घायल हो—घोर कष्ट पाकर। जल जाते—मृत्यु को प्राप्त करते हैं। मर-मर कर—बड़ी कठिनाई से।

अर्थ—इस लोक में प्राण की—जो एक सूक्ष्म तत्त्व हैं—सिद्धि जड़-रूप में हो रही है अर्थात् कर्म करने वालों के हृदय जड हो जाते हैं। दूसरे शब्दों मे हम यह कह सकते हैं कि सघर्ष में लीन व्यक्तियों के हृदय से सहानुभूति, करुणा, दया, ममता जैसी वृत्तियाँ निकल जाती हैं।

यह ठीक वैसा ही है जैसे जल जैसा तरल पदार्थ जमकर जड़-रूप मे ओला बन जाय, दूसरी ओर जिन प्राणियों का जीवन अभावपूर्ण है, वे नित्य घोर कष्ट पाकर मर जाते हैं। दुखी व्यक्ति एकदम मर भी नहीं सकते। जितने दिन का जीवन है उतने दिन कष्टों के बीच किसी न किसी प्रकार उन्हें जीवित रहना ही पड़ता है।

वि०—हृदय प्रदेश से नासिका तक आने-जाने वाली वायु को प्राणवायु कहते हैं। इसके रुकने पर मनुष्य की मृत्यु हो जाती है और तब हम कहते हैं

उसके प्राण निकल गये। यह जीवन का पर्य्याय है। प्राण की समता जल से —जो एक प्रवाहित रहने वाला तत्त्व है—ठीक ही की गई है। इस छन्द की अन्तिम पक्ति के भाव को मिर्जा गालिब के इस प्रसिद्ध शेर से मिलाइए—

मरते हैं आरज़ू मे मरने की
मौत आती है, पर नहीं आती।

यहाँ नील लोहित—नील लोहित ज्वाला—प्रचड अग्नि जो नील और रक्तवर्णा होती है। धातु—लोहा-चाँदी आदि खान से उत्पन्न होने वाले ठोस द्रव्य, यहाँ जीवात्मा से तात्पर्य है।

अर्थ—जैसे नील और रक्त वर्ण की प्रचड अग्नि में लोहा, चाँदी आदि धातुओं का मैल जल जाता है और वे गल कर किसी भी रूप में ढाली जा सकती है वैसे ही यहाँ कर्मों की प्रचन्ड अग्नि मे पड़ लोगों के सस्कारों की धातु में जो प्रतिकूल तत्वों का मेल है वह जल जाता है और फिर वे सस्कार बदल कर वर्तमान जीवन के अनुकूल ढल जाते हैं।

धातुओं (जैसे गरम लोहे) का हथौड़ो की चोट खाकर जिस प्रकार आकार बदल जाता है, पर उनका विनाश नहीं होता, इसी प्रकार सस्कारो को लेकर जीवात्मा मृत्यु का आघात पाकर एक शरीर को छोड़ दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है, मर नहीं जाता।

पृष्ठ २६६

वर्षा के घन—घन-बादल, इच्छा। नाद करना—गरजना, बल पकड़ना। तट कूलों—किनारे और उनके आसपास की भूमि, सघर्ष में आने वाले व्यक्ति। प्लावित करती—डुबाती, तृप्त करती है। वन कुंजों—वन के निकुन्जो, मन की कामनाओं। सरिता—नदी। बहना—बढ़ना।

अर्थ—वर्षा के बादलो के गरजने (तीव्र इच्छाओं के बल पकड़ने पर) किनारो और उसके आस-पास की भूमि को अनायास गिराती हुई (सघर्ष मे आने वाले व्यक्तियों को मिटाती) वन के कुन्जों को सींचती हुई (मन की काम-नाओं को तृप्त करती) नदी (लक्ष्य सिद्धि की सरिता) आगे बह (बढ़) जाती है।

बस अब और—दिखाना—व्याख्या या चर्चा करना। भीषण—भयंकर। उज्ज्वल—श्वेत वर्ण का। पुंजीभूत—एकत्र, निर्मित। रजत—चाँदी।

अर्थ—मनु ने घबरा कर कहा—बस रहने दो। इसके सम्बन्ध में अब और अधिक चर्चा न करो। यह कर्म-लोक तो अत्यधिक भयंकर है।

थोड़ी देर रुक कर उन्होंने फिर प्रश्न किया : अच्छा श्रद्धे सामने वाला वह श्वेत वर्ण का उजला लोक जो देखने में चाँदी का ढेर-सा प्रतीत होता है, कैसा है ?

प्रियतम यह तो—प्रियतम—जो सबसे अधिक प्रिय हो, यह शब्द पति के अर्थ में रूढ़ हो गया है। ज्ञान क्षेत्र—ज्ञान भूमि। उदासीनता—प्रभावित न होना, ऊपर उठा रहना, निर्लिप्त रहना। न्याय—कर्मों का फल। निर्मम—कठोरता। दीनता—दुर्बलता।

अर्थ—हे प्रियतम, यह उज्ज्वल लोक ज्ञान-लोक है। यहाँ के निवासी सुख और दुःख दोनों से प्रभावित नहीं होते।

यहाँ प्रत्येक प्राणी के कर्मों का फल कठोरता से दिया जाता है। यहाँ बुद्धि-चक्र चलता है अर्थात् सब बातों का निर्णय बौद्धिक आधार पर होता है और उसमें किसी प्रकार की मानसिक दुर्बलता हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

पृष्ठ २७०

अस्ति नास्ति—अस्ति—है। नास्ति—नहीं है। निरंकुश—सामाजिक बंधनों से स्वतंत्र। अणु—प्राणी। निस्संग—निर्लिप्त, आसक्तिहीन। सम्बन्ध विधान—सम्बन्ध जोड़ना। मुक्ति—मोक्ष।

अर्थ—ज्ञान-लोक के प्राणी यह बतलाते रहते हैं कि वह (परमात्मा) है और यह (संसार) नहीं है और इन दोनों में भेद यह है कि वह सत् है और यह असत्, वह चित् है यह जड़, वह आनन्दमय है, यह सुखमय।

यद्यपि ये अपना सम्बन्ध किसी से नहीं रखते, तथापि मोक्ष से तो अपना सम्बन्ध कुछ जोड़े ही रखते हैं—यद्यपि कुछ नहीं चाहते फिर भी मोक्ष तो चाहते ही हैं।

यहाँ प्राप्य—जो मिलना चाहिए। तृप्ति—संतोष, शांति। भेद—अधिकार के अनुसार अंतर। सिकता—बालू, रेत।

अर्थ—यहाँ जो मनुष्य जितनी साधना करता है उसके अनुसार उसे जो मिलना चाहिए—जैसे अलौकिक सिद्धियाँ स्वर्ग आदि—वह तो उसे मिल जाता है, लेकिन तृप्ति फिर भी नहीं होती।

प्रत्येक प्राणी के अपने अधिकार के अनुसार बुद्धि सब को ऐश्वर्यों का वितरण करती है! पर इन विभूतियों में कोई रस नहीं है। बालू के समान ये शुष्क हैं। अतः जैसे ओस चाट कर कोई अपनी प्यास नहीं बुझा सकता, वैसे ही बुद्धि इन विभूतियों से संतुष्ट नहीं होती।

न्याय तपस ऐश्वर्य्य—न्याय—तर्क। तपस—तपस्या। ऐश्वर्य—वैभव। चमकीले—आकर्षण उत्पन्न करने वाले। निदाघ—ग्रीष्म काल। मरु—रेगिस्तान। स्रोत—सोता। जगना—चमकना।

अर्थ—तर्क, तपस्या और ऐश्वर्य से युक्त ये प्राणी नेत्रों में चमक उत्पन्न करते हैं, पर इनकी यह चमक वैसी ही है जैसे ग्रीष्म काल मे मरुभूमि के किसी सूखे सोते के तट पर बालू के कण सूर्य की किरणों में चमकें।

वि०—ज्ञानियो के ऐश्वर्य की चमक-दमक की बालू के कणों की झलक से समता करने में कवि का तात्पर्य यह झलमलाहट बाहरी और शुष्क है। अतः निस्सार है। जीवन का वास्तविक सुख आंतरिक शांति में है, जो 'प्रसाद' के अनुसार श्रद्धा से प्राप्त होता है। कवि ने ज्ञान को यहाँ कुछ हल्का प्रदर्शित किया है। ऐसा करके उसने न्याय नही किया।

न्याय शब्द का प्रयोग कवि ने कहीं पक्षपात-शून्य निर्णय और कहीं तर्क के अर्थ मे किया है।

मनोभाव से—मनोभाव—मनोवृत्तियाँ। कायकर्म—शारीरिक कर्म। समतोलन—बाट के बराबर वस्तु तोलना। दत्तचित्त—मन से कोई काम करना। निस्पृह—निर्लोभ। न्यायासन वाले—न्यायाधीश। वित्त—धन, लोभ, आकर्षण।

अर्थ—अपनी (ज्ञानमूला) मनोवृत्तियों के अनुसार ही ये शारीरिक

कर्मों को सम्पन्न करने में रुचि रखते हैं। ये उन निर्लोभ न्यायाधीशों के समान हैं जिन्हे धन (लोभ) तनिक भी नहीं डिगा सकता।

वि०—(१) शरीर-सम्बन्धी कुछ कर्म ज्ञानियों को विवश होकर करने पड़ते हैं जैसे शरीर ढकना पड़ता है, भोजन करना पड़ता है, पर ऐसे सब काम ये अल्पमात्रा में ही करते हैं जिससे शरीर में आसक्ति न हो जाय। तराजू में एक ओर बाट रहते हैं, दूसरी ओर वस्तुएँ। यहाँ धर्म की तराजू है, ज्ञानवृत्तियाँ बाट हैं, और इनके बराबर शारीरिक कर्म तौल दिये जाते हैं। यही 'सम-तोलन' शब्द की सार्थकता है।

(२) ज्ञानियों के सम्बन्ध में वित्त का अर्थ आकर्षण का लेना चाहिए। उन्हें न धन आकर्षित करता है, न रूप।

अपना परिमित—परिमित—छोटा-सा। अजर—जो कभी वृद्ध न हो। अमर—जो कभी मृत्यु को प्राप्त न हो।

अर्थ—अपनी बुद्धि का सीमित पात्र लेकर ज्ञान के उस निर्भर से जिसमें रस के नाम पर केवल कुछ बूँदें हैं, ये जीवन का रस माँग रहे हैं। और इस काम के लिए ये ऐसे जम कर बैठे हैं मानो ये न तो कभी बुड्ढे होंगे और न कभी मरेंगे।

वि०—जीवन के रस से तात्पर्य आंतरिक शांति या आनन्द का है।

पृष्ठ २७१

यहाँ विभाजन—विभाजन—बँटवारा। तुला—तराजू। व्याख्या करना—यह बतलाना कि किसे क्या मिलना चाहिए। निरीह—इच्छा रहित। साँसें ढीली करना—संतुष्ट होना।

अर्थ—इस लोक में धर्म की तराजू पर तोल कर अपने-अपने शुभ कर्मों के अनुसार जो जितने भाग का अधिकारी है उसका वह भाग उसे दे दिया जाता है अर्थात् सिद्धियों, स्वर्ग, मोक्ष आदि में से किसको क्या मिलना चाहिए, इसका निर्णय इस बात पर निर्भर करता है कि वह कितना धार्मिक है।

ज्ञानी वैसे इच्छारहित होता है, पर सिद्धि, स्वर्ग, मोक्ष आदि में से कुछ न कुछ प्राप्त करके ही संतोष की साँस लेता है।

उत्तमता इनका—उत्तमता—श्रेष्ठ गुणों से युक्त होना, सात्विकता। निजस्व—अपनापन, विशेषता, धन, अधिकार। अम्बुज—कमल। सर—तालाब। मधु—रस। ममाखियों—मधु मक्खियां।

अर्थ—उत्तमता इन ज्ञानियों की अपनी विशेषता है। जैसे सरोवर में खिलने वाले कमल जल से ऊपर ही रहते हैं, उसी प्रकार सभी प्रकार के आकर्षणों के बीच जीवित रहकर ये उनसे ऊँचे उठे रहते हैं और अपनी उत्तमता की रक्षा करते हैं।

जैसे मधुमक्खियाँ यहाँ-वहाँ से मधु एकत्र करके रखती हैं और उसका भोग स्वय नहीं करतीं, वैसे ही ये जीवन के रस को बचा-बचा रख देते हैं। उसका भोग नहीं करते।

यहाँ शरद की—शरद—क्वार-कार्तिक मास में पड़ने वाली एक ऋतु जिसमें चाँदनी सब मासों से उजली खिलती है। धवल—श्वेत। ज्योत्स्ना—चाँदनी, ज्ञान। अधकार—अँधेरा, अज्ञान। भेदना—चीरना। अनवस्था—कार्यकारण या वस्तुओं की अतहीन शृखला। विकल—स्थिर न रहना। बिखरना—छिन्न-भिन्न होना।

अर्थ—शरद ऋतु की श्वेत चाँदनी अधकार को चीरती हुई जब फूटती है तब वह और भी उजली प्रतीत होती है। ठीक इसी प्रकार ज्ञान जब अज्ञान को हटाकर प्रकट होता है तब और भी निर्मल प्रतीत होता है।

क्योंकि वे दोनों (ज्ञान-अज्ञान) एक दूसरे से सदा मिले रहते हैं अर्थात् ज्ञान और अज्ञान को पृथक् नहीं किया जा सकता और क्योंकि कभी ज्ञान अज्ञान पर प्रभुत्व जमाता है और कभी अज्ञान ज्ञान को दबा देता है, अतः ज्ञान ही अतिम सत्य है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

क्योंकि ज्ञान-अज्ञान का यह द्वन्द्व चिरतन है यही कारण है कि लोक में व्यवस्था स्थिर नहीं रहती, छिन्न-भिन्न हो जाती है। भाव यह कि ज्ञान की सदा नहीं चलती, अज्ञान भी अपनी सत्ता रखता है, अत. लोक से अशाति नहीं मिटाई जा सकती।

वि०—अनवस्था न्याय या तर्कशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ होता है कार्य-कारण या कथनों का अतहीन क्रम जैसे वृक्ष किससे उत्पन्न

होता है ? बीज से । बीज किससे उत्पन्न होता है ? वृक्ष से । और वृक्ष ? इसमें कहीं न कहीं रुकना पड़ेगा । अनवस्था के सम्बन्ध में लिखा है—उपपाद्यपपाद-कयोरविश्राति :—उपपाद्य (कार्य) उपपादक (कारण) की अविश्राति (अवि रामता) । यह न्याय-शास्त्र का एक दोष है । इसको दूर करने के लिए ही एक व्यवस्था माननी पड़ती है ? अनवस्था का दूसरा उदाहरण लीजिए : सृष्टि का कर्त्ता कौन है ? ईश्वर । ईश्वर का कर्त्ता कौन है ?........ ...।

देखो वे सब—सौम्य—शात । दोष—अपराध, चरित्र सम्बन्धी भूल, पाप । सकेत—इशारे, इगित । दभ—अहंकार । भ्रूचालन—भौंहों का टेढ़ा या वक्र होना । मिस—बहाने । परितोष—सतोष ।

अर्थ—तुम इस बात पर ध्यान दो कि वहाँ के सब प्राणी ऊपर से देखने में तो शात प्रतीत होते हैं, परन्तु भीतर-भीतर इस बात से डरते रहते हैं कि कोई दोष उनसे न बन पड़े ।

उनकी भौहें कभी-कभी टेढ़ी हो जाती हैं । क्या यह इस बात का निर्देश है कि वे यह सोचकर बड़े सतुष्ट हैं कि अन्य मनुष्यों से वे कहीं श्रेष्ठ हैं और इसी से अपने हृदय के अहकार को इस बहाने प्रकट कर रहे हैं । निश्चय ही ।

यहाँ अछूत रहा—अछूत—जिसे छू न सके । जीवन रस—इद्रियों का सुख, लौकिक सुख, सासारिक सुख । सचित—एकत्र । तृषा—प्यास, इच्छाओं की पूर्ति न करना । मृषा—असत्य । वचित रहना—दूर रहना ।

अर्थ—इद्रियों के सुख-भोग से ज्ञानी लोग अपने को वचित (बचाये) रखते हैं । उसे भोगने की इन्हें आज्ञा नहीं है । उसे इकट्ठा होने दो, यही इनके लिए विधान है ।

उन्हें तो यह बताया गया है कि इच्छाओं की पूर्ति न करना ही उनका कर्तव्य है और सब असत्य है । अतः सासारिक सुख से तुम दूर ही रहो ।

पृष्ठ २७२

सामंजस्य चले—सामजस्य—शाति । विषमता—अशाति । मूल स्वत्व—मूल तत्व, चरम लक्ष्य, वास्तविक ध्येय । कुछ और—जीवन को न मानकर ईश्वर या ज्ञान को मानना । झुठलाना—झूठी या ज्ञान से विमुख करने वाली

अर्थ—प्रयत्न तो ये इस बात का करते हैं कि जीवन में शांति स्थापित हो जाय, पर फैलाते हैं अशांति, कारण यह है कि जीवन को सुन्दर और सुखमय बनाना जो मनुष्य का वास्तविक ध्येय है, ये नहीं मानते, किसी और ही बात (ज्ञान प्राप्ति) को जीवन का मूल तत्त्व बतलाते हैं और उन इच्छाओं को जो स्वभावतः मनुष्य के हृदय में उठती हैं, ये झूठी (ज्ञान से विमुख करने वाली) समझते हैं।

स्वयं व्यस्त—व्यस्त—अशांत। शास्त्र—शास्त्र में जो लिखा है। विज्ञान—विशेष ज्ञान। अनुशासन—आज्ञाएँ। परिवर्तन में ढलना—बदलना।

अर्थ—ऊपर से देखने में ये शान्त हैं, पर कोई पाप न बन पड़े इस भय से स्वयं अशांत है। शास्त्र में जो बात जिस रूप में लिखी है उसी के पालन में इनके दिन कटते हैं। पर शास्त्रों की ज्ञान-सम्बन्धी आज्ञाएँ भी सुनिश्चित नहीं हैं, नित्य बदलती रहती हैं अर्थात् अनेक ऋषियों के नाम पर अनेक शास्त्र हैं। उनमें से किसे माना जाय किसे न माना जाय? और भविष्य में भी समय और स्थिति के अनुकूल नवीन ज्ञान-ग्रंथों का प्रणयन होता रहेगा।

यही त्रिपुर है—त्रिपुर—त्रिभुवन, तीन लोक। ज्योतिर्मय—प्रकाशमय, आलोक से युक्त। केन्द्र—सीमा में बद्ध। भिन्न—दूर।

अर्थ—तुमने देखा, ये तीनों लोक ही त्रिपुर (त्रिभुवन) कहलाते हैं। ये तीनों ही गोलक कैसे प्रकाशमय है।

अपने भिन्न-भिन्न सुख-दुःख को लेकर अपनी-अपनी सीमा में वे बँधे हुए हैं और एक दूसरे से बहुत दूर रहते हैं।

वि०—प्रसिद्ध है कि मय दानव ने सोने, चाँदी और लोहे के तीन नगरों का निर्माण किया था। वे तीनों नगर त्रिपुर कहलाते थे। देवताओं की प्रार्थना पर शिव ने इन तीनों को जला डाला, इसी से वे त्रिपुर-दहन कहलाते हैं। इस स्थूल कथानक को 'प्रसाद' जी ने किस रूप में ग्रहण किया है यह आगे के छंदों में देखिए।

ज्ञान दूर कुछ—ज्ञान—विवेक। क्रिया—कर्म। भिन्न—अन्य प्रकार की, इच्छा को सिद्ध करने वाली नहीं। विडम्बना—घोर असफलता।

अर्थ—ज्ञान दूर रहता है और कर्म भी विवेक-सम्मत नहीं होते, ऐसी दशा में मन की इच्छाओं की पूर्ति कैसे हो सकती है ?

प्राणियों के जीवन की घोर असफलता का कारण यह है कि इच्छा, क्रिया और ज्ञान में कोई सामजस्य नहीं है।

वि०—इच्छा, क्रिया ज्ञान के सामजस्य से यह तात्पर्य है कि ये तीनों एक दूसरे से पृथक् नहीं किए जा सकते अर्थात् प्राणी यदि इच्छा करे तो उसकी सिद्धि के लिए प्रयत्न (कर्म) करे, कोरी इच्छा करके ही न रह जाय और कर्म करते समय थोड़े विवेक से काम ले। उल्टे-सीधे जो मन में आवे वह न कर डाले।

पृष्ठ २७३

महा ज्योति रेखा—ज्योति—आलोक। स्मिति—मुसकान, मन्द हास्य। दौड़ी—फैली। सम्बद्ध—जुड़ना, एक होना। ज्वाला—प्रकाश।

अर्थ—इतना कहकर श्रद्धा मुसकरा उठी। उसकी वह मुसकान रेखा आलोक की एक दीर्घ रेखा बनकर उन तीनों लोकों में फैल गई जिससे वे गोलक एक दूसरे से जुड़ गये और उनमें प्रकाश जगमगाने लगा।

वि०—इच्छा क्रिया और ज्ञान का सामजस्य श्रद्धा के आधार पर ही हो सकता है। श्रद्धा, आस्था या विश्वास न होने से तीनों बिखर जाते हैं। यदि अपनी इच्छा में विश्वास नहीं है अर्थात् यदि प्राणी ऐसी इच्छा करता है जिसकी पूर्ति में सदेह है तो उस इच्छा को व्यर्थ ही समझो। इसी प्रकार कर्म भी दृढ़ विश्वास के साथ करना चाहिए और ज्ञान का जो पथ पकड़ा है उसमें भी विश्वास बना रहना चाहिए।

बाह्य दृष्टि से देखने पर श्रद्धा की मुसकान की प्रकाश-रेखा बन कर दौड़ना एक अलौकिक कर्म ही कहा जायगा।

नीचे ऊपर—लचकीली—टेढ़ी, बीच से झुकी हुई, लहरें लेती। विषम—तीव्र, भयकर। धधकना—अग्नि का प्रचण्ड रूप धारण करना।

अर्थ—तीव्र वायु के चलने से वह ज्वाला-रेखा ऊपर से नीचे तक एक टेढ़ा आकार धारण करती हुई धधकने लगी।

उस विराट् शून्य प्रदेश मे सुनहली अग्नि की उस लहरदार रेखा से 'नहीं' 'नहीं' की ध्वनि फूट रही थी। उसे सुनकर ऐसा लगता था कि सृष्टि की वस्तुओं में मानों भेद कहीं नहीं है—सब मिलकर एक हैं।

शक्ति तरंग—शक्ति तरङ्ग—शक्तिमयी लपटें। प्रलय—विनाश करने वाली। पावक—अग्नि, विवेक। त्रिकोण—इच्छा, क्रिया, ज्ञान के लोक जो तीन दिशाओं में बसे हुए थे। *शृङ्ग—सींग का बना बाजा।* *निनाद—ध्वनि।* चिखरना—फैल जाना।

अर्थ—विनाश करने वाली उस अग्नि की लपटें इच्छा, क्रिया और ज्ञान के लोकों में अपनी पूर्ण शक्ति से दहक उठीं।

उस समय एक ऐसा मिश्रित नाद ससार में फैल गया जैसा शिव द्वारा शृङ्गी बाजे में ध्वनि फूँकने और डमरू बजाने से उत्पन्न होता है।

वि०—यह अग्नि विवेक की है जो इच्छा क्रिया ज्ञान में सामजस्य लाने का प्रयत्न करती है। विवेक की अग्नि विनाश करती है, पर भेद-भाव का। इस सामजस्य के स्थापित होते ही जीवन में आनद की ध्वनि सुनाई पड़ती है।

चितिमय चिता—चितिमय—गतिशीला, ज्ञानमयी। चिता—चिता पर जलने वाली अग्नि से तात्पर्य है। अविरल—बराबर, लगातार, निरंतर। विषम—भयकर। नृत्य—कर्म। रध्र—छिद्र, शून्य स्थल।

अर्थ—वह गतिशीला अग्नि बराबर धधकती रही और महाकाल का भयकर नृत्य होता रहा अर्थात् उस अग्नि से इच्छा, क्रिया और ज्ञान के लोक जलकर विनष्ट होने लगे।

इन लोकों को छोड़कर विश्व में सूना स्थान शेष रह गया था उसमें भी अग्नि भर गई और एक भयकर दृश्य दिखाई देने लगा।

वि०—क्योंकि बाहरी अर्थ को भी बनाये रखना है; अतः चितिमय का अर्थ ऊपर गतिशीला लिया है। हृदय पक्ष में यह अर्थ होगा कि ज्ञान की अग्नि जब धधकती है तब सासारिक बोध, इच्छाएँ और कर्म सब नष्ट हो जाते

हैं। इन्हें छोड़कर यदि और भी किसी प्रकार की लौकिक चेतना अन्तःकरण में शेष रहती हो तो वह भी भस्म हो जाती है। आत्मा की उन्नति की दृष्टि से जहाँ ज्ञानाग्नि पवित्र और रमणीय है, लौकिक मोह की दृष्टि से वैसी नहीं। इसी से कवि ने उसे विषम या भयकर कहा है। माया-मोह में फँसे जीव तो बुरी या भयकर ही समझेंगे, क्योंकि वह उन्हें सासारिक सुखों से, भोग-विलास से दूर करने का प्रयत्न करती है।

महाकाल शिव का भी एक नाम है। उस दृष्टि से 'विषम नृत्य' का तात्पर्य होगा शिव प्रलय-नृत्य (ताडव) में लीन थे। घुमा फिराकर बात एक ही पड़ती है। ऊपर के छद में भी 'शृग' और 'डमरू' शब्दों के प्रयोग से यह पता चलता है कि कवि की दृष्टि भगवान रुद्र पर है अवश्य। शिव उस काल के आराध्यदेव थे भी।

स्वप्न स्वाप जागरण—स्वाप—सुषुप्ति अवस्था, घोर निद्रा की स्थिति। दिव्य—अलौकिक। अनाहत—सगीत, योगियों को दोनों कान मूँदने से सुनाई पड़ने वाला एक प्रकार का सगीत। निनाद—ध्वनि। तन्मय—तल्लीन।

अर्थ—क्रिया, इच्छा और ज्ञान के लोक जो क्रमशः जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति के प्रतीक कहे जा सकते हैं, भस्म होकर मिट गये।

इसके उपरात एक अलौकिक सगीत की ध्वनि उठी जिसमें श्रद्धा और मनु दोनों तल्लीन हो गये।

वि०—अवस्थाएँ चार होती हैं (१) जाग्रत (२) स्वप्न (३) सुषुप्ति और (४) तुरीय या समाधि। जागते हुए हम जो कुछ कर्म करते हैं वह जाग्रतावस्था कहलाती है। जब हम सो जाते हैं, पर कुछ-कुछ जगे भी रहते हैं तब हम स्वप्न देखते हैं। इसके आगे घोर निद्रा की एक ऐसी स्थिति होती है जिसे प्राप्त कर हम प्रभातकाल में उठकर कहते हैं, "रात हम ऐसे सोये कि कुछ पता ही नहीं"। इसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। पर इसमें भी अज्ञान का ज्ञान रहता है। समाधि अवस्था में सासारिक बोध एकदम मिट जाता है और आत्मा परमात्मा

में एकाकार होकर उस लीनता का अनुभव करती है जहाँ शुद्ध आनद—केवल आनद—है।

अतः जहाँ तक बाह्य दृश्य विधान का सम्बन्ध है वहाँ इस छंद का अर्थ यह होगा कि इच्छा, क्रिया, ज्ञान के सामजस्य की भावना जब उन दोनों के मन में बैठ गई तब उस अनुभूति से उन्हें बड़ा सुख मिला और जब इसके हृदय-पक्ष पर दृष्टि डालते हैं तब इसका आशय यह निकलता है कि जीव को पूर्ण आनन्द की प्राप्ति केवल समाधि अवस्था में होती है जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं को पार करने के उपरांत उपलब्ध हो सकती है।

आनन्द

कथा—एक दिन यात्रियों का एक दल नदी के किनारे-किनारे पहाड़ी पथ से वहाँ जा रहा था जहाँ श्रद्धा और मनु तप में लीन बैठे थे। उनके साथ धर्म का प्रतिनिधि एक बैल था जो सोम लता से ढँका था। उसके एक ओर मानव था, दूसरी ओर इड़ा। इनके पीछे जगली हिरणों की एक टोली थी जिन पर यात्रा का सामान लदा था। उन्हीं पर कुछ बच्चे बैठे थे। उनकी माताएँ उन्हें पकड़ कर उनसे बातें करती जाती थीं।

एक बच्चे ने अपनी मा से झुँझला कर कहा : तू कितनी देर से कह रही है कि वह स्थान अब आया, अब आया, परन्तु रुकने का समय अब भी नहीं आया। फिर वह इडा के पास पहुँचा और उससे उस स्थान के सम्बन्ध में पूछताछ करने लगा। इड़ा ने कहा : मैंने ऐसा सुना है कि मानसिक दुःख से दुःखी एक व्यक्ति कभी इधर आया था। उसने आते ही अपने चारों ओर अशाति फैला दी। फिर उसे खोजती एक स्त्री आई। वह उसकी पत्नी थी। उसके प्रयत्न से सभी स्थानों पर पूर्ववत शाति छा गई। आजकल वे दोनों प्राणी मानसरोवर के किनारे बैठे अपने सुन्दर उपदेशों से वहाँ जाने वालों को शाति का उपदेश देकर ससार का कल्याण करने में अपने जीवन के पलों का सदुपयोग कर रहे हैं। यह बैल धर्म का प्रतिनिधि है। वहाँ जाकर हम इसे मुक्त कर देंगे।

इस बीच उतराई पार करके वे एक समतल घाटी में पहुँचे। वहाँ हरियाली छाई थी। लता, कुञ्ज, गुहा-गृह एव भरे सरोवरों से वह स्थान रमणीक हो उठा था। वहाँ का एक-एक भू-भाग फूलों से भरा था। मानसरोवर का दृश्य तो वर्णनातीत था। उसी समय सध्या हुई और चन्द्रमा आकाश में उग आया।

मनु मानस के तट पर ध्यान-मग्न बैठे थे। श्रद्धा पास ही में अपनी अजलि में फूल भर कर खड़ी थी। उसी समय उन पुष्पों को उसने बिखेर दिया। सभी ने पहचान लिया कि ये ही श्रद्धा-मनु हैं। आगे बढ़कर सभी ने झुककर उन्हें प्रणाम किया। इडा ने श्रद्धा के चरण छुए और कुमार तो मा की गोद में जा बैठा।

इडा बोली : इस तपोवन के दर्शन करके आज मैं अपने को धन्य समझती हूँ। आपके आकर्षण के कारण ही मैं यहाँ तक आई हूँ। इसके उत्तर में श्रद्धा ने कुछ भी नहीं कहा। पर मनु थोड़े मुस्कुराये और बोले· देखो, संसार में कोई पराया नहीं है। व्यापक दृष्टि से देखने पर अपने-अपने स्थान पर सब ठीक हैं। जैसे समुद्र की लहरें समुद्र ही हैं, जैसे चाँदनी में खिले तारे चाँदनी ही हैं, वैसे ही जड़ और चेतन सब ब्रह्ममय है। यह ठोस जगत् सूक्ष्म परमात्मा का शरीर है। इस 'मैं' 'तू' के भेद ने एक प्राणी को दूसरे प्राणी से पृथक् कर रखा है। मनुष्य मनोविकारों के ऊपर उठकर जब उनका खेल देखता है तब वह उस निर्विकार स्थिति में पहुँचता है, जहाँ सुख ही सुख है। वास्तविक सुख सघर्ष में नहीं, सेवा में है। दूसरों की सेवा अपना ही आत्म-विकास है, अपने ही सुख की वृद्धि है।

उसी समय कामायनी मुस्करायीं। उसके साथ समस्त सृष्टि ही मुस्करा उठी। पवन मस्ती से चलने लगा. लताएँ हिलने लगीं, भ्रमर गूँजने लगे, कोकिल कूक उठीं, सुमन रस-भार से झरने लगे, हिम-खण्डों पर चन्द्र-किरणें प्रतिबिंबित होकर मणिदीपों का भ्रम उत्पन्न करने लगीं, रश्मियाँ अप्सराओं-सी नाचने लगीं। हिमालय की गोद में मानस की लहरियों की क्रीड़ा ऐसी प्रतीत हुई मानो शिव के आगे गौरी नृत्य कर रही हों।

इस दृश्य को देखकर सब तल्लीन हो गये, सबने एक अभेद भाव का अनुभव किया, सबको अखंड आनन्द की उपलब्धि हुई।

पृष्ठ २७७

चलता था धीरे—दल—समूह। रम्य—मनोहर। पुलिन—नदी का

किनारा। गिरि पथ—पहाड़ी रास्ता। सम्बल—यात्रा में काम आने वाली आवश्यक वस्तुएँ भोजन, रुपया, वस्त्र पाथेय आदि, ।

अर्थ—यात्रियों का एक दल यात्रा में काम आने वाली आवश्यक वस्तुओं को साथ लिए नदी का मनोहर किनारा पकड़े पहाड़ी पथ से धीरे-धीरे चला जा रहा था।

वि०—यह दल महारानी इड़ा, मानव और उनकी प्रिय प्रजा का था।

था सोमलता से—सोमलता—प्राचीन काल की एक लता जिसके मादक रस का पान ऋषि लोग यज्ञ की समाप्ति पर करते थे। आवृत—ढँका हुआ। वृष—बैल। धवल—श्वेत, सफेद रग का। प्रतिनिधि—प्रतीक, स्थानापन्न। मथर—मन्द। गतिविधि—चाल।

अर्थ—उनके साथ सफेद रग का एक बैल था जिसे धर्म का प्रतीक समझिये। वह सोमलता से ढँका था और मन्द गति से चल रहा था। उसके गले में बँधा हुआ घण्टा एक विशेष ताल में बँधकर बज उठा था।

वि०—वृष धर्म का प्रतीक माना जाता है। साकेत में चित्रकूट-दर्शन के समय धार्मिक राम के लिये 'वृषारूढ़' शब्द आया है—

गिरि हरि का हर वेश देख वृष बन मिला।
उन पहले ही 'वृषारूढ़' का मन खिला।

वृष रज्जु वाम—रज्जु—रस्सी। वाम—बायें। मानव—मनु के पुत्र का नाम। अपरिमित—असीम।

अर्थ—इस बैल के साथ मानव था। उसके बाये हाथ में उस बैल की रस्सी थी और दाहिना हाथ त्रिशूल से युक्त होने के कारण सुन्दर प्रतीत हो रहा था। उसके मुख पर असीम तेज झलक रहा था।

केहरि किशोर से—केहरि—सिंह। किशोर—यौवन की ओर अग्रसर होने वाला। अभिनव—नवीन। अवयव—शरीर के अंग। प्रस्फुटित—खिलना, विकसित होना। नये—किशोरावस्था से भिन्न।

अर्थ—उसके शरीर के अग सिंह के बच्चे के समान खिल उठे थे। यौवन

की गभीरता उसमें आ गई थी और इसी से वह किशोरावस्था से भिन्न भावों का अनुभव करता था।

वि०—किशोरावस्था तक प्राणी स्वच्छन्द और चंचल रहता है। यौवन का प्रवेश होते ही एक प्रकार की गंभीरता उसे आ घेरती है। प्रेम का उदय और विकास इसी काल में ही होता है।

चल रही इड़ा—पार्श्व—कोना, ओर। नीरव—मौन, शात। गैरिक—गेरुए रग के। वसना—वस्त्र वाली। कलरव—पक्षियों का चहचहाना, मनोवृत्तियाँ।

अर्थ—इड़ा भी इसी शैल के दूसरी ओर मौन-भाव धारण किए चली जा रही थी। वह सध्या की लाल आभा जैसे गेरुए वस्त्र पहने थी, और जिस प्रकार संध्या समय समस्त पक्षियों का चहचहाना बद हो जाता है वैसे ही उसकी मनोवृत्तियाँ भी शात थीं।

वि०—इस बात को हम पीछे भी कह चुके हैं कि मानव और इड़ा का प्रेम सम्बन्ध असम्भव है। यहाँ मानव को 'केहरि किशोर' सा और इड़ा को 'सध्या' सा बतलाकर कवि ने उन दोनों की अवस्थाओं के अन्तर को सूचित किया है।

पृष्ठ २७८

उल्लास रहा—उल्लास—हर्ष, आनन्द। मृदु—कोमल। कलकल—कोलाहल। महिला—स्त्रियाँ। मुखरित—ध्वनित।

अर्थ—युवकों की हर्ष ध्वनि, बच्चों के कोमल कलनाद और स्त्रियों के मगल-गानों से यात्रियों का वह दल गूँज रहा था।

चमरों पर बोझ—चमरों—हिरण की एक जाति। अविरल—घने। कुतूहल—तमाशा।

अर्थ—उनका सामान बोझ ढोने वाले हिरणों पर लदा था और वे एक घनी पक्ति में मिलकर चल रहे थे। उन्हीं पर कुछ बच्चे बैठकर आप ही अपना तमाशा बन गये थे।

मातायें पकड़े—पकड़े—हाथ से थामे। विधिवत्—ढंग से।

अर्थ—इन बच्चों को इनकी माताएँ थामे हुए बातें करती जा रही थीं। वे उन्हें यह बात बहुत ही सुन्दर ढंग से समझा रही थीं कि वे सब कहाँ जा रहे हैं।

कह रहा एक—एक—एक बच्चा। वह भूमि—वह स्थान जहाँ मनु और श्रद्धा रहते हैं।

अर्थ—इसी बीच एक बच्चे ने अपनी मा को टोक कर कहा : यह बात तो तू न जाने कितनी देर से कह रही है कि वह स्थान जहाँ हम जा रहे हैं अब आया, और उँगली दिखा कर बतला भी रही है कि देखो वह भूमि बिल्कुल पास ही है।

पर बढ़ती ही—रुकने—थमने। तीर्थ—पवित्र स्थान।

अर्थ—परन्तु बढ़ती ही चली जा रही है। रुकने का नाम नहीं लेती। ठीक बतला, जिसके लिए तू इतना दौड़ रही है, वह तीर्थ-स्थान कहाँ है?

पृष्ठ २७६

वह अगला—देवदारु—एक पहाड़ी वृक्ष। कानन—बन। घन—बादल। दल—पत्ते। हिमकन—ओस की बूँदें।

अर्थ—मा ने उत्तर दिया : बेटा, तीर्थस्थान उस आगे की समतल भूमि में है जहाँ देवदारु का बन खड़ा है। इन वृक्षों के पत्तों से ओस की बूँदें बटोर कर बादल अपने हृदय की प्याली भर लेते हैं।

हाँ इसी ढालवें—ढालवें—उतार। सहज—सरलता से। सम्मुख—सामने ही। पावनतम—सबसे पवित्र, अत्यन्त पवित्र।

अर्थ—जब हम इस ढलाव पर आसानी से उतर जायँगे तब सचमुच, हमारी आँखों के सामने ही वह अति उज्ज्वल तथा अत्यन्त पवित्र तीर्थ दिखाई देगा।

वि०—मा के इस उत्तर से बालक को संतोष नहीं हुआ।

वह इड़ा समीप—समीप—निकट। बालक—बच्चा जो प्रत्येक नवीन वस्तु के सम्बन्ध में स्वभावतः जिज्ञासा भावना से भरा होता है। कुछ और—अधिक।

अर्थ—वह बालक हिरण की पीठ से उतर कर इड़ा के निकट पहुँचा और उसने उससे रुकने को कहा। आखिर वह बालक ही था, अतः अपनी उत्सुकता की शांति के लिए उस तीर्थ के सम्बन्ध में कुछ और अधिक बातें जानने के लिए हठ करने लगा।

पृष्ठ २८०

वह अपलक—अपलक लोचन—टकटकी बाँधे, दृष्टि जमाए। पादाग्र—चरणों का अग्र भाग, पैरों की उँगलियाँ। विलोकना—देखना। पथ-प्रदर्शिका—अगुआ, पथ-निर्देशिका। डग—चरण, कदम।

अर्थ—इड़ा अपने चरणों की उँगलियों पर दृष्टि जमाए सबकी अगुआ बनी धीरे-धीरे चरण रखती चल रही थी।

वि०—'अपलक लोचन' इस बात की ओर सकेत करता है कि इड़ा कुछ सोच रही है। सभवतः उसे पिछली घटनाएँ याद आ रही हैं।

बोली हम जहाँ—जगती—संसार। पावन—पवित्र। प्रदेश—स्थल, भूमि। किसी का—एक व्यक्ति का। तपोवन—तपस्या करने का स्थान।

अर्थ—इड़ा बोली : हम जहाँ जा रहे हैं वह ससार का एक पवित्र स्थान है, किसी का साधना-स्थल है, शीतल और अत्यत शान्त तप-भूमि है।

कैसा क्यों शान्त—शान्त—शान्तिदायक। विस्तृत—विस्तार से। सकुचाती—सकोच का अनुभव करती।

अर्थ—बालक ने फिर पूछा: वह तपोवन कैसा है? इतना शान्तिदायक क्यों है? तू विस्तार के साथ क्यों नहीं बतलाती?

यह सुनकर इड़ा ने थोड़े सकोच का अनुभव करते हुए उत्तर देना प्रारम्भ किया।

वि०—यह सोचकर कि बालक अनजाने में उससे ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न कर रहा है जो उसे प्रेम करता था, उसे सकोच का अनुभव हुआ।

पृष्ठ २८१

सुनती हूँ एक—मनस्वी—उच्च मन वाला व्यक्ति, बुद्धिमान। ज्वाला—पीड़ा। विमल—व्याकुल। झुलसाया—जर्जर।

अर्थ—मैंने सुना है कि उच्च मन वाला एक व्यक्ति एक दिन कहीं से यहाँ आया था। वह सासारिक व्यथाओं से व्याकुल और जर्जर था।

उसकी वह जलन—जलन—हृदय की व्यथा। गिरि अचल—पर्वत की तलहटी। दावाग्नि—वन में लगी अग्नि। प्रखर—तीव्र। सघन—घना।

अर्थ—उसके हृदय की भयानक जलन पर्वत की इस तलहटी में फैल गई जिससे वृक्षों में लगी उन तीव्र लपटों ने घने वन में अशान्ति फैला दी। अर्थात् उसके हृदय में जो अशान्ति थी उसे लेकर उसने एक ऐसा काड उपस्थित किया जिसने अपने चारों ओर के प्राणियों के जीवन की सुख-शान्ति मिटा दी।

थी अर्धाङ्गिनी—अर्धाङ्गिनी—पत्नी। यह दशा—अपने पति का वह दुःख। करुणा की वर्षा—दया के बादल, अधिक दया। दग—आँख।

अर्थ—फिर उसे खोजती हुई एक स्त्री आई। वह उसी की पत्नी थी। अपने पति की ऐसी दशा देखकर उसकी आँखों के आकाश में जल से भरे मेघों के समान करुणा उमड़ी।

वरदान बने—वरदान—कल्याणकारी। मगल—कल्याण। सुख—सुखदायक।

अर्थ—उसकी पत्नी के आँसू उस व्यक्ति के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुए अर्थात् उसकी करुणा की बूँदों से उस व्यक्ति की जलन बुझ गई। भाव यह कि अपनी पत्नी का सरस आश्रय पाकर उस व्यक्ति का हृदय शान्त हो गया।

इससे ससार का भी कल्याण हुआ, क्योंकि जिस व्यक्ति ने चारों ओर अशान्ति फैला रखी थी वह अपनी पत्नी की कृपा से एकान्त में लौट गया।

जिस वन में एक दिन जलन की लपटें बिखर गई थीं वह फिर हरा-भरा-शीतल और सुखदायक हो गया। उसके समस्त ताप शान्त हो गये। तात्पर्य

यह कि जहाँ एक दिन अशान्ति थी वहाँ शान्ति छा गई, जो स्थान उजड़ गया था वह बस गया, जहाँ दुःख था वहाँ सुख का जन्म हुआ और जहाँ ताप था वहाँ संतोष का साम्राज्य फैला।

गिरि निर्झर—गिरि—पर्वत, यहाँ मनुष्यों से तात्पर्य है। निर्झर—झरने, आनंद। हरियाली—हराभरापन, समृद्धि। सूखे तरु—शुष्क वृक्ष, शुष्क जीवन। पल्लव—नवीन पत्ते, नवयुवक। लाली—लालिमा, क्रीड़ा, रंग।

अर्थ—पर्वत से झरने फिर उछल-उछल कर बहने लगे, हरियाली फिर से छा गई, सूखे वृक्षों पर फिर पल्लव आये और उन पल्लवों में जब लालिमा फूटी तो वे वृक्ष मुस्कुराते हुए प्रतीत हुए अर्थात् मनुष्यों के हृदयों से फिर आनंद फूटा, उनके जीवन में फिर समृद्धि छा गई, जो शुष्कता घिर आई थी उसके स्थान पर फिर हँसी और नवीन रंग आया।

पृष्ठ २८२

वे युगल वहीं—युगल—दोनों, पति-पत्नी। संसृति—संसार।

अर्थ—वे दोनों पति-पत्नी अपने स्थान पर ही बैठे संसार की सेवा करते हैं। उनके निकट जो जाता है उसे अपने उपदेशों से संतोष और सुख प्रदान करते हैं और इस प्रकार दुःख से प्राप्त होने वाले सभी के ताप को वे मिटाते हैं।

वि०—देखने की बात है कि इड़ा ने मनु का नाम कहीं नहीं लिया।

है वहाँ महा ह्रद—महा—बड़ा, विशाल। ह्रद—सरोवर, तालाब। प्यास—अशांति। मानस—मानसरोवर, मन रूपी सरोवर।

अर्थ—वहाँ निर्मल जल से भरा एक विशाल सरोवर है। उसके जल को पान कर मन की अशांति दूर हो सकती है। उसका नाम 'मानस' है। उसके पास पहुँचने वाले को सुख मिलता है।

वि०—मन के सरोवर में प्रेम का निर्मल जल भरा है। पान करने से अशान्ति दूर होती है और सुख मिलता है।

वो यह वृष—वृष—बैल। वैसे ही—खाली, उस पर बिना बोझ लादे या बिना बैठे।

अर्थ—इड़ा की इतनी बातें सुनकर बालक ने फिर प्रश्न किया : अच्छा, इस बैल को खाली क्यों चला रही है ? तू इस पर बैठ क्यों नहीं जाती ? पैदल चलकर तू क्यों थक रही है ।

पृष्ठ २८३

सारस्वत नगर—व्यर्थ—असार । रिक्त—खाली । पीयूष—अमृत, प्रेम ।

अर्थ—इड़ा बोली : सारस्वत नगर के रहने वाले हम लोग यात्रा करने और जीवन के इस असार सूने घट को अमृत-जल से भरने आये हैं ।

इस वृषभ—वृषभ—बैल । उत्सर्ग—मुक्त ।

अर्थ—यह बैल धर्म का प्रतिनिधि है । इसे उस तीर्थ-स्थान में जाकर हम मुक्त कर देंगे ।

हमारी कामना है कि यह सदा स्वतन्त्र रहे, भय से रहित हो, बन्धनहीन हो और सुख पावे ।

वि०—धर्म सांप्रदायिक संकीर्णता में आबद्ध होकर विकृत हो जाता है । उसकी शोभा इसी में है कि वह सभी के बीच मैत्रीभाव और प्रेम का प्रचार करे । धर्म में यदि जड़ बन्धन हों, यदि एक धर्म वाले दूसरे धर्म वालों से भय-भीत रहें, यदि स्वतन्त्रता से कुछ लोग अपनी उपासना-पद्धति का विकास न कर सकें तो यह धर्म नहीं है । ऊपर की पंक्तियों में धर्म को मुक्त रखने की जो बात उठाई गई है उसका आशय यही है ।

सब सम्हल—सम्हल गये—सावधान हो गये । नीची—अधिक ढलवाँ ।

अर्थ—सहसा सब सम्हल गये क्योंकि आगे की उतराई कुछ ढलवाँ थी । उसे पार कर जिस समतल घाटी में वे पहुँचे, वह हरियाली से छायी थी ।

श्रम ताप और—श्रम—थकावट । ताप—कष्ट । पथ पीड़ा—पथ के क्लेश । अंतर्हित—विलीन । विराट—विशाल । धवल—श्वेत, बर्फ से ढँके रहने के कारण सफेद । महिमा—गौरव । विलसित—सुशोभित, मंडित ।

अर्थ—वहाँ पहुँच कर थकावट, कष्ट और मार्ग के क्लेश पल भर में

विलीन हो गये। यात्रियों ने देखा कि उनकी आँखों के सामने ही विशाल श्वेत पर्वत अपने गौरव से मडित खड़ा है।

पृष्ठ २८४

उसकी तलहटी—तलहटी—पर्वत की तराई। श्यामल—हरे-भरे। तृण—घास। वीरुध—लता। हृद—तालाब।

अर्थ—पर्वत की यह तलहटी हरी लताओं के कारण रम्य लगती थी। नवीन कुञ्ज, सुन्दर गुहा-गृहों और सरोवरों से पूर्ण होने के कारण वह विलक्षण दिखाई दे रही थी।

वह मन्जरियों—मजरी—कुछ पौधों और वृक्षों की सींकों में लगे छोटे-छोटे दानों का समूह, बौर, मौर। पर्व—स्थान, भू-भाग। सकुल—पूर्ण, युक्त।

अर्थ—उस वन में बहुत से ऐसे वृक्ष थे जो मजरियों से लदे थे। शाखाओं के हरे पत्तों के बीच ये मञ्जरियाँ कुछ-कुछ पीत और कुछ अरुणाभा लिये हुए थीं।

वहाँ का प्रत्येक भू-भाग फूलों से यहाँ तक भरा था कि डालियाँ तक उनमें छिप गई थीं।

वि०—आम्र की मञ्जरी के सम्बन्ध में पत जी ने गुन्जन में लिखा है—

'रुपहले सुनहले आम्र बौर।'

यात्री दल ने—निराला—विलक्षण, अद्भुत। खग—पक्षी। मृग—हिरण।

अर्थ—यात्रियों के उस समूह ने वहाँ रुक कर मानसरोवर का विलक्षण दृश्य देखा। वह एक छोटा-सा उज्ज्वल ससार था जो पक्षियों और हिरणों को अत्यन्त सुखदायी था।

मरकत की—मरकत—हरे रग का एक रत्न, पन्ना। मुकुर—दर्पण। राका रानी—पूर्णिमा।

अर्थ—उस हरियाली के बीच स्वच्छ जल से भरा मानसरोवर ऐसा प्रतीत

होता था जैसे मरकत मणि से बनी वेदी पर हीरे का पानी हो या प्रकृति रमणी के मुख देखने को एक छोटा-सा दर्पण हो अथवा पूर्णिमा वहाँ सो रही हो।

दिनकर गिरि—दिनकर—सूर्य। हिमकर—चन्द्रमा। कैलास—हिमालय की चोटी। प्रदोष—सध्या। स्थिर—मग्न, अचचल। लगन—ध्यान।

अर्थ—सूर्य इस समय पर्वत के पीछे छिप गया था और आकाश में चद्रमा उग आया था। कैलास पर्वत सध्या की आभा में ऐसा लगता था मानो किसी ध्यान में मग्न है।

पृष्ठ २८५

संध्या समीप—सर—तालाब। वल्कल वसन—वृक्षों की छालों के वस्त्र। अलक—केश। कदब—एक वृक्ष और उसका पुष्प। रसना—करधनी, किंकणी।

अर्थ—सध्या की अरुणाभा उस सरोवर पर छा गई। ऐसा लगता था जैसे सध्या वृक्षों की सुनहली डाल के वस्त्र पहने उस सर पर उतर आई है।

अधकार छाया था और तारे निकल आये थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे सध्या के श्याम-केशों में ही वे तारे जड़े हैं।

कदम्ब के वृक्षों की पंक्ति जो फूलों से भरी थी ऐसा दृश्य उपस्थित कर रही थी मानो वह सध्या की करधनी हो।

खग कुल किलकार—खग—पक्षी। किलकारना—चहचहाहट मचाना। कल हंस—राज-हस। कलरव—मधुर कूजन। किन्नरियाँ—देवताओं की एक सगीत और नृत्य-प्रिय जाति। अभिनव—नवीन।

अर्थ—पक्षियों का समूह चहचहाहट मचा रहा था। राजहस मधुर कूजन कर रहे थे। इस चहचहाहट और कूजन के स्वर पर्वत से टकरा कर प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न करते थे जो ऐसी लगती थीं मानों किन्नरियाँ नवीव-नवीन तानों में गा रही हैं।

मनु बैठे ध्यान—निरत—लीन, मग्न। निर्मल—स्वच्छ। अंजलि—दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ सपुट।

अर्थ—उस स्वच्छ मानसरोवर के तट पर मनु ध्यान-मग्न बैठे थे। श्रद्धा अपनी अंजलि में पुष्प भर कर उनके निकट खड़ी थी।

श्रद्धा ने सुमन—मधुपों—भौरों। गुंजन—भौरों की गूँज। मनोहर—मधुर। उन्मन—अप्रभावित, उदासीन।

अर्थ—श्रद्धा ने उन पुष्पों को बिखेर दिया। उसी समय अगणित भौंरे गूँज उठे और उनकी वह मधुर गूँजार आकाश मे व्याप्त हो गई। फिर भी मनु उस गूँज से प्रभावित नहीं हुए और अपने ध्यान में ही तल्लीन रहे।

वि०—ऊपर लिखा है 'सुमनों की अंजलि भर कर'; पर इस छंद में 'सुमन बिखेरा' कहा है। 'सुमन बिखेरे' कहना चाहिए था।

पहचान लिया—वे—यात्री लोग। द्वन्द्व—पति-पत्नी का जोड़ा, दम्पति। द्युतिमय—तप के प्रकाश से आलोकित। प्रणति—प्रणाम।

अर्थ—उन्होंने देखते ही पहचान लिया कि जिन दम्पति महात्माओं के वे दर्शन करने आये हैं वे ये ही हैं। ऐसी दशा में यात्री लोग उनके पास आने से कैसे रुक सकते थे?

उन देव-दम्पति के मुख पर तपस्या का प्रकाश झलक रहा था। ऐसी दशा में आये हुए प्राणी उन्हें प्रणाम करने के लिए क्यों न झुकते?

पृष्ठ २८६

वह वृषभ—वृषभ—बैल। सोमवाही—सोमलताओं को लेकर चलने वाला। मानव—मनु पुत्र। डग भरना—जल्दी-जल्दी चलना।

अर्थ—उसी समय सोम लताओं से लदा बैल अपने गले में बँधे घण्टे की ध्वनि मचाता इड़ा के पीछे चलने लगा और इस बैल के साथ चलने वाला मानव भी तीव्र गति से चलने लगा।

वि०—इसके उपरांत वृषभ का वर्णन नहीं मिलता, अतः समझ लेना चाहिए कि उसे मुक्त कर दिया गया! उस प्रसन्नता में उसका ध्यान रखता भी कौन?

हाँ इड़ा आज—भूली—भेद भाव को भूल गई। दृश्य—मनु-श्रद्धा-मिलन। दृग—नेत्र। युगल—दोनों। सराहना—धन्य समझना।

अर्थ—एक बात और। इड़ा यहाँ आकर भेद-भाव की उस भावना को जिसके आधार पर उनका शासन-विधान आश्रित था भूल गई। परन्तु अपनी भूल के लिए वह क्षमा नहीं चाहती थी। मनु और श्रद्धा के उस मिलन-दृश्य को देखने का उसे अवसर मिला, इसके लिए वह अपने दोनों नेत्रों को धन्य मान रही थी।

चिर मिलित—चिर मिलित—चिर सम्बन्धित। चेतन—पुरुष। पुरातन—ईश्वर। पुरातन—अनादि। निज—अपनी। तरगायित—लहराता हुआ। अबुनिधि—समुद्र। शोभन—सुन्दर।

अर्थ—मनु श्रद्धा के साथ ऐसे प्रतीत होते थे जैसे ईश्वर अपनी चिर सम्बन्धित प्रकृति से मिल कर प्रसन्न होता है।

आनन्द के सुन्दर समुद्र में अपनी ही शक्ति की तरङ्ग उठी थी। भाव यह कि जैसे माया (शक्ति) आनन्दमय भगवान का अपना ही रूप है, जैसे लहर समुद्र का अपना ही अश है, वैसे ही श्रद्धा और मनु की स्थिति थी।

वि०—शक्ति शक्तिमान् से भिन्न नहीं होती।

भर रहा अंक—अंक—गोद। पुलक भरी—रोमाञ्चित होकर।

अर्थ—मानव ने अपनी मा से लिपटकर उसके शरीर को अपनी भुजाओं में भर लिया।

इड़ा ने अपना सिर श्रद्धा के चरणों में रख दिया। वह रोमाचित होकर गद्‌गद् कठ से बोली—

नोट—'बोली' शब्द आगे के छंद में प्रयुक्त हुआ है। वहीं वाक्य पूरा होता है।

बोली मैं धन्य—भूल कर—यों ही। ममता—मोह।

अर्थ—यद्यपि यहाँ मैं यों ही चली आई हूँ, फिर भी मैं धन्य हो गई। हे देवी, मुझे यहाँ तक खींचकर लाने का एकमात्र कारण तुम्हारे दर्शनों का मोह ही था।

वि०—इड़ा राज्य-शासन में इतनी व्यस्त रहती थी कि यदि श्रद्धा के दर्शन का मोह न होता तो वह वहाँ न आती।

पृष्ठ २८७

भगवति समझी—भगवति—देवी, स्त्रियों के लिए एक अत्यन्त आदरसूचक शब्द। समझ—बुद्धि। भुला रही थी—भूल के रास्ते चला रही थी। अभ्यास—स्वभाव।

अर्थ—हे देवी, आज मैं समझी कि मुझमें सचमुच कुछ भी बुद्धि न थी। यह मेरा स्वभाव ही बन गया था कि मैं सबको भूल के रास्ते पर चलाती रही।

हम एक कुटुम्ब—दिव्य—पवित्र, स्वर्गीय, साधनापूत। अघ—पाप।

अर्थ—इस पवित्र तपोवन की यह विशेषता सुनकर कि यहाँ आने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। मै और मेरी प्रजा एक कुटुम्ब बनाकर यात्रा करने आये हैं।

मनु ने कुछ—मुसक्या कर—हँस कर। यहाँ पर—संसार में।

अर्थ—मनु ने थोड़ा मुस्काते हुए कैलास की ओर सभी की दृष्टि आकर्षित की। वे बोलेः देखो, इस संसार में कोई भी पराया नहीं है।

वि०—मनु के मुस्काने के कई कारण हैं :

(१) महात्मा लोग सबसे हँस कर बातें करते हैं।

(२) आज अहवादी मनु अपने ही प्राचीन सिद्धान्त के विरुद्ध बोल रहे हैं। हँसी आना स्वाभाविक है।

(३) रूप के आकर्षण से मनु ऊँचे उठ गये हैं और वे अत्यन्त शांति के साथ उस इड़ा से बातें कर रहे हैं जिसके आगे उनका मन अनेक बार चंचल हो उठा था।

हम अन्य न—अवयव—अंग। कमी न होना—पूर्ण होना।

अर्थ—हम एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं, सब एक ही कुटुम्ब के सदस्य हैं। सभी कहीं केवल हम, एकमात्र हम ही हैं। अर्थात् मैं और हूँ और तुम और यह भेद अज्ञान-जनित है।

जैसे शरीर के सब अंगों को मिलाकर एक पूर्ण शरीर बनता है, वैसे ही तुम सब मेरे अंग हो और तुम सब के साथ मिलकर ही मैं पूर्ण हूँ।

पृष्ठ २८८

शापित न यहाँ—शापित—अभागा। तापित—दुःखी। समतल—समान। समरस—ठीक।

अर्थ—यहाँ हम किसी को अभागा नहीं कह सकते, किसी को दुखी नहीं समझ सकते, किसी को पापी नहीं ठहरा सकते।

जीवन की भूमि में सब समान हैं। कोई छोटा-बड़ा नहीं है। जीवन में जो भी जिस स्थिति में है ठीक है।

वि०—सुख-दुःख, पाप-पुण्य, सौभाग्य-दुर्भाग्य सापेक्षिक शब्द (Co-relative terms) हैं। एक व्यक्ति जब अपने को दूसरे के सामने रखकर देखता है, उसी समय वह अपनी उच्चता या हीनता का अनुभव करता है। पर ज्ञानी लोग ससार को समदृष्टि से देखते हैं। इसे इकाई मानते हैं। शीश पर मुकुट रखा जाता है और पैरों में धूलि लगती है। तो क्या इसीलिए हम पैरों को बुरा कहें। एक शरीर की दृष्टि से दोनों ही समान महत्त्वशाली हैं।

चेतन समुद्र—चेतन समुद्र—चेतना का समुद्र, ब्रह्म जो महाचेतन है। जीवन—प्राणी। छाप व्यक्तिगत—विशेष छाप, दूसरों से भिन्न होने का चिह्न। निर्मित—विशिष्ट। आकार—लम्बाई-चौड़ाई।

अर्थ—जैसे समुद्र में लहरें यहाँ-वहाँ उठती दिखाई देती हैं, पर वे समुद्र से पृथक् नहीं हैं—जलरूप ही हैं, वैसे ही अगणित जीवधारी हमें सृष्टि में यहाँ-वहाँ बिखरे मिलते हैं अवश्य, पर वे उस चेतना के समुद्र अर्थात् ब्रह्म से भिन्न अस्तित्व नहीं रखते।

अपने-अपने विशिष्ट आकार के कारण अर्थात् कोई लहर छोटी होती है कोई बड़ी—एक दूसरी से भिन्नता की छाप उन लहरों पर लग जाती है; पर वे अंततः पानी ही हैं, ठीक इसी प्रकार भिन्न-भिन्न आकार होने से प्राणी अपनी

पृथक्-पृथक् सत्ता का भ्रम उत्पन्न करते हैं, पर हैं वे मूल रूप में ब्रह्ममय ही—एक रूप ही।

वि०—जहाँ ऐसा माना जाता है कि ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है, उसके अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं, वहाँ अद्वैतवाद होता है। जो दिखाई देता है वह स्वप्न के समान भ्रम है। यहाँ से अद्वैतवाद का प्रतिपादन हो रहा है।

इस ज्योत्स्ना—ज्योत्स्ना—चाँदनी। जलनिधि—समुद्र। बुद्बुद्—बुलबुले। आभा—आलोक, ज्योति, मंद प्रकाश।

अर्थ—चाँदनी के इस समुद्र में बुद्बुदों के समान तारे जैसे अपने आलोक को झलकाते दिखाई पड़ते हैं—

नोट—भाव आगे के छंद में पूरा होगा।

वैसे अभेद—अभेद—परमात्म-तत्व की अखंडता। सृष्टि-क्रम—स्थिति। रसमय—आनन्दमय ब्रह्म। चरम—सर्वोत्कृष्ट।

अर्थ—वैसे ही अखंड परमात्मा-रूपी चाँदनी में जीवात्माओं की स्थिति है।

भाव यह कि यद्यपि चाँदनी में तारों की सत्ता पृथक् प्रतीत होती है, पर यदि वे घुल जावें तो चाँदनी रूप ही हैं। ठीक ऐसे ही जीवात्मा परमात्मा से भिन्न प्रतीत होते हैं, पर हैं वे परमात्मा स्वरूप ही।

जैसे सभी लहरों में घुलमिल कर समुद्र, सभी तारों में घुलमिल कर चाँदनी रहती है, वैसे ही सभी प्राणों में वह आनन्दमय ब्रह्म व्याप्त है। चिंतन के द्वारा मनुष्य ऊँचे से ऊँचे जिस भाव की उपलब्धि कर सकता है, वह यही है।

अपने दुख सुख—पुलकित—रोमांचित, आकुल तथा प्रसन्न। मूर्त—ठोस। सचराचर—चेतन प्राणी और जड़ प्रकृति से युक्त। चिति—चेतन ब्रह्म। विराट—विशाल। वपु—शरीर। मंगल—शिवरूप, कल्याणमय। चिर—अक्षय।

अर्थ—जड़ प्रकृति और चेतन प्राणियों से युक्त अपने दुःख से आकुल और अपने सुख से प्रसन्न यह ठोस संसार उस चेतन ब्रह्म का विशाल शरीर है और इस ब्रह्म के समान ही यह (संसार) शिव रूप (मंगलमय), सत्य रूप और अक्षय सुन्दर है।

पृष्ठ २८६

सब की सेवा—पराई—दूसरों की। संसृति—सृष्टि। द्वयता—भेद-भाव। विस्मृति—भूल।

अर्थ—इस दृष्टि से सबकी सेवा किसी दूसरे की सेवा नहीं है, अपने ही सुख को व्यापक बनाना है।

एक-एक अणु तथा एक-एक कण अपना ही रूप है। भेद-भाव भूल है।

मैं की मेरी—मेरी चेतनता—यह चेतना या भावना कि यह 'मेरा' है और इसे छोड़कर सब कुछ पराया। स्पर्श—प्रभावित। मादक घूँट—मदिरा की घूँट।

अर्थ—प्रत्येक प्राणी जो 'मैं' कहता है, और उसे छोड़ सब पराया है।

मदिरा के घूँट पीकर जैसे शराबी निर्मल चेतना को खो देता है, वैसे ही विभिन्न परिस्थितियों में पड़ कर सब प्राणी अपने को एक दूसरे से पृथक् समझते हैं और अपने निर्मल स्वरूप को भूल जाते हैं।

जग ले उषा—उषा के दृग—सूर्योदय, प्रभातकाल, ज्ञानोदय। सो ले—सो जा, लीन हो जा। निशि—रात, समाधि अवस्था। स्वप्न—सपने, भगवान का विलक्षण रूप। उलझन वाली अलकों—रात की घनी रहस्यमयी कालिमा, उलझन उत्पन्न करने वाले अज्ञान का अंधकार।

अर्थ—जब उषा के नेत्र खुले अर्थात् जब उषा-काल हो तब मनुष्य कर्म करने के लिए जग पड़े और रात्रि की पलकों में अर्थात् रात के कोमल आश्रय में वह सो जाय।

जैसे किसी के उलझे बालों में फँसकर मन प्रेम के अनेक स्वप्न देखता है, वैसे ही वह रात के उलझे केशों में अर्थात् रात की कालिमा के घनी और रहस्यमयी होने पर स्वप्न देखे—

वि०—(१) मनु के कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अपना जीवन प्रकृति के मेल में रखना चाहिये।

(२) क्योंकि अद्वैतवाद का प्रसंग चल रहा है, अतः इस छन्द का आशय और भी गहरा है। उषा के समान मनुष्य के हृदय में ज्ञानोदय हो और वह

समाधि अवस्था में जाकर लीनता का अनुभव करे। इसके उपरात ही वह अज्ञान के उलझन उत्पन्न करने वाले अन्धकार में ईश्वर के दर्शन करेगा।

चेतन का साक्षी—चेतन—चेतन ब्रह्म। साक्षी—निर्विकार रहकर देखने वाला। हँसता सा—दुःख से अप्रभावित, प्रसन्न, आनन्द की उपलब्धि करने वाला। मानस—मन। गहरे धँसना—गंभीर चिन्तन में लीन होना।

अर्थ—ब्रह्म का दर्शन करने वाला मानव सभी प्रकार के विकारों से रहित हो। वह आनन्द की उपलब्धि करे।

वह अपने हृदय में ईश्वर के मधुर दर्शन के लिए गहरे से गहरे डूबता (चिंतन करता) चला जाय।

वि०—मनुष्य को दुःख इसलिए होता है कि वह अपने को कर्त्ता समझता है और मनोविकारों में भाग लेने लगता है। इसी से कभी हँसता है और कभी रोता है। यदि वह मनोविकारों से अप्रभावित रह कर, जो भाव उठें उन्हें केवल देखे मात्र, तब वह साक्षी कहलाता है। ऐसी स्थिति में वह मुक्त आत्मलीन रहता है, आनन्द की उपलब्धि करता है।

सब भेद भाव—भेद भाव—'मैं' 'तू' का अन्तर, अपने पराये का भेद। दृश्य—आत्मा को प्रभावित न करने वाले मनोविकार। मैं हूँ—यही मेरा वास्तविक स्वरूप है। नीड़—घोंसला।

अर्थ—सब भेद-भाव को मिटा कर जब प्राणी दुःख-सुख दोनों से प्रभावित नहीं होता, केवल उनका द्रष्टामात्र होता है, उस समय वह अपने सच्चे स्वरूप को प्राप्त करता है।

ऐसी दशा में संसार एक घोंसले के समान प्रतीत होता है।

वि०—(१) मनुष्य का वास्तविक स्वरूप यह है कि वह मनोविकारों से प्रभावित न हो और सब को अपनी ही आत्मा समझे।

(२) नीड़ से तात्पर्य यह है कि यह संसार मोह का स्थान नहीं, क्योंकि थोड़े दिनों में जैसे घोंसले में से पक्षी उड़ जाता है वैसे ही हमें यहाँ से उड़ जाना है।

जैसे घोंसला एक है, वैसे ही ससार भी एक छोटा-सा घर है जिसमें विभिन्न जाति, विभिन्न देशों और विभिन्न वर्णों के प्राणी अपने परिवार के प्राणी हैं। कोई भी पराया नहीं है।

पृष्ठ २६०

श्रद्धा के मधु—मधु—मधुर। अधरो—ओंठ। रागारुण—अरुण सूर्य। कला—क्रीडा। स्मिति लेखाएँ—मन्द मुस्कान की छाप।

अर्थ—श्रद्धा के मधुर अधरों पर मन्द मुस्कान की छोटी-छोटी रेखाएँ अंकित होकर ऐसे खिल उठीं जैसे अरुण सूर्य की किरणें क्रीडा करती हैं।

वह कामायनी—मगल कामना—कल्याणकारिणी। अकेली—एकमात्र। ज्योतिष्मती—आलोकित। प्रफुल्लित—फूलों से भरी, प्रसन्न।

अर्थ—एक मात्र श्रद्धा ही ससार की कल्याणकारिणी है।

जैसे मानसरोवर के किनारे लता प्रकाश से झलमलाये और फूलों से भर जाय, वैसे ही मानस के किनारे वह तप के आलोक से आलोकित और प्रसन्न-मना खड़ी थी।

वि०—'मानस' यहाँ श्लिष्ट शब्द है। जैसे मानस पर लता, जैसे मान-सरोवर पर स्थूल श्रद्धा, वैसे ही मन में श्रद्धा का निवास है और श्रद्धा से ही मन की शोभा है।

वह विश्व—पुलकित—सजीव, साकार। पूर्ण—जिसमें किसी प्रकार की अपूर्णता न हो। काम—कामनाओं। प्रतिमा—मूर्ति। गभीर—गहरा। ह्रद-तालाब, सरोवर। विमल—निर्मल, स्वच्छ। महिमा—महिमावान्, पवित्र।

अर्थ—ससार भर की चेतना ही जैसे श्रद्धा के रूप में सजीव (साकार) हो उठी थी। वह सभी कामनाओं की मूर्ति थी। सब प्रकार से वह वैसे ही पूर्ण थी जैसे कोई गहरा विशाल सरोवर निर्मल और पवित्र जल से ऊपर तक भरा हुआ हो।

वि०—श्रद्धा सभी प्रकार की जड़ता को दूर करती और सभी इच्छाओं की पूर्ति कराती है, इसी से उसे 'विश्व-चेतना' और 'काम की प्रतिमा' कहा है।

जिस मुरली के—मुरली—वंशी । निस्वन—ध्वनि, गूंज । शून्य—सूनापन । रागमय—सगीतमय । अग—जड़ । जग—चेतन । मुखरित—ध्वनित, यहाँ प्रभावित ।

अर्थ—जैसे वंशी की ध्वनि से सूनेपन में सगीत भर जाता है वैसे ही कामायनी के हँसने से जड़ और चेतन सभी प्रभावित हो गये ।

वि०—प्राणी और प्रकृति के भावों की यह समानानुभूति 'गुप्त' जी में भी देखिए—

विकस उठीं कलियाँ डालों में
निरख मैथिली की मुसिकान ।

पृष्ठ २६१

क्षण भर में—क्षण—पल । परिवर्तित—बदली दशा में, प्रसन्नावस्था में । अणु-अणु—प्रकृति की एक-एक वस्तु । पिंगल—पीला । रस—मकरद ।

अर्थ—पलभर में ही संसार-रूपी कमल का एक-एक अणु और ही रूप में दिखाई दिया अर्थात् इसके उपरांत पवन, लताएँ, पुष्प, भ्रमर, किरणें, पक्षी सभी प्रसन्नावस्था में दिखाई दिये ।

जैसे कमल में पीला पराग उमड़ उठता है वैसे ही प्रकृति की ये वस्तुएँ चचल हो उठीं और जैसे पुष्प से मकरद छलक कर गिरता है वैसे ही चारों ओर आनदामृत बरसने लगा ।

वि०—यहाँ से पवन, लताओं, सुमन, हिमखड, रश्मियों आदि की आनद-दशा का वर्णन प्रारंभ होता है ।

अति मधुर—गन्धवह—गन्ध को वहन करने वाला, पवन । परिमल—सुगध, यहाँ सुगधित पुष्प पराग से तात्पर्य है । बूँदों—मकरद, पुष्प रस । केसर—कमल के मध्य भाग की पतली सींकें । रज—कमलरज । रजित—रँगा हुआ, युक्त ।

अर्थ—पराग से सुगन्धित और मकरन्द से सना अत्यन्त मधुर पवन बहने लगा । कमल की केसर को छूकर जो प्रसन्न था वह पवन उसकी रज से रँग कर लौटा ।

जैसे असंख्य—असख्य—अगणित। मुकुल—कली। मादक—मस्ती।

अर्थ—उस पवन को देखकर लगता था जैसे वह अगणित कलियों की
ी को उभार कर आया है, इसी से मस्त है। उसने उनकी अछूती पखुरियों
घना चुम्बन किया है, इसी से झूम उठा है।

रुक रुक कर—इठलाता—इतराता। भूला—कोई बात भूल गया हो।
क कुसुम—पलाश के फूल। धूसर—सना। मकरद—पुष्प रस। जलद—
ल।

अर्थ—वह रुक-रुक कर इठलाता चल रहा था जैसे कुछ भूल गया हो
र भूली बात को याद करने में उसकी गति में विघ्न पड़ रहा हो।

नवीन पलाश के पुष्पों के पराग से सना और पुष्पों की रस-बूँदों से भरा
बादल-सा उमड़ रहा था।

पृष्ठ २६२

जैसे वन लक्ष्मी—केसर—कुकुम। हेमकूट—सोने का पर्वत, सुमेरु।

अर्थ—पीले पराग से युक्त वह पवन ऐसा प्रतीत होता था मानो वनलक्ष्मी
केसर-रज बिखेर दी हो या बर्फ के समान निर्मल जल में सुमेरु (सोने का)
त अपनी परछाईं झलका रहा हो।

वि०—'केसर रज' और 'हेमकूट की परछाईं' दोनों का 'पीले पराग से
ने' पवन से वर्ण-साम्य है।

संसृति के मधुर—ससृति—सृष्टि। उच्छ्वास—प्रेम की साँसें।

अर्थ—सन्-सन् करती पवन की वे हिलोरें ऐसी प्रतीत होती थीं जैसे सृष्टि
पी रमणी के हृदय से फूटने वाले उच्छ्वास जो किसी के मधुर मिलन की
मना को लिये हुए थे अपना एक दल बना कर आकाश के आँगन में एक
वीन मगल-गीत गाते जा रहे हों।

वि०—'उच्छ्वास' और 'मङ्गल-गीत' के साथ पवन की तुलना करने में
सकी हिलोरों के आकार और सनसनाहट पर कवि की दृष्टि है अर्थात्
आकार-साम्य और ध्वनि-साम्य है।